ॐ
नाम
माहात्म्य
“श्रीतीर्थांक”
वर्ष ४ — संख्या १
अगस्त १९४१
MURARI ART DELHI.

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

समर्पण

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये !!

वार्षिक मूल्य
१।।) रु०
श्रीतीर्थाङ्क १) रु०
एक प्रति ≡)

सम्पादक--
श्री दानबिहारीलाल शर्मा
श्रीरामदास शास्त्री, 'साहित्यरत्न'

वर्ष ४: संख्या १
अगस्त १९४१

प्रकाशक--श्रीगौरगोपाल अग्रवाल, भजनाश्रम, वृन्दावन।
मुद्रक--बाबू प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, वृन्दावन

॥ श्री ॥

आवश्यक निवेदन

"नाम–माहात्म्य" के चतुर्थ वर्ष का विशेषाङ्क "श्रीतीर्थाङ्क" आपके कर-कमलों में है। "नाम–माहात्म्य" में गत वर्ष काफ़ी घाटा रहा, कारण "नाम–माहात्म्य" का वार्षिक मूल्य लागत से भी बहुत कम रखा गया, जिससे हरएक सज्जन इसे सुगमता से अपना सकें। भगवान् की कृपा से गत वर्ष का विशेषांक बहुत शीघ्र बिक गया और उसकी बहुत मांग रही, सैकड़ों सज्जनों के मनीआर्डर हमें वापिस करने पड़े। इस वर्ष भी विशेष घाटे की सम्भावना है, क्योंकि कागज़ का दाम गत वर्ष से भी बहुत तेज़ होगया है, इस वर्ष बहुत अधिक खर्च हुआ है। अङ्क भी कुछ विशेष छपवाये हैं। हम इसे और भी सुन्दर निकालना चाहते थे, लेकिन सभी वस्तु बहुत तेज होजाने से, लेखादि मँगाने का भी खर्च (डाक-रेट बढ़ जाने से) गत वर्ष से दूना होजाने पर भी, श्रीवृन्दावनचन्द्र की कृपा से जैसा भी बन सका, वह आपके सन्मुख है। अङ्क कैसा है? इसे आप देखकर स्वयं जान सकते हैं।

१॥) रु. वार्षिक मूल्य लागत से भी बहुत कम है। लगभग ३०० पृष्ठ एवं अनेक रङ्गीन व सादे चित्र विशेषांक में हैं। इसके अतिरिक्त पूरे वर्ष तक प्रतिमास १ अङ्क भी इसी मूल्य में दिया जायगा। इस वर्ष लेखादि भी बहुत बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वानों से प्राप्त किये हैं। इतना विशाल विशेषांक ३)–४) रु० वार्षिक मूल्य वाले मासिक–पत्र का मिलेगा। यह पत्र तो केवल भगवन्नाम प्रचार की दृष्टि से निकाला जाता है। अन्य पत्रों की भाँति इसमें विज्ञापन की प्रचुर आमदनी भी नहीं है। यदि ग्राहकों की संख्या विशेष बढ़ जाय, तो कुछ घाटा कम हो सकता है। यह सब आप प्रेमियों की कृपा पर ही निर्भर है।

"नाम-माहात्म्य" के प्रेमी पाठकों से प्रार्थना है कि अपने इस "नाम–माहात्म्य" के कम से कम पाँच-पाँच ग्राहक अवश्य बना कर भगवान् के नाम-प्रचार की सेवा करें। आप यदि चाहेंगे तो बड़ी सुगमता से यह सेवा कर सकेंगे। आपके थोड़े से परिश्रम से बड़ा लाभ होगा और इसकी ग्राहक संख्या शीघ्र ही कई गुनी हो सकती है। ४–५ सज्जनों का मूल्य एक ही मनीआर्डर से भेजने से खर्चा भी कम लगेगा। वी० पी० भेजने में ≡) अधिक खर्च पड़ते हैं और असुविधा भी रहती है। अतः नये ग्राहकों के रुपये इकट्ठा करके मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भेजने की कृपा कीजिये और साथ ही एक पत्र द्वारा उनके पूरे पते हमें लिख दीजिये।

पुराने ग्राहकों को, जिनका मूल्य अभी तक नहीं मिला है, उन्हें वी० पी० द्वारा विशेषांक शीघ्र भेजा जायगा। वी० पी० करने में ≡) रजिष्ट्री के उन्हें विशेष देने होंगे, यानी १॥≡) रु. देना होगा। इसलिये उन्हें या तो अपना मूल्य १॥) रु. शीघ्र मनीआर्डर से भेज देना चाहिये

या वी० पी० पहुँचने पर छुड़ा लेना चाहिये। अगर कोई सज्जन मनीआर्डर से अपना मूल्य भेज चुके हों और इधर से वी० पी० भी उनके पास पहुँच जाय, तो कृपा कर वी० पी० छुड़ालें। यदि वी० पी० न छुड़ा सकें तो हमें तुरन्त लिखदें जिससे हम उनके पोस्टमास्टर को फ्री डिलीवरी को लिखदें। वी० पी० किसी दशा में भी वापस न करें। इसमें हमारी क्षति होती है। जिन सज्जनों को ग्राहक न रहना हो, वे कृपा कर तीन पैसे के पोस्टकार्ड द्वारा शीघ्र सूचित करदें, जिससे उनके नाम वी० पी० न भेजी जावे।

नये–पुराने सभी ग्राहकों से निवेदन है कि उन्हें १।।) रु. भेज कर तुरन्त ग्राहक बन जाना चाहिये, नहीं तो गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 'श्रीतीर्थाङ्क' बिक जाने पर फिर ऐसी अमूल्य वस्तु उन्हें उपलब्ध होना कठिन है।

जिन महानुभावों ने "नाम-माहात्म्य" के ग्राहक बनाने में अपना पवित्र सहयोग प्रदान किया है, उनके शुभनाम कृतज्ञता पूर्वक नीचे दिये जाते हैं। आशा है और सज्जन भी इनका अनुकरण करते हुए,इस नाम प्रेमी पत्र का प्रचार कर, भगवन्नाम-प्रेम का परिचय देंगे—

देवीसहायजी भार्गव बम्बई, ज्येष्ठालालजी गिरधरलालजी बम्बई, देवकरनलालजी भार्गव झाँसी, जैनारायनजी अग्रवाल उज्जैन, रामजीदासजी सोस्टर अलीगढ़, मथुराप्रसादजी केबिन-मैन कानपुर, रामस्वरूपजी शर्मा सबपोस्ट मास्टर बालोत्तरा, श्रीदुलीचन्दजी नवद्वीप, द्वारका-दास नानूराम अहमदाबाद,हीरालाल एम०पटेलजी बम्बई,लूनकरनदास बालमुकन्दजी देशनोक, श्रीकृष्णदत्तजी गोयनका कलकत्ता, रामाधारजी दुबे परासिया, नन्दकिशोरजी टीकमगढ़, प्यारे-लालजी हैड ड्राफ्टसमैन फतेहगढ़,मुन्नीलालजीखत्री लहरपुर,अमृतलालजी उगरचन्दजी वीसनगर, आदर्श सनातनधर्म सभा नारनौल, रामलालजी गोयल अजमेर, वंशीधरजी शर्मा अकोला, हरदत्तरायजी शिवकुमारजी दुबराजपुर, लक्ष्मीनारायनजी वीसनलालजी सीतापुर, लक्ष्मीनारा-यनजी मिश्र मैनपुरी, कृष्णकिशोरप्रसादजी भरतिया, पूरनमलजी लादूरामजी चारघाट, भक्त श्रीकिशोरदासजी रोहतक, पं. नरोत्तमलालजीशर्मा भरतपुर, पं. बृजमोहनलालजी-रामगोपालजी शर्मा फ़िरोजाबाद, मनोहरलालजी उपाध्याय गरोठ, ला. चिरञ्जीलालजी अग्रवाल बड़ौदा, सम्पतलालजी वर्मा कानपुर, हरकिशनदासजी रामेश्वरलालजी, पं. श्यामनारायणजी मिश्र डेरापुर, धनेश्वरजी झा उदयपुर, छीतरमलजी भूरमलजी चौधरी केली, पं. शङ्करलालजी कानपुर, गो. राधेलालजी कानपुर, आदि आदि।

पुनः प्रार्थना है, कि कृपया शीघ्र १।।) रु.भेजकर ग्राहक बनने की दया कीजिये। विशेष कृपा बनी रहे। प्रार्थी—

मैनेजर--'नाम-माहात्म्य' वृन्दावन, यू० पी०।

❀ श्री ❀

विषय-सूची

[श्रीतीर्थाङ्क अगस्त सन् १९४१ ई०]

परिशिष्टाङ्क

[सितम्बर सन् १९४१]

चित्र-सूची

परमपूज्यपाद श्री १०८ योगिराज श्रीस्वामी शिवानन्दजी महाराज की प्यारी

भगवन्नाम की सुमधुर ध्वनियाँ

यदुपति ब्रजपति जय घनश्याम। पतित पावन राधेश्याम।
यदुपति ब्रजपति श्यामा श्याम। पतित पावन राधेश्याम॥
श्री राम हरे जय राम हरे। राघव राम सीताराम हरे।
श्याम हरे घनश्याम हरे। राधेश्याम हरे राधे कृष्ण हरे॥
जय गोविन्द जय गोपाल। केशव माधव दीन दयाल।
गोविन्दं हरि गोविन्दं हरि गोविन्दम् हरिगोविन्द॥
परमानन्दम शिवपरमानन्दम हरि गोविन्दं गोविन्द।
श्री वाह गुरु वाह गुरु वाह गुरु जी।
सत् नाम् सत् नाम् सत् नाम् जी॥
श्री राम सीताराम सीताराम सीताराम।
श्री श्याम राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम॥
राम ध्वनि लागी गोपाल ध्वनि लागी। कैसे छुटै राम ध्वनि लागी॥

भजो रे भैया—गोविन्द—और लोग कहे गोविन्द
आवो प्यारे गोविन्द
मिलकर गावो "
राधे कृष्ण "
Come Come O. Lord "
Give me a darshan. "
प्रभो प्रसीद "

गुरु गुरु जपना और सब सपना।
और लोग
हरि हरि बोलना कृष्ण हरि बोलना।
गौर हरि बोलना गौरांग हरि बोलना॥

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ! ममापि, दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

--[भगवान् श्रीचैतन्यदेव]

वर्ष ४ | श्रीवृन्दावन—श्रावण सं० १९९८—अगस्त १९४१ ई० | संख्या १

श्रीतीर्थ-महिमा

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

—[अथर्ववेद १८ काण्ड, ४ अध्याय, ४ सूक्त, ७ मन्त्र]

भावार्थ—"जिस प्रकार यज्ञ करने वाले यज्ञादि द्वारा बड़ी बड़ी आपत्तियों से मुक्त होजाते हैं और पुण्य लोक की प्राप्ति करते हैं, उसी प्रकार तीर्थयात्रा करने वाले तीर्थादि द्वारा बड़ी-बड़ी आपत्तियों से छुटकारा पाजाते हैं साथ ही पुण्य-लोक की भी प्राप्ति करते हैं ।"

तीर्थ-माहात्म्य

(अष्टादश-पुराणों से संकलित)

१—ब्रह्मपुराण—

यथा सर्वेश्वरो विष्णु सर्वलोकेषु'चोत्तमः ।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥
आदित्यानां यथा विष्णु श्रेष्ठत्वे समुदाहृतः ।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥

[अध्याय ६६, श्लोक १२--१३]

सम्पूर्ण लोकों में सर्वेश्वर विष्णु जैसे सर्वोत्तम हैं वैसे ही समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम क्षेत्र (श्री-जगन्नाथजी) श्रेष्ठ हैं । द्वादशादित्यों में जैसे विष्णु आदित्य प्रधान है, वैसे ही सम्पूर्ण-तीर्थों में श्रीपुरुषोत्तम (श्रीजगन्नाथजी) श्रेष्ठ हैं ।

२—पद्मपुराण—

जन्म प्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा
पुष्करे स्नान मात्रेण सर्वमेतत्प्रणश्यति ॥
यथा सुराणां प्रवरः सर्वेषां तु पितामहः ।
तथैव पुष्करं तीर्थं तीर्थानामादिरुच्यते ॥

[प्र० सृ० खण्ड, प्र० ११, श्लोक ४२--४३]

स्त्री अथवा पुरुषों के आजन्म किये हुए सम्पूर्ण पाप पुष्कर में स्नान मात्र से नष्ट हो जाते हैं । जैसे सम्पूर्ण देवताओं में पितामह (ब्रह्माजी) प्रधान हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में आदि । तीर्थ पुष्कर कहा जाता है ।

३—विष्णुपुराण—

मथुरानाम नगरी पुण्या पापहरा शुभा ।
यस्यां जातो जगन्नाथः साक्षाद् विष्णुसनातनः ॥

[अंश ४ अ० ६ श्लोक १७]

पापानां पाप शमनं धर्मवृद्धिस्तथा सताम् ।
विज्ञेयं सेवितं तीर्थं तस्मातीर्थपरोभवेत् ॥

[विष्णुधर्मोत्तर तृ० खण्ड, अ० २७४ श्लोक ८७]

मथुरा नगरी परम पवित्रा और पापों के हरण करने वाली शुभ रूपा है, जिस मथुरा में साक्षात् सनातन विष्णु प्रकट हुए हैं, उसका सेवन किया हुआ तीर्थ है, पापियों के पापों को शमन करनेवाला, तथा सज्जनों के धर्म की वृद्धि करने वाला कहा गया है, इस लिये सम्पूर्ण प्राणियों को तीर्थ सेवन करना चाहिये ।

४--शिवपुराण--

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी पुरी ।
पञ्चक्रोशी महापुण्या हत्याकोटि विनाशिनी ।
अमरा मरणं सर्वे वाञ्छन्तीह परे च के ।
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सर्वदा शङ्करप्रिया ॥

[को० रू० संहिता, अ० २२ श्लोक २७--२८]

जिन प्राणियों की कहीं गति न हो, उनकी वाराणसी (काशी) पुरी में गति होती है । महापुण्यदायिनी पञ्चक्रोशी कोटि हत्याओं की नाश करने वाली है । यहाँ सब देवता भी मरने की इच्छा करते हैं, औरों की तो बात ही क्या है । यह सर्वदा शिव की प्रिया तथा भुक्ति, मुक्ति की देने वाली है ।

५—श्रीमद्भागवत पुराण—

नारायणाश्रमो नन्दा सीता रामाश्रमादयः ।
सर्वे कुलाचला राजन् ! महेन्द्रमलयादयः ॥

[१]

[२]

[३]
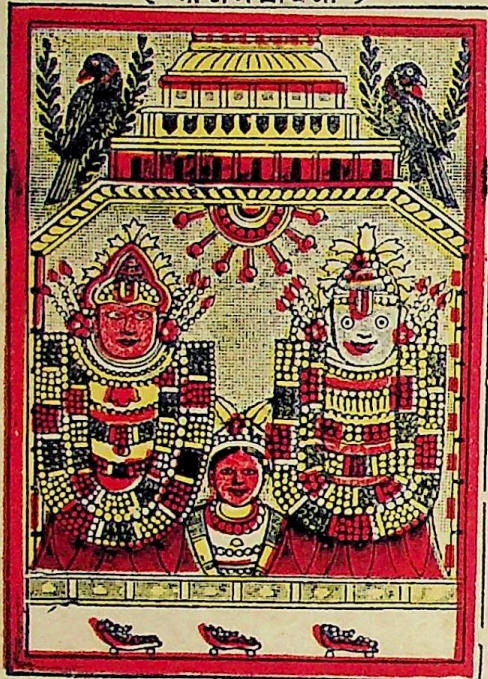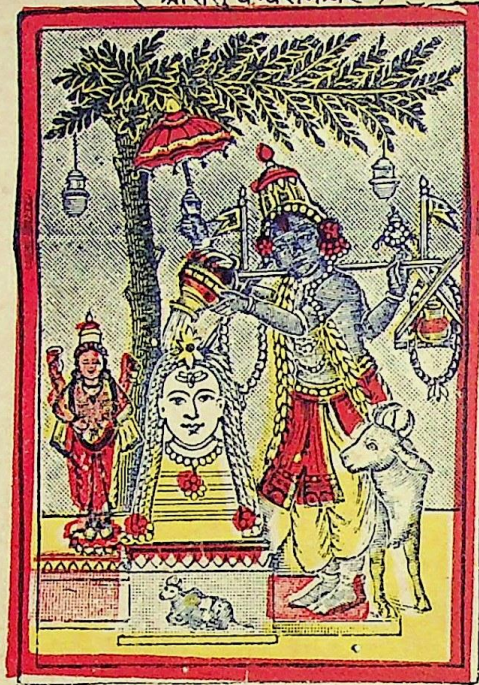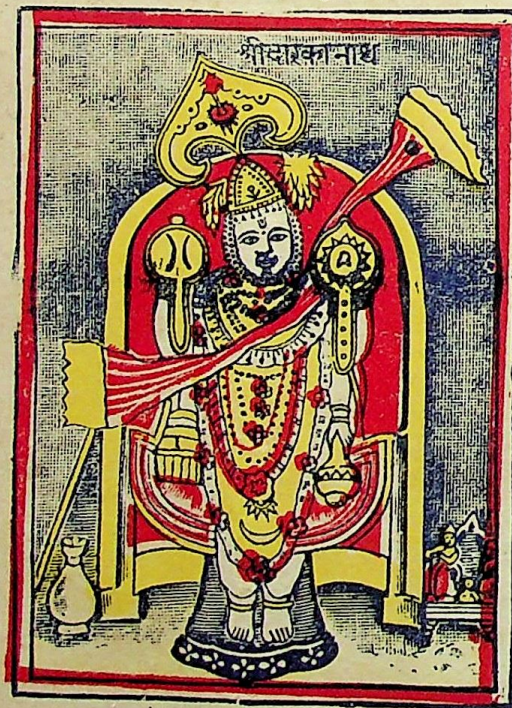
BLOCKS BY COURTESY OF SUKH SANCHARAK CO. LTD., MUTTRA.

तीनों धाम

[१] श्री जगन्नाथ जी [२] श्री रामेश्वर जी [३] श्री द्वारिकाधीश जी

एते पुण्यतमाः देशाः हरेरर्चाश्रिताश्च ये ।
एतान् देशान् निसेवेत श्रेयस्कामोह्यभीक्ष्णशः॥

(स्कन्द० ७ अ०, १४ श्लो० ३२--३३)

हे राजन्! नारायणाश्रम (बद्रीनारायण), अलकनन्दा, चित्रकूट, अयोध्या, महेन्द्रगिरि, मलयाचल, गिरिनार, गोवर्धन, श्रीरङ्गवेङ्कटाद्रि, पुरुषोत्तम क्षेत्र प्रभृति, परम पुनीत प्रदेश हैं, कल्याण की चाहना करने वाला इन देशों में निरन्तर निवास करे।

६—*वृहद् नारद पुराण*—

क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानाञ्च तथोत्तमम् ।
गङ्गा यमुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः ॥
यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महीतले ।
तेषां पुण्यतमं ज्ञेयं प्रयागाख्यं महामुने ॥

(पूर्वखण्ड० अ०, ६ श्लो० ५--६)

सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र, सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ, गङ्गा और यमुना के सङ्गम को परमर्षि लोग कहते हैं। हे नारद! समुद्रान्त पृथ्वी में जितने पवित्र क्षेत्र हैं, उन सब तीर्थों में पुण्यतम तीर्थ प्रयाग ही समझना चाहिये।

७—*मार्कण्डेय पुराण*—

कुशा पलाशिनीचैव शुचिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वाः गङ्गाः समुद्रगाः।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्व पापहराः स्मृताः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा सूत्पलावती ॥

(अ० ५४ श्लो० ३०--३१)

कुशा, पलाशिनी, प्रभृति नदियाँ शुचिमत् पर्वत से प्रकट हुई हैं, तथा कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा, उत्पलावती, ये सब मलयाचल पर्वत से निकली हुई नदियाँ हैं। ये सब पवित्र नदियाँ गङ्गा के समान बहती हुई समुद्र में मिलने वाली हैं, ये सब नदियाँ विश्व की माता हैं तथा सम्पूर्ण पापों को हरने वाली पुराणों में कही गई हैं।

८—*अग्नि पुराण*—

हव्य कव्यैर्धनैः श्राद्धैस्तेषां कुलशतं व्रजेत् ।
नरकात् स्वर्गलोकाय स्वर्गलोकात्परां गतिम्॥
गयोऽपि चाकरोत् यागं बह्वन्नं बहु दक्षिणम्।
गयापुरी तेन नाम्ना पाण्डवा ईजिरे हरिम् ॥

(अ० ११४ श्लो० ४०-४१)

गया तीर्थ में हवन, पितृ श्राद्ध तथा दान करने वालों के एक शत पुरुष नरक से स्वर्गलोक में तथा स्वर्ग से वैकुण्ठ में जाते हैं। गय महाराज तथा गय असुर ने भी बहुत अन्न और बहुत दक्षिणाओं से यज्ञ किया और पाण्डवों ने यज्ञ द्वारा हरि को आराधन किया, इससे गयापुरी प्रसिद्ध क्षेत्र है।

९—*भविष्य पुराण*—

स महात्मा पुरासाम्बश्चन्द्रभागा सरित्तटे ।
पुरं निवेशयामास स्थापयित्वा दिवाकरम् ॥
तत्पुरं सवितुः पुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
साम्बेन कारितं यस्मात् तस्मात् साम्बपुरं स्मृतम्

(ब्राह्मपर्व, अ० १४० श्लो० २--३)

उन महात्मा साम्ब ने चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्यनारायण की स्थापना कर पुरी को बसाया, वह तीनों लोकों में विख्यात पवित्र सूर्य--क्षेत्र हुआ, साम्ब के निर्माण करने से उस तीर्थ का नाम साम्बपुर प्रसिद्ध हुआ।

१०—*ब्रह्मवैवर्त पुराण*—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवी।
मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु संततम् ॥

मद्भक्तपाद रजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।
सद्यः पूतानि तीर्थानि, सद्यः पूतं जगत्तथा॥
(कृष्णजन्म खण्ड, अ० १२६ श्लो०२६-२७)

पृथ्वी में जितने पवित्र तीर्थ हैं, हे जाह्नवि! वे सब तीर्थ हमारे भक्तों के पवित्र शरीर में व्याप्त होकर रहते हैं। हमारे भक्तों की चरण-रज से तत्काल पृथ्वी पवित्र होती है, यही नहीं किन्तु इस चरण-रजसे सम्पूर्ण तीर्थ तथा जगत् भी पवित्र होते हैं।

११—लिङ्ग पुराण—

यथा मोक्षमवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित्।
कामंह्यत्र मृतोदेवि जन्तु मोक्षाय कल्पते॥
एतन्ममपुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतमं महत्।
ब्रह्मादयो विजानन्ति ये च सिद्धा मुमुक्षवः॥
[अ० ९२ श्लोक ४३-४४]

जैसी इस काशी क्षेत्र में जीवों को मुक्ति प्राप्त होती है, वैसी और किसी क्षेत्र में नहीं, देवि! यहाँ पर मरने से जीवों को यथेष्ट मोक्ष प्राप्त होता है। ये हमारा पुर दिव्य और गुप्त से भी गुप्ततम है, इस काशी क्षेत्र का महत्व ब्रह्मादि देवता और सिद्ध मुमुक्षु लोग ही जानते हैं।

१२—वाराह पुराण—

तव चात्र निवासं वै देव इच्छामि नित्यशः।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावच्चैव महाप्रभोः॥
स्थानं तव हृषीकेश इच्छामि मधुसूदन।
त्वयि भक्ति सदा भूयाद्यावत्स्थानं जनार्दन॥
[अ० १२६ श्लोक २०-२१]

भगवन्! जब तक पृथ्वी सम्पूर्ण लोकों को धारण करती रहे। तब तक हे महाप्रभो! मधुसूदन! हृषीकेश नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध होता रहे और मेरी यही इच्छा है कि आप यहाँ ही निवास करें। हे जनार्दन! जब तक यह स्थान रहे तब तक यहाँ स्नान दर्शन करने वालों की आपके प्रति श्रद्धा बनी रहे।

१३—वामन पुराण—

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे कुरुक्षेत्रं द्विजोत्तमाः।
तं दृष्ट्वा मुक्त पापस्तु परंपदमवाप्नुयात्॥
कुरुक्षेत्रे नरः स्नात्वा मुक्तोभवतिकिल्विषैः।
कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम्॥
[अ० ४१ श्लोक २०-२१]

द्विजोत्तम! पुण्यतम कुरुक्षेत्र में कुरुक्षेत्र नामक तीर्थ का जो दर्शन करें, वे संसार बन्धन से छूट कर परम पद को प्राप्त होते हैं, कुरुक्षेत्र में स्नान करने से मनुष्य स्नान करके सम्पूर्ण पापों से छूट जाते हैं और भगवत् आज्ञा से वैकुण्ठ धाम को प्राप्त होते हैं।

१४—मत्स्य पुराण—

न जानन्ति नरा मूढ़ा विष्णु माया विमोहिताः।
नर्मदायां स्थितं दिव्यं भृगुतीर्थं नराधिपः॥
भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः क्वचित्।
विमुक्तः सर्व पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥
[अ० १९३ श्लोक ५८-५९]

विष्णुमाया से विमोहित मूढ़ मनुष्य यह नहीं जानते हैं कि नर्मदा के तट पर स्थित दिव्य भृगु नामक तीर्थ है। हे राजन्! भृगु तीर्थ का माहात्म्य जो मनुष्य कहीं सुन लेता है वह सब पापों से मुक्त होकर सीधा रुद्र लोक में जाता है।

१५—कूर्म पुराण—

तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यतः।
नैमिषं तत्स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरग राक्षसाः ।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान् वरान् ॥
[उत्त० अ० ४३ श्लोक ६-११]

चतुर्मुख निर्मित चलते हुये उस चक्र की नेमि जहाँ एक साथ बिखर गई, वहाँ ही परम पवित्र सर्वत्र पूजित नैमिषारण्य क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। इस नैमिषारण्य तीर्थ में गन्धर्व, देव, यक्ष, नाग, राक्षस प्रभृति सम्पूर्ण देवताओं ने तप करके भगवान से वरदान प्राप्त किये थे।

१६—गरुड़ पुराण—

वर्त्तन्ते वैष्णवा यत्र हरितत्त्वार्थ बोधकाः ।
तत्रैव भक्ताः सर्वेऽपि सन्ति विष्णोस्तथैव च॥
शेषाचलं समासाद्य ह्यन्नवस्त्रादि भूषणम् ।
यो न दद्यादभक्तः स ततः कोऽनुपरः पशुः ॥
[व० का० अ० २४ श्लोक ३६-३७]

जिस वैङ्कटाचल तीर्थ में हरि तत्त्वार्थ-बोधक वैष्णव निवास करते हैं, वहाँ ही सम्पूर्ण वैष्णव-भक्त भी निवास करते हैं। उस शेषाचल तीर्थ में जाकर वैङ्कटेश भगवान के दर्शन कर जो वैष्णवों को अन्न वस्त्रादि भूषणों से सत्कार नहीं करते, वे अभक्त हैं और उनसे बढ़कर दूसरा पशु कौन होगा।

१७—स्कन्द पुराण—

त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ।
बदरीं भगवान् विष्णु र्न मुञ्चति कदाचन ॥
सर्व तीर्थावगाहेन तपो योग समाधितः ।
तत्फलं प्राप्यते सम्यग बदरी दर्शनाद् गुह ! ॥
[वै० खण्ड अ० १ श्लोक ६०-६१]

समय-समय और युग-युग में भगवान सब तीर्थों को त्यागते हैं, परन्तु विष्णु भगवान बद्रीनारायण तीर्थ को कभी नहीं त्यागते, सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से तथा तप, योग, समाधि से जो फल प्राप्त होता है, हे कार्त्तिकेय ! यह सम्पूर्ण फल बद्रीनाथधाम के दर्शन मात्र से प्राप्त होता है।

१८—ब्रह्माण्ड पुराण—

यमुना प्रभवे चैव सर्व पापैः प्रमुच्यते ।
अत्युष्णाश्चाति शीताश्च आपस्तस्मिन्निदर्शनम्॥
यमस्य भगिनी पुण्या मार्तण्ड दुहिता शुभा ।
तत्राक्षयं सदा श्राद्धं पितृभिः पूर्वं कीर्त्तितम् ॥
[उपोद्घातपाद अ० १३ श्लोक ७१-७२]

श्रीयमुनाजी के उत्पत्ति स्थान यमुनोत्री तीर्थ में स्नान तथा दर्शन करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्त होजाता है। अत्यन्त उष्ण तथा अत्यन्त शीतल जल ही वहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, यमराज की भगिनी परम पवित्र सूर्य की पुत्री मङ्गल रूपा श्रीयमुनाजी हैं, यमुना तीर्थ के तट पर श्राद्ध तथा पितृ तर्पण करने से पितरों की अक्षय तृप्ति होती है, यह पितृगणों की उक्ति है।*

---

*पुराणों का यह क्रम श्रीमद्भागवत में वर्णित क्रम के अनुसार है।

धन्य कावेरी

[लेखक—सुकविवर श्रीयुत् वियोगी हरिजी]

लखि कावेरी-कूल फूल मनु फूलत नैननि,
कह्यौ न कछुवै जाय, रह्यौ थकि वह सुख बैननि।
सघन हरित तरु तीर नीर परसत झुकि झूमत,
प्रतिबिम्बित लहरात, लोल लहरनि लहि लूमत॥
कर कलकल रव बहति धार सुचि धवल प्रखरतर,
कहुँ सिलानि टकराति, परम आवर्त्त मनोहर।
उलहि उमंग तरंग-माल अति किलकति बिलसति,
मलयानिल मिलि केलि करति अति थिरकति हुलसति॥
बिहँग करत कल्लोल कलित कूजत उड़ि साखनि,
चुहचुहात फल खात, गिरावत रस-अभिलाखनि।
सारस उड़ि-उड़ि करत शब्द पंखन कौ न्यारौ,
दीसति कहुँ बग-पाँति करत कूजन अति प्यारो॥
मीन लहर-लौलीन उछरि बूड़ति पुनि उछरति,
शिव-अर्चन-अवशेष अमल अच्छत लहि हरषति।
करत प्रात नर नारि मुदित मज्जन परवारि जहँ,
छूटत तन-अँगराग सुवासित होत वारि तहँ॥
खेलत बालक-वृन्द उछरि पैरत अरु बूड़त,
अँगुरिन भरि-भरि नीर परस्पर छिरकत कूदत।
बकुल-माल उतराति, कहूँ कुसुमांजलि लहरति,
फैली धूप-सुगन्ध घाट घाटनि छबि छहरति॥
सन्ध्या-पूजन करत कोउ दृग मूँदि सुहावन,
बहत विष्णु-अभिषेक, छीर मिलि नीर सुपावन।
वेद-घोष सुनि परत, बजत कहुँ संख अघाती,
कहूँ घण्ट घहनात घोर कलि-कलुष बिनाती॥
धनि कावेरी सरित स्वर्ग-सुख-स्रोत सवै जहँ,
धनि-धनि श्रीरंग-धाम काम पूरन भूतल महँ।
हे विधना! कर जोरि यहै माँगत हम पुनि-पुनि,
जनम-जनम यह मिलै भूमि जेहि जाँचत सुर मुनि॥
या कावेरी-कूल बिहँग ह्वै कूजैं प्रफुलित,
होय मीन लौलीन रहैं याके जल में नित॥

तीर्थों पर श्रीनिम्बार्काचार्यवर्य की भावना

[लेखक—निखिल महिमण्डलाचार्य, चक्रचूड़ामणि, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, जगद्गुरु श्री११०८ श्रीनिम्बार्काचार्य गोस्वामिवर्य्य श्री "श्रीजी" श्रीबालकृष्णशरण देवाचार्यजी महाराज]
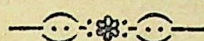
पादोऽस्य विश्वा भूतानि०

(यजुर्वेद अ० २ मं० ३)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।

(छां० उपनिषद्)

इत्यादि मन्त्रों के अनुसार यह समस्त जगत् परमब्रह्म परमात्मा का ही अंशभूत अङ्ग है, जो उस परमात्मा की पालनीय वस्तु है। यद्यपि अङ्गी को अपना अङ्ग एवं अंशी को अपना कोई दोषयुक्त अंश भी अप्रिय नहीं होता, अपितु सभी अङ्ग और सभी अंश प्रायः प्रिय ही होते हैं, तथापि विशिष्ट अङ्ग और अंशों पर अंशी की प्रीति अधिक होना स्वाभाविक है।

श्रीनन्दनन्दन की इस एक पाद विभूति (धरामण्डल) पर जो-जो धर्मपूर्ण तथा लोकोपयोगी विशिष्ट स्थान हैं, वे तीर्थ माने जाते हैं, क्यों कि उनका प्रादुर्भाव भगवान् के विशेष तेज-पुंज से हुआ है। यह स्वयं श्रीमुख से घोषित है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

(गीता अ० १०, श्लोक ४१)

अर्थात् जगत् में जो-जो चमत्कारी और प्रतापयुक्त वस्तु हैं, उन सबों को मेरे तेज के अंश से प्रकट होने वाली जानो। अतएव अपने विशेष तेज से प्रकटित होने वाले पुनीत और सर्वोपकारी धार्मिक तीर्थों पर सदा से ही भगवान् की पूर्ण कृपा रही है। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक प्राणी को तीर्थों में अनुपम सुख की उपलब्धि होती है।

सुख शान्तिमय होने ही से समय-समय पर आकर्षित हो, तीर्थों में अपार जनता दूर-दूर से आती-जाती रहती है। वेद, वेदांग, दर्शन, पुराण, स्मृति, सूत्र आदि शास्त्र समूह को विस्तृत करने वाले ऋषि-महर्षियों ने तो इन्हीं तीर्थों में आजन्म अपना समय व्यतीत किया है। इतना ही नहीं अपितु भगवान् ने भी और-और जगह पर अवतार न लेकर, तीर्थस्थलों में ही अवतार धारण किये हैं।

जिस भाँति "ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" इत्यादि मन्त्रों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रियादि अङ्गों वाला तथा लता पतादि उपांगों वाला एवं दया, दान, तितिक्षा, लोभ, मोहादि समस्त भावों को आश्रय देने वाला परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, उसी भाँति तीर्थ-तत्त्व भी समस्त जगत् में फैला हुआ है—अन्तर इतना ही है कि परमात्मा अविच्छिन्न रूप से समस्त जगत् में स्थित है और तीर्थ-तत्त्व विच्छिन्न रूप से स्थित है।

अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रत्येक प्राणियों की भावनायें विभिन्न रूपों वाली हैं, अतएव जैसे ब्रह्म के विषय में भिन्न-भिन्न समीक्षकों की भिन्न-भिन्न कल्पनायें हैं, उसी प्रकार तीर्थों के विषय में भी कल्पना भेद होना स्वाभाविक ही है। जैसे प्रत्येक शरीर में ईश्वर ने अङ्गाङ्गी भाव बना रक्खा है, वैसे ही तीर्थ-तत्व में भी शास्त्रकारों ने अङ्गाङ्गी भाव माना है, तथापि उस अङ्गाङ्गी भाव से तीर्थों में ऊँच नीच भाव की कल्पना कर, किसी भी तीर्थ में हेय दृष्टि कदापि नहीं करनी चाहिये, क्यों कि जिस प्रकार उत्तम, मध्यम; कनिष्ठ रूप वाले शरीर के सभी अङ्ग शरीर के उपयोगी हैं, उनमें से किसी का भी अभाव कष्टकर होता है, उसी प्रकार कल्मष मिटा कर प्राणियों को सुखी

बनाने वाले तीर्थों में से कोई भी तीर्थ हेय-दृष्टि करने के योग्य नहीं।

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी की तीर्थों पर यही भावना रही है, जो उनके पूर्ण कृपापात्र साक्षात् शिष्य श्रीऔदुम्बर ऋषि-प्रणीत 'श्रीनिम्बार्क विक्रान्ति'से ज्ञात होता है।

सब्रह्मचर्यो हरिधर्मपुत्र,
स्तं नन्दयित्वा विविधोपकारैः।
आनृण्यपूर्वं च ततः प्रतस्थिः,
श्रीपद्मनाभाङ्घ्र्यवलोकनाय ॥
(श्रीनिम्बार्क विक्रान्ति श्लो० ८३)

अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत की पालना करते हुए प्रभु के परम प्रिय अरुणानन्दन श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने ऋषिराज अगस्त्य को अनेक प्रकार के उपकारों से प्रमुदित कर उऋणता पूर्वक उस अगस्त्याश्रम से श्रीपद्मनाभ के दर्शनार्थ प्रस्थान किया।

पद्मनाभ, द्वारका आदि समस्त तीर्थों की यात्रा करने के अनन्तर आचार्य चरणों का श्रीव्रजधाम में पुनरागम हुआ। उस प्रसङ्ग का वर्णन करते हुए श्रीऔदुम्बर ऋषि लिखते हैं—

शिष्य प्रवाहेण सुतीर्थतीर्थी,
कुर्वन् क्षितिं भक्तिरसेन सिक्ताम्।
विश्वग् जगन्थ व्रजमेवधाम,
स्वप्रेम सिंधु स्थित भक्तसत्त्वम् ॥
(श्रीनिम्बार्क विक्रान्ति श्लो० १२०)

अर्थात्—हे आचार्यचक्रचूड़ामणे ? तीर्थ यात्रा के निमित्त पर्य्यटन करते हुए अपने शिष्य प्रशिष्यों के प्रवाह से इस पृथ्वी तल को अपने भक्ति रस से सींच-सींच कर सुन्दर तीर्थ बना दिया और समस्त विश्व की यात्रा कर पुनः उसी व्रजधाम में पधारे जो आप के अपार प्रेम का सिंधु है, एवं जिसमें भक्तवत्सल व्रज विहारी सदा सर्वदा विहार करते रहते हैं।

उपरोक्त श्लोकों से निश्चित होता है कि श्रीनिम्बार्क भगवान् ने लोकसंग्रह के लिये पृथ्वीतल समस्त तीर्थों की श्रद्धा पूर्वक यात्रा की और यात्रा समाप्ति के अनन्तर श्रीव्रजधाम ही में अपनी विशेष स्थिति रक्खी और अपनी इस चर्य्या से यह भावना अभिव्यक्त कर दी कि, जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था में सभी इन्द्रियाँ एक अन्तःकरण में ही आकर स्थित होजाती हैं, उसी प्रकार भगवान् के शयन करने पर समस्त तीर्थ भी एक श्रीव्रजमण्डल में ही आकर स्थित हो जाते हैं।

श्रीनिम्बार्क भगवान् की यह भावना शास्त्रों में स्थल-स्थल पर समर्थित की गई है, जैसे—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि, आसमुद्रसरांसि च।
मथुरायां गमिष्यन्ति, प्रसुप्ते तु सदा मयि ॥
(बाराह पुराणान्तर्गत मथुरा माहात्म्य अ० १ श्लो० ७)

अर्थात् हे वसुंधरे ! पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, एवं समुद्र पर्य्यन्त जितने भी सरोवर आदि हैं, वे सब मेरे शयन अवसर पर मथुरा में आ जाते हैं। मथुरा को समस्त तीर्थों का विश्राम स्थान बतला कर उसी पुराण में मथुरामण्डल का मान भी बतलाया है और विशेष महत्त्व भी प्रकट किया है।

विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम्
यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते सर्वपातकैः।
वर्षाकाले तु स्नातव्यं, यत्र स्थानं निरोदकम् ॥
पुण्यात्पुण्यतमं चैव, माथुरे मम मण्डले ॥
सप्तद्वीपे तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
मथुरायां गमिष्यन्ति प्रसुप्ते तु सदा मयि ॥
(बा० पु० म० मा० अ० ७ श्लोक १ से ३)

अर्थात् हे वसुन्धरे ! बीस योजन (अस्सी कोश) की परिधि मेरा मथुरामण्डल है, इसमें किसी भी जगह स्नान करने वाला प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

वर्षा ऋतु में मेरे मथुरा मण्डल के किसी निर्जल स्थल में भी स्नान करने से अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है।

कारण यह है कि मेरे शयन के समय अर्थात् चातुर्मास में सातों द्वीपों के समस्त तीर्थ और सभी पुण्यक्षेत्र मथुरा मण्डल में आ जाते हैं।

मथुरायाः परं, क्षेत्रं त्रैलोक्ये न च विद्यते।
तस्यां वसाम्यहं देवि ! मथुरायान्तु सर्वदा॥

(वा० पु० म० म० अ० १६ श्लोक १)

अर्थात् मथुरा से बढ़कर संसार में कोई दूसरा क्षेत्र ही नहीं, क्योंकि हे देवि ! मथुरा में मैं सर्वदा निवास करता हूँ। तात्पर्य यही है, कि प्राणियों को चाहिये कि समस्त तीर्थों में श्रद्धा रखते हुए श्रीमथुरामण्डल को समस्त तीर्थों का केन्द्र एवं अन्तरात्मा समझें। इसी क्षेत्र से समस्त तीर्थों में समय-समय पर पावनता पहुँचती है और वह फिर इसी क्षेत्र में आकर विश्राम पाती है। इसी आशय को भगवान् वेदव्यासजी ने अपना अन्तिम सिद्धान्त प्रकट किया है—

इदं तीर्थमिदंतीर्थं मूढा जल्पन्ति नित्यशः।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मुक्तिमवाप्नुयुः॥

अर्थात् मूर्ख जन पृथ्वी पर भटकते हुए, यह तीर्थ अच्छा है, कि यह तीर्थ अच्छा है, इसी प्रकार जल्पना करते रहते हैं, किन्तु समस्त तीर्थों के आत्मा को नहीं जान पाते, अतः वे पापों से मुक्त कैसे बन सकते हैं ? इसलिये भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी की भावना के अनुसार तीर्थ यात्रा करना-कराना श्रेयस्कर है।

काशी

[*लेखक—सुकविवर श्रीयुत श्रीनाथजी गुप्त 'इन्द्रेश'*]

विद्या की है खान जहाँ पर, देव पुष्प बरसाते।
विश्वनाथ के श्रीमन्दिर का, सब कोई गुण गाते॥
जहाँ शिवाले दूर-दूर पर, अपनी छटा दिखाते।
वहाँ न कोई चिंता, भय हम, अपने मन में लाते॥१॥
गङ्गा की निर्मल धारा का, जहाँ सुवास सदा हो।
वहाँ पाप-संताप नष्ट हो, सुख-दुख का भी क्षय हो॥
धन्य-धन्य वह देश जहाँ पर, बसी हुई ये काशी।
प्रकृति खेल उसकी गोदी में, बनी हुई है दासी॥२॥
ज्ञानी भी जिसका गुण गाते, सुनते हों अज्ञानी।
हुए जहाँ पर हैं उदार चित, हरिश्चन्द्र-से दानी॥
वहाँ सदा लक्ष्मी विराजती, कंज-कली खिल जाती।
पयाम्बुधि सी सरिता लहराती, लता फूलतीं जातीं॥३॥
आँखों में शीतलता-अमृत, शशि आ—आकर छोड़े।
बैठ सुंदरी जिसको पी-पी, सुषमा से मन जोड़े॥
अलसाई आँखों का आलस, जिसकी उजियाली हर लेती।
वह काशी ही ऐसी वासी, जिसमें जागृति वह भर देती॥४॥
मगहर से सुंदर काशी है, मुक्ति बनी जिसकी दासी है।
जहाँ धर्म की ध्वजा फहरती, विजयी धर्म-विजेता-सी है॥
स्वर्ग सदृश पाताल-लोक-सी, भू-पर जग का भार सँभाले।
अगणित तारों से जड़ी हुई, नभ की चादर ऊपर डाले॥५॥

तीर्थों पर श्रीरामानुजाचार्य्यजी की भावना

[लेखक—पूज्यपाद वेदान्तशिरोमणि श्री १०८ स्वामी श्रीरामानुजाचार्यजी, शास्त्री]

विगाहे यामुनं तीर्थं साधु वृन्दावने स्थितम् ।
निरस्तजिगस्पर्शेह्य यत्र कृष्णः कृतादरः ॥

पूज्यपाद श्रीरामानुजाचार्य्यजी की तीर्थों पर उत्कृष्ट भावना थी। दक्षिण एवं उत्तर भारत में सेतु से हिमालय तक श्रीवैष्णव धर्म्म के प्रचार करते हुए अनेक गुप्त तीर्थों का प्रकटन तथा जीर्णोद्धार कर स्वयं श्रीआचार्य्यपाद आजन्म तीर्थ स्थान में रहे, यह भूविश्रुत विषय है। आपने अपने अनुयायियों को भी तीर्थ स्थान में रहकर भगवत् भागवत सेवा करते हुए कालक्षेप करने की आज्ञा की है।

'तरन्त्यनेनेति तीर्थः' इस व्युत्पति से ज्ञात होता है कि मनुष्य जिसके द्वारा संसार सागर से अनायास में तर जाय उसे तीर्थ कहते हैं। कोशकारों ने 'क्षेत्रे शास्त्रे गुरौ जले' अर्थात् देवस्थान, शास्त्र, गुरु और जल के रूप में तीर्थ शब्द का उल्लेख किया है।

इन सब उपर्युक्त अर्थ वाच्य तीर्थ में जीवों को संसार बन्धन से मुक्त करने की अपूर्व तथा अचिन्त्य शक्ति है। इसीसे क्षेत्र स्वरूप—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः ॥

[स्कन्द पुराण]

शास्त्र-स्वरूप—

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वायुष्टस्तदा अमृतत्वमेति'

गुरु-स्वरूप—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्ति पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्नाम मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

गुरु बिन भव निधि तरे न कोई ।
जो विरञ्चि शंकर सम होई ॥

जल-स्वरूप—

ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥
ये पिबन्ति जलं तास मनुजाः मनुजेश्वर ! ।
प्रायो भक्ताः भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥

[श्रीमद्भागवत ११]

मूल तात्पर्य यह है कि इन सब तीर्थ वाच्यों में भगवान् की अचिन्त्य शक्ति है और उनके संसर्ग, स्पर्श से तत्क्षणात् जीव भगवच्चरणारविन्द प्राप्ति स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर प्रेम सागर में डुबकियाँ लगाता है। कहा भी है—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिशनन्दसान्द्रा ।
विलुठति सास्राज्ये मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी ॥

अर्थात् जब प्रेम पराभक्ति का उदय होता है तो मोक्ष आनुसङ्गिकत्वेन है ही यही नहीं भक्ति की दासी मुक्ति भी उन भागवतों की सदा परिचर्य्या करती रहती है।

भगवच्चरणारविन्द प्राप्ति का एक मात्र मार्ग महत्सेवा तथा पुण्यतीर्थ सेवन ही शास्त्रकारों ने वर्णित किया है, इसी को लक्ष्य में कर श्रीपूज्यपाद आचार्य यतिवर रामानुजाचार्यजी ने अनेक तीर्थस्थलों में विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त का प्रचार कर विजयस्तम्भ की स्थापना की है। यथा—

श्रीरङ्गं करिशैलमञ्जनगिरौ शेषाद्रि सिंहाचलम् ।
श्रीकूर्मं पुरुषोत्तमं च बदरीनारायणं नैमिषम् ॥
श्रीमद्द्वारवती प्रयाग मथुरायोध्या गया पुष्करम् ।
शालग्रामनिवासिना विजयते रामानुजोऽयंमुनिः ॥

नित्याराधन ग्रन्थ में स्वयं श्रीआचार्यपाद ने प्रपन्न श्रीवैष्णवों के लिए नित्यचर्य्या स्वरूप आह्निक के उपदेश में जो कहा है उसी को यहाँ संक्षिप्तरूपेण लिखा जा रहा है—

'श्रीभगवत्सेवा से ही एकमात्र अनुराग रखते हुए परम अनन्य होकर ऐसा अनुसन्धान करे कि भगवान् ही अपना शेष (मोक्ष) रूप मेरे देह, इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरणादिकों के द्वारा परम कल्याण-रूपा अपनी सम्पूर्ण सेवा करा कर प्रफुल्लित होरहे हैं' इस भावमयी भावना के द्वारा श्रीयमुनादि पवित्र तीर्थों में जाकर शुद्ध स्थान में वस्त्र जलपात्रादि रख हस्तपादप्रक्षालनानन्तर आचमन कर तीर्थतट को जल से शुद्धकर मूल (नारायणाष्टाक्षर) मन्त्र द्वारा मृत्तिका से प्रोक्षण कर तट पर रखदे, तदनन्तर एक भाग से तीर्थ का पूजन पीठ बनावे और दूसरे भाग से शरीर में लेपन कर स्नान करे, इत्यादि विस्तार से वर्णन करते हुए आचार्य्यपाद लिखते हैं--

'उदकाञ्जलिमादाय तीर्थस्यार्घ्यार्थमुत्क्षिप्य भगवद्धाम-पादाङ्गुष्ठविनिस्सृतगङ्गाजलं तीर्थसङ्कल्पितपीठे आवाह्य मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्योदकाञ्जलिमादाय सप्तकृत्वोऽभि मन्त्र्य स्वमूर्ध्नि सिञ्चेत्'

अर्थात् अञ्जलि में तीर्थजल लेकर तीर्थों के अधिष्ठातृ देवताओं को अर्घ्य निवेदन कर भगवान् के वामपादाङ्गुष्ठविनिस्सृतगङ्गाजल को तीर्थ सङ्कल्पित पीठ के ऊपर आवाहन कर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित कर अपने मस्तक पर सींचे, आदि तीर्थों में इस प्रकार आचार्य्यपाद की उत्कृष्ट भावना प्रसिद्ध है।

अपरञ्च श्रीआचार्य्यपाद ने स्वयं-व्यक्त श्रीरङ्गनाथ भगवान् से शरणागति गद्य में प्रार्थना की है—

अन्तकाले स्मृतिर्यातुतव कैङ्कर्यकारिता।
तामेनां भगवन्नद्य क्रियमाणां कुरुष्व मे॥

इस प्रार्थना के उत्तर में स्वयं भगवान् ने आज्ञा की है---

'मदीयदययाति प्रवुद्धस्त्वं यावच्छरीरपातसमय अत्रैव श्रीरङ्गे सुखमास्व'

अर्थात् एक मात्र मेरी निर्हेतुकी कृपा से अतीव स्वस्वरूपज्ञानयुक्त आयुःशेष पर्य्यन्त इसी श्रीरङ्ग क्षेत्र में सुख पूर्वक निवास करो।

साठ वर्ष की अवस्था में भगवदाज्ञा पा श्रीआचार्य्यपाद आयुःशेष साठ वर्ष पर्य्यन्त श्रीरङ्गधाम में ही रहकर भावना प्रकर्ष से एकसौ-आठ दिव्यदेश अर्थात् भगवद्धाम रूप तीर्थों का ज्ञान दृष्टि से साक्षाद्दर्शन समानाकारता करते हुए सेवन करते थे, श्रीआचार्य्यपाद की तीर्थों में निष्ठा इससे अधिक और क्या व्यक्त हो सकती है।

दिव्य तीर्थों में श्रीरामानुजाचार्य्यजी की अत्यन्त उत्कृष्ट भावना थी। अष्टोत्तरशत तीर्थों में अष्ट वैकुण्ठ भारतवर्ष में है। जिसमें चार विन्ध्य गिरि से दक्षिण भारत में और चार उत्तर भारत में, जिसमें दक्षिण भारत के मद्रास प्रान्त के त्रिचनापल्ली जिला में कावेरी गंगा के मध्य भाग में श्रीरङ्गधाम एवं तैलङ्ग-देश में वैङ्कटाद्रि और चिदम्बरम् प्रान्त में श्रीमुष्णं आदिवाराह क्षेत्र और तिरननवेली जिला में तोताद्रि जहाँ देवनायक भगवान् है, जहाँ श्रीसम्प्रदाय की अष्ट गादियों में तोताद्रि एक सन्यस्त गादी है। अपरञ्च उत्तर भारत में चार वैकुण्ठ तीर्थ हैं, जिसमें पुष्कर जल रूप नारायण एवं नैमिषारण्य सीतापुर जिला में वन रूप नारायण अथ च गढवाल जिला में ऋषिरूप नर नारायण स्वरूप विराजमान बद्रिकाश्रमतीर्थ अपरञ्च नैपाल राज्य में शालग्रामरूपी मुक्तिनारायण तीर्थ है। यह सब तीर्थ श्रीरामानुजाचार्य्यजी की भावना से भावित हैं। यदि सावकाश रहा तो किसी समय इसका सविस्तार वर्णन किया जायगा। इस प्रकार तीर्थ शब्द वाच्य धाम शास्त्र गुरुवर्य्य एवं पवित्र जलादि में श्रीरामानुजाचार्य्यजी की भावना दिव्य है।

श्रीमन्मध्वाचार्य्यजी की तीर्थों पर भावना

[लेखक—आचार्य श्रीकृष्णचैतन्यजी गोस्वामी, पटना]
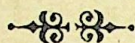
पूज्यपाद श्रीमन्मध्वाचार्य की तीर्थों पर भावना के सम्बन्ध में विचार विमर्श के समय सर्व प्रथम उनके प्रख्यात नाम "आनन्दतीर्थ" का स्मरण हो जाता है, जिसके वर्ण ही विषय की स्फूर्ति करते हैं। श्रीमदाचार्य्य की जन्म और कर्म्म भूमि यद्यपि दक्षिणापथस्थ तुलव देश में थी, परन्तु वे नौ वर्ष की अवस्था से ही सदा भारत भ्रमण कर अनेक तीर्थों में, विशेषतः विद्वानों के केन्द्रों में घूमते और शास्त्रानुशीलन करते रहे थे। वैसे तो श्रीभागवत् की उक्ति के अनुसार "भवद्विधा भागवता स्तीर्थभूताः स्वयं विभो तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता (भा० प्र० १३। १०)वे स्वयं तीर्थ स्वरूप थे, क्योंकि उनका चरणोदक (तीर्थ) अभी तक उनके उडुपी स्थित मठ में सुरक्षित है, जिसे पानकर असंख्य जीवों के हृदय में भक्ति श्रोत उमड़ उठता है, परन्तु फिर भी उनका उपदेश था:—

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥
(भा० १-२-१६)

यह केवल उपदेश मात्र ही नहीं, उनके आचरण से भी व्यक्त है। महत्सेवा प्राप्ति के लिए ही उनका तीर्थ पर्य्यटन था। उन्होंने दक्षिण से सर्वथा विपरीत सुदूर उत्तराखण्ड के छोर बद्रीधाम की यात्रा कर श्रीमद्व्यासदेव का सत्सङ्ग लाभ किया था और उनके चरणाश्रित हुए थे। श्रीमदाचार्य के गीता भाष्य को देख श्रीबादरायण परम तुष्ट हुए और उन्हें तीन श्रीशालिग्राम प्रतिमा प्रदान की। जिसे पीछे उन्होंने सुब्रह्मण्य, मध्यतल और उडुपी के मठों में स्थापित किया। उडुपी के मन्दिर में उन्होंने एक नृत्य गोपालजी की स्वतः प्रकाश कृष्ण मूर्ति और भी प्रतिष्ठित की थी, यह मूर्ति उन्हें अपने दिव्यज्ञान के बल से श्रीद्वारिकास्थ गोपीकुण्ड की मृत्तिका (गोपीचन्दन के खण्ड) के भीतर से प्राप्त हुई थी। इनकी स्थापना कर श्रीमदाचार्य्य ने उडुपी को माध्वसम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ बनाया। उडुपी के अतिरिक्त उन्होंने तुलव देशान्तर्गत कानूर, पेजत्तर, आद्मार, फलमार, कृष्णपुर, सिरूर, सोद नामक स्थानों में और भी आठ मठ निर्माण कराकर उसमें विविध भाव विभावित श्रीकृष्ण की अष्ट मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कीं। इन सब स्थानों में उन्होंने अपने आठ मुख्यतम शिष्यों को अधिकारी बनाया और वह सब सेवाएँ बहु विस्तृत व्यय तथा नियत विधि के अनुसार आज तक उनके लेखानुसार चल रही हैं।

साम्प्रदायिक नौ सिद्धान्तों के वर्णन में उनके प्रायः ३७ ग्रन्थ मिलते हैं। उन सब सिद्धांतों का उल्लेख यहाँ स्थानाभाव से नहीं किया जा सका। संक्षेप से यह कि—उनका सातवाँ प्रमेय "मोक्षं विष्णवङ्घ्रि लाभम्" और आठवाँ प्रमेय "तदमलभजनं तस्य हेतुम्" है। अर्थात्—विष्णु चरणारविन्द की प्राप्ति ही मोक्ष और मोक्ष प्राप्ति का उपाय निष्कारण भाव से भगवद्भजन है सो इनकी प्राप्ति का साधन भगवल्लीलास्थलियों का भ्रमण तथा सत्सङ्ग ही सर्वसम्मत है। इसलिए "तीर्थ निषेवण" सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है।

श्रीमन्मध्वाचार्य के भाव को सुव्यक्त करते हुए कलिपावनावतार भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है:—

"मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्चतत्साधनम्"।

सो वह सुखानुभूति गङ्गादि पुण्य तीर्थ, भगवल्लीलारञ्जित पवित्र भूमि, और विषय प्रपञ्चों से मुक्त महात्माओं की कृपा के बिना लब्ध नहीं

हो सकती, इसलिए पुण्य स्थलियों में ही जाना पड़ेगा, यह स्वतः सिद्ध बात है।

श्रीमन्माध्वाचार्य्य के भाव को स्पष्ट कर देने के लिये श्री महाप्रभु चैतन्यदेव ने घोषणा करदी है कि—

'आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्'

इस आराध्य वस्तु का स्पष्टोपदेश सुनकर तो फिर किसी अनुमान की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

श्रीमाध्व सम्प्रदाय 'ब्रह्म सम्प्रदाय' के नाम से विख्यात है। परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र ने कृपाकर ब्रह्माजी को इसका उपदेश किया है।

भगवान् के समान ही उनके धाम भी दिव्य और नित्य हैं और भगवान् की लीला-भूमि ब्रह्मस्वरूपा है, यह ऋग्वेद और श्रीगोपाल तापिनी से सिद्ध है:—

"तं वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाःअयासः अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि।"

"तासां मध्ये साक्षाद्ब्रह्म गोपाल पुरी हि।"

श्रीमाध्वसम्प्रदाय में ५ संस्कार उक्त हैं:—

"तापः पुराड्ं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।"

इसका उपदेश करते हुए कहा गया है कि:—

"अतप्ततनुर्न तदा मोक्षमश्नुते"

इस श्रुति के अनुसार भगवदाचार्य्यचरण ने साधारणतः वर्ष में तीन दिन (देवशयन, पार्श्व-परिवर्तन और देवोत्थान) तप्तमुद्राधारण के लिए निर्द्धारित किये हैं, परन्तु श्रीद्वारिका में (जहाँ श्रीगोपीचन्दन के मध्य में श्रीकृष्ण प्रतिमा प्राप्त हुई थी) तीर्थ यात्रियों के लिए नित्य तप्त मुद्रा-ग्रहण का विधान किया है, सो द्वारिका के तीर्थ-यात्री चाहे कोई जाति या वंश के हों, आज भी तीर्थ यात्रा के लिए जाकर तप्तमुद्रा ग्रहण करते हैं।

शेष काल में श्रीमदाचार्य चरण ने अपने शिष्य श्रीपद्मनाभ तीर्थ को भी कई मठों की स्थापना का उपदेश किया था और उनके स्थापित किये हुए मठ भी उसी प्रकार पूज्य तीर्थ दृष्टि से देखे जाते हैं, जैसे कि श्रीमदाचार्य के मठ सम्मान्य हैं। इन सब को देखते हुए निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि—पूज्य श्रीमन्मध्वाचार्य्य चरण की तीर्थों के सम्बन्ध में पूज्य भावना सर्वोत्कृष्ट थी और वे मन, वचन तथा कर्म द्वारा तीर्थोत्कर्ष के विधाता हुए हैं।

—:○❀○:—

हमारे तीर्थ

[ले०—सुकविवर श्रीयुत पं० गयाप्रसादजी शुक्ल 'सनेही' प्र० सम्पादक—"सुकवि"]

[१]

पावन परम प्रशस्त पाप-हर पतितोद्धारक;
धन्य-धन्य! हैं पुण्य-भूमि के पुण्य स्मारक।
कलुष दूरकर भव्य भावनाएँ भर देते;
आते कुटिल कुधातु उन्हें कञ्चन कर देते।
मौन तपस्वी भक्ति की रक्खे अब तक नाक हैं।
कलियुग में बाँधे हुए धीर धर्म की धाक हैं॥

[२]

रज है इनकी पूत सलिल इनका पावन है;
करके दर्शन-मात्र और हो जाता मन है;
शुचि संस्कृति के केन्द्र दिव्य लोकों की झाँकी;
ऐसी छवि है स्वर्ग छोड़कर और कहाँ की?
अद्भुत आत्म-प्रकाश का यहाँ मिला आभास है।
अङ्कित कण-कण में यहाँ गौरव का इतिहास है॥

तीर्थ-स्वरूपादि विचार

[लेखक—श्रीमन्माध्वसंप्रदायाचार्य, दार्शनिकसार्वभौम, साहित्यदर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न, श्रीयुत गोस्वामि श्रीदामोदरजी शास्त्री]

तीर्थास्यं तीर्थदेहं सकलभुवनभूतीर्थं सत्तीर्थरूपं ।
तीर्थोद्धतीर्थपूज्यं भवजलधिमहातीर्थं माद्यन्त तीर्थम्॥
सर्वे षामाद्यतीर्थं विपदनुभविनां शुद्धतीर्थं सुतीर्थं ।
गीस्तीर्थं तीर्थतीर्थं निखिलजगदधीशं शरण्यं प्रपद्ये ॥

यद्यपि 'कोश' में 'तीर्थ' शब्द के १४ अर्थ हैं, किन्तु योग्यता सहकृत तात्पर्य से यहाँ पुष्कर, प्रयागादि क्षेत्र ही विवक्षित हैं, अर्थात् पवित्र प्रदेश-स्वरूप ही क्षेत्र-पदार्थ के सम्बन्ध में यथारुचि कहना नीति-सङ्गत है।

वक्तव्य यह कि जैसे शरीर में अन्य अङ्गों की अपेक्षा से दक्षिण कर्ण प्रभृति में स्वभावत: पवित्रता है, अहोरात्रि के ब्राह्ममुहूर्त्त भाग में ही स्वाभाविक सात्विकता है, ऐसे ही पृथ्वी के और जल के भी प्रदेश-विशेषों में प्रवाहरूप से अनादि सिद्ध प्राकृत नियमानुसार पावित्र्य स्वाभाविक है, जो कि शास्त्र द्वारा ज्ञात होता है।

इससे ऐसे तीर्थ का लक्षण 'अन्यानाहित स्वभावविशेषण पुण्यहेतुर्भूमिर्जलं वा तीर्थम्' अथवा—'पुण्यजनकताऽवच्छेदकं शक्तिविशेषाव-च्छिन्न प्रदेशस्तीर्थम्' इस भाँति कहे जा सकते हैं।

ये तीर्थ शास्त्रों में सामान्यत: मुख्य-गौण विभाग से ३ प्रकार के हैं—(१) स्थावर, (२) जङ्गम, (३) मानस। इनमें पुष्करादि स्थावर हैं, देवमूर्त्यादि जङ्गम हैं और सत्य, दया, क्षमा आदि मानस हैं। इनमें जो तीर्थ लक्षणाक्रान्त हैं, वे मुख्य हैं, जो तीर्थ सम्बन्ध से पवित्र हैं, वे गौण हैं। ऐसी स्थिति में शास्त्र में जिनके नाम निर्दिष्ट हैं, उन्हीं तीर्थों में घटनानुसार से पुण्य जनकत्व के तारतम्य से तारतम्य भी शास्त्र सिद्ध है। जैसे—कतिपय तीर्थों में ही मोक्ष प्रयोजकता है, सब में नहीं। इत्यादि विषय में निदान पर्यालोचक दिव्य-चक्षुष्क आचार्यों ने जितनों का उल्लेख किया है, उनकी दृष्टि उनके उत्कर्ष को दिखलाती है, इससे अनुल्लिखितों का अपकर्ष न समझना चाहिये, क्यों कि विधेय दृष्टि से तात्पर्य एक तरफ़ ही होना सङ्गत है। अनेक तरफ़ होना दूषित सिद्ध होने से अश्रद्धेय तथा अग्राह्य होता है।

सुतराम् द्वैतसिद्धान्त प्रतिष्ठापनाचार्य पूज्यपाद श्रीमध्वाचार्य भगवदानन्दतीर्थचरण के अनुचर वादसङ्गर विजयी "श्रीवादिराज तीर्थ स्वामि" कृत 'तीर्थप्रबन्ध' नामक निबन्ध में पश्चिमादि प्रदक्षिणक्रम से वर्णित तीर्थों का परिचय देना भी उचित ज्ञात होता है, जो कि निम्नलिखित नामों से सूचित किया गया है—

पश्चिम के तीर्थ—रजत पीठपुर (उडुपी), श्रीकृष्ण विग्रह, अनन्तेश्वर, पाजक क्षेत्र, विमान-गिरिस्था दुर्गा, पाजकक्षेत्रासन्न विश्वनाथ, नन्दिकेश्वर, मध्यवाटाख्य वेदव्यास स्थान, वेदव्यास, चिन्तामणि नृसिंह, नेत्रावती, कुमारधारा नेत्रावती सङ्गम, कुमारधारा, सुब्रह्मण्य, पयस्विनी, सुवर्णा, कुम्भाशि क्षेत्र कोटीश्वर स्थान, कोटीश्वर, क्रोड्-मुन्याश्रम, शङ्कर और नारायण, कुटजाचल मूकम्बिका, सह्याद्रि, हरिहर क्षेत्र, वेणुपुरस्थाश्वत्थ, वहाँ के सोमेश्वर, वङ्कापुरस्थ केशव, वरदा नदी, वहाँ के मधुलिंग, धर्मगङ्गा, शाल्मली नदी, सोदा ग्रामस्थ त्रिविक्रम, एण भैरव, गोकर्णस्थ शिव, वहाँ के विघ्नेश्वर, कोल्हापुर में लक्ष्मी, तापा नदी, नर्मदा, प्रभास, वाणगङ्गा, द्वारिका, वहाँ के त्रिविक्रम, गोमती, चक्रतीर्थ शङ्खोद्धार, गोपीचन्दन-कुण्ड, कपिलाश्रम, पुष्करक्षेत्र।

उत्तर के तीर्थ--कृष्णवेणी, पुण्डरीक क्षेत्र, वहाँ के विट्ठल, गोदावरी, यमुना, त्रिवेणी, प्रयाग, भागीरथी, काशी, बिन्दु माधव, विश्वेश्वर, गया, वहाँ के गदाधर, विष्णुपद, फल्गु, मथुरा, विश्रान्ति, वृन्दावन, अयोध्या, नैमिषारण्य, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, शंवल, षट् प्रयाग, बदरिकाश्रम, वहाँ के नारायण, वहाँ के हयग्रीव।

पूर्व के तीर्थ—गङ्गासागर, जगन्नाथ, मल्लिकार्जुन, अहोवल नृसिंह, भवनाशिनी, निवृत्ति सङ्गम, तुङ्गभद्रा, वहाँ के विट्ठल, विरूपाक्ष, पम्पा, वहाँ की दुर्गा, गज गह्वर, जय तीर्थाश्रम, श्रीवेङ्कटेश, वहाँ के गरुड़, शेषाचल, सुवर्ण मुखरी, काञ्ची वरदराज, एकाम्रेश्वर, कामाक्षी, अरुण निरिनाथ, पिनाकिनी त्रिविक्रम, वृद्धाचलेश, श्वेत वाराह, कुम्भकोण में शार्ङ्गपाणि।

दक्षिण के तीर्थ—श्रीरङ्ग, चन्द्र पुष्करिणी, कावेरी, वृषभ शैलहरि, नूपुर गङ्गा, दर्भशयनराम, सेतु, रामदेव, रामेश्वर, धनुषकोटि, ताम्रपर्णी, माहेन्द्राचल, कन्यादेवी, वहाँ के अगस्त्य, शचीन्द्र क्षेत्र, आद्यनन्त शयन, घृतमाला नदी, अनन्तशयन।

गंगा-तीर्थ

[रचयिता—पं० श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय "चन्द्रमणि" कविरत्न]

श्रीभागीरथी पंचक

कलिकाल का जाल विनाशने हेतु, बनी तलवार की धार सी हो।
निज नीर-कणों के रहीं कर केलि, सदा नवरत्न-अँगार सी हो॥
तिमि, कच्छ, तिमिङ्गिल वाहनी ले, महिं सेनप का अवतार सी हो।
लहरों का विमान बनाये हुए, अयि भागीरथी! भवपार सी हो॥१॥

अँशुमान, दिलीप, भगीरथ की, शुभ कीर्ति-ध्वजा फहरा रही हो।
गये साठि सहस्र नरेश जहाँ, वह मार्ग सभी को दिखा रही हो॥
किति शक्ति है विप्र-पदाम्बुज में, अयि विष्णुपदी! बतला रही हो।
उपकार-पवित्रता-भाव भरा, मन-भावना मन्त्र सुना रही हो॥२॥

महिमामयी! तेरी महा महिमा, अमरेश, फणीश भी गाते रहे।
फिर भी नहीं पाते रहे कुछ पार, अहर्निशि शीश झुकाते रहे॥
करि मज्जन नीर में तेरे तरङ्गिणि! पातकी स्वर्ग सिधाते रहे।
हुए व्यर्थ जे कर्म के खाते रहे, यमराज खड़े पछताते रहे॥३॥

जिनके तन पातक ही से बने, विष-कीट ये पातक ही करते।
अभिमान की शान में सज्जनता, हुई नष्ट निराले चराचर ते॥
यही लक्ष्य है जीवन का जिनके, मरते तऊ पाप ही में मरते।
उनकी गति एक तूही जननी! तेरी ही तरङ्गन से तरते॥४॥

पहले नहीं सोचा कभी मनमें, बस फूल रहीं अपने व्यवहार में।
जग-पावनी नाम तुम्हारा रहा, तब था नहीं मैं पतितों की शुमार में॥
किस नीतिसे तारती हो मुझको, अब देखता हूँ किति शक्ति है धार में।
यह बावन तार सा पातकी है, उपजीं तुम बावन के अवतार में॥५॥

तीर्थों पर श्रीवल्लभाचार्यजी की भावना

[लेखक—श्रीयुत उपाध्याय पं० श्रीहरिवल्लभजी शास्त्री]
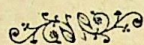
श्रीमन्निखिल भूमण्डलाचार्य, चक्रचूड़ामणि, श्रीमद्भगवद्वदनावतार, साक्षात् श्रीकृष्ण विरहाग्नि स्वरूप श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुपाद की भावना मुख्यतया सभी विषयों पर भगवद्विमुख जीवों को भगवदुन्मुख करना ही रही है। "लोक संग्रह मेवाऽपि सम्पश्यन्कर्तु मर्हसि" के अनुसार लोक संग्रह के ऊपर भी मुख्याचार्य होने के नाते प्रमुख दृष्टि थी। वास्तव में तो भगवदीयों का तीर्थ स्नानादि तीर्थों को भी पवित्र करने के लिये ही होता है। श्रीमद्भागवत सिद्धान्त के अनुसार "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता"। एक बार सब तीर्थों ने भगवान की सन्निधि में पुकार की कि—समस्त भूमण्डल के दुराचारी, अत्याचारी, घोर-पापी हम सब तीर्थों में स्नान कर अपने पापों को छोड़ जाते हैं तब इतने सब पापों का हम किस प्रकार सम्मार्जन कर सकेंगे। भगवान् ने इसका यही उत्तर दिया था कि-मेरे ऐकान्तिक भक्तों के स्नान करने से तुम्हारे समस्त पाप दूर होंगे और तीर्थ होते हुए भी "तीर्थ" होंगे।

एतावता श्रीमन्महाप्रभूपाद ने भी प्रायः पृथ्वी के समस्त ही तीर्थों में स्नान, दानादि तीर्थ क्रिया कर तीन बार दिग्विजय किया था। जिसका उल्लेख आपके प्रिय पौत्र गोस्वामिवर्य श्रीयदुनाथजी महाराज ने "श्रीवल्लभ-दिग्विजय" नामक ग्रंथ में किया है। यथा

"तत्र बद्रिकाश्रम गत्वा व्यासं स्तुत्वा नारदोद्धवाभ्यां संमन्त्र्यव्यासाश्रमं गत्वा तस्मै वामबाहु रिति पद्यं श्रावयित्वा आषिशंतध्वा ततः परवृत्य शोणशृङ्ग नन्दप्रयाग कर्ण प्रयागाध्वना चाकचिक्य षट्भवतीर्थ संभल ग्रामं प्राचवा।" इत्यादि।

अर्थात् उत्तर यात्रा प्रसङ्ग में श्रीमन्महाप्रभुपाद बद्रिकाश्रम तीर्थ यात्रा को पधारे, वहाँ श्रीवेदव्यासजी की स्तुति करके तथा वहीं विराजमान श्रीनारदजी तथा उद्धवजी के सङ्ग दैवी जनों के उद्धार के विषय में परामर्श करके फिर श्रीव्यासजी के आश्रम में पधारे। श्रीवेदव्यास भगवान् को अतिशय प्रसन्न करने की इच्छा से श्रीवेदव्यास भगवान् के तपोफल स्वरूप अथवा समाधि भाषारूप श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्ध में वर्णित श्रीयुगलगीत के निम्न श्लोक की सुललित व्याख्या श्रवण कराई—

*"वाम बाहु कृत वाम कपोलं भूरध रार्पित वेणुम्।
कोमलाङ्गुलि भिराश्रित मार्ग गोप्य इरमति यत्र मुकुंदः"॥*

अर्थात् श्रीव्रज-सीमन्तिनी वर्ग अपनी रसगोष्ठी में रसिकेन्द्र शेखर सम्राट् श्रीश्यामसुन्दर के रूप-माधुर्य का वर्णन करती हुई बोलीं—"वाम स्कन्ध के ऊपर वाम कपोल पधराकर, नर्तित भ्रूविलास-शाली श्यामसुन्दर अपने अधरों पर मधुर मुरली धारण कर कोमल अङ्गुलियों द्वारा वंशी के स्वरों को मूंदते खोलते हुए वंशी बजाते थे।"

इस हृद्यपद्य को सुनकर भगवान् वेदव्यासजी ने श्रीमन्महाप्रभूपाद को अनेक शुभाशीर्वाद प्रदान किये, फिर वहाँ से लौट कर शोणशृङ्ग, नन्दप्रयाग आदि तीर्थों में होते हुए चाक चिक्यघाट पर उतर कर कल्कि भगवान् के अवतार स्थल सम्भल ग्राम में पधारे, एतेन श्रीमन्महाप्रभूपाद का तीर्थ पर्यटन सुस्पष्ट है। साथ ही युगलगीत के पद्य का श्रीभगवान् वेदव्यासजी को श्रवण कराना आदि प्रसङ्ग उपासना की प्रधानता का द्योतक है। वास्तव में तो श्रीमन्महाप्रभूपाद श्रीमद्भगवद्वदनावतार होने के कारण स्वयं तीर्थमय थे, जब आपकी छः मास की अवस्था थी—तब एक दिन आपकी माता श्री-

इल्लमागारूजी आपको गोद में खिला रही थीं, अकस्मात् आपके हृदय में यह वासना बड़े वेग से जागृत हुई कि हमने ब्रजयात्रा नहीं की तथा अभी बालक को लेकर जाना असुविधाकारक है और ब्रजयात्रा की उत्कट उत्कण्ठा भी विवश करती है। इस प्रकार माताजी विचार कर ही रही थीं कि बालक वल्लभाधीश को जमुहाई आई, माताजी की दृष्टि आपके सुन्दर मुख कमल के भीतर पड़ी, तो चौरासी कोस ब्रज-मण्डल का दर्शन श्रीमन्महाप्रभूपाद के मुखारविंद में ही माताजी को हुआ। माताजी तत्क्षण समझ गई कि मेरा प्रिय-पुत्र ही ही समस्त तीर्थ-मय, ब्रज-मण्डल-मय तथा श्रीकृष्ण स्वरूप है, तथापि लोक संग्रह के लिये आपने समस्त तीर्थों में स्नान, दानादि समस्त तीर्थ कृत्य किये। अतएव श्रीमन्महाप्रभूपाद की तीर्थों के प्रति भावना का यही तात्पर्य है कि देहादि शुद्धि के लिये एवं शिष्टाचार के अनुसार तीर्थ स्नानादि अवश्यमेव करना चाहिये। 'गङ्गा गये जब गङ्गादास, यमुना गये तब यमुनादास' के अनुसार अन्याश्रय नहीं करना—अपनी उपासना रीति से रञ्चक नहीं डिगना, श्रीमन्महाप्रभूपाद का सिद्धान्त है कि—त्रित्वेन कृष्ण प्राप्ति। मेरा लेख वाह्यदृष्टि से कुछ विषयान्तर में अवश्य जा रहा है, परन्तु प्रसङ्गवश लिखना पड़ता है। पाठक इसे तात्विक-दृष्टि से ही पढ़ें। अस्तु--

त्रित्वेन अर्थात् तीन साधनों से श्रीकृष्ण निश्चय ही मिलते हैं। यथा—अन्याश्रय, असमर्पित, असदालाप अर्थात् (१) श्रीकृष्णाश्रय को छोड़ कर कोई का आश्रय नहीं करना। (२) प्रभु को निवेदन किये बिना कोई भी कण भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्यादि का मुख में नहीं जाने देना. किसी को यदि शङ्का हो कि औषधि-सेवन की दशा में क्या व्यवस्था करनी चाहिये? इसके लिये आचार्यों ने चरणामृत मिश्रित औषधि-सेवन में भी दोष नहीं माना है। (३) श्रीकृष्ण कथा के अतिरिक्त कोई आलाप नहीं करना। इन्हीं तीन साधनों से श्रीकृष्ण मिल जाते हैं। यहाँ प्रासङ्गिक विषय आत्माश्रय है। श्रीमन्महाप्रभूपाद की तीर्थों के प्रति भावना का संक्षिप्त दिग्दर्शन यही है।

नवद्वीप

(लेखक--आचार्य श्रीअतुलकृष्णजी गोस्वामी "अतुल")

(१)

नदिया स्थित सुन्दर नवद्वीप।
नव पुण्य-पुञ्ज सद्ज्ञान दीप॥
मानव विकास, वैष्णव निवास।
मधुमय पुनीत अनमोल सीप॥
गाया करता नित गौर गीत।
वह नवद्वीप॥

(२)

प्राची रवि क्षय कर अन्धकार।
मानव पर कर अतिशय दुलार॥
शुचि अजिर गौरपद रेणु मंजु।
देकर के खल-जन कोपहार॥
दरशाता अघ-प्रति अमित प्रीत।
वह नवद्वीप॥

(३)

नदियाभूङ्गण शुचि ऊर्मि घाट।
चैतन्य चक्षु सिंचित विराट॥
दरशाता राधा उर अनूप।
अब भी वह जर्जर उपल गठ॥
'कल कल' लहरी में भर पुनीत।
वह नवद्वीप॥

(४)

है धन्य शची सुत केलि-भूमि।
है धन्य वैष्णव पुण्य भूमि॥
सर्वोपरि पावन गौर तीर्थ।
है दिव्य तत्व वह दिव्य भूमि॥
करते अभिवादन हम विनीत।
वह नवद्वीप॥

तीर्थों पर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी की भावना

[लेखक-उपनिषद्भाष्यकार स्वामी श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री 'श्रीवैष्णव' न्यायरत्न वेदान्ततीर्थ, न्यायवेदान्तकेसरी, तर्कवागीश]

आचार्य सार्वभौम श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज की तीर्थ विषयक सुन्दर भावना का अनुमान लगाना कठिन है। क्योंकि परम पूज्य आचार्य महानुभावों की सुन्दर भावनाओं के परिचायक उनके अनुयायियों के आचार और व्यवहार ही हुआ करते हैं।

यतिराज श्रीरामानन्दाचार्य ने तमसाच्छन्न जगत् को जो दिव्य ज्ञान देकर कल्याण-मार्ग का अनुयायी बनाया है। वह किससे अविदित है, आज उन्हीं आचार्यप्रवर की कृपा से हमारा धर्म जीवित है, उन्होंने अपने उपदेशों द्वारा अनन्त जीवों का उद्धार किया है।

एक समय की बात है कि श्रीसम्प्रदाय के प्रधान आचार्य आनन्दभाष्यकार श्री १०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज यति-सार्वभौम के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करके आचार्यपाद श्रीसुरसुरानन्दजी ने जिज्ञासु भाव से लोक हितार्थ १-तत्त्व क्या है? २-श्रीरामजी की शरणागति स्वीकार करने वाले वैष्णवों को क्या जपना चाहिये? ३-उनके लिये इष्ट ध्यान क्या है? ४-उनकी मुक्ति का साधन क्या है? ५-अनेक धर्मों में श्रेष्ठ धर्म कौनसा है? ६—वैष्णव कितने प्रकार के होते हैं? ७—उनका लक्षण क्या है? ८—उन्हें कालक्षेप कैसे करना चाहिये? ९—मोक्ष प्रद किस साधन की प्राप्ति करनी चाहिये? १०—वैष्णवों को कहाँ निवास करना चाहिये? इत्यादि प्रश्न किये। हमारे इस लेख के उपयोगी अष्टम और दशमप्रश्न हैं। क्योंकि इन्हीं दो प्रश्नों के उत्तरों में आनन्द-भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने तीर्थों का उल्लेख किया है।

वैष्णवों को कालक्षेप कैसे करना चाहिये? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आनन्द भाष्यकार आचार्यपाद श्रीरामानन्दाचार्यजी कहते हैं कि—

दिव्येषु देशेषु सतां प्रसङ्गं तदीयकैङ्कर्यपरायणो वै।
यावच्छरीरान्तमहर्दिवं तत्कथामुदारां शृणुयाद्भवघ्नाम्॥४

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर)

अर्थात्-भगवत्कैङ्कर्यानुरागी बन कर श्री अयोध्या, चित्रकूट इत्यादि दिव्य देशों में सत्पुरुषों का सङ्ग करता हुआ जब तक शरीर रहे तब तक संसार की बाधा को नष्ट करने वाली भगवत्कथा को निरन्तर श्रवण करता रहे॥४॥

तीर्थेषु वासेन महात्मनाञ्च समागमेनाथ तदर्चनेन।
जिज्ञासया तद्यशसः श्रवेण तच्छ्रावणेनस्मरणेन तस्य ८

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर)

अर्थात्—श्रीसरयू गङ्गा, यमुना इत्यादि पवित्र नदियों के तट तथा श्री अयोध्या, वृन्दावनादि तीर्थों में निवास करके, महात्माओं का सत्संग करके, भगवान् की पूजा करके, भगवान् का यश श्रवण करके तथा अन्यों को श्रवण कराकर भगवान् की ही जिज्ञासा से भगवान् का ही स्मरण करके मुमुक्षु वैष्णव कालक्षेप करे॥८॥

इसी प्रकार से श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर नामक ग्रन्थरत्न में 'श्रीवैष्णवों को कहाँ निवास करना चाहिये?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आपने श्रीवैष्णवों के निवास स्थान तथा वहाँ के कर्त्तव्य का उपदेश दिया है। विस्तार भय से मैं श्लोकों को न लिख कर केवल सारांश ही लिखता हूँ। श्री आनन्द भाष्यकार कहते हैं कि—

शान्त, जितेन्द्रिय और निष्काम होकर वैष्णव जन वदरिकाश्रम में श्रीनारायण और नैमिषारण्य में श्री हरि की सदा पूजा सेवा करें। हरि क्षेत्र में श्रीशालिग्रामजी की, श्री अयोध्या में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की, मथुरा में श्रीबालकृष्णजी की, मायापुरी में श्रीमधुसूदनजी की, काशी में भोगिशयन

की, अवन्ती में अवन्तीपति की, द्वारका में, यादवेन्द्र भगवान् की और ब्रज में देवस्तुत गोपीजनवल्लभ ब्रह्मादिपूजित भजङ्गाश्रय भगवान् की, श्रीवृन्दावन में श्रीनंदकुमारजी की, कालियकुण्ड में गोविन्द की, गोवर्धन में श्रीगोपवेषधारी की, और भवघ्न में पद्मलोचन की पूजा करे। हरिद्वार में जगत्पति की, प्रयाग में माधव की और गया से गदाधर भगवान् की, गङ्गासागर में विष्णु की तथा श्रीचित्रकूट में अनन्तकल्याण गुणाकर सर्वव्यापक भगवान् श्रीराम की पूजा सेवा करे, इत्यादि।

इस प्रकार नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम तीर्थों में बास कर उक्त भगवद्विग्रहों की सेवा पूजा करने का आदेश आचार्यपाद ने श्रीवैष्णवों को दिया है।

जब आचार्यपाद क्षत्रिय कुल कमल दिवाकर महाराज श्री पीपाजी की राजधानी 'गाङ्गरौनगढ़' में पधारे थे—तो उपदेशग्रहणार्थ आगत जनता के प्रति सभा में उपदेश करते हुए भगवान् भाष्यकार ने कहा है कि—

नित्यं ललाटपटले शुभचित्रकूटा,
योध्याप्रयागमथुरा प्रभृतिभ्य एव।
श्वेता मृदः शुभतमाश्च समाहृतश्चे,
त्ताभिर्हि सश्रि करणीयमूर्ध्वपुण्ड्रम् ॥ ११

(श्रीरामानन्ददिग्विजय, सर्ग १२)

अर्थात्—मङ्गल स्वरूप चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग और मथुरा इत्यादि (तीर्थों) से ही यदि पवित्र श्वेत मृत्तिका लाई हुई हो तो उससे नित्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये, तथा मध्य में श्री भी धारण करनी चाहिये।

श्री भारतं हि सकलं स्वत एव पूतं,
तत्रापि देवसरिदादिनदीजलानि।
काशी प्रयाग मथुरागिरिचित्रकूटा-
द्येवं पवित्रमिति सर्वमिहास्ति गम्यम् ॥१२

(श्री रा० दि० सर्ग १२)

अर्थात्—समस्त भारतवर्ष स्वयं ही पवित्र है। उसमें भी गङ्गा यमुनादि नदियों का जल पवित्र है। एवं काशी, प्रयाग, मथुरा तथा चित्रकूट इत्यादि पवित्र हैं। अतः उनकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये।

वाणीविशुद्ध्यति नृणामिह सत्यवाचा-
कर्णौ तथा च हरिकीर्तिकथामृतौघैः।
पादौ च तीर्थगमनेन करौ च दाने-
रेवं मनो निखिलदम्भविवर्जनेन ॥ ३५ ॥

(श्रीरामानन्ददिग्विजय सर्ग १२)

अर्थात्—मनुष्यों की वाणी सत्य बोलने से शुद्ध होती है, तीर्थ यात्रा करने से पाँव और दान करने से हाथ शुद्ध होते हैं। इसी प्रकार सर्व प्रकार के दम्भों (पाखण्डों) के त्याग करने से मन शुद्ध होता है।

ऊपरि निर्दिष्ट आनन्द भाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज के कथनों से यह ज्ञात होता है कि—तीर्थ, तीर्थजलों और तीर्थ-मृत्तिका परम पवित्र हैं। एवं तीर्थ समस्त पापों को नाश कारक और परम कल्याण के साधक हैं। तीर्थों में निवास कर शुद्ध चित्त होकर सन्त महात्माओं के समागम द्वारा कालयापन करना तथा अहर्निश भगवत्—भागवत सेवा में परायण रहना मोक्षजनक भगवद्भक्ति को बढ़ाने वाला है।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के उक्त विचारों का पोषक निम्नलिखित शास्त्रीय वचन समुदाय है:—

यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः ॥

(वाल्मीकि रामायण अयोध्या का० स० ९४)

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
रामचन्द्रसमादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥
सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति।

(पराशरस्मृति० अ० १२)

सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम्।
परस्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥
सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः।
नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥

(शङ्ख स्मृति अ० ८)

सरस्वती सरयुः सिन्धुरुर्मिभि-
र्महोमहीरवसायन्तु वक्षणीः।
देवीरापोमातरः सूदयित्न्वो-
घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥

(ऋ० मं० १० अ० ५ सू० ६४ मं० ६)

अर्थ—महान् से महान् लहरों से युक्त सरस्वती और सिन्धु नाम वाली हे नदी देवियाँ! रक्षा करने के लिये हमारे यज्ञ में आओ। हे माता के समान प्रेरक जल देवियो! घृत मधु युक्त दुग्ध को (अथवा जल को) हमें दो और देखो।

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति-
यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अत्रादधु र्यजमानाय लोकं-
दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

(अथर्व० १८।४।७)

अर्थ—तीर्थों द्वारा प्रकृष्ट महती आपत्ति को इस प्रकार तर जाते हैं अर्थात् तीर्थों से बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। यज्ञ करने वाले पुण्य करने वाले जिस मार्ग से जाते हैं। वे इस पुण्य लोक प्राप्ति साधन के मार्ग में प्राप्त होते यजमान के निमित्त पुण्यार्जित लोक को विधान करें। दिशाओं में स्थित प्राणी यजमान के निमित्त कल्पना करते हुए यह कार्य करें।
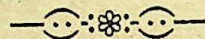
हमारे तीर्थ

[लेखक—कवीन्द्र श्रीयुत द्वारिकाप्रसादजी गुप्त 'रसिकेन्द्र']

अमर रहें ये तीर्थ हमारे,
जिनमें भरी स्वर्ग की सुषमा।
अब तक धर्म-केतु हैं धारे,
अमर रहें ये तीर्थ हमारे।

(१)

युग-परिवर्त्तन देख चुके ये,
भीषण चोटों से न झुके ये,
मुक्ति-दान में नहीं रुके ये,
अटल बने हैं प्रभु के प्यारे।
अमर रहें ये तीर्थ हमारे॥

(२)

ध्यान भजन में भक्ति भरी है,
भक्तों में अनुरक्ति भरी है,
प्रतिमाओं में शक्ति भरी है,
गुण-गण कभी न होंगे न्यारे।
अमर रहें ये तीर्थ हमारे॥

(३)

सरितायें मन विमल बनातीं,
दिव्य झाँकियाँ हृदय जुड़ातीं,
ऋद्धि-सिद्धियाँ सुख सरसातीं,
पाप-पुंज हैं जिनसे हारे।
अमर रहें ये तीर्थ हमारे॥

(४)

सुर-गण जहाँ लगाते फेरी,
रहती बनी सम्पदा चेरी,
'जय-जय'ध्वनि की बजती भेरी,
विद्या का हैं यश विस्तारे।
अमर रहें ये तीर्थ हमारे॥

(५)

बने रहें भूतल के भूषण,
प्रकटायें प्रकाश बन पूषण,
दूर हटें, यदि हों कुछ दूषण,
रहें पुण्य की प्रभा पसारे।
अमर रहें ये तीर्थ हमारे॥

तीर्थों पर श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की भावना

[लेखक--आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वैष्णव-दर्शनतीर्थ, भागवतरत्न]

श्री श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने भक्ति भाव और प्रेम-प्रदान द्वारा मनुष्य मात्र एवं अन्य प्राणियों को परम शान्ति प्रदान की थी। नाम-संकीर्त्तन प्रचार के तो जनक ही थे। आपने समग्र भारत में वैष्णव धर्म का प्रचार कर वैष्णव धर्म के झण्डे को गगन चुम्बी बनाया। बड़े-बड़े विद्वानों की अपनी अपूर्व शक्ति के प्रभाव से नाम संकीर्त्तन में, रुचि उत्पन्न की और उनको परम भागवत और भक्त बनाया।

अनेकानेक पुनीत तीर्थों में प्रभु ने भ्रमण कर उन तीर्थों के रहने वाले अन्यान्य धर्मावलम्बियों को वैष्णव बनाया और तीर्थाधिष्ठातृ श्रीदेवमूर्त्तियों का दर्शन कर तीर्थों के प्रति अपनी उच्च भावना का परिचय दिया। साथ ही अनेक तीर्थों में प्रभु ने नाम-कीर्त्तन का भी प्रचार किया।

प्रभु की नाम-कीर्त्तन की अपूर्व प्रचार-शक्ति को देखकर सभी सम्प्रदायों ने कलियुग पावनावतार भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी के द्वारा प्रचारित हरिनाम-कीर्त्तन को सहर्ष स्वीकार किया है।

श्रीनाभाजी ने श्रीचैतन्यप्रभु की अपूर्व महिमा का परिचय पाकर अपने 'भक्तमाल' ग्रंथ में प्रभु की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है—

अवतार विदित पूरब मही,
उभय महन्त देहि धरी।
नित्यानन्द श्रीकृष्ण चैतन्य की,
भक्ति दशौ दिशि विस्तरी॥

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी की शिष्या मीराबाई जी ने भी प्रभु की महिमा के सम्बन्ध में वर्णन किया है। यथा--

अब तो हरिनाम लौं लागी।
सब जग को यह माखन चोरा,
नाम धरयो वैरागी।
कहँ छोड़ी वह मोहन मुरली,
कहँ छोड़ी सब गोपी॥
मूड़ मुड़ाय डोरि कटि बाँधी,
माथे मोहन टोपी।
मातु जसोमति माखन कारन,
बाँध्यो जाको पाँव॥
श्याम किशोर भए नव गोरा,
चैतन्य जाको नाम।
पीताम्बर को भाव दिखावे,
कटि कोपीन कसे॥
दास भक्त की दासी 'मीरा',
रसना कृष्ण बसे॥

प्रभु ने जीवोद्धार के लिए ही अवतार धारण किया था, अतः तीर्थ पर्यटन काल में भी जीवोद्धार रूपी अपने उद्देश को सफल करते रहे। बड़े-बड़े दुराचारी और अभिमानियों को अपने पतित-पावन गुण से पावन और हरिभक्त बनाया।

तीर्थयात्रा के उद्देश से प्रभु ने दक्षिण देश में भ्रमण किया। दक्षिण यात्रा के समय मार्ग में कृष्णानदी में प्रभु ने स्नान किया। यहाँ से मल्लिकार्जुन तीर्थ में गये, वहाँ पर महेश्वरजी के दर्शन किये। अहोवल नामक तीर्थ में श्रीनृसिंह भगवान् के दर्शन किये। फिर वृद्ध काशी तीर्थ में पधारे वहाँ से त्रिपदी में जाकर श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन किये। अनन्तर काञ्चीपुरी में पधारे। काञ्चीपुरी के दो भाग हैं। उत्तर भाग में शिवकाञ्ची है और दक्षिण भाग में विष्णुकाञ्ची है। दोनों स्थानों में क्रम से शिव मूर्त्ति और श्रीलक्ष्मीनारायण के दर्शन किये। अनन्तर त्रिकालहस्ती तथा पक्षी-तीर्थ में पधारे। वहाँ से श्वेत बाराह, कम्बुकोणम्, कावेरी तथा रङ्गक्षेत्र में गये। रङ्ग क्षेत्र में श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीजी के पिता श्रीवेङ्कटभट्टजी से साक्षात् कार हुआ।

जिन श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी की अनुपम-भक्ति के प्रभाव से शालिग्राम शिला से स्वयम्भू मूर्त्ति श्रीराधारमणजी महाराज प्रकट हुए और अभी तक वह मूर्त्ति श्रीधाम वृन्दावन में विराजमान होकर भक्तों के चित्त को हरण करती है। रङ्गक्षेत्र से ऋषभपर्वत, कामकोष्ठी, दक्षिण मथुरा, सेतुबंध, तिलकाञ्ची, पानागड़ी, कन्याकुमारी पधारे। इन तीर्थों के सब देव मन्दिरों में जाकर पृथक्-पृथक् नामधारी श्रीमूर्त्तियों के दर्शन किये। अनन्तर पयस्विनी तीर्थ में पधारे। यहाँ पर आदि केशव भगवान् के मन्दिरमें बहुत से वैष्णवगण ब्रह्मसंहिता का पाठ कर रहे थे। "ब्रह्मसंहिता" का पाठ सुनकर प्रभु को परमानन्द हुआ। श्रीचैतन्य-प्रभु ने "ब्रह्मसंहिता" की एक प्रतिलिपि कराकर अपने साथ रखी। अनन्तर किष्किंधापुरी, उडुपी-कृष्ण आदि तीर्थ में पधारे। उडुपीकृष्ण में श्रीमध्वाचार्यजी से श्रीचैतन्यदेव का सम्मेलन हुआ। वहाँ से द्वारका आदि अनेक तीर्थों में पधारे। एवं प्रयाग, काशी, मथुरा, वृन्दावन, श्रीराधाकुण्ड, नन्दग्राम आदि तीर्थों का भी प्रभु ने रसास्वादन किया। श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी के तीर्थ-यात्रा करने से निश्चय होता है, कि प्रभु की तीर्थों में श्रद्धा थी, अत: उन्होंने अनेक तीर्थों का पर्यटन किया। प्रभु ने प्रच्छन्न भाव से जीवों को बतलाया कि तीर्थयात्रा करना भी प्रत्येक जीव का अति पवित्र एवं प्रधान कर्त्तव्य है।

श्रीवृन्दावन की महिमा

[लेखक—वैष्णव-कुल कौस्तुभ, रसिकानन्य पूज्यपाद श्रीव्यासजी महाराज]
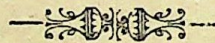
सदा वृन्दावन सब की आदि !
रसनिधि, सुखनिधि, जहाँ विराजत, नित्य अनन्त अनादि ।।
गौरश्याम को शरण-हरण दुखकन्द-मूल मुंजादि ।
शुक, पिक, केकी, कोक, कुरङ्ग, कपोत, मृगज सनकादि ।।
कीट, पतङ्ग, विहङ्ग, सिंह, कपि, तहाँ सोहत जनकादि ।
तरु, तृण, गुल्म, कल्पतरु, कामधेनु, गौ, वृष धर्मादि ।।
मोहन की मनसा तैं प्रगटित अंशकला कपिलादि ।
गोपिन को नित नेम प्रेमपद कंज जल कमलादि ।।
राधा दृष्टि सृष्टि सुन्दरि की बरनत जयदेवादि ।
मथुरा-मण्डल के जादवकुल अति अखण्ड देवादि ।।
द्वादश वन में तिलु तिलु मुक्ति अरु तीरथ गङ्गादि ।
कृष्ण जन्म अचला न चलै जो होहि प्रलै मन्वादि ।।
गिरि-गह्वर वीथी रत रनमें कालिन्दी ललितादि ।
सहज माधुरी मोद विनोद सुधा सागर ललितादि ।।
सबै सन्त सेवत निरवैरनि लखि माया नाशादि ।
शेष अशेष पार नहिं पावत गावत शुक व्यासादि ।।

तीर्थों पर श्रीहिताचार्यजी की भावना

[लेखक—श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीव्रजजीवनलालजी महाराज, शास्त्री, छोटी सरकार]

साधारणतया जहाँ-जहाँ धर्म प्रधान भारत की धार्मिक प्रवृत्तियों का उदय हुआ है, उन-उन जगहों को "तीर्थ" शब्द से सम्बोधित किया जाता है। जो वस्तु जितनी महत्वपूर्ण होती है, उसका प्राकट्य स्थल भी उससे कुछ कम महत्त्व का नहीं होता, प्रत्युत: अधिक महत्त्व का होता है। यह बात आध्यात्मिक, आधि-भौतिक आदि सभी विषयों में लागू है। आज के बुद्धिवाद प्रधान युग में भी जिन जगहों में आज के या पहले के महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, अथवा कुछ चमत्कृत घटनायें घटी हैं, उनको लोग आदर की दृष्टि से देखते और परम पवित्र समझते हैं। वास्तव में ऐसे स्थलों का विलक्षण प्रभाव होता है। अन्य स्थलों की अपेक्षा इनका वातावरण ही भिन्न होता है। इनमें भ्रमण करने, इनका दर्शन करने, इनमें बैठने-उठने, इनसे सम्बन्धित बातों को सुनने वा पढ़ने से हृदय इनके आभ्यन्तरिक वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, किन्तु यह बात भावना पर अवश्य निर्भर रहती है। जो वस्तु हमारी भावना में श्रद्धास्पद है, उससे सम्बन्धित प्रत्येक विषय भी समादृत ही होता है। यह एक हार्दिक-तथ्य है, क्योंकि भावना हृदय की वस्तु है। वर्तमान समय में भावना के अभाव से वा कुभाव से हमें अपने उन विषयों में भी तथ्य के दर्शन नहीं होते जिनको हमारे ही प्रातः स्मरणीय पूर्वजों ने प्रकाशित वा स्थापित किया था। ऐसी अवस्था में शान्ति और अनन्त सुख की खोज में दौड़ने वाला आज का प्राणी भला उन्हें कैसे प्राप्त कर सकता है? "न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्" (गीता अ० २ श्लोक ६६) भावनाहीन व्यक्ति को शान्ति कहाँ और शान्तिहीन को सुख कहाँ? अतः जीवन के चरम लक्ष्य सुख (आनन्द) को प्राप्त करने के लिये तीर्थादि सेवन रूप साधनों में श्रद्धा युक्त भावना की परमावश्यकता है।

दृढ़ रसिक अनन्य नृपति चक्र-चूड़ामणि श्रीमद्वंशयवतार अनन्त श्रीयुक्त गोस्वामि श्रीहितहरिवंशचन्द्रमहाप्रभुजी (श्रीहिताचार्यचरण) का वि० सम्वत् १५३० में प्रादुर्भाव हुआ। आपने श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय का प्रकाश किया तथा युगल उपासना और माधुर्य लीला को भी प्रकाशित किया। आपको उपासना सम्बन्धी अनुभूति श्रीवृन्दावनमें ही में हुई। आपकी अनन्य निष्ठा जगत्प्रसिद्ध है। इन कारणों से तीर्थों से सम्बन्धित आपकी सारी भावनायें श्रीवृन्दावन में ही केन्द्रित प्रतीत होती हैं। आपकी श्रीवाणियों के अवलोकन से विदित होता है कि आप एकमात्र श्रीवृन्दावनैकनिष्ठ थे। यह बात आपके जीवन की इस घटना से भी सिद्ध होती है कि आप श्रीवृन्दावन आने के अनन्तर फिर इसे छोड़कर तीर्थाटनादि किसी भी हेतु से बाहर नहीं पधारे और अखण्ड वृन्दावन निवास किया।

संस्कृत में "तीर्थ" शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है। इनमें से एक अर्थ "सिद्ध स्थान" भी है प्रसङ्गानुसार यह अर्थ यहाँ उचित प्रतीत होता है। तीर्थ वह स्थल भी हो सकते हैं, जो सिद्ध-प्रकृति से ही सिद्ध हों। श्रीश्रीहिताचार्य चरण की भावना में तो उनके परमोपास्य श्रीराधावल्लभ का नित्य विहार स्थल श्रीवृन्दावन और उसके अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु सर्वोत्कृष्ट सिद्ध स्थान (तीर्थ) है।

इस सम्बन्ध में आपकी कुछ भावनाओं का दिग्दर्शन कराया जाता है। अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमद्राधासुधानिधि में आप एक स्थान पर भावना करते हैं।

क्वासौ राधा निगमपदवी दूरगा कुत्र चासौ।
कृष्णस्तस्याः कुचकमलयोरन्तरैकान्तवासः॥
क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा।
यत्तन्नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य॥

वेद के स्थान से दूर वर्तमान श्रीराधा कहां? उन्हीं के कुचकमलों के मध्य में एकान्त निवास करने वाले श्रीकृष्ण कहां? और आश्चर्य है कि तुच्छ परम अधम निन्दित कर्म वाला प्राणी मैं कहाँ? तथापि उनके (प्रिया प्रियतम के) नाम का स्मरण होता है यह श्रीवृन्दावन की ही महिमा है। कितनी उत्कृष्ट भावना है। आप प्रभुविषयक स्फूर्ति में श्रीवृन्दावन को कारण मान रहे हैं।

आपने सूत्र रूप से जीव मात्र के लिये कुछ आदेश दिये हैं, उनमें से पंचोपदेशात्मक आपका यह दोहा अत्यन्त प्रसिद्ध है—

सबसों हित निष्काममति वृन्दावन विश्राम।
श्रीराधावल्लभ लाल कौ हृदय ध्यान मुख नाम॥

इसमें संसार से भ्रमित प्राणी के लिये श्रीवृन्दावन में विश्राम कर (राजस आदि वातावरण से दूर रहकर) अखण्ड शान्ति लाभ करने की आज्ञा प्रदान की है।

आपकी सुप्रसिद्ध स्फुटवाणी में एक सुन्दर पद इस प्रकार है--

रहौ कोऊ काहू मनहिं दिये।
मेरे प्राननाथ श्रीश्यामा सपथ करौं तृन छिये।
जे अवतार कदम्ब भजत हैं धरि दृढ़व्रत जो हिये॥
तेऊ उमगि तजत मर्यादा, बनविहार रस पिये।
(जयश्री) "हित हरिवंश" अनत, सचु नाहीं बिन या रजहिंलिये॥

इस पद का अन्तिम अंश विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इसमें आपने श्रीवृन्दावन की रज का महत्त्व प्रदर्शित किया है। और "इसके बिना कहीं भी शान्ति नहीं मिलेगी" यह सिद्धान्त स्थापित किया है।

सुविख्यात वाणी "श्रीहित चौरासी" में भी आपने एक पद में प्रथम श्रीवृन्दावन को नमस्कार कर उसका महत्त्व प्रकट किया है -

प्रथम यथामति प्रणऊँ श्रीवृन्दावन अतिरम्य।
श्रीराधिका कृष्ण बिना सब के मनन अगम्य॥

आपकी भावनाओं के सूक्ष्म अध्ययन से अन्य तीर्थों की अपेक्षा श्रीवृन्दावन का बहुत ही ऊँचा स्थान प्रतीत होता है, होना भी चाहिये क्योंकि यह श्रीप्रियतम का 'निज धाम है।

श्रीवृन्दावन के उत्कर्ष में आचार्य चरण के शिष्य महात्मा ध्रुवदासजी का एक सुन्दर दोहा इस प्रकार है—

श्रीवृन्दावन छाँड़िकै अन्य तीरथ जे जात।
छाँड़ि विमल चिन्तामणि कौड़िन कौं ललचात॥

[लेखक—पं० श्रीधनेश्वरजी झा, "अधम"]

कोई कहते इसको है दुखमोचन बदत अपर सुख धाम यही।
कोई ताप--तपी भाषत इसको हैं तप्त हृदैय--हिम--धार यही ॥१॥
कोई कहत न्यास प्रिय क्षेत्र ज्ञानका कर्मी मानत ठौर मही।
धन-मान-दार जनदायक भी है कहते दंशित-स्वार्थ--अही ॥२॥
कोई पाप--पयोधि प्रबल बहते हित कहते जन हैं पोत यही।
कोइ अटत श्रान्त तंग राही--हित कहते शाही मार्ग यही ॥३॥
कोई कहते संत--सुरों का आलय यम--गण--भय--हर--धाम यही।
रे "अधम!" मान है हरि--रस--मदिरा-रत उन्मादी जेल यही ॥४॥

सर्वोत्तम तीर्थ कौन है ?

(लेखक–पूज्यपाद १०८ श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

इस प्रश्न का सीधा, सरल और सच्चा उत्तर यह है कि सब से निकट का तीर्थ सर्वोत्तम है, सब से निकट का तीर्थ कौन सा है ? इसको विचार करने के लिये भिन्न-भिन्न पुरुषों के पृथक्-पृथक् मत दिखाते हैं। जमुनादास कहता है--

जमुनादास—हाँ ! ठीक है, सब से निकट का तीर्थ सर्वोत्तम है। मैं जमुना के पास का रहने वाला हूँ, सो जमुनाजी मेरे सब से निकट का तीर्थ है। दुर्भाग्यवश मैंने कभी भी जमुनाजी में स्नान नहीं किया था। दैवयोग से मैं जमुनाजी से दूर मारवाड़ देश में चला गया। वहाँ पानी के लिये मैंने बहुत कष्ट पाया, तो मेरे दिल में विचार उत्पन्न हुआ—जमुनाजी के चरणों के निकट का मैं रहने वाला हूँ, जमुनाजी कृष्ण भगवान की पटरानी हैं और सूर्य भगवान की पुत्री हैं, कभी भी मैंने उनमें श्रद्धा पूर्वक स्नान नहीं किया, स्नान तो क्या-- प्रीति पूर्वक दर्शन तक नहीं किया। जिसने दर्शन नहीं किये हों, वह सिर झुका कर नमस्कार तो करे ही कहाँ से ? यदि जमुना महारानी मुझे अपने चरणों में बुलालें, तो मैं उनमें नित्य भक्ति-पूर्वक स्नान किया करूँगा। यह विचार मेरे मन में आते ही महारानी की कृपासे अथवा उनके पति विष्णु की कृपा से अथवा उनके पिता सूर्य भगवान् की कृपा से मैं महारानी के चरणों में ही आगया। वहाँ आते ही मैं नित्य-प्रति जमुना-स्नान करने लगा। कार्तिक का मास था, प्रातः काल ही बहुत से भाई-बहिन स्नान करने जाते थे, उनको देखकर तथा स्थान-स्थान पर कथा-वार्ता होते देखकर मुझे बहुत ही आनन्द आया। दो-तीन महीने पीछे एक ब्रह्मनिष्ठ महात्मा का मुझे दर्शन हुआ और उनके उपदेश से मैं कृत-कृत्य हो गया। इससे मेरा दृढ़ निश्चय है कि, सबसे समीप का तीर्थ ही सर्वोत्तम है। अतः सब को अपने पास के तीर्थों में ही स्नान, दान आदि करने चाहिये--ऐसा मेरा मत है। जो पास के तीर्थ को छोड़ कर दूर के तीर्थों में जाते हैं, वे उस मूढ़ के समान हैं, जो घर के मधु को छोड़ कर पर्वत पर मधु लेने के लिये जाता है। जय जमुना महारानी की !

यह सुन कर पितृभक्त इस प्रकार अपना मत प्रकट करने लगा —

पितृभक्त--भाई ! जो कुछ आपने कहा है, वह ठीक ही कहा है। गङ्गा, जमुना, गोदावरी आदि सब तीर्थों में निकट का तीर्थ ही सर्वोत्तम है, परन्तु कलियुग की महिमा है कि पास के देव को छोड़कर दूर के देव की आराधना की जाती है। सब ही तीर्थ बड़े हैं, कोई तीर्थ छोटा नहीं है, फिर भी जो हमारे समीप है, वह हमारे लिये सब से बड़ा है, क्यों कि उसका हमारा पूर्वजन्म का सम्बन्ध है और सहज ही में वह हम को प्राप्त है, उसकी महिमा सहज ही में जानने में आती है, उसका सेवन करने में कुछ परिश्रम नहीं होता और कुछ खर्च भी नहीं होता। इससे वह सब से श्रेष्ठ है, परन्तु मैं तो वृद्ध माता पिता को ही सब से निकट और सर्वोत्तम मानता हूँ। जिसने घर बैठे वृद्ध माता पिता की सेवा नहीं की--उसका तीर्थ, जप, तप आदि सब निष्फल है, ऐसा विद्वानों का कथन है। जिसने वृद्ध माता पिता की सेवा करली, उसने गङ्गा, गया, प्रयाग आदि सब तीर्थ कर लिये, ऐसा मैं मानता हूँ, मैं ही नहीं मानता बल्कि सब वेद-वेत्ताओं का भी ऐसा ही मत है और युक्तियुक्त है।

नरहरि कहता है--यह नराकार चोला ही सर्वोत्तम, सब से निकट तीर्थ है। इसका शोधन करने से पूर्व के विद्वानों ने परमब्रह्म को प्राप्त किया है, इसलिये श्रेयाभिलाषी को इसी का शोधन करना चाहिये--ऐसा मेरा मत है और शास्त्र के अनुसार है।

श्रुतदेव--ठीक है, नरदेह ही सब से निकट सर्वोत्तम तीर्थ है, इसमें भी श्रोत्र सब से निकट है, यह ही भगवान के स्वरूप का श्रवण कराना है, इसलिये यह ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

स्पर्शचन्द--भाई, ठीक कहा! श्रोत्र से भी त्वक् इन्द्रिय निकट है, रोम-रोम में सर्वदेव बैठे हुए हैं। यह ही सूत्रात्मा होकर पिंड ब्रह्माण्ड को धारण करता है। इसलिये यह ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

रूपचन्द—ठीक है, भाई ठीक है! इससे भी निकट चक्षु इन्द्रिय है, इससे ही भगवान् के चक्षु सूर्यनारायण को हम देखते हैं। सूर्यदेव, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्वरूप हैं। तीनों मुख्य देवताओं का यह चक्षु ही दर्शन कराता है निर्गुण ईश्वर को भी सगुण रूप से दिखाता है। यह न हो तो सगुण निर्गुण कैसे भी ब्रह्म को हम देख नहीं सकते। आँख बन्द करने से अरूप ब्रह्म को भी यह दिखा देता है, इसलिये चक्षु सर्वोत्तम तीर्थ हैं, ऐसा शास्त्रानुसार मेरा मत है।

चक्खनलाल--भाई, ठीक है! परन्तु रसना चक्षु से भी पास है। 'रसोवै सः' इस न्याय से अन्तर्मुखी करने से यह रसना ही अरस परब्रह्म के रस को चखाती है, इसलिये यह सर्वोत्तम है।

सुरभसैन-ठीक है भाई, रसना से भी नासिका समीप है, अन्तर्मुखी करने से यह भी भगवान् के चरण कमल के मकरन्द सुँघाती है। इसलिये यह सर्वोत्तम तीर्थ है

गुरुदत्त--भाई! आपका कथन युक्त है। नासिका से भी अधिक समीप मुख है, जो मुख तक का निरूपण करता है अथवा भगवान् के चरित्रों का गान करता है, वह ही सर्वोत्तम तीर्थ है और वह ही सेवनीय है। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

मनसुखलाल—भाई! आप सब का कथन माननीय है, फिर भी मेरा अनुभव है और विद्वानों से भी मैंने सुना है कि शुद्ध मन सबसे निकट है और सर्वोत्तम तीर्थ है एवं वही सेवनीय है। सच कहा है—जिसका मन शुद्ध है, उसने सर्व तीर्थ सेवन कर लिये, सब कुछ पठन पाठन कर लिया, सब यज्ञ कर लिये, सर्व दान दे लिये और सब तप तप लिये। शुद्ध मन ब्रह्म ही है। 'म' का अर्थ नहीं है और 'न' का अर्थ भी 'नहीं' है, जो कभी नहीं, नहीं हो- वह मन है। ऐसा मन ब्रह्म ही हुआ अथवा 'म' का अर्थ 'माद' है 'न' का अर्थ नहीं है, जिसका माद न हो, वह मन है अथवा 'म' का अर्थ 'मरण' है, 'न' का अर्थ 'नहीं' है जिसका कभी मरण न हो, वह मन है। ऐसी अनेक व्युत्पत्तियों से मन का अर्थ ब्रह्म है, शुद्ध मन से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसलिये शुद्ध मन सर्वोत्तम तीर्थ है। जिसका मन शुद्ध है, उसके लिये 'कठौती में गङ्गा' यह कथन युक्त ही है। जिसका मन शुद्ध होगया, उसी ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है, वही जीवन मुक्त है, वही सेवनीय, पूजनीय और माननीय है। उसके दर्शन से, उसके साथ भाषण करने से अधम मनुष्य भी पावन हो जाता है। तीर्थ बहुत काल में पवित्र करते हैं, पर ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य दर्शन मात्र से पवित्र कर देते हैं। अन्य तीर्थ देशान्तर, कालान्तर में फल देते हैं, किन्तु महात्मा रूपी जीता जागता जंगम तीर्थ तुरन्त ही सर्वोत्तम फल देता है। भाइयो! मैंने तो शुद्ध मन से बढ़ कर कोई पावन तीर्थ न सुना है और न देखा है, आप में से भी किसी ने नहीं सुना होगा। सच कहा है—

कुं०—*पावन मन सम पुण्य तप, नहीं तीर्थ है अन्य।*
जिनका मन पावन हुआ, वे ही हैं नर धन्य॥
वे ही हैं नर धन्य, अन्य उनसा ना कोई।
करता उनका सङ्ग, होय है पावन सोई॥
'भोला'! कर मन शुद्ध, तीर्थ है यही सुहावन।
सब से ही है पास, परम पावन ते पावन॥

श्रीनर्मदा-माहात्म्य

[लेखक—श्रीमत् परमहंस, परिव्राजकाचार्य, लोकसंग्रही, गीताव्यास, जगद्गुरु-महामण्डलेश्वर
श्री १०८ श्रीस्वामी विद्यानन्दजी महाराज]

तीर्थ उसे कहते हैं जिसके सेवन से लोग संसार सागर से तर जाते हैं। पाणिनी अष्टाध्यायी के एक सूत्र (समान तीर्थे वासी) में कहा है, जो तीर्थ-बासी अपने अनुयायी को तीर्थ का महत्व समझा कर ठीक-ठीक सेवन करते हैं, वे समान तीर्थ सेवी कहे जाते हैं—अर्थात् वे तीर्थ से मिलने वाले पुण्य फल के समान भागी होते हैं। तीर्थों में ऐसे बहुत से सन्त और उपदेशक रहते हैं—जो तीर्थों में आने वाली भावुक जनता को तीर्थों के अर्थ और आदर्श को तथा उनसे मिलने वाले पवित्र परलोक और इहलोक के कल्याणकारी धर्म-कर्मों के रहस्यों को समझाकर संसार-सागर से तीर्थों द्वारा तारा देते हैं। ऋषि-महर्षियों ने परम तप और ईश्वर को प्रसन्न करके अनेक भौतिक स्थानों में मनुष्यों के कल्याणार्थ तीर्थों की स्थापनाएँ की। वर्तमान तीर्थों में चारधाम चौरासी अड्डे मुख्य (तीर्थ) समझे जाते हैं।

कलियुग में श्रीनर्मदा को ही पतित पावन और सर्वश्रेष्ठ तीर्थ माना है। ऐसा स्कन्द पुराण में लिखा है:—

सर्वं कृतयुगे तीर्थं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।
द्वापरे च कुरुक्षेत्रं रेवा कलियुगे स्मृतम् ॥

सतयुग में प्राय: सभी लोगों के अन्तःकरण निर्मल होने के कारण धर्मात्मा, परोपकारी और प्रभु प्रेमानुरागी होते थे, इस कारण महर्षियों ने सतयुग में किसी स्थान विशेष को तीर्थ का रूप नहीं दिया। उस समय तो सभी भूमि तीर्थ-रूपा मानी जाती थी। त्रेता में कुछ लोग मन-मलीन, अज्ञानी और पाप परायण होने लगे, तब देवर्षियों ने मिलकर जहाँ-तहाँ कुछ तीर्थों की स्थापना की। जहाँ जाकर लोग तीर्थवासी विद्वान् ऋषि-मुनि और महात्माओं से सत्संग करके सद्गुण, सद्-विचार और प्रभु-प्रेम आदि पवित्र गुणों को धारण करके, दुर्गुणों का परित्याग कर आत्म-कल्याण के भागी बनते थे। उन तीर्थों में पुष्करराज को ही प्रधान तीर्थ माना जाता है। द्वापर में कुरुक्षेत्र को मुख्यतीर्थ माना गया। क्योंकि वहाँ पूर्वकाल में महाराज कुरु ने अनेक यज्ञों के अनुष्ठान, तप, दान आदि पुण्य कर्मों को संसार के हितार्थ करके भगवान् की कृपा से उस भूमि को प्रधान तीर्थ कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध किया। इसी स्थान पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने विश्व कल्याणार्थ परम तीर्थरूप पतितपावनी श्रीगीताजी का उपदेश अर्जुन को दिया था। यही कारण है, कि द्वापर में कुरुक्षेत्र को सर्वश्रेष्ठ तीर्थ माना गया था। इस घोर कलियुग के लिये महर्षियों ने सर्व-श्रेष्ठ तीर्थ रेवा (श्रीनर्मदाजी) को प्रगट किया था। अमरकण्टक—जहाँ से श्रीनर्मदाजी निकलती हैं, वहाँ के कुण्ड में किसी समय नर्मदाजी का जल दूध रूप में बदल जाता है। यह चमत्कार किसी विशेष पर्व पर ही देखने में आता है। दूसरा चमत्कार यह है, कि नर्मदाजी में पड़ा हुआ पाषाण शिवलिङ्ग बन जाता है और बिना प्राण प्रतिष्ठा के ही पूज्य माना जाता है। इतना ही नहीं नर्मदेश्वर महादेव के बाण (पत्थर) में कुदरती डमरू, त्रिशूल, अर्द्धचन्द्र, यज्ञोपवीत, जलहरि आदि के चिह्न स्वतः बन जाते हैं। कहा जाता है कि महादेवजी के शिर में गङ्गाजी रहती हैं, यह बात सत्य है और शास्त्र सम्मत है। मुझे नर्मदाजी की कृपा से एक नर्मदेश्वर के स्वयम्भू

वाण नर्मदा में स्नान करने के समय मिले हैं, उनमें ये सभी चमत्कार विद्यमान हैं।

नर्मदा की मध्य-धारा का जल चाहे जितने दिन रक्खो, ख़राब नहीं होता, जन्तु आदि भी नहीं पड़ते हैं। ऐसा भी देखा गया है, कि नर्मदा के जल से त्वचा रोग भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जो जन नर्मदा तट पर श्रद्धा-विश्वास पूर्वक वास करता है और पवित्र भावना से भगवद्-भक्ति करता है। उसे अपने किये पुण्य का अनन्त गुणा फल मिलता है। कलियुग में यदि शीघ्र ही भगवान् को प्रसन्न करना हो तो नर्मदा के तट पर अर्चन, वन्दन, स्मरण, ध्यानादि रूप तप करे—उसे अपने इष्ट अनुष्ठान की शीघ्र ही सिद्धि मिलती है। स्कन्द पुराण में नर्मदा का माहात्म्य इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

स्मरणाज्जन्मजं पापं, दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्म सहस्राख्यं, हन्ति रेवा कलौयुगे॥

अर्थात्—नर्मदा के स्मरण मात्र से एक जन्म के पाप, दर्शन से तीन जन्म के पाप और स्नान से सहस्रों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। नर्मदा का माहात्म्य सभी शास्त्रों में विस्तार पूर्वक वर्णित है यह तो केवल दिग्दर्शन मात्र है।

संसार सागर से पार होने की इच्छा वाले मनुष्यों को यदि पुरुषोत्तम भगवान् की प्राप्ति कर परम अमृतमयी शान्ति पाना हो, तो उन्हें नर्मदा जैसे पवित्र तीर्थों में निवास कर सदा गरीबों को दान, भगवान के कथामृत का पान करना चाहिये और सत्य-भाषण, जितेन्द्रियता, जीव मात्र पर, दया, क्षमा, शील, सन्तोष, सहृदयता, अन्तर बाहर की शुद्धि, सद्विद्या का अध्ययन, मात, पिता और गुरुजनों की सेवा और उनके सत्सङ्ग से ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति कर अपनी और दूसरों की सदा उन्नति करते रहना चाहिये और सर्वदा नित्य-नियम से भगवान् का अर्चन-वन्दन स्मरण आदि करते रहना चाहिये।

घोर कलिकाल में श्रीगंगाजी की शक्ति का चमत्कार

[लेखक-पूज्यपाद श्रीस्वामी १०८ श्रीसुतीक्ष्णमुनिजी महाराज उदासीन]

यह सत्य घटना है वि० सं० १९९४ चैत्र कृष्णा-६ तदनुसार २१ मार्च श्रीहरिद्वार के कुम्भ के अवसर की। श्रीहरिद्वार सप्तसरोवर लोहे के पुल के समीप श्रीसाधुबेला सिन्धी छावनी के ठाकुर श्रीसुगनलालजी का १८ वर्ष का एक नौकर जो खान देशपूर्वी के चपड़ा नगर का निवासी सुनार जाति का जिसका नाम बालचन्द्र था, दिन के दो बजे जब वह श्रीगङ्गाजी में स्नान करने गया, तो उसका एक पत्थर से पग फिसल गया और वह अथाह जल में डूब गया। परन्तु हृदय में श्रीकलिकल हारिणी, जगतारिणी श्री श्रीभागीरथी भगवती का स्मरण करने लगा। उसी समय जल में ही किसी कोमल हाथ ने दिव्यरूप धारण कर अपने हाथ से उसको पकड़ कर किनारे लगा दिया, किनारे लगाने वाला तत्काल छिप गया। लोगों के पूँछने पर उसने कहा, कि मैं माता का स्मरण कर रहा था कि अचानक मुझे किसी ने पकड़ कर जल से बाहर किया है। वह साक्षात् श्रीश्रीगङ्गाजी महारानी थीं। क्योंकि उस समय सिवाय उस डूबने वाले बालक के जल में और कोई नहीं था। तो इससे विदित होता है कि साक्षात् जगदम्बा भागीरथी ने ही उसको बाहर निकालकर जीवन प्रदान किया। इस घटना की श्रीहरिद्वार भर में चर्चा होगई थी और श्रीगङ्गाजी का महत्त्व प्रगट हो गया था। इस घटना से बड़े-बड़े नास्तिकों को भी, जो श्रीगङ्गाजी के महत्त्व को नहीं मानते थे, झुकना पड़ा था। भरे पण्डाल में उस बालक का सब को दर्शन भी कराया गया था।

श्रीगंगा-महिमा

पूज्यपाद परमहंस श्रीस्वामी १०८ श्रीचन्द्रोदयानन्दजीपुरीजी महाराजके विचार

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा]

इस मनुष्य लोक में साक्षात् पापों को नष्ट करने वाली, मनुष्यों को पवित्र करने वाली, जिसके गुण इन्द्रादि देवता भी गा रहे हैं, ऐसी माता सुरसरी, भक्तों को भावानुसार फल देने वाली, अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह करके इस संसार-रूपी घोर समुद्र से पार लगाती है। इसलिये सब सज्जन पुरुषों को विधि-पूर्वक, प्रेम-पूर्वक, आचमनादि स्नान करते हुये, उस माता के किनारे में रहते हुए अथवा दर्शन करने जाते हुये अपने हृदय के जो पाप हैं उनको धोना चाहिये। देखो, श्रीगङ्गाजी कोई सामान्य लौकिक चीज नहीं हैं। देखो, जिस श्रीगङ्गाजी को राजर्षि श्रीभागीरथजी के कुल में सागर, दिलीप आदि तप करते हुये भी नहीं ला-सके ये वही वह माता हैं। श्रीभागीरथजी ने अपने कुल के कर्त्तव्य को देखकर अपने कुलोद्धार के लिये दस हजार वर्ष तक तप किया और तप करके तब श्रीगङ्गाजी का लाये। इसलिये स्वयं तप की मूर्ति हैं। अपना कुल उद्धार मात्र ही हेतु इसमें नहीं था, इसमें कलियुग के अधम मनुष्य, महापापी से पापी के भी उद्धार के हेतु माता आई हैं। इसलिये सज्जन पुरुषों का यही कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह श्रीगङ्गाजी में पूर्ण रूप से श्रद्धा रक्खें। भावुकों के लिये एक सत्य घटना नीचे दी जाती है।

दक्षिण देश में एक दक्षिणी ब्राह्मण नित्य श्रीगङ्गाजी की प्रतिमा को रख करके उसकी उपासना किया करते थे। एकबार श्रीगङ्गा प्रान्त के एक ब्राह्मण उधर को गये। वह ब्राह्मण फटे पुराने कपड़े पहिने हुये थे और उन कपड़ों में श्रीगङ्गाजी का रेत लगा हुआ था। ऐसा देखकर उन दक्षिणी श्रीगङ्गाभक्त ब्राह्मण ने इनसे पूँछा कि आप कहाँ रहते हैं? वह गङ्गा प्रान्त के ब्राह्मण कहते हैं कि हम श्रीगङ्गा किनारे के रहने वाले हैं। उस ब्राह्मण के कपड़ों में गङ्गा के रेत को देखकर वह दक्षिणी ब्राह्मण फिर बोले कि हे ब्राह्मण देवता आपके जो यह वस्त्र हैं, यथाइच्छा द्रव्य लेकर के यह वस्त्र आप मुझको देदो। गङ्गा किनारे वाले ब्राह्मण विचार करने लगे कि यह वस्त्र तो मैले हैं, जब इन मैलों के लिये यह ब्राह्मण यथायोग्य धन देने को तत्पर है, तो अगर मैं इन्हें धोकर लाऊँगा तो मुझे विशेष धन मिल जायेगा। ऐसा विचार करके वह ब्राह्मण वस्त्रों को धोकर के उनके पास लाये और कहने लगे कि अब वस्त्र ले लीजिये और अपनी इच्छानुसार हमको द्रव्य दे दीजिये। वह दक्षिण ब्राह्मण उन वस्त्रों को धुला देखकर कहने लगे कि भाई अब तो यह आपका वस्त्र कौड़ी का भी नहीं रहा। क्योंकि इसमें कीमती वस्तु थी अब वह धुल गयी है। देखो उस दक्षिणी ब्राह्मण का कैसा पवित्र भाव था। इसलिये विचारवान और अविचारवान पुरुष में इतना ही फ़र्क रहता है। वह विचारवान दक्षिणी ब्राह्मण उसके लिये श्रीगङ्गाजी महान पवित्र करने वाली थीं, इसलिये उसने श्रीगङ्गा के रेत को वस्त्र में देख करके इतना उत्साह सहित चाहना किया था। इस रहस्य को न जानने वाले गङ्गा किनारे के ब्राह्मण को कोई खबर नहीं थी। इसलिये देखो, विचार में और अविचार में महान् अन्तर है। भावना के बस करने वाले पुरुष के लिये श्रीगङ्गाजी समीप, हृदय में ही निवास करती हैं। अगर ऐसा प्रेम भावुक पुरुष रखते हैं तो माता भी उसी का उद्धार करती हैं। विशेष करके उद्धार प्रेमी का ही किया जाता है। वह तो सबका ही कल्याण करने वाली हैं। इसलिये सबको श्रीगङ्गा-स्नान श्रद्धा के साथ करना चाहिये।

तीर्थों पर जाकर क्या करना चाहिये ?

परम पूज्यपाद दण्डी स्वामी १०८ श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज के विचार

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा]

१—जो किसी भी तीर्थ पर जावे उसे चाहिये, कि वह तीर्थ पर जाकर अपने सर के वालों का मुण्डन करा देवे। चुटिया के अतिरिक्त सब बाल मुड़वादे। क्योंकि पाप डरते हैं, कि आज यह हमें स्नान करके भगा देगा, तो वह पाप बालों में आजाते हैं। इसलिये बालों को अवश्य ही तीर्थ में जाकर साफ़ करा देने चाहिये।

२—प्रश्न—क्या महाराजजी स्त्रियों को भी तीर्थ में जाकर वाल कटवा देने चाहियें ?

उत्तर—सधवा को नहीं, हाँ विधवा कटवा सकती हैं।

३—जो तीर्थों पर बैल की सवारी में बैठकर जाता है, तो उसे घोर पाप लगता है।

४—श्रीगंगाजी में तेल मल कर नहाने से पुण्य की जगह पाप होता है। कभी भी श्रीगङ्गाजी में तेल मल करके नहीं नहाना चाहिये।

५—जहाँ तक होसके बाजार की कोई भी चीज न तो आप खानी चाहिये और न ही अपने इष्टदेव को भोग लगानी चाहिये।

प्रश्न—स्वामीजी ! अगर श्रीगङ्गाजी पर जायें तो क्या बाजार का मीठा मोल लेकर श्रीगङ्गाजी में नहीं चढ़ावें और प्रसाद न बांटें ?

उत्तर—बांटो क्यों नहीं और श्रीगङ्गाजी में चढ़ावो क्यों नहीं ? घर से शुद्ध मिठाई बनाकर ले आवो और उसे चढ़ावो और उसे ही बांटो। घर का ही बना भोजन करो। या श्रीगङ्गाजी पर ही अपने हाथ का बनालो तब काम में लावो।

६—गौ और श्रीगङ्गाजी की बड़ी महिमा है। श्रीगङ्गा पूजन का बड़ा फल है। गङ्गा की महिमा से शास्त्र भरा पड़ा है। गौ और गङ्गा को मिलने पर प्रणाम करो।

७—श्रीगंगाजी पर जाकर किसी का अन्न नहीं खाना चाहिये। जो बने वहाँ पर दान करना चाहिये।

८—अपने मस्तक पर नित्य तीर्थरज लगानी चाहिये। तीर्थों की रज लगाने से बड़ा पुण्य होता है। तीर्थरज की बड़ी महिमा लिखी है।

परम पूज्यपाद १०८ श्रीस्वामी श्रीहाथी बाबाजी महाराज के विचार

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा]

१—तीर्थ में जाकर व्रत अवश्य करना चाहिये। तीर्थ और व्रत साथ रहते हैं।

२—तीर्थों में जाकर तीर्थों के पापों से बचना चाहिये, जो तीर्थों में जाकर तीर्थों के पापों से नहीं बचता। उसका तीर्थों में मानों जाना ही वृथा है। सब पाप चाहें मिट जायें, परन्तु याद रक्खो तीर्थ पर किया पाप कभी भी नहीं मिटता। तीर्थों में जाकर पापों से अवश्य ही बचना चाहिये।

३—इस भारतवर्ष में जो काम श्रेष्ठ भक्त वैष्णव करेंगे वही काम सारा जगत् करेगा। क्योंकि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवे तरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ (गीता ३। २१)

श्रीवृन्दावन वास किस प्रकार करें ?

पूज्यपाद परमहंस श्रीस्वामी १०८ श्रीनारायण स्वामीजी महाराज के विचार

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा]

(१) प्रश्न—श्री श्रीमहाराजजी ! कृपा करके बताइये, कि श्रीईश्वर प्राप्ति का सरल साधन क्या है ?

उत्तर—मूर्ति-पूजन करना मन को रोकने का साधन है। मूर्ती को अपने सामने रखना चाहिये। मूर्ति-पूजा करना बहुत जरूरी चीज़ है। मूर्ति का ध्यान मन में भी करना चाहिये और विधि पूर्वक पूजन करना चाहिये। मूर्ति-पूजा से भगवान् की प्राप्ति जल्दी होती है। लेकिन मूर्ति पूजा विधि-पूर्वक होनी चाहिये।

(२) प्रश्न—अपने-अपने इष्ट की मूर्ति रख सकते हैं ?

उत्तर—हाँ।

(३) प्रश्न—क्या जप हर समय और हर जगह कर सकते हैं।

उत्तर—जप करने के दो तरीक़े हैं। एक तो ध्यान सहित बैठकर जप होना चाहिये। दूसरा चलते-फिरते सब जगह कर सकते हैं। जप के चार प्रकार मनुस्मृति में बतलाये हैं—

१—एक बोलकर (दूसरा आदमी सुन सके)।

२—जिह्वा से।

३—कंठ से।

४—नाभी से पद्मासन लगाकर स्वाँस के साथ जप होता है।

इसमें यह ध्यान रहे, कि एक तो माला के साथ जप दूसरा माला भी हो और ध्यान भी। स्वाँस के साथ जप का हज़ार गुना फल है। सत्सङ्ग से मन जप में ज्यादा लगता है।

(४) प्रश्न—श्रीवृन्दावन-धाम वास करे तो कैसा है ?

उत्तर—श्रीवृन्दावन में रहकर पाँच साधन किये जाते हैं। वह इस प्रकार से हैं—

१—जप।

२—मन्दिरों का दर्शन।

३—श्रीवृन्दावन परिक्रमा।

४—रास देखना।

५—श्रीयमुनाजी का स्नान।

यह पाँच साधन श्रीवृन्दावन में रह कर किये जावें, तब जाकर कुछ लाभ होता है।

(५) सत्य बोलना। मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों से सत्य बोलना।

बोलने के लिये मौन जितना बन सके, रहे।

दूसरी बात यह है कि कम बोले और संग दोष से बचना चाहिये।

(६) प्रश्न मानसिक सेवा कैसी है ?

उत्तर—जिस प्रकार बाहर सेवा करे उसी प्रकार भीतर भी करे। यह बहुत लाभदायक है। जब तक मन नहीं रुकेगा तब तक सेवा बनेगी ही नहीं। जब मन दूसरी जगह चला जायेगा, तब सेवा उसी वक्त बन्द हो जायेगी। विवश होकर मन को आना ही पड़ेगा। मन को वश में करने के लिये यह साधन बहुत ही अच्छा है। मानसिक सेवा सब कर सकते हैं। मानसिक सेवा में जितना चाहें भोग लगा सकते हैं। इस सेवा से श्रीनारायण जल्दी प्रसन्न होते हैं।

(७) श्रीमद्भागवत में लिखा है, कि जो शुभ कर्म करे वह किसी से नहीं कहे। कहने से जिह्वा द्वारा फल नष्ट हो जाता है।
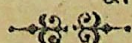
तीर्थ पर जाकर गंगा स्नान कैसे करें ?

(एक श्रद्धेय पूज्य ब्रह्मचारीजी महाराज के विचार)

[प्रेषक-भक्तश्रीरामशरणदासजी, पिलखुआ]

यों तो श्री गङ्गाजी में वर्तमान भारत जगत की प्रजा स्नानादि क्रिया को करके अपने को कृत-कृत्य समझती ही है। परंच: श्रीगङ्गा-तीर्थ में स्नान करने मात्र से शास्त्रीय विधान समाप्त नहीं होता। यह औपनिषद काल का सिद्धान्त है कि जो मनुष्य श्रद्धा, विद्या, उपनिषद ज्ञान, पुरस्सर-कार्य करता है, तो उनके लिये परिणाम भी अत्यन्त वीर्यवान होता है। जो विद्या-विज्ञान से हीन होकर के पुण्य किया जाता है, उसके लिये केवल वीर्यवान फल होता है। वीर्यवत्तर फल नहीं होता। इस समय स्त्री पुरुष जनता कोई भी पर्व आता है, तो एक दम गङ्गा स्नान करने के लिये भाग उठती है। परन्तु श्रीगंगाजी का स्नान किस तरह से करना चाहिये यह नहीं जानती। हम जब विवाह शादी या और कोई लौकिक कार्य करते हैं, तो उसे बड़ी समझ के साथ करते हैं, जिसका अन्तिम फल होता है केवल शरीरान्त। और जो हमारी आत्मा की खुराक है और जो जन्म-जन्मान्तर हमारा साथ देती आती है और जो आगे भी देगी और जिसके बिना हम अपने अस्तित्व को भी खो-बैठते हैं, कहिये तो उसी की हम ऐसी पवित्र शास्त्रीय क्रियाओं को कितनी लापरवाही और असुविधा के साथ करते हैं? हमारी पारिवारिक परिस्थितिही ऐसी है। ऐसा कह-कह कर अपने ऊपर से उपालम्भ को उतार देते हैं। परंच: हमारा सिद्धान्त तो यह है कि इसमें पारवारिक परिस्थिति कोई रुकावट नहीं डालती अर्थात् न वह निषेध करती है और न वह विधान करती है।

श्रीगङ्गा स्नान की विधि

प्रथम शौच हस्त पाद प्रचालन गंडूप और दन्तधावनादि क्रियाओं से निरन्तर होकर के श्री गङ्गा तट पर जाना चाहिये। श्रीगङ्गाजी की बालू में जो मनुष्य पेशाब करता है या टट्टी करता है, उसके लिये आर्य शास्त्रों ने महान पापी बतलाया है। एवं जो मनुष्य श्रीगङ्गाजी में जाकर थूकते हैं, खकार फेंकते हैं, दातुन फेंकते हैं और तेल या पावडर साबुन मल कर नहाते हैं, शरीर को मल-मल कर गङ्गाजी में नहाते हैं वह भी महापापी हैं। हम हिन्दू आर्यों से तथा देवियों से प्रार्थना करते हैं कि जब आप लोग पुण्य कमाने की इच्छा से जाते हैं तो वहाँ से फिर क्यों पापों का गट्ठर बाँध कर लाते हैं। यह शास्त्रों का अकाट्य सिद्धान्त है कि जो अंग का परिपालन न करके केवल अंगी का परिपालन करता है, तो वह अपनी आत्मा को धर्म से बंचित करता है और भी अनेक प्रकार की गंदी और भद्दी बातें जनता में देखी जाती हैं उनका उल्लेख करना मैं अत्यावश्यक नहीं समझता।

आस्तिक धार्मिक मनुष्य को गङ्गा तट पर जाकर श्री गङ्गाजी को प्रणाम करना चाहिये। पश्चात् दोनों पैरों को घोंटू पर्यन्त और दोनों हाथों को कोहनी पर्यन्त तक धोना चाहिये। पश्चात् तीन निम्न लिखित मन्त्रों से आचमन करना चाहिये। 'ॐकेशवायनमः, ॐनारायणाय नमः, ॐमाधवाय नमः।' पश्चात् श्री गङ्गाजी में घुस कर नाभी या छाती पर्यन्त जल में जाकर शंख-चक्र, गदा-पद्म धारी ईश्वर का चिन्तन करते हुये चारों तरफ श्री गङ्गा को माता समझते हुये, जिधर से श्री गङ्गाजी आरही हों उधर की ओर मुख करके जैसे बच्चा माता की गोद में दुग्ध पान करता हुआ माता की कौली भर लेता है, उसी तरह से दोनों हाथ फैला कर ईश्वर रूपी श्रीगङ्गा माता में गोता लगाना चाहिये। जिह्वा से श्री भगवन्नामोच्चारण करना चाहिए। अन्य बातों के लिए अवकाश नहीं देना चाहिए। श्री गङ्गाजी के अन्दर कूदना नहीं चाहिए, पैरना नहीं चाहिए, गङ्गा के जल को मथन भी

करना चाहिए। यथेच्छ गङ्गा माता में गोता लगा कर अपने को कृत-कृत्य समझना चाहिए। अपनी आत्मा को कभी भी छोटा नहीं बनाना चाहिए। श्री गङ्गा में स्नान करने के बाद अपने को पापी नहीं समझना चाहिए। स्नानान्तर के बाद संध्या-बन्दन से निवृत्त होकर श्री गङ्गा माता का पञ्चोपचार या षोडशोऽपचार से पूजन शास्त्रीय ढंग से होना चाहिए। अधोवस्त्र को श्री गङ्गाजी में नहीं निचोड़ना चाहिए। श्रीगङ्गाजी में मन्त्र द्वारा दुग्धादि शुद्ध पदार्थ भी चढ़ाना चाहिए।

यद्यपि इस समय की जनता श्री गङ्गाजी को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखती है। कोई कहते हैं कि जब श्री विष्णु का वामन अवतार हुआ था तब श्री भगवान के चरणों के अंगुष्ट के नख से ऊपर के सप्तावर्ण प्रकृति का मण्डल विदीर्ण हुआ, उससे प्राकृतिक जो दिव्य जल आया उसका नाम गङ्गाजल हुआ। अन्य महानुभावों का कहना है कि एक समय श्री वैकुण्ठ में श्री वैकुण्ठनाथ के आगे श्री शिवजी महाराज ने ताण्डव नृत्य किया। और वह ताण्डव नृत्य इतना अनोखा तथा अद्भुत हुआ कि अन्य इन्द्रादि देवता और देवियाँ भी विस्मित हुईं। ताण्डव नृत्य को देख कर वैकुंठ-नाथ का दिव्य सौन्द्रयादि विग्रह ही जल रूप होकर द्रवीभूत होगया। कुछों का कहना है कि हिमालय के उत्तर मानसरोवर से निकली हुई जो पर्वतों से आई हुई धारा है, उसी का नाम गङ्गा है। किन्हीं महानुभावों का कहना है कि श्रीश्री वामनावतार में श्री ब्रह्माजी महाराज ने अपने कमण्डल के जल से भगवान् के चरणों को धोया उसी का नाम गङ्गा है। पौराणिक मत से श्रीगङ्गाजी को शिवजी की अर्धाङ्गनी माना है, जैसे श्रीसतीजी हैं। खैर कुछ भी हो 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'। इस उक्ती के अनुसार सभी सिद्धान्त ठीक हैं और सत्य हैं। कुछ भी हो पर श्री गङ्गाजी में शक्ति लोकोत्तर और अति उत्तम है। पाश्चात्य पण्डित तथा डाक्टरों का कहना है कि संसार भर के जितने जल हैं सब में कीटाणु जीव हैं। परंचः श्री गङ्गाजी के जल में कीटाणु नहीं हैं। इसी कारण से गङ्गाजी का जल देश विदेशों में जाकर पुश्त दर पुश्त रक्खा रहता है। तो भी वह न सड़ता है और न कीटाणु ही पड़ते हैं। बल्कि उसमें यह चमत्कार पैदा होजाता है कि उसमें दिव्य गन्ध तथा चमक भी आजाती है। रूपान्तर में परिवर्तित नहीं होता। इस कारण इसको ब्रह्म रूप माना है। क्योंकि इसमें जीव नहीं। जीव न होने से यह ब्रह्म है। इसी कारण हिन्दू लोग इसका पूजन करते हैं। क्योंकि हिन्दू ईश्वर के पुजारी हैं न कि जीवों के पुजारी हैं और गङ्गाजल में रोग नाश भी होते हैं। मेरा १५ वर्ष का अनुभव है कि जब मैं काशी में था तो एक छात्र को मेरे सामने हैजा होगया और उसके चिन्ह यमराज के अतिथी बनने के होगये। उसने कहा कि भाई हम को श्री गङ्गाजी ले चलो। हम लोग उसे श्री गङ्गाजी ले गये। उसके कहने के अनुसार हमने उसे गङ्गाजी में बैठा दिया। नाभी पर्यन्त जल में वह डूब गया, हम उसे पकड़े रहे। लगभग तीस मिनट के बाद उसे होश आया और उसने हमसे कहा कि आप चले जाइये अब मुझे भय नहीं है। मेरी श्री गङ्गा माता ने रक्षा करदी है। अब मैं नहीं मरूंगा। हम चले आये और लग-भग ढाई घण्टे के बाद वह स्वयं चंगा होकर छात्रा-वास में चला आया। अतएव मानना पड़ेगा कि श्री गङ्गाजी के अन्दर ऐसी कोई शक्ति है कि जो उक्त रोगी के पेट में जो कीड़े थे उनको मारकर रोगी को यमराज के अतिथि होने रोक लिया। और उसने आदेश दिया कि अभी संसार यात्रा के अन्दर चंगे होकर रहो।

हमारा अनुभव तो यह है कि श्रीगङ्गाजी के स्नान करने का, गङ्गा तट पर निवास करने का, आचमन करने का, पूजन करने का दृष्ट फल आध्यात्म पीड़ाओं की तो शाँति होती ही है। पर अदृष्ट फल स्वर्गादि फल भी होता है। अगर कोई निष्काम भाव से श्री गङ्गाजी सेवन करता है तो उसकी मुक्ति भी होती है।

बोलो श्रीगङ्गा माता की जय!

तीर्थों की वैदिकता

[लेखक -पूज्यपाद श्री १०८श्री श्रीकृष्णानन्ददासजी महाराज विद्यावारिधि,दर्शन-केशरी]

इमंमेगङ्गेयमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमंसचतापरुष्ण्या।
असिक्न्यामरुद्वृधेवितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया॥

(ऋ० मं १० अ० ३ सू० ७५ मं ५)

अर्थ—हे गंगे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि तुम मेरे यज्ञ को सेवन करो। हे मरुद्वृधे आर्जीकीये, परुष्णी,असिक्नी, वितस्ता,और सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ को सेवन करो, मेरी स्तुतियों को सब प्रकार से सुनो। यहाँ यह विचार करना है कि यदि गङ्गा आदि नदियों के अधिष्ठात्री देवता न हों तो उनका यह आह्वान किस प्रकार संगत हो सकता है और स्तुतियों के श्रवण की प्रार्थना भी कैसे संगत हो सकती है।

सरस्वती सरयुः सिंधुरूर्मिभिर्महो महीरवसायंतुवक्षणीः
देवीरापोमातरः सूदयित्न्वोघृतवत्पयोमधुमन्नोअर्चत॥

(ऋ० मं० १० अ० ५ सू० ६४ मं ६)

अर्थ—महान से भी महान लहरों से युक्त सरस्वती सरयु, सिन्धुनामा नदी देवियाँ घृत, मधु युक्त दुग्ध को (वा जल को) हमें दो।

अन्यः—

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति -
यज्ञ कृतः सुकृतोयेन यन्ति।
अत्रादधुर्यजमानायलोकं—
दिशोभूतानि यदकल्पयन्त॥

(अथर्व० १८-४--७)

अर्थ–तीर्थों द्वारा प्रकृष्ट(बड़ी भारी)आपत्ति को तर जाते हैं अर्थात् तीर्थों से बड़े–बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं,यज्ञों के करने वाले पुण्यात्मा जब जिस मार्ग से जाते हैं,वे इसी पुण्यलोक की प्राप्ति-साधन के मार्ग में प्राप्त होते हुए यजमान के लिये पुण्यलोक का विधान करें। जो दिशा सब प्राणीवर्ग अर्थात् दिशाओं में स्थित प्राणी उस मार्ग और उस लोक को बनावें।

अन्यः—

आपो भूयिष्ठाइत्येको अब्रवी-
दग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्ति बहुभ्यः प्रैको अब्रवी-
दृतावदंतश्चमसी अपिंशत्॥

(ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६१ मं० ६)

हे ऋभव! तुम में कोई एक तीर्थ सेवन कर देवभाव को प्राप्त हो कर तीर्थ जल को सर्व श्रेष्ठ साधन कहता है, कोई अग्नि होत्र आदि साधनों के अनुष्ठान से देव-भाव को प्राप्त हुए, उसी को सर्वोत्तम वर्णन करता है। इसी प्रकार कोई प्राणी-मात्र पर दया के अनुष्ठान से देव-भाव को प्राप्त हो कर दया को सर्वोत्तम मानता है। इस प्रकार यथार्थ साधन का उपदेश करते हुए यज्ञ पात्र का विभाग करते हो।

सितासिते सरिते यत्र संगथे-
तत्राप्लुतासोदिवमुत्पतन्ति।
ये वैतन्वंविसृजन्ति धीरा-
स्तेननासोऽमृतत्वं भजन्ते॥

(ऋ० परिशिष्ट)

अर्थ—जिस स्थान में सफेद और काली नदियों (गङ्गा और यमुना) का संगम हुआ है, उस स्थान में यज्ञ,स्नान आदि करने से स्वर्ग मिलता है और जो धीर पुरुष इस स्थान में शरीर त्याग करते हैं वह अमर पद को प्राप्त होते हैं।

वेद में पुरी का वर्णन—

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्॥

(ऋ० अ० ८।८।१३)

अर्थ—वह सुदूर उड़ीसा देश में विद्यमान किसी निर्मातापुरुष का न बनाया हुआ लकड़ी के कलेवर वाला श्रीपुरुषोत्तम भगवान् का शरीर ठेठ समुद्र के किनारे पर विद्यमान है। हे अमरपद के
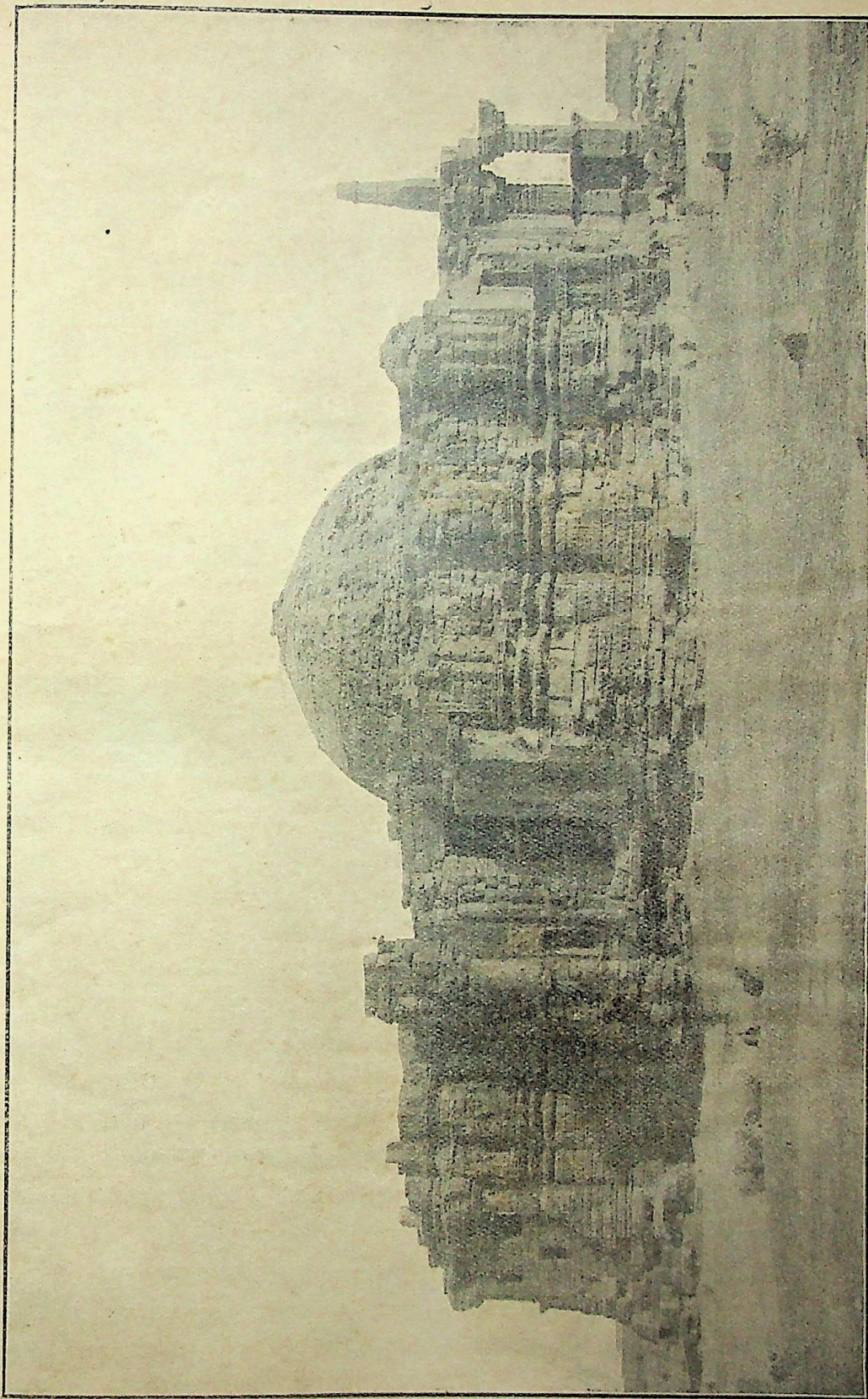
प्रभासक्षेत्रमें प्राचीन श्रीसोमनाथजीका भग्नमन्दिर (काठियावाड़)
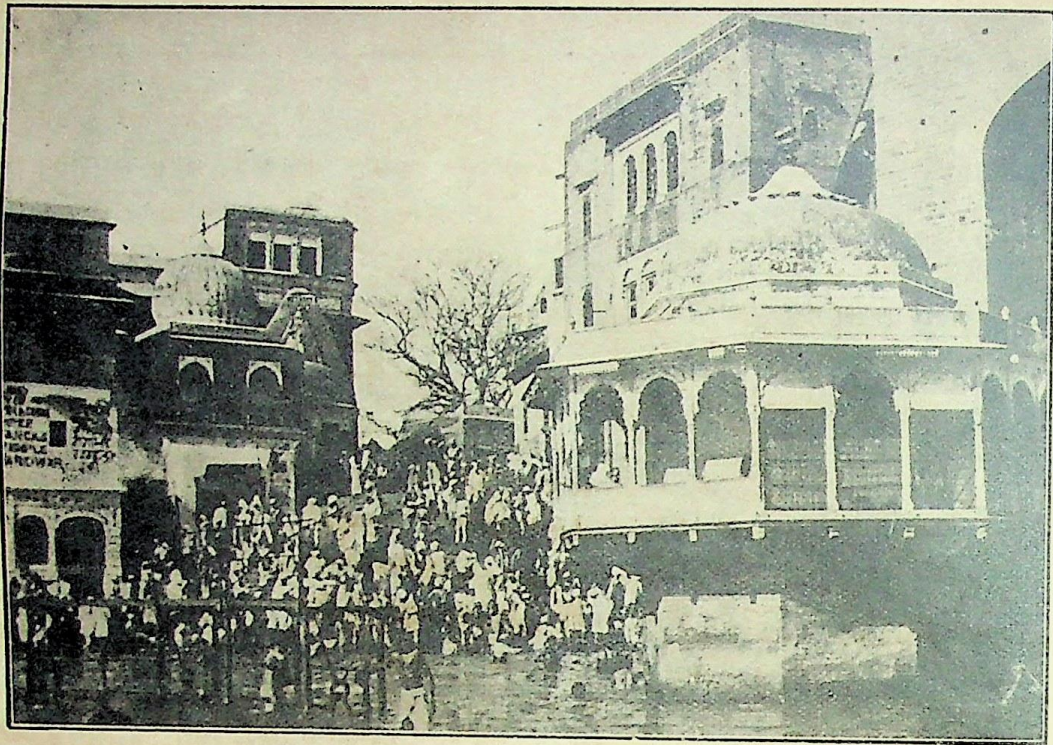
हरिकी पैड़ी (हरिद्वार)
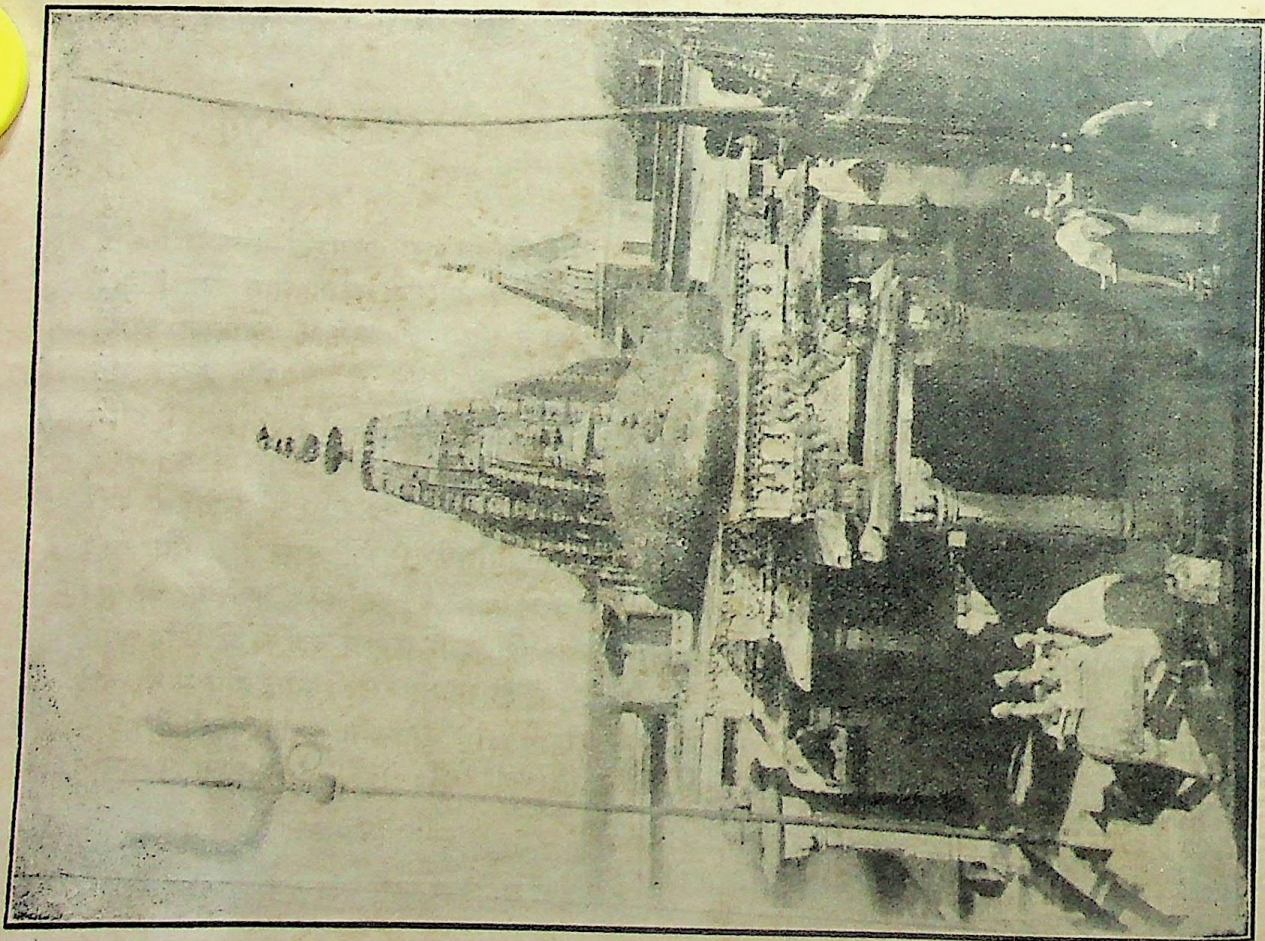
श्रीदक्षेश्वर-मन्दिर (हरिद्वार)

के अभिलाषी मनुष्य तू उसकी शरण में जा और उस देव की उपासना से सर्वोत्कृष्ट वैकुण्ठ पद को प्राप्त हो।

वेद में श्रीअयोध्या का वर्णन—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या तेषां।
हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(अथर्व० १० सू० २ मं० ३१)

अर्थ—आठ चक्र (गोल बाजार) और नव-दर्वाजों वाली साक्षात् देवपुरी अयोध्या नगरी है। जिसमें सुवर्ण पूरित कोश स्वर्गीय ज्योति से प्रकाशित है।

वेद में श्रीवृन्दावनधाम का वर्णन—

तावां वास्तून्युश्मसिगमध्यैयत्र गावो भूरि शृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥

(ऋ० अ० २ वर्ग २४ मन्त्र ६)

हम तुम दोनों श्रीकृष्ण बलराम के उन स्थानों को प्राप्त करना चाहते हैं जहाँ श्रेष्ठसृङ्गों वाली शोभायमान गौ हैं, बड़े कीर्ति शाली कामवर्षी श्रीभगवान् का वह परम पद (अत्र) यहाँ भूलोक में दृष्टिगोचर होता है। ऐसा मन्त्र दृष्टा ऋषि ने कहा है। अर्थात् वह श्रीकृष्ण बलराम का गोलोक धाम ही इस भू-मण्डल में गोकुल नाम से विख्यात है।

उपर्युक्त वेद मन्त्रों से यह ज्ञात होता है कि वेदों में भी तीर्थों का स्पष्ट वर्णन आया है—इससे यह भी सिद्ध होता है कि तीर्थ अनादि हैं। इनका नाश नहीं होता, वेद भगवान् का निश्वास होने से अनादि हैं और वेदों ने तीर्थों का गुण-गान किया है, तीर्थ-सेवन वेद-विहित मार्ग है, मनुष्य को शास्त्रीय विधि के अनुसार तीर्थों का सेवन अवश्य करना चाहिये।

व्रज महिमा पर

परम पूज्यपाद दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीकृष्णाश्रमजी महाराज के विचार

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा]

श्रीव्रज की महिमा का वर्णन कोई क्या कर सकता है ? मैं एकबार विचरता-विचरता व्रज में पहुँच गया। श्रीगोवर्धनजी में कितने ही रोज रहा। मैंने पहले कभी गर्गसंहिता का नाम तक भी नहीं सुना था, देखना तो दूर रहा। एक दिन अकस्मात् न जाने कहाँ से धीमी-सी कान में आवाज आई, कि तू गर्गसंहिता देख। मैं सुन कर चकित होगया। उस समय मैं श्रीगोवर्धन में था। मैंने अपने मन में कहा कि गर्गसंहिता है भी या नहीं। जाकर पंडितों से पूँछा तो उन्होंने कहा—हाँ गर्गसंहिता है। मैंने उनसे पूँछा कि क्या आपके पास है, तो उन्होंने कहा हमारे पास नहीं है। मैं उसकी तलाश में कई जगह गया पर मुझे गर्गसंहिता देखने को नहीं मिली। कुछ दिनों बाद मैं मेरठ के एक गाँव में आया तो वहाँ मैंने एक भक्त से यह बात सुनादी। उस भक्त ने कहा महाराज गर्गसंहिता मेरे पास है। मैंने कहा जल्दी से ला। वह भक्त गर्गसंहिता लाया। मैंने उसे बड़े चाव से पढ़ा। पढ़कर बड़ा आनन्द आया। मैंने उसमें व्रज की महिमा भी खूब देखी। मैंने यह सार पाया, कि अगर मनुष्य व्रज में रहे और अगर उससे पुण्य भी नहीं बने तो पाप भी न करे, खाली व्रज में ही रहे तो उसकी मोक्ष होने में तो कोई सन्देह ही नहीं है। हर समय व्रज में चारों ओर से श्रीराधे-राधे की ध्वनि सुनाई पड़ती है। ऐसा आनन्द जैसा व्रज में है, मुझे तो कहीं देखने में आया नहीं। हाँ वहाँ रहकर पापों से अवश्य वचना चाहिये।

तीर्थ और साधु

[लेखक—पूज्यपाद श्री१०८ श्रीसचे बाबाजी महाराज]

श्रीमद्भागवत में श्रीव्यासजी ने कहा है 'साधु तीर्थ स्वरूप ही हैं।' एकादश स्कन्द में भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं कि हे उद्धव ! निर्मुक्त महात्मा जिन मार्गों से जाते हैं, तथा जिस स्थान में रहते हैं, वह भूमि परम-पवित्र और पावन होती है, और वहाँ के रजकणों को हम अपने शरीर में लगाकर निज ब्रह्माण्ड को पवित्र करते हैं। महापुरुषों ने जिन स्थानों में बहुत काल तक निवास किया है, वे सब तीर्थ हैं। वर्त्तमान समय में भी प्रत्येक तीर्थ में प्रायः दो एक महापुरुष अवश्य ही निवास करते हैं, जिन्हें साधारण लोग नहीं जानते।

पुराणों की लिखी हुई बातें सत्य एवं निश्चय मानने की चीजें हैं। तीर्थ स्थानों ही में अवतारादि का प्राकट्य हुआ है और ऋषि-महर्षियों ने भी इन्हीं स्थानों पर अपना जीवन व्यतीत करते हुए भगवद्-आराधन किया है। इस समय भी सिद्ध महात्मा पुरुष तीर्थों में ही निवास करते हैं, किन्तु पहिले वे प्रकट रूप से रहते थे और अब गुप्त रूप से निवास करते हैं। इसे यों समझना चाहिये कि जैसे राजा अपनी राज्यभूमि में ही जाता है, वैसे ही अवतार व महर्षि जहाँ जाते हैं, वहीं पावन तीर्थ भूमि होती है। इसीलिये अवतार जब भी प्रकट हुये हैं, तब तीर्थ भूमि में ही हुए हैं। इसलिये अवतार, तीर्थ, साधु, महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, ये सब नाम-भेद से अलग-अलग हैं, किन्तु हैं सबके सब एक ही वस्तु। यह संसार को पवित्र करने के लिये और सद्गति देने के लिये भिन्न-भिन्न नामों से विख्यात हैं। जिसकी जैसी भावना होती है, इनसे वैसा ही लाभ होता है। आजकल प्रमाण के बिना किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता, चाहे कोई ब्रह्मवाक्य ही क्यों न हो ! किन्तु जब तक प्रमाण न मिलेगा, तब तक निरादर की दृष्टि से देखा जाता है। प्रमाण क्या है ? प्रथम महर्षि, अवतार आदि महापुरुषों का कथन यदि आज कहा जाय, और वह कुछ पहिली बातों से मिलता जुलता न हो, तो आजकल के जीव उसे सहसा मानने को तैयार नहीं हैं। इसका कारण यह है कि आजकल के कम पढ़ लिखे मनुष्य उन अवतारादि महापुरुषों में भी मृत्यु-सूत्र लगाते हैं—अर्थात् वे किसी समय हुए थे, मर गये और अब नहीं हैं। यह एक भयङ्कर भूल है। यही भूल तीर्थ-महत्व, साधु-महत्व, अवतार-महत्व, और महर्षि-महत्व को समझने नहीं देती है। वैदिक या पौराणिक ग्रन्थों के देखने में भी इनकी कोई श्रद्धा नहीं है, किन्तु सत्पुरुषों का कार्य ऐसे लोगों के हृदयों में श्रद्धा उत्पन्न करना है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने रामायण में साधु-समाज के प्रसङ्ग में लिखा है—

मज्जन-फल देखिय तत्काला।
काक होहिं पिक बकहु मराला॥

गोस्वामीजी का अभिप्राय इन पदों से यह है कि साधु-समाज तीर्थराज प्रयाग के तुल्य हैं, अर्थात् साधु और प्रयाग एक ही समान हैं। इन दोनों में थोड़ी-सी भिन्नता है। गोस्वामीजी का अभिप्राय यह है कि साधु-सत्सङ्ग इस जीवन में ही फल देता है और तीर्थ (प्रयागादि) समागम शरीरान्त के बाद फल देते हैं। फल देते दोनों ही हैं। दातव्य गुण दोनों में समान है, और दोनों एक ही वस्तु हैं। लोक में भी देखा जाता है कि कोई दाता तुरन्त दे देता है और कोई देर से देता है, किन्तु दातव्य वस्तु दोनों की एक ही है। यह प्रमाण सिद्ध बात है। इसको आदर की दृष्टि से देखना चाहिये। अतः सभी को तीर्थ और साधुओं का समागम करना चाहिये।

तीर्थ-तत्त्व

[लेखक—कविसम्राट् पूज्य पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध', साहित्यवाचस्पति, साहित्यरत्न]

प्रातःकाल का समय, पुनीत सलिला भगवती भागीरथी का कूल, धीरे-धीरे उनकी सरसा धारा प्रवाहित हो रही है। भगवान् भुवन-भास्कर क्षितिज के ऊपर उठ चुके हैं, उनकी जगमगाती किरणें सलिल कल्लोल में निपतित होकर क्रीड़ा कर रही हैं और जाह्नवी के अङ्क को उज्ज्वलतम ज्योति प्रदान करने में संलग्न हैं। पर्व का दिवस होने के कारण कूल पर जनता की अपार भीड़ है और उनके कोलाहल से दिशायें बार-बार ध्वनित हो रही हैं। कूल से कुछ दूर पर एक रम्य कुञ्ज है, जो हरे-भरे ऐसे पादपुञ्जों से आच्छादित है, जिनकी सुन्दर शाखाओं पर बैठे हुए खग-कुल अपने कल-रव से जनता के कानों में सुधा-वर्षण कर रहे हैं। इसी कुञ्ज के एक वृक्ष के नीचे कुष्ट रोग–पीड़ित एक मनुष्य बैठा हुआ है और उसके पास खड़ी होकर एक त्रिलोक-सुन्दरी उसको पंखा झल रही है और उसके शरीर के क्षत-विक्षत स्थानों पर बैठी हुई मक्खियों को उड़ा रही है। इन दोनों प्राणियों को घेर कर भी अपार जनता खड़ी है और उस अलौकिक सुंदरी से तरह-तरह के प्रश्न कर रही है।

कोई कहता तुम देवांगना हो अथवा मानवी, संसार में दुर्लभ तुम जैसी अनिन्द्य सुन्दरी को भगवान् ने ऐसा रूप दिया और इतना कदर्य्य कुरूप कोढ़ी पति दिया। या, ये तुम्हारे पति नहीं है, कोई अन्य हैं और दया भाव से तुम इनकी सेवा में निरत हो। तुम्हारा इनका सम्बन्ध वाञ्छनीय नहीं, तुम तो किसी चक्रवर्ती सम्राट् के राज-भवन में रहने की ही अधिकारिणी हो। अथवा यह कोई इन्द्रजाल तो नहीं है, जिससे नेत्र वञ्चित हो रहे हों ! क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता।

कोई कहता तुम इस कोढ़ी के प्रपञ्च में क्यों पड़ी हो, छोड़ो, छोड़ो, इसको छोड़ो। बड़े-बड़े करोड़ पति तुम्हारे भुवन मोहन-सौन्दर्य को देखकर तुम्हारे कृपा-कटाक्ष के भिखारी हो रहे हैं। अब तक जो कुछ हुआ सो हुआ, अब भी तुम सावधान हो जाओ, अपनी भूल को समझो और अपने जीवन को सार्थक बनाओ एवं संसार की क्षण-भङ्गुरता को आँखें खोलकर देखो।

कोई कहता यदि तुम को इस कोढ़ी से प्रेम है तो तुम इसे प्रेम करो, इसकी सेवा करो, इसकी देख-रेख करो, परन्तु अपने जीवन को बनाओ, संसार--सुख का भोग करो, किसी अपने उपयुक्त पात्र को वरण करो और इसको भी सँभालो।

स्त्रियों में भी खलबली मची हुई थी, कोई कहती यह प्रतिव्रता है, कोई कहती यह देवी है, कोई कहती यह बड़ी चलती स्त्री है, देखो न मुँह कैसा चमक रहा है, उस पर दुःख की परछाँही तक नह पड़ी है, उसका रंग--ढंग देखो न, अंग--अंग कैसा सुगठित है। कोढ़ी की चिन्ता होती तो वह अब तक सूख कर काँटा हो गई होती।

सुन्दरी स्त्री सब की बातें सुनती, सब की ओर देखती और सब से यह विनय करती कि ये मेरे पतिदेव हैं, थोड़े दिन से इनको कुष्ट रोग हो गया है। एक महात्मा ने मुझ से कहा, कि जिसने दस सहस्र अश्वमेध यज्ञ किये होंगे, यदि वे तुम्हारे पतिदेव को छूदेंगे, तो उनका रोग दूर हो जावेगा और वे पुनः कञ्चनाभ हो जायेंगे। मेले में इसलिये आई हूँ कि इस मेले में कोई महापुरुष ऐसा मिल जावेगा, जिसने दस सहस्र अश्वमेध यज्ञों को किया होगा और जो मेरी प्रार्थना सुनकर मेरे पतिदेव को पुनः जैसा का तैसा बना देगा।

एक तेजस्वी ब्राह्मण इन बातों को सुनकर आगे बढ़ा, उसने कहा। पुत्री ! यह प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ से दो कोस पर मेरा निवास--स्थान है। मैं प्रतिदिन यहाँ गङ्गा-स्नान के लिये आता हूँ। शास्त्रों में लिखा है, कि जो श्रद्धा सहित सुरसरी देवी का स्नान करने के लिये निकलता है, उसे एक-एक पग पर एक-एक अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। अतएव मैं कह सकता हूँ, कि मैंने अपने जीवन में दस सहस्र क्या उससे कहीं अधिक अश्वमेध यज्ञ किये हैं। अतएव तुम्हारे पतिदेव को अब मैं स्पर्श करूँगा। विश्वास है, कि महात्मा का वचन सत्य होगा। यह कहकर कोढ़ी को ब्राह्मण ने स्पर्श किया। स्पर्श करते ही वह कोढ़ी, दिव्य देह स्वर्गीय सुपुरुष बन गया और तुमुल-ध्वनि से दिशायें ध्वनित हो उठीं।

कहा जाता है सुन्दरी स्त्री स्वयं पार्वतीदेवी और कुष्ठी पुरुष स्वयं भगवान्, शिव थे। तीर्थ-यात्रा और गङ्गा स्नान कर जनता को वापस जाते देखकर श्रीमती पार्वती देवी ने एक बार पतिदेव से पूछा। अधिकांश तीर्थ यात्रियों पर तीर्थ यात्रा अथवा गङ्गा स्नान इत्यादि का कोई सत्फल नहीं दिखलाई देता, क्योंकि नाना वासना और काम क्रोधादि व्यापारों में वे वैसे ही लिप्त पाये जाते हैं, जैसे पहले थे, इसका कारण क्या? भगवान् शिव ने कहा। तीर्थ-यात्रा अथवा गङ्गा-स्नान इत्यादि का सत्फल उन्हीं लोगों में दिखलाई देता है, जो निष्काम अथवा सदुद्देश्य से तीर्थ-यात्रादि करते हैं। इनकी संख्या इनी-गिनी ही होती है। अधिकांश यात्री इन्द्रियलोलुपता इत्यादि अवाञ्छित विषयों की तृप्ति के लिए पवित्र स्थानों में भी पहुँचते हैं, अतएव तीर्थ-यात्रा के सत्फल के भागी वे कैसे हो सकते हैं। उनके भाव, विचार आदि भी जैसे के तैसे रह जाते हैं। सांसारिक मनुष्यों के सिर पर सांसारिकता ही अधिक सवार रहती है, अतएव अधिकांश लोग उसी रंग ही में रँगे दृष्टिगत होते हैं। यह स्वाभाविकता है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अपने कथन के प्रतिपादन के लिये ही भगवान् शिव ने अपनी उल्लिखित लीला दिखलाई थी। लीला के अन्त में उन्होंने श्रीमती पार्वती देवी से यह भी कहा था कि यह सत्य है कि—"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" जिसकी भावना जैसी है उसको सफलता भी वैसी ही मिलती है। किन्तु यह सोचकर जनता को सत्यपथ की ओर प्रवृत्त करना अवांछनीय नहीं हो सकता, क्योंकि साधना से ही सिद्धि मिलती है। सत्संगति से ही हृदय में सद्भाव की उत्पत्ति होती है और आलोकित-पथ पर चलने से ही आँख के सामने का अन्धकार दूर होता है।
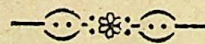
"हमारा-देश"

[लेखक—श्रीयुत गोविन्दशरणजी गुप्त 'गोविन्द']

शीश पर ताज सा विराजता गिरीश जहाँ, राजते नदीश यही ईश का दुलारा देश।
'गोविंद' न देखि पड़ता है और ऐसा कहीं, आन, बान,शान; भरा ज्ञान का पिटारा देश॥
सुखकारी मनहारी सारी सिद्धियाँ हैं प्यारी, पाप हारी तीर्थों से सु-शोभित है प्यारा देश।
न्यारा जँचता है सभी देशों को सहारा देता, स्वर्ग सा सँभारा हुआ भारत हमारा देश॥

उदयपुर राज्य में श्रीवल्लभ-सम्प्रदाय के तीर्थ

[ले०-महामहोपाध्याय, रायबहादुर, साहित्य-वाचस्पति, डॉक्टर श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा, डी०लिट्०]

सम्राट् अकबर महान् से पूर्व गुलाम, खिलजी, तुग़लक, सैयद अफ़गान (लोदी) आदि वंशों का दिल्ली-सल्तनत पर अधिकार रहा किन्तु हिन्दुओं के प्रति उनका सद्भाव न होने से उनमें से किसी भी वंश का राज्य सौ वर्ष तक नहीं रहा। यद्यपि अकबर अधिक लिखा-पढ़ा नहीं माना जाता तथापि उसकी प्रतिभा, योग्यता और सब धर्मों तथा जातियों को समान दृष्टि से देखने की नीति के कारण उसके साम्राज्य की जड़ मज़बूत हो गई। उसके पुत्र जहाँगीर तथा पौत्र शाहजहाँ के समय तक मुग़ल-साम्राज्य बराबर उन्नति करता रहा; किन्तु औरंगज़ेब के समय में उस पर विनाश की काली घटाएँ घहराने लगीं। उसके विनाश का मुख्य कारण औरंगज़ेब की अत्यधिक धार्मिक असहिष्णुता ही है। औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार किये, इतना ही नहीं किन्तु उनके अनेक तीर्थ स्थानों को नष्ट किया एवं काशी, मथुरा, पुष्कर आदि प्रसिद्ध तीर्थों के हिन्दू मन्दिरों को गिरा कर उनके स्थान में मस्जिदें भी बनवाईं।

उस समय श्रीनाथजी की मूर्ति की पूजा गोवर्धन-निवासी गुसांईंजी श्री दामोदरजी❀ (बड़े दाऊजी) के हाथ में थी।

जब उन्हें औरङ्गज़ेब के द्वारा अपनी मूर्ति के तोड़े जाने का भय हुआ तब वे विक्रम संवत् १७२६ (ईस्वी सन् १६६९) में श्रीनाथजी की प्रतिमा को लेकर गुप्त रीति से गोवर्धन से निकल गये और आगरा, बूंदी, कोटा, पुष्कर तथा कृष्णगढ़ (किशनगढ़) में ठहरते हुए चाँपासनी गाँव में पहुँचे जो जोधपुर से तीन कोस की दूरी पर है, किन्तु जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी के अधिकारियों में साहस का अभाव देख कर गोस्वामीजी के काका गोपीनाथजी उदयपुर के महाराणा राजसिंहजी के पास पहुँचे और श्रीनाथजी की प्रतिमा की रक्षा के लिए प्रार्थना की जिस पर महाराणा ने उत्तर दिया कि आप प्रसन्नता पूर्वक श्रीनाथजी की मूर्ति को मेरे राज्य में ले आवें। मेरे राज्य के एक लाख राजपूतों के सिर कट जावेंगे उसके बाद औरङ्गज़ेब इस मूर्ति को हाथ लगा सकेगा। इस पर गोपीनाथजी बड़े प्रसन्न होकर चाँपासनी को लौटे और विक्रम संवत १७२८ (ईस्वी सन् १६७१) कार्तिक सुदी पूर्णिमा को वहाँ से प्रस्थान कर मेवाड़ की तरफ़ चले। जब वे मेवाड़ की सीमा में पहुँचे तो महाराणा राजसिंहजी उनकी पेशवाई के लिए उपस्थित हुए और श्रीनाथजी की मूर्ति को लाकर बनास

❀ ये वल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक वल्लभाचार्यजी के वंशज और गिरिधरजी टीकायत (तिलकायत) के पुत्र थे। श्रीनाथजी की जिस मूर्ति की ये पूजा करते थे वह श्री वल्लभाचार्यजी को गोवर्धन पर्वत पर मिली थी ऐसी प्रसिद्धि है। श्री वल्लभाचार्यजी के पश्चात् इस मूर्ति की पूजा उनके पुत्र विट्ठलनाथजी को मिली। विट्ठलनाथजी के सात पुत्र हुए जिन सब के पूजन की मूर्तियाँ अलग-अलग थीं। ये मूर्तियाँ वैष्णवों में "सात स्वरूप" के नाम से प्रसिद्ध हैं। विट्ठलनाथजी के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरजी टीकायत (तिलकायत) हुए इसी से उनके वंशज नाथ द्वारे के गुसांईं टीकायत महाराज कहलाते हैं। श्रीनाथजी की प्रतिमा इन्हीं गिरिधरजी के पूजन में थी और इनके पीछे इनके पुत्र गुसांईं दामोदरजी को प्राप्त हुई।

नदी के किनारे सिहाड़ गाँव के पास वाले खेड़े (छोटा सा गाँव) में विक्रम संवत् १७२८ में फाल्गुन वदी सप्तमी के दिन स्थापित किया। यहाँ एक नया गाँव बस गया और धीरे-धीरे उसकी उन्नति होने लगी। अब तो वह दस हजार से अधिक स्थायी आबादी का एक अच्छा कस्बा बन गया है, जो श्रीनाथ द्वारा के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीनाथद्वारा—

यह वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों एवं अन्य वैष्णवों का सब से बड़ा तीर्थ है, जहाँ न केवल भारत वर्ष के ही किन्तु भारत से बाहर के अनेक देशों के वैष्णव भी बड़ी संख्या में प्रति वर्ष यात्रा के लिए आते हैं तथा बहुत कुछ भेंट भी चढ़ाते हैं। विशेष प्रसंगों पर यहाँ आने वाले वैष्णवों की संख्या एक लाख तक पहुँच जाती है।

यहाँ पूजा भारत के अन्य भागों के मन्दिरों के समान वेद-मन्त्रों आदि से नहीं किन्तु केवल भक्ति पूर्वक ही होती है। अन्य देवालयों के समान दर्शन भी यहां घंटों तक नहीं होते; पुष्टि मार्ग के अनुसार केवल समय-समय पर ही होते हैं, जिनको "झाँकी" कहते हैं। प्रातःकाल से शयन-समय तक कई झाँकियाँ होती हैं, जो उत्थान, शृङ्गार, ग्वाल, राजभोग, शयन आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती हैं। प्रत्येक झाँकी के समय श्रीनाथजी की मूर्ति का शृङ्गार झाँकी के नाम के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है तथा उपकरण भी उसी प्रकार के होते हैं, जैसे 'ग्वाल' के समय चाँदी की गौएँ बछड़े आदि सजाए जाते हैं। शृङ्गार के लिए पुष्प, रत्न, आभूषण आदि अनेक वस्तुओं का उपयोग होता है। सजावट के लिए भिन्न-भिन्न झाँकियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प, मालाएँ आदि सजाए जाते हैं। शृङ्गार वास्तव में अनुपम होते हैं जिनका ठीक ठीक अनुमान प्रत्यक्ष दर्शन से ही हो सकता है। प्रत्येक झाँकी के समय दर्शनार्थी स्त्री-पुरुषों की बड़ी भीड़ रहती है। झाँकियों के समय मूर्ति के सामने बाहर के आँगन में गायक लोग झाँकी के अनुरूप वाद्य यन्त्रों के साथ नियत गान भजन इत्यादि भी गाते हैं। नित्य प्रातःकाल उत्थान की झाँकी के पूर्व वीणा की मधुर ध्वनि श्रवण गोचर होती है।

मन्दिर का वैभव भी राजसी ढङ्ग का है। मेवाड़ के अतिरिक्त राजपूताना एवं बाहर के राजाओं, सरदारों आदि की तरफ से भी कई गाँव, कुएँ आदि मंदिर की भेट हैं। यहाँ की वार्षिक आय कई लाख की है और खर्च भी कई लाख का है। यहाँ के 'भोग' अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। जितने विविध प्रकार के और उत्तम यहाँ के 'भोग' होते हैं, उतने शायद ही कहीं अन्यत्र होते हों। अन्न, दूध आदि के नाना प्रकार के व्यंजन एवं अनेक प्रकार के फल भिन्न-भिन्न झाँकियों और दर्शनों के समय बड़े-बड़े पात्रों में सजाये जाते हैं। यहाँ भोग के लिए दूध के जो नाना प्रकार के व्यञ्जन बनाए जाते हैं उनके लिए कई सौ गायें यहाँ की गौशाला में रक्खी जाती हैं। श्रीनाथजी का प्रसाद जापान इत्यादि दूर-दूर के देशों तक पार्सलों द्वारा वहाँ के वैष्णवों के पास भेजा जाता है। यहाँ के जैसी प्रसादों की उत्तमता और बृहत् व्यवस्था भारत के किसी भाग के किसी भी तीर्थ स्थान या मंदिर में देखने में नहीं आई।

"अन्नकूट" तथा "दोलोत्सव" यहाँ मनाए जाने वाले त्यौहारों में सब से अधिक महत्त्व पूर्ण है और बड़े ही समारोह के साथ मनाए जाते हैं। अन्नकूट के अवसर पर हज़ारों बाहर के यात्री यहाँ दर्शनार्थ आते हैं। इस अवसर पर अनेक प्रकार की वृहत् भोजन-सामिग्री श्रीनाथजी के सन्मुख सजा कर रक्खी जाती है और मध्य में चालीस-पचास मन पकाये हुए चावलों का एक ढेर रहता है। अन्य सामिग्री के उठा लिए जाने के बाद चावलों का यह ढेर भीलों के लिए छोड़ दिया जाता है और उनके लिए एक तरफ़ का द्वार खोल दिया जाता है। भीलनियाँ टोकरे लेकर बाहर के आँगन में बैठ जाती हैं और भीलों के टोले टिड्डी दल की नाईं

उस ढेर पर टूट पड़ते हैं तथा उसे लूटते हैं। चावल प्राप्त करने की व्यग्रता में कई बार भील लोग एक दूसरे पर भी चढ़ जाते हैं। उस समय का दृश्य वास्तव में अद्भुत ही होता है। भील लोग चावल अपने वस्त्रों में भर-भर कर लाते हैं और अपनी भीलनियों के टोकरों में डाल देते हैं। यदि किसी भील को श्रीनाथजी के अन्नकूट के चावल न मिलें तो वह अपने आपको बड़ा हतभाग्य समझता है। भील लोग इन चावलों को घर लेजा कर सुखाते हैं और दूर-दूर तक अपने रिश्तेदारों के यहाँ पहुँचाते हैं। ये अपने आप को श्रीनाथजी के अनन्य भक्त मानते हैं तथा इन चावलों को खाकर अपने को परम पवित्र हुआ समझते हैं। इन जंगली लोगों में भी श्रीनाथजी के प्रति इतनी श्रद्धा है।

दोलोत्सव भी बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर भी भारत के भिन्न-भिन्न भागों के स्त्री-पुरुषों का बड़ा अच्छा समारोह दिखाई पड़ता है। इस समय की झाँकी बड़ी दर्शनीय होती है। सोने का एक विशाल हिंडोला सजाया जाता है, जिसमें श्रीनाथजी के प्रतीक-रूप एक मूर्ति रक्खी जाती है और गुसांईजी स्वयं उसे झुलाते हैं। इस दृश्य को देखने के लिए दर्शकों की खासा भीड़ रहती है।

यहाँ के गोस्वामियों ने ही इस तीर्थ की महिमा इतनी बढ़ाई है। गोस्वामीजी महाराज गोवर्धनलालजी जिनका स्वर्गवास अभी कुछ ही वर्ष पूर्व हुआ है बड़े विद्यानुरागी, संगीत प्रेमी तथा अपने स्थान की बड़ी उन्नति करने वाले हुए। उनके सद्-व्यवहार से इस तीर्थ की बड़ी उन्नति हुई और अनेक बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ बनीं जिससे यात्रियों के ठहरने का सब तरह से सुभीता हो गया है। उन्होंने नाथद्वारे में संस्कृत पाठशाला, अँग्रेजी तथा हिन्दी के मदरसे, देशी औषधालय, अस्पताल, पुस्तकालय आदि स्थापित किये। संस्कृत के कई विद्वानों को भी वे अपने पास बड़े आदर पूर्वक रखते थे। संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् भारत-मार्तण्ड पण्डित गट्टूलालजी को उन्होंने बड़े आग्रह के साथ कई वर्षों तक नाथद्वारे में रक्खा था। महाराज विद्या प्रेमी होने के अतिरिक्त बड़े मिलनसार, गुणग्राहक और श्रीनाथजी की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। उन्हीं के समय में नाथद्वारे में पोस्टऑफिस के अतिरिक्त तारघर, बिजली की रोशनी पुलिस आदि की व्यवस्था हुई। उदयपुर के महाराणाओं की तरफ़ से श्रीनाथद्वारे को सीमित दीवानी और फ़ौजदारी अधिकार भी प्राप्त हैं। नाथद्वारा पहाड़ों के बीच नीची भूमि पर स्थित है किन्तु पास ही बनास नदी, जिस पर पक्का पुल बना हुआ है, बहती है जिससे यहाँ के निवासियों तथा यात्रियों को पीने एवं नहाने-धोने के लिये जल का बहुत सुभीता है।

काँकरोली।

नाथद्वारा से दस मील उत्तर में महाराणा राजसिंहजी के बनवाये हुए राजसमुद्र नामक सुविशाल जलाशय के दो बाँधों के बीच की पहाड़ी पर काँकरोली नामक गाँव बसा हुआ है। यहाँ पर वल्लभ-संप्रदाय के 'सात स्वरूपों'× में से द्वारिकाधीशजीकी मूर्ति स्थापित है। यह मूर्ति श्रीनाथजी की मूर्ति के मेवाड़ में स्थापित किये जाने के कुछ वर्ष पूर्व यहाँ लाई गई थी। यहाँ की झाँकी पूजा आदि का क्रम ठीक वही है जो नाथद्वारे में है परन्तु आय कम होने से यहाँ के 'भोग' आदि कुछ न्यून रूप से होते हैं। यहाँ भी यात्रियों के लिए धर्मशालाएँ आदि बनी हुई हैं और नाथद्वारे जाने वाले अधिकांश यात्री यहाँ भी दर्शनों के लिए जाते हैं।

यहाँ के गोस्वामीजी उदयपुर के महाराणाओं के वैष्णव गुरू हैं। नाथद्वारा के गुसाइयों की भाँति इनके भी विद्या प्रेमी होने के कारण यहाँ भी सदा से विद्वानों का सम्मान होता रहा है। यहाँ एक बहुत बड़ा सरस्वती भण्डार भी है जिसमें

× [illegible]

छपी हुई पुस्तकों के अतिरिक्त हस्तलिखित संस्कृत और हिन्दी पुस्तकों तथा प्राचीन चित्रों का इतना बड़ा और ऐसा सुव्यवस्थित संग्रह है कि उसकी समता किसी एक स्थान का संग्रह नहीं कर सकता। हस्तलिखित पुस्तकों में अनेक ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें विषयानुसार सुन्दर रङ्गीन चित्र भी बने हुए हैं। तीन-चार, वर्ष पूर्व इस संग्रह में गीता की एक अनुपम प्रति मेरे देखने में आई थी जो रङ्गीन कागजों पर श्वेत स्याही से लिखी हुई है। मैंने अपनी "भारतीय" प्राचीन लिपिमाला" के द्वितीय संस्करण में भारतीय लेखन-सामग्री का वर्णन किया है किन्तु उसमें श्वेत स्याही का वर्णन नहीं किया क्योंकि उस समय तक मेरे देखने में ऐसी कोई पुस्तक नहीं आई थी जो श्वेत स्याही से लिखी गई हो। ऐसी अन्य पुस्तक संसार भर के किसी अन्य प्राचीन पुस्तकों के संग्रह में शायद ही मिले। चित्र संग्रह में भी कई ऐसे सुन्दर चित्र हैं जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है।

वर्तमान गोस्वामीजी महाराज ने, विद्या और कला के इस अनुपम भंडार को प्रत्येक दर्शक आसानी से देख सके, इसकी उत्तम व्यवस्था करदी है जिसके लिए वे बड़े धन्यवाद के पात्र हैं।

तीर्थ यात्रा की विधि

[लेखक—साहित्यभूषण चतुर्वेदी श्रीद्वारकाप्रसादजी शर्मा, एम० आर० ए० एस०]

वैसे तो तीर्थ शब्द के अर्थ कितने ही हैं, किन्तु इस लेख में तीर्थ शब्द का प्रयोग हमने जिस अर्थ में किया है, वह यह है—"वह पवित्र या पुण्यप्रद स्थान जहाँ धर्म भाव की प्रेरणा से सनातन धर्मावलम्बी किसी देव विशेष के दर्शन एवं उसकी पूजा करने को अथवा स्नानादि के लिये जाते हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों ने तीर्थ तीन प्रकार के माने हैं जैसे १ जङ्गम तीर्थ, २ मानस तीर्थ और ३ स्थावर तीर्थ।

१—जङ्गम तीर्थ जैसे ब्राह्मण साधु, महात्मा आदि।

२—मानस तीर्थ-जैसे, सत्य, दया, दान, क्षमा, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य व मधुर भाषण आदि।

३—स्थावर तीर्थ--जैसे काशी, काञ्ची, प्रयाग, पुष्कर, द्वारका, धनुष कोटि, बद्रीनारायण, मथुरा, गया, जगन्नाथपुरी, सेतु दर्शन आदि।

हमारे त्रिकाल दर्शी ऋषियों ने हमारे शरीर के विशेष अङ्गों को भी तीर्थ बतलाया है। जैसे दाहिने हाथ के अंगूठे का ऊपरी भाग 'ब्रह्मतीर्थ' अंगूठे और तर्जनी का मध्य भाग 'पितृतीर्थ' कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग 'प्राजापत्य तीर्थ' और उँगलियों का अग्रभाग 'देव तीर्थ' बतलाए गए हैं। इन तीर्थों से यथा क्रम आचमन पिण्ड-दान, पितृ कार्य और देवकार्य करने की विधि है।

तीर्थ शब्द के जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं। इन अर्थों के अतिरिक्त और भी अनेक अर्थ हैं। किन्तु इस लेख से सम्बन्ध केवल उन पवित्र और पुण्यप्रद स्थानों सरोवरों अथवा सरिताओं से है, जिनके माहात्म्य से वेद से लेकर पुराण तक ओत-प्रोत हैं। यही कारण है कि भारत वर्ष की सनातन धर्मावलम्बिनी प्रजा हजारों कोसों से महीनों तैयारियाँ कर अपनी गाढ़ी कमाई के धन को रेल, कुली, ताँगा, इक्का दूकानदार, किरायेदार, घट-ब्राह्मण, पण्डे मँगते आदिक में पानी की तरह बहाकर तथा रेलगाड़ियों की रेल-पेल में अपनी जान और माल को जोखों में डालकर, तथा बहुजन

संमर्द के कारण फैली संक्रामक हैजा आदि बीमारियों की कुछ भी परवाह न कर तीर्थों में लाखों की संख्या में अवश्य ही पहुँचा करते हैं।

इन लाखों तीर्थ यात्रियों में विरले ही लोग मिल सकते हैं, जिन्होंने तीर्थ-यात्रा विधि के अनुसार तीर्थ-यात्रा की हो। इस तीर्थ-यात्रा का प्रधान उद्देश्य है:--

"स्वधर्मानुसार पुण्य प्राप्ति"

किन्तु देखना यह है कि लाखों यात्रियों में उक्त उद्देश के साधन में सफलता कितने लोगों को मिलती है। यह सर्व मान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक कर्म का फल कर्त्ता को अवश्य मिलता है। चाहे वह कर्म अच्छा हो, चाहे बुरा। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा मिलना अमिट बात है। अच्छे कर्म के साथ नियमों का पालन करना परमावश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य भी है। रहे बुरे कर्म, वे तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता आदि की प्रेरणा से मनुष्य अपने आप किया करता है। बुरे कर्मों के करने की न तो कोई पद्धति है और न नियम विशेष का बन्धन। बुरे कर्म करने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वभावतः पाई जाती है। क्योंकि, देखा जाता है कि यह जानते और मानते हुए भी कि—

"अन्य क्षेत्रे कृतं पापं पुण्य क्षेत्रे विनश्यति।
पुण्य क्षेत्रे कृतं पापं वज्र लेपोभविष्यति॥"

अर्थात् अन्य स्थानों में किये हुए पापों का नाश तीर्थ में जाने से हो जाता है; किन्तु तीर्थ पर किया हुआ पाप वज्र लेप की तरह कभी नहीं छूटता। तिस पर भी लोग तीर्थों में जा, पाप कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। इसीलिए पितामह भीष्म ने महाभारत में स्पष्ट शब्दों में बतलाया है कि तीर्थ-यात्रा का फल किन-किन को मिलता है।

"यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च सतीर्थं फल मश्नुते॥९॥
प्रतिमहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केन चित्।
अहंकार निवृत्तिश्च स तीर्थं फल मश्नुते॥१०॥
अकल्पको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सतीर्थं फलमश्नुते॥११॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्रः सत्यशीलो दृढ़ व्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु स तीर्थं फलमश्नुते॥१२॥

(बन पर्व अध्याय ८२)

अर्थात् जिस व्यक्ति के हाथ, पैर, मन विद्या तप और कीर्त्ति सुसंयत है, वही तीर्थ-यात्रा का फल पाता है।

जो व्यक्ति दान नहीं लेता और सदैव सन्तुष्ट रहकर अहङ्कार को अपने पास फटकने तक नहीं देता, वही तीर्थ-यात्रा का फल पाता है।

जो व्यक्ति दम्भ आदि से रहित है, जो अधिक अर्थात् आवश्यकता से अधिक उद्योग नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, जो जितेन्द्रिय रहकर सब पापों से बचा रहता है, जो क्रोध नहीं करता, जो सत्यवादी है, जो दृढ़ प्रतिज्ञ होकर सब प्राणियों से वैसा ही व्यवहार करता है, जैसा कि वह अपने साथ औरों से चाहता है, वही तीर्थ-यात्रा का फल पाता है।

तीर्थ-यात्रा का विधान क्यों किया गया? युधिष्ठिर के इस प्रश्न के उत्तर में पुलस्त्यजी ने उनसे कहा था कि जो यज्ञदेवताओं को प्रसन्न करने के लिए किए जाते हैं, उनको केवल राजा महाराजा तथा धनी पुरुष ही कर सकते हैं, क्योंकि यज्ञ करने के लिए बहुत सी सामग्री और विपुल धन की आवश्यकता होती है, अतः साधारण अथवा निर्धन पुरुषों के लिए यज्ञ करना उनकी शक्ति के बाहर की बात है। इसी हेतु ऋषियों ने यज्ञों का पुण्य फल ऐसे लोगों को दिलाने के लिए तीर्थ-यात्रा का विधान किया है, विधि पूर्वक तीर्थ-यात्रा करने वाले साधारण पुरुषों को भी वह फल प्राप्त होता है जो बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करनेवालों को भी प्राप्त नहीं होता।

अतः तीर्थ-यात्रा सनातन धर्मावलम्बियों के लिए एक परम आवश्यक और परम पवित्र कर्त्तव्य है। जिन लोगों को तीर्थ-यात्रा के तथा तीर्थ

सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करनी हो, उन्हें महाभारत के वन पर्व के ८२ वें अध्याय से इस विषय को पढ़ना चाहिए।

एक आस्तिक हिन्दू तीर्थ-यात्री को तीर्थ-यात्रा करते समय कम से कम निम्न नियमों का पालन तो अवश्य ही करना चाहिए।

१--किसी भी तीर्थ में जावो, वहाँ पवित्र भाव काम क्रोध रहित और सत्यवादी बन कर रहना परमावश्यक है।

२--वहाँ किसी भी दुर्व्यसन का शिकार न बनना चाहिए।

३--तीर्थ में रहने के दिनों में हरिनाम कीर्त्तन हरियश श्रवण धर्म-चर्चा आदि शुभ कामों में ही सारा समय बिताना चाहिए।

वहाँ ताश, गञ्जफा, सतरञ्ज, चौपड़ आदि न खेलें। न कुछ चर्चाएँ ही करें।

५--साथ में यदि पत्नी हो तो भी तीर्थ-यात्री को ब्रह्मचर्य से और पवित्र भावना के साथ संयम पूर्वक रहना चाहिए।

६—कोई भी तीर्थ क्यों न हो, वहाँ तीन रात्रि अवश्य वास करें और प्रथम दिन उपवास करें।

७—तीर्थ में जाकर पलङ्ग या खाट पर न सोवे।

८--सपत्नीक तीर्थ-यात्री को स्नान दानादि समस्त पुण्य कार्य अपनी पत्नी के साथ ही करने चाहिए।

९-- अपनी पत्नी छोड़ अन्य स्त्री मात्र को माता बहिन और पुत्रीवत् समझना चाहिये।

१०—तीर्थ-यात्रा के समय कोई भी नशीली वस्तु न खावे-पीवे। बल्कि यदि कोई नशा करता भी हो तो तीर्थ में पहुँच उस नशे को उसी दिन से सदा के लिये त्यागने का सङ्कल्प कर, उसे त्याग ही देना चाहिए।

११– श्रद्धा और बिश्वास घटाने वाले विधर्मियों तथा नास्तिकों की बातें भूलकर भी न सुननी चाहिए।

जो तीर्थ यात्री इन नियमों को पालन करता हुआ, तीर्थ-यात्रा करता है, उसी का तीर्थ-यात्रा का फल मिलता है और जो नहीं करता, वह व्यर्थ अपना समय और धन बरबाद करता है।

——❀——

* सर्वोत्तमतीर्थ -श्रीभगवन्नाम *

[लेखक—महामहोपाध्याय डाक्टर सर श्रीगङ्गानाथजी नाइट, झा, एम० ए, डी० लिट, भू० पू० वाइस चान्सलर प्रयाग विश्वविद्यालय]

पद्मपुराण उत्तर खण्ड अध्याय ७२ में लिखा है कि श्रीपार्वतीजी ने श्रीशिवजी से पूछा 'आप जो अनवरत जप में मग्न रहते हैं, उसमें क्या जपते हैं ? इसके उत्तर में श्रीशिवजी ने विष्णु सहस्रनाम सुनाया। फिर पूछा गया कि इन सहस्र नामों में कौन-सा एक नाम है, जिससे और सब नामों का फल हो ? इसका उत्तर है—

'राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।'सहस्रनाम तात्तुल्यं रामनाम बरानने ॥ (श्लोक ३३)

इससे बढ़कर और 'नाम-माहात्म्य' के विषय में क्या लिखा जा सकता है क्योंकि श्रीभगवन्नाम ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

तीर्थ सेवन की विधि और उसका फल

[लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सम्पादक—"कल्याण"]

तीर्थों की बड़ी महिमा है। वे अपनी स्वाभाविक शक्ति ही से लोगों के पाप नाश करके उन्हें मन वाञ्छित फल प्रदान करते हैं और मोक्ष तक दे देते हैं। हिन्दू शास्त्रों में तीर्थों के नाम, रूप, लक्षण और महत्व का बड़ा विशद वर्णन है। महाभारत, रामायण आदि के साथ ही प्रायः सभी पुराणों में तीर्थों की महिमा गाई गई है। पद्मपुराण और स्कन्दपुराण तो तीर्थ महिमा से पूर्ण हैं। तीर्थों में लोगों को कब? कैसे क्या-क्या लाभ हुए? तथा किस तीर्थ का कैसे प्रादुर्भाव हुआ? इसका बड़े सुन्दर ढङ्ग से उनमें वर्णन किया गया है। भारतवर्ष में ऐसे करोड़ों तीर्थ हैं। इसी भाँति अन्यान्य देशों में भी बहुत तीर्थ हैं। तीर्थों की इतनी महिमा इसीलिये है कि वहाँ महान् पवित्रात्मा भगवत्प्राप्त महापुरुषों और सन्तों ने निवास किया है, या श्रीभगवान् ने किसी भी रूप में कभी प्रकट होकर, उन्हें अपना लीला-क्षेत्र बनाकर महान् मङ्गलमय कर दिया है।

महात्मा तीर्थ रूप हैं।

भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार किये हुए भगवत्प्रेमी महात्मा स्वयं 'तीर्थ रूप' होते हैं। उनके हृदय में भगवान् सदा प्रकट रहते हैं, इसलिये वे जिस स्थान में जाते हैं, वही तीर्थ बन जाता है। वे तीर्थों को महातीर्थ बना देते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर ने महात्मा श्रीविदुरजी से यही कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥
(श्रीमद्भागवत १-१३-१०)

भगवती श्रीगङ्गाजी ने भागीरथ से कहा—'तुम मुझे पृथ्वी पर ले जाना चाहते हो, पहले यह विचार लो कि मुझ में स्नान करने वाले लोग तो अपने पापों को मुझमें बहा देंगे, पर मैं उनके पापों को कहाँ धोने जाऊँगी।' भागीरथजी ने कहा—

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥
(श्रीमद्भागवत ९।९।६)

'इस लोक और परलोक की समस्त भोग-वासनाओं का सर्वथा परित्याग किये हुए शान्त चित्त ब्रह्मनिष्ठ साधुजन, जो स्वभाव से ही लोगों को पवित्र करते रहते हैं, अपने अङ्ग-सङ्ग से आपके पापों को हर लेंगे, क्योंकि उनके अन्दर समस्त पापों को समूल हर लेने वाले श्रीहरि नित्य निवास करते हैं।'

तीन प्रकार के तीर्थ।

इसीसे तीर्थ तीन प्रकार के माने गये हैं—१-जङ्गम, २-मानस और ३-स्थावर। १-स्वधर्म पर आरूढ़ आदर्श ब्राह्मण और संत महात्मा 'जङ्गम तीर्थ' हैं। इनकी सेवा से सारी कामनाएँ सफल होती हैं और भगवत्तत्त्व का साक्षात्कार होता है। २-'मानस तीर्थ' है—

सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थं मार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
(स्कन्द० काशी० ६।३०।३२)

सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राणीमात्र पर दया, ऋजुता, दान, मनोनिग्रह, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रिय भाषण, विवेक, धृति और तपस्या। इन सारे तीर्थों से भी मन की परम विशुद्धि ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ है। इन तीर्थों में भली भाँति स्नान करने से परम गति की प्राप्ति होती है।

'येषु सम्यक् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।'

तीर्थ यात्रा का उद्देश ही है—अन्तःकरण की शुद्धि और उसके द्वारा भगवत्प्राप्ति। इसीलिये शास्त्रों ने अन्तःकरण की शुद्धि करने वाले साधनों

पर विशेष जोर दिया है। यहाँ तक कहा है कि 'जो लोग इन्द्रियों को वश में नहीं रखते, जो लोभ, काम, क्रोध, दम्भ, निर्दयता और विषयाशक्ति को लेकर उन्हीं की गुलामी करने के लिये तीर्थ स्नान करते हैं, उनको तीर्थ-स्नान का फल नहीं मिलता।'

न शरीर मल त्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः॥

(स्कन्द० काशी० ६।३५)

मनुष्य केवल शरीर का मैल उतारकर ही निर्मल नहीं होजाता। पूरी निर्मलता तो मनके मल को मिटा देने से ही होती है।

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था:-
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र -
न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

'आत्मा नदी है, मन और इन्द्रियों का संयम ही पुण्य तीर्थ है, सत्य जल है, शील तट है और दया तरंगें हैं। हे पाण्डु पुत्र! तुम उस नदी में गोता लगाओ। केवल शरीर को जल में डुबो देने से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती।' इसलिये—

ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेष मलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥

जिसमें ज्ञानसरोवर है, ध्यान जल है, ऐसे रागद्वेष रूप मल का नाश करने वाले मानस तीर्थ में जो पुरुष नहाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

३—'स्थावर तीर्थ' हैं—पृथ्वी के असंख्य पवित्र स्थल और जलाशयादि। इनमें तीर्थराज प्रयाग, पुष्कर, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, द्वारिका, उज्जैन, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, जगदीशपुरी, काशी, कांची, बदरिकाश्रम, श्रीशैल, सिन्धु-सागर सङ्गम, सेतुबन्ध, गङ्गासागर सङ्गम, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, गोमती, नर्मदा, सरयू, कावेरी, मन्दाकिनी और कृष्णा आदि प्रधान हैं।

तीर्थ यात्रा क्यों करनी चाहिये ?

मनुष्य जीवन का उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम की प्राप्ति। जगत् में भगवान् को छोड़ कर सभी कुछ नश्वर है, दुःखदायी है। इससे मन हटकर श्रीभगवान् में लग जाय, मनुष्य को बस यही करना है। यह होता है भगवत्प्रेमी महात्माओं के सङ्ग से और ऐसे महात्मा रहा करते हैं पवित्र तीर्थों में। इसीलिये शास्त्रों ने तीर्थ यात्रा को इतना महत्व दिया है और तीर्थों में जाकर सत्सङ्ग करने तथा सन्तजनों के द्वारा सेवित पवित्र स्थानों के दर्शन पवित्र जलाशयों में स्नान और पवित्र वातावरण में विचरण करने की आज्ञा दी है—

तस्मात्तीर्थेषु गन्तव्यः नरैः संसार भीरुभिः।

'इसीलिये संसार से डरे हुए लोगों को तीर्थों में जाना चाहिये।' परन्तु तीर्थ सेवन का परम फल उन्हीं को मिलता है जो विधि पूर्वक वहाँ जाते हैं और तीर्थ के नियमों का सावधानी तथा श्रद्धा के साथ सुख पूर्वक पालन करते हैं। जो लोग 'तीर्थ-काक' होते हैं—तीर्थों में जाकर भी कौवे की तरह इधर-उधर गन्दे विषयों पर ही मन चलाते तथा उन्हीं की खोज में भटकते रहते हैं, वे तो पूरा पाप कमाते हैं और इससे उन्हें दुस्तर नरकों की प्राप्ति होती है। यह याद रखना चाहिये कि "तीर्थों में किये हुए पाप वज्रलेप होजाते हैं।" वे सहज में नहीं मिटते। पवित्र होकर दीर्घकाल तक तीर्थ सेवन से या भगवान् के निष्काम भजन से ही उनका नाश होता है।

तीर्थ यात्रा की विधि।

तीर्थ यात्रा की विधि यह है कि सब से पहले तीर्थ में श्रद्धा करे। तीर्थों के माहात्म्य में विश्वास करे। उसको अर्थवाद न समझ कर सर्वथा सत्य समझे। घर में ही पहिले मन-इन्द्रियों के संयम का अभ्यास करे, उपवास करे; श्रीगणेशजी की, देवता, ब्राह्मण और साधुओं की पूजा करे, पितृ श्राद्ध करे और पारण करे। इसके बाद भगवान् के नाम का उच्चारण करता हुआ यात्रा आरम्भ करे। कुछ दूर जाकर तीर्थादि में स्नान करके क्षौर-कर्म करावे। तदनन्तर लोभ-द्वेष, दम्भादिक त्याग करके मन से

भगवान् का चिन्तन और मुँह से भगवान् का नाम कीर्तन करता हुआ तीर्थ के नियमों को धारण करके यात्रा करे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण भक्तवत्सल हे हरे।
शरण्य भगवन् विष्णो कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
इति ब्रुवन् रसनया मनसा च हरिं स्मरन्।
पादचारी गतिं कुर्यात् तीर्थं प्रति महोदयः॥
(पद्म० पाताल)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण आदि नामों को जीभ से उच्चारण करता हुआ और मनसे श्रीहरि का स्मरण करता हुआ बुद्धिमान् पुरुष पैदल ही तीर्थ यात्रा करे।

तीर्थ यात्रा के लिये पैदल जाने की ही प्राचीन विधि है। उस काल में तीर्थ प्रेमी नर-नारी वापिस लौटने न लौटने की चिन्ता छोड़ कर परम श्रद्धा के साथ संघ बनाकर तीर्थ यात्रा के लिये निकलते थे। उस समय न तो रेल या मोटर आदि सवारियाँ थीं और न और ही सुविधायें थीं। तीर्थयात्री संघ घाम, वर्षा सहता हुआ बड़े कष्ट से यात्रा करता था। परन्तु श्रद्धा इतनी होती थी कि वह उस कष्ट को उत्साह के रूप में परिणत कर देती थी। आज कल की तीर्थयात्रा तो सैर-सपाटे की चीज़ हो गई है। जो लोग छुट्टियाँ मनाने और भाँति-भाँति से मौज-शोक या प्रमोद करने के लिये तीर्थों में जाते हैं, उनके सम्बन्ध में तो कुछ कहना नहीं है। जो श्रद्धा पूर्वक तीर्थसेवन के लिये जाते हैं उनके लिये भी आजकल बड़ी आसानी हो गई है। ऐसी अवस्था में कुछ नियम अवश्य बना लेने चाहियें, जिससे जीवन संयम में रहे, प्रमाद न हो और तीर्थयात्रा सफल हो।

तीर्थ सेवन के नियम।

तीर्थ में कैसे रहना चाहिये और तीर्थ का परम फल किसे प्राप्त होता है? इस सम्बन्ध में शास्त्र के वचन हैं—यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफल मश्नुते॥
प्रति ग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येनकेन चित्।
अहङ्कार विमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अदाम्भिको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्त सर्व सङ्गैर्यः स तीर्थ फलमश्नुते॥
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥

१-**हाथों का संयम**—हाथों से किसी को पीड़ा न पहुँचावे, किसी की वस्तु न चुरावे, किसी भी स्त्री का अङ्ग स्पर्श न करे, किसी भी गंदी चीज़ को न छुवे और सदा भगवान् की, संतों की, गुरुजनों की, दीन-दुखियों की तथा अपने साथी यात्रियों की यथा योग्य सेवा करता रहे।

२-**पैरों का संयम**—पैरों से हड़-पड़ाकर न चले—देख-देखकर पैर रक्खे, जिससे कहीं कांटा-कंकड़ न गड़ जाय, कोई जीव पैर के नीचे न दब जाय। पैरों से बुरे स्थानों में न जावे, असाधुओं के पास न जाय, नाच-तमाशे आदि में न जाय। बूचड़खाने, शराबखाने, जुआड़खाने, वेश्या के घर, विषयी पुरुषों के यहाँ और नास्तिकों की संगति में न जाय।

साधुसंग, तीर्थ स्नान, देव दर्शन और सेवा के लिये सदा उत्साह से जाय और इसमें कभी थकावट का अनुभव न करे।

३--**मन का संयम**—मन के द्वारा विषयों का चिन्तन न हो। मन में काम, लोभ, ईर्षा, डाह, द्वेष, वैर, घमण्ड, कपट, अभिमान, कठोरता, क्रूरता, विषाद, शोक और व्यर्थ चिन्तन आदि दोष न आने पावें। दूसरों के दोषों का मनन न हो, स्त्रियों के अङ्गों, चरितों और उनकी चेष्टाओं का ज़रा भी चिन्तन न हो (इसी प्रकार स्त्रियों के मन से पुरुषों का चिन्तन न हो), असम्भव विषयों का तथा व्यर्थ का चिन्तन न हो। मन के द्वारा भोगों के दोषों तथा दुःखों का, अपनी भूलों का और अपराधों का, दूसरों के सच्चे गुणों का तथा महत्त्व का, महापुरुषों के चरित्र, गुण और स्वरूप का चिन्तन होता रहे। मन सदा-सर्वदा परम श्रद्धा तथा अनन्य प्रेम के साथ श्रीभगवान् के स्वरूप का उनके दिव्य नामों, गुणों, लीला चरित्रों का,

उनके प्रभाव, महत्व, तत्व और गुरुत्व का चिन्तन करे। भगवान् की मोहिनी मूर्ति के निरन्तर दर्शन करता रहे और उन्हें देख-देखकर सदा शान्त, प्रसन्न, प्रफुल्ल और आनन्द मुग्ध बना रहे।

४-विद्या—श्रीभगवान् को जानने के लिये मन्त्रजाप, उपासना, साधनचतुष्टय या गीतोक्त (१३।७।११) बीस ज्ञान साधनों का आश्रय लेना। भगवान् का रहस्य खोलने वाली विद्या ही यथार्थ विद्या है। 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्।' (गीता)

५-तपस्या—प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठना, नियमित शौचस्नानादि करना, नियमित सन्ध्योपासना, हवन, बलिवैश्वादि करना; गुरुजनों को नित्य प्रणाम करना, खान-पान में संयम-नियम रखना, अपने वर्णाश्रम के धर्म का पालन करना, सादगी से रहना, सहनशील होना, व्रत-उपवासादि करना, शरीर वाणी और मन से प्रमाद न करना, मौन रहना, स्वाध्याय करना, हित-मित-मधुर भाषण करना, किसी भी प्राणी की हिंसा न करना-कराना, सरल व्यवहार करना, मन वाणी शरीर से पवित्र रहना, सेवा करना, कष्ट साध्य आचारों के और स्वधर्म के पालन में सदा तत्पर रहना।

६-कीर्ति—भगवान् तथा महात्माओं के यश गाना और सुनना, श्रीभगवान् के कैङ्कर्य से यशस्वी होना; भगवान् की दासता रूपी कीर्त्ति से सम्पन्न होना।

७-प्रतिग्रह का त्याग—मौज शौक के लिये आसक्तिवश किसी भी वस्तु का संग्रह न करना। किसी से दान न लेना, किसी की भेंट या उपहार स्वीकार न करना, जहाँ तक हो शरीर निर्वाह के सभी कार्यों में स्वावलम्बी रहना; खाने पीने जाने-आने तथा सोने-बैठने के लिये सभी सामानों का संग्रह यथासाध्य अपने ही बल-बूते पर तथा अपने ही ख़र्च से करना। दूसरों के स्थान में या धर्मशाला आदि में रहना पड़े तो उसके निमित्त कुछ दे देना, मकान या ज़मीन के मालिक न लें तो किसी ग़रीब को दे देना। किसी से भी शारीरिक और आर्थिक सेवा न कराना।

८-यथा लाभ सन्तोष—भगवान् की प्रेरणा और विधान से जैसा कुछ स्थान, खान-पान के पदार्थ, सुविधा-असुविधा मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना। तीर्थ में मनमाना आराम और भोग खोजने की प्रवृत्ति होने से मनुष्य तीर्थयात्रा के उद्देश को भूल जाता है और उसका तन-मन विषय-सेवन में ही लग जाता है। मन चाहा आराम न मिलने पर वह विषाद ग्रस्त होकर लौट आता है तथा लोगों में तीर्थ निन्दा करके तीर्थों में अश्रद्धा उत्पन्न कराकर पाप-ताप का भागी होता है।

९-अहङ्कार का अभाव—वर्ण, जाति, धन, बल, विद्या, रूप, पद, अधिकार, प्रतिष्ठा, साधना, सद्गुण, शील आदि किसी भी निमित्त से अहङ्कार न करना चाहिये। यह भी नहीं सोचना चाहिये मेरे पुरुषार्थ से ही सब कुछ हो रहा है। अहङ्कार होने पर तीर्थ के महत्व, तीर्थवासी साधु, महात्मा तथा संतों के आदर्श साधन और उनके सद्गुणों से लाभ नहीं उठाया जा सकता। अहङ्कार उनके संग से विमुख कर देता है। कहीं प्रसङ्गवश सङ्ग हो भी जाता है, तो अहङ्कार के कारण मनुष्य उससे कोई शुभ भाव ग्रहण नहीं कर सकता। उनमें उपेक्षा और दोष बुद्धि करके छूँछा ही लौट आता है।

१०-दम्भ का अभाव—अपने में तो सद्गुण या सामर्थ्य नहीं है पर लोगों से मान-प्रतिष्ठा, पूजा-सत्कार, धन-ज़मीन, भोग-ऐश्वर्य आदि प्राप्त करने के लिये उन्हें अपने में दिखाना दम्भ है। दम्भी लोग दूसरों को ठगने जाकर वास्तव में आप ही ठगाते हैं। उन्हें तीर्थ सेवन का फल नहीं प्राप्त होता।

११-आरम्भ हीनता—तीर्थ में जाकर परमार्थ साधन के सिवा किसी भी प्रापञ्चिक कार्य का

आरम्भ नहीं करना चाहिये। प्रपञ्च में पड़ते ही तीर्थ सेवन का उद्देश चित्त से चला जाता है।

१२--लघु आहार– शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिये आहार में संयम तो सदा ही करना चाहिये,परन्तु यात्रा में तो जगह-जगह का जल पीना पड़ता है, सोने-उठने में भी कुछ अनियमितता होती है। तरह-तरह के नर-नारियों से भेंट होती है खान-पान की नयी-नयी वस्तुएँ मिलती हैं। वहाँ यदि संयम न रहे और ठूँस-ठूँस कर खाया जाय तो शरीर और मन दोनों ही अस्वस्थ हो जायँगे। ऐसा होने पर तीर्थयात्रा का उद्देश तो नष्ट होगा ही। रोग की पीड़ा से स्वयं दुखी होना पड़ेगा और इस कारण साथियों को भी तीर्थ सेवन में विघ्न हो जायगा। अतएव अपनी प्रकृति के अनुकूल शुद्ध सात्विक आहार थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। बीच-बीच में उपवास भी करना चाहिये, ज्यादे ठंडी, ज्यादा गरम, अधिक खटाई, अधिक मसाले, चटपटी, अचार, बाजार की बनी मिठाइयाँ,अखाद्य वस्तुएँ, नशीली चीजें,सोडा-लेमन आदि अपवित्र जल, प्याज-लहसन तथा अन्यान्य अशुद्ध वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये।

१३--जितेन्द्रियता—इन्द्रियाँ दस हैं। आंख, कान, नासिका, रसना और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा देखना, सुनना, सूंघना, चखना, और स्पर्श करना ये पाँच कार्य होते हैं। हाथ, पैर, जीभ, गुदा और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा लेना-देना, आना-जाना, बोलना, मलत्याग और मूत्र-वीर्य का त्याग ये पाँच कार्य होते हैं। इनमें ज्ञानेन्द्रियाँ ही प्रधान हैं। उनको जीतकर अपने वश में रखना तथा भगवत्सेवा के भाव से सदा सद्विषयों में लगाये रखना चाहिये। किस इन्द्रिय से क्या न करना और क्या करना चाहिये, इस पर कुछ विचार कीजिये?

(क) आँखों से किसी भी गन्दी वस्तु को, स्त्रियों के रूप को, स्त्रियों के किसी भी अँग को, स्त्री की तसवीर को (स्त्री के लिये पुरुष की) और मन में काम, क्रोध, लोभादि के विकार पैदा करने वाले सीनेमा, नाच तथा अन्याय दृश्यों को कभी नहीं देखना चाहिये। सदाचारी अजामिल एक गंदे दृश्य को देख कर उसी के प्रभाव से महापापी बन गये थे

आँखों से भगवान् के विष्णु, राम, कृष्ण, शंकर, दुर्गा, सूर्य, आदि किसी भी मङ्गल-विग्रह को, उनकी पूजा-आरती को, पवित्र तीर्थ-स्थानों को, भगवान् की प्रकृति की दर्शनीय शोभा को, सुरुचि और सद्भाव उत्पन्न करने वाले चित्रों तथा दृश्यों को, सन्त-महात्माओं के स्थानों को, और सन्त-महात्माओं को देखना चाहिये।

(ख) कानों में किसी की भी निन्दा नहीं सुननी चाहिये, पर भगवान् की, सन्त-महात्माओं की, गुरू की, और शास्त्रों की निन्दा तो कभी किसी हालत में भी नहीं सुननी चाहिये। अपनी प्रशंसा, दूसरों के दोष, अश्लील और कुरुचि उत्पन्न करने वाले गायन और भाषण विकार पैदा करने वाली बातें, नास्तिकों की कुतर्कें, गंदे हँसी-मजाक, भोग बुद्धि को उत्तेजन देने वाले, बैर-विरोध बढ़ाने वाले तथा हिंसा-मांसाहार व्यभिचार आदि पाप-प्रवृत्तियों को जगाने वाले शब्द और स्त्रियों के श्रृङ्गार तथा रूप (स्त्रियों के लिये पुरुषों के) आदि के वर्णन नहीं सुनने चाहिये। कानों से भगवान् की लीला-कथायें, भगवान् के महत्व-तत्व स्वरूप और प्रभाव को बतवाने वाले तथा उनके प्राप्ति के साधन, ज्ञान, भक्ति, कर्म, उपासना आदि का निर्देश करनेवाले शास्त्र, भाषण, प्रवचन, सदुक्तियाँ, वैराग्य, सद्भाव, सदाचार, समता और सच्चे सुख को प्राप्त कराने वाली युक्तियाँ, भक्तों, सन्तों और महापुरुषों की जीवन-गाथायें, अपने दोष और दूसरों के सच्चे गुणों की बातें, भगवान् के नाम गुण-कीर्तन, उपनिषद् गीता, रामायण, भागवत, महाभारत, अन्याय

पुराण, स्मृतिशास्त्र, और देशी विदेशी महात्माओं के दिव्य उपदेश सुनने चाहिये।

(ग) नाकों से मानसिक तथा शारीरिक रोग उत्पन्न करने वाली गन्ध न सूँघ कर सुन्दर सात्विक भगवद्-प्रसादी सुगन्ध ही सूँघनी चाहिये।

(घ) रसना से मन में काम, क्रोध, लोभादि तथा शरीर में उत्तेजना, पीड़ा, रोग आदि उत्पन्न करने वाले पदार्थों का रस नहीं लेना चाहिये। मांस, शराब आदि अपवित्र वस्तुयें कभी नहीं चखनी चाहिये। असल में स्वाद की दृष्टि से किसी भी वस्तु को नहीं ग्रहण करना चाहिये। शुद्ध सात्विक भावों को उत्पन्न करने वाले सतोगुण प्रधान पदार्थों का भगवत्सेवा की दृष्टि से ही सेवन करना चाहिये। जीभ के स्वाद में फँसना बहुत ही हानिकारक है। भगवान् के चरणामृत का स्वाद अवश्य लेना चाहिये।

(ङ) त्वचा से—शरीर को विशेष आराम-तलब और जीवन को विलासी आलसी तथा प्रमादी बनाने वाले पदार्थों का, स्त्रियों के (स्त्रियों के लिये पुरुषों के) अङ्गों का स्पर्श नहीं करना चाहिये। भगवान् की मूर्त्तियों के श्रीचरणों का, सन्तचरणों का, महापुरुषों की चरणरज का, माता-पिता की चरण धूलि का, सद्वस्तुओं का; और सदाचार को बढ़ाने वाले पदार्थों का स्पर्श करना चाहिये।

कर्मेन्द्रियों में हाथ पैर के संयम की बात आ ही चुकी है। उपस्थ का भी यथायोग्य संयम अवश्य रखना ही चाहिये। खास बात है वाणी के संयम की। जो मनुष्य वाणी का संयम नहीं रख सकता, वह परमार्थ साधन से तो वञ्चित रहता ही है। लौकिक लाभों और सुखों से भी से हाथ धो लेना पड़ता है।

(च) वाणी से किसी की निन्दा, चुगली, तिरस्कार, अपमान, नहीं करना चाहिये। किसी को गाली या शाप न दे, किसी का जी न दुखावे, किसी का अहित होता हो ऐसी बात न कहे, कड़वी जबान न बोले, मिथ्या न बोले स्त्रियों के रूप शृङ्गार तथा शृङ्गारों की चर्चा न करे। (स्त्री-पुरुषों की न करे), अपनी बड़ाई तथा अभिमान और घमण्ड की बात न करे किसी को लोक-परलोक के प्रलोभन न दिखावे, भगवान्, शास्त्र, गुरू और सन्तों–भक्तों की निन्दा भूल कर भी न करे। ब्राह्मण, गौ, अतिथि, अनाथ, रोगपीड़ित, आतुर असहाय, अत्याचार पीड़ित, विधवा स्त्री आदि का जरा भी अहित हो ऐसी कोई बात कभी न कहे। व्यर्थ कभी न बोले। हँसी मजाक न करे और अश्लील शब्द मुंह से कभी न निकाले।

वाणी से भगवान् के गुण-नाम तथा लीलाओं का कथन, कीर्तन या गायन करे। भगवान् के स्वरूप, महत्व, तत्व और प्रभाव की चर्चा करे। अधिक लोग साथ हों तो मिलकर, नहीं तो अकेले ही भगवान् के नाम का नित्य कीर्तन करे, भगवान् के नाम या मन्त्र का जप करे। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, भागवत, पुराण, सन्त और भक्तों के ग्रन्थों का यथाधिकार यथारुचि पारायण करे। ज्यादा आदमी हों तो इनमेंसे एक सज्जन प्रतिदिन नियमित रूप से भगवान् की कथा कहें और सब लोग सुनें। अपने सच्चे दोषों को बिना हिचक आवश्यकतानुसार प्रकट करे और दूसरों के सच्चे गुणों का हर्ष के साथ बखान करे। परमार्थ सदाचार, भगवद्भक्ति, सर्वभूतहित तथा ज्ञान वैराग्य की चर्चा करे। लोगों में भगवत्प्रेम, अहिंसा, सत्य ब्रह्मचर्य, आनन्द, शान्ति आदि का विस्तार हो ऐसे साधनों की बातें करें।

१४--सङ्ग का अभाव—भगवान् को छोड़ कर अन्य किसी भी वस्तु में मन की आसक्ति न रहे। कहीं भी किसी भी भोग पदार्थ में मन न फँसने पावे।

१५--क्रोध का अभाव—अपनी निन्दा या अपकार करने वाले पर भी क्रोध न हो। क्रोधवश मुँह से कठोर शब्द न निकलें। मन में भी जलन न हो। सदा क्षमा भाव रहे। दण्ड देने की

शक्ति दान पर भी उसका क्रोधवश हिंसापूर्ण प्रतिकार न करना ही क्षमा है। प्रेम और सुहृदता पूर्ण प्रतीकार, उसका कल्याण चाहते हुए, शान्त चित्त से उसे सन्मार्ग पर लाने की नीयत से करना चाहिये। क्रोध सारे साधनों को कर देता है।

१६-निर्मल मति—बुद्धि ऐसी रहनी चाहिए जो बुरे का बुरा और भले का भला बतला सके, तथा जिसमें बुरे की ओर जाते हुए मन-इन्द्रियों को रोक कर भाव की ओर चलाने की शक्ति हो। यह तभी होता है जब सच्चे सत्सङ्ग के प्रभाव से बुद्धि भगवान् की ओर लगकर पूर्ण निश्चयात्मिका और सात्विकी हो जाती है। नाम भी बुद्धि भव युक्त होती है, इसीसे उसका निर्णय सर्वथा विपरीत होता है, वह पाप को पुण्य, असत् को सत्, बुरे को भला, और अकर्त्तव्य को कर्त्तव्य बतलाती है। उसमें मन-इन्द्रियों को सन्मार्ग पर लेजाने की तो शक्ति ही नहीं होती। ऐसा होता है कुसङ्ग से और निरन्तर विषय-सेवन में लगे रहने से। बुद्धि को निर्मल करने के लिए सदा सत्सङ्ग और सद्विषयों का भगवदर्पण भाव से सेवन की चेष्टा करनी चाहिए।

१७-सत्य-वादिता—जैसा कुछ देखा सुना या अनुभव में आया हो, वैसा ही समझा देने की नीयत से, बिना किसी छलके परहित का ध्यान रखते हुए कहना सत्य है। ऐसे सत्य का ही अवलम्बन करना चाहिये। मिथ्यावादी का तीर्थ फल नष्ट होजाता है।

१८—दृढ़-व्रत—अपने निश्चय में और नियम-पालन में आडिग रहना चाहिए। किसी भी प्रलोभन, या भय में फँसकर व्रत का भङ्ग न होने पावे-

१६-सब प्राणियों में आत्मोपम भाव—अपने पर कोई दुःख आवे, अपने को गाली, अपमान, रोग पीड़ा, अभाव आदि सहने पड़ें, तो जैसा कष्ट होता है, वैसा ही सबको होता है। हम जैसे अनुकूलता में सुखी और प्रतिकूलता में दुखी होते हैं, वैसे ही सब होते हैं, इस प्रकार सत्ता और सुखःदुख में सबको अपनी आत्मा के समान ही जानकर सबके साथ आत्म-भाव से ही वर्त्ताव करना चाहिये। अर्थात् हम जैसा भाव तथा वर्त्ताव अपने लिये चाहते हैं, और करते हैं, वैसा ही सब प्राणियों के लिये चाहना और करना चाहिये।

तीर्थ सेवन का परम-फल -

तीर्थयात्रा या तीर्थ सेवन का वास्तविक परम-फल है, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम की प्राप्ति। उपर्युक्त उन्नीस गुणों से युक्त होकर जो नरनारी तीर्थ सेवन करते हैं, उन्हें निश्चय ही यह परम-फल प्राप्त होता है। इस परम फल की प्राप्ति अन्यान्य साधनों से कठिन बतलायी गयी है—

अग्निष्टोमादि भिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुल दक्षिणैः।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥

'तीर्थ-यात्रा से जो फल मिलता है, वह बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिण वाले अग्निष्टमादि यज्ञों से भी नहीं मिलता।' परन्तु—

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्न संशयः।
हतुनिष्ठश्चपञ्चै ते न तीर्थफल भागिनः ॥

'जिनमें श्रद्धा नहीं है, जो पापके लिये ही तीर्थ सेवन करते हैं, जो नास्तिक हैं, जिनमें मन में सन्देह भरे हुए हैं तथा जो केवल सैर-सपाटे तथा मौज शौक के लिये अथवा किसी खास स्वार्थ से तीर्थ भ्रमण करते हैं। इन पाँचों को उपयुक्त भगवत्-प्राप्ति या भगवत्प्रेम-प्राप्ति रूप परम-फल नहीं मिल सकता।'

तीर्थों में और क्या-क्या करना चाहिये ?

इसलिये श्रद्धा तथा संयमपूर्वक तीर्थ-सेवन करना चाहिये। तीर्थ में पितरों के लिये श्राद्ध-तर्पण अवश्य करना चाहिये। इससे पितरों को बड़ी तृप्ति होती है और उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त होता है।

तीर्थों में वहाँ के नियमों का आदर करना चाहिये। प्रसाद आदि में सत्कार बुद्धि रखनी चाहिये। श्रद्धा और सत्कारही सत्फल उत्पन्न करते हैं। तीर्थों में कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना

चाहिये। मन, वाणी, शरीर से किसी प्रकार भी पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का संग नहीं करना चाहिये। तीर्थ में सुयोग्य पात्रों को (जिसको, जब, जिस वस्तु की यथार्थ में आवश्यकता है, वही उस वस्तु का पात्र है) अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिये। तीर्थ में किये हुए दान की बड़ी महिमा है। तीर्थयात्रा से लौटकर यथासाध्य ब्राह्मण-भोजन तथा पितृ श्राद्ध कराना चाहिये।

ऊपर के विवेचन से यह नहीं समझना चाहिये कि उपर्युक्त प्रकार से किये बिना तीर्थ--सेवन का कोई फल ही नहीं मिलता। जिस वस्तु में जो स्वाभाविक गुण है, उसका प्रभाव तो होगा ही। आग को हम चाहे न जानकर छूलें, उससे हाथ जलेगा ही; क्योंकि यह उसका सहज गुण है। इसी प्रकार तीर्थ--सेवन से भी तीर्थ विशेष की शक्ति की तारतम्यता के अनुसार किसी न किसी अंश में पाप-नाश तो होगा ही। हाँ पापों का सर्वथा विनाश और परम--फल की प्राप्ति तो उपर्युक्त प्रकार से तीर्थ--सेवन करने पर ही होती है। अतएव तीर्थ यात्रा सभी को करनी चाहिये। इसमें देशाटन का लाभ भी मिल जाता है, नयी-नयी बातें सीखने--समझने को तो मिलती ही हैं, परन्तु जहाँ तक बने, करना चाहिये श्रद्धा और संयम के पाथेय को साथ लेकर ही।

मातृतीर्थ, पितृतीर्थ, गुरुतीर्थ, भार्यातीर्थ और भर्तातीर्थ—

एक बात और है। ऐसे लोगों को बहुत सोच-समझकर तीर्थयात्रा करनी चाहिये, जिनको कोई खास अड़चन हो, जिनके घर से चले जाने पर बूढ़े माता-पिता को ये कष्ट होता हो, गुरु को पीड़ा पहुँचती हो, साध्वी--पत्नी को सन्ताप और कष्ट होता हो या पत्नी के चले जाने पर श्रेष्ठ--पति को दुःख पहुँचता हो। ऐसे लोग चाहें तो तीर्थयात्रा न करके अपने भाव के अनुसार घर ही में तीर्थ-यात्रा का फल प्राप्त कर सकते हैं।

शास्त्र में पुत्र के लिये माता-पिता को, शिष्य के लिये गुरु को, पति के लिये पत्नी को और पत्नी के लिये पति को तीर्थ माना गया है। पद्मपुराण भूमिखण्ड में इसका इतिहासों के सहित बड़ा ही विशद और सुन्दर वर्णन है। वहाँ कहा गया है—

'जो दुष्ट पुरुष वृद्ध माता-पिता का अपमान करता है, उन्हें उचित रीति से खाने-पीने को नहीं देता, कडुवे वचन बोलता है और उनको असहाय छोड़कर चल देता है। वह बार-बार साँप, ग्राह, बाघ तथा रीछ आदि योनियों को प्राप्त होता है और कुंभी पाक आदि घोर नरकों में युगों तक पड़ा सड़ा करता है। माता-पिता की सेवा से, उनको आदर पूर्वक सन्तुष्ट करने से तीनों लोकों की तुष्टि होती है। जो पुरुष नित्य अपने माता-पिता के चरण चाँवता है उसे घर पर ही भागीरथी--स्नान का पुण्य मिलता है। पुत्रों के लिये माता-पिता के समान कोई 'तीर्थ' नहीं है।'

'नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितु समम्।'

'सूर्य दिन के, चन्द्रमा रात्रि के तथा दीपक घर के अन्धकार को हटाकर उनमें उजियाला करते हैं परन्तु गुरु तो शिष्य के अज्ञानान्धकार को सर्वथा हर कर उसके दिन, रात और घर तीनों में ही उजियाला करदेते हैं। यह समझकर शिष्य को सदा गुरु की पूजा करनी चाहिये। शिष्यों के गुरु ही परम पुण्य, सनातन धर्म, परम ज्ञान और प्रत्यक्ष फलदायक परम 'तीर्थ' हैं।'

शिष्याणां परमं पुण्यं धर्मरूपं सनातनम्।
परं तीर्थं परं ज्ञानं प्रत्यक्ष फल दायकम्॥

जिस घर में सदाचार युक्त, धर्मतत्पर, पुण्यमयी सती पतिव्रता है, उस घर में सारे देवता नित्य निवास करते हैं। गङ्गाजी आदि पवित्र नदियाँ, पवित्र समुद्र तथा सारे तीर्थ और पुण्य वहाँ रहते हैं। सत्य परायण पवित्र सती के घर में समस्त यज्ञ, गौ और ऋषिगण बसते हैं। ऐसी पवित्र भार्या को त्याग कर जो पुरुष धर्म-कार्य करता है, उसके वे सारे धर्म व्यर्थ होते हैं। भार्या के बिना पुरुष का धर्म सिद्ध नहीं होता। भार्या के समान पुरुषों को सद्गति देने वाला कोई दूसरा 'तीर्थ' नहीं है, यदि भार्य्या भक्ता हो।

तस्मात् भार्या विना धर्म पुरुषस्य न सिद्ध्यति ।
नास्ति भार्या समं 'तीर्थं' पुंसां सुगतिदायकम् ॥

'स्त्री के लिये पति ही परमेश्वर है, पति ही गुरु है, पति ही परम देवता है और पति ही परम 'तीर्थ' है। जो स्त्री पति को छोड़कर अकेली रहती है, वह पापयुक्त होजाती है। स्त्री को पति के प्रसाद से ही सब कुछ प्राप्त होता है। स्त्री को पातिव्रत ही समस्त पापों का नाशक और मोक्षदायक है। जो स्त्री पति-परायणा है, वही पुण्यमयी कहलाती है। स्त्रियों के लिये पति को छोड़ कर पृथक् तीर्थ शोभा नहीं देता। पति का दाहिना चरण उसके लिये प्रयाग है और बायाँ चरण पुष्कर राज है। पति के चरणोदक-स्नान से ही उसे इन सब तीर्थों में स्नान करने का पुण्य मिल जाता है। पत्नी के लिये पति ही सर्व तीर्थमय और पुण्यमय है।'

'सर्व तीर्थ मयो भर्ता सर्व पुण्यमयः पतिः ।'

इसका भी यह तात्पर्य नहीं है कि गृहस्थों को स्थावर तीर्थों की यात्रा नहीं करनी चाहिये। बात इतनी ही है कि बूढ़े माता, पिता, गुरु, भाई और भार्या आदि के पालन-पोषण तथा सेवारूप कर्त्तव्य से मुँह मोड़ कर, इन्हें रोते-बिलखते तथा कष्ट पाते छोड़कर जो नर-नारी तीर्थों में जाकर अपना कल्याण चाहते हैं, वे एक बार अपने को वैसी ही परिस्थिति में लेजा कर सोचलें। तीर्थ यात्रा के समान ही फल तो उनको घर में भी भाव होने पर प्राप्त हो सकता है।

तीर्थयात्रा के विभिन्न फल— जो लोग भगवान् में मन लगा कर, भगवत्सेवा की बुद्धि से श्रद्धा तथा संयम पूर्वक तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें मोक्ष या भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। जो ऐसी बुद्धि न रख कर किसी लोक-परलोकही की कामना से श्रद्धा-संयम पूर्वक तीर्थ-यात्रा करते हैं, उनको अपने भाव तथा तीर्थ की शक्ति के अनुसार उचित फल प्राप्त होता है। जो किसी प्रसङ्ग में पड़ कर तीर्थ-सेवन करते हैं; तीर्थ की वस्तुगत स्वाभाविक शक्ति के अनुसार उनके न्यूनाधिक पापों का नाश होता है। जो दूसरों के लिये तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें उसका सोलहवाँ हिस्सा मिलता है और जिसकी कुशा की मूर्ति बना कर उसे तीर्थ में स्नान कराया जाता है, उसको आठवें हिस्से का फल मिलता है। किसी भी प्रकार हो, तीर्थ-सेवन है लाभदायक ही।

भगवन्नाम का सर्वोपरि फल---जो कुछ भी न कर पाते हों—वे अपने घर में रह कर श्रीभगवान् का पवित्र नाम लें। इसी से उनको सब कुछ मिल जायगा। श्रीदेवहूतिजी भगवान् कपिलदेव से कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नामतुभ्यम्
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

(श्रीमद्भागवत ३।३३।७)

अहो! जिसकी जीभ पर आपका पवित्र नाम विराजता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो भाग्यवान् पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, 'तीर्थ-स्नान', सदाचार का पालन और वेद का स्वाध्याय सभी कुछ कर लिया, क्योंकि जो सब का परमफल है, वह उनको नाम के उच्चारण से ही मिल जायगा।

तीर्थों की बुरी स्थिति---अब अन्त में एक अप्रिय प्रसङ्ग पर कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। जैसे भगवत्परायण भजनानन्दी महापुरुषों ने अपने पुण्य बलसे तीर्थों को तीर्थ बनाया था, वैसे ही आजकल पापाचारी दांभिक लोगों ने उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया है। आजकल नामी-नामी तीर्थों पर जो पाप काण्ड होते हैं वे बड़े ही भयानक और रोमाञ्चकारी हैं। सच पूछा जाय, तो इन्हीं दुराचारों को देखकर अच्छे लोगों की श्रद्धा तीर्थों से हटी जा रही है। प्रत्येक तीर्थ-प्रेमी को इस ओर ध्यान देकर धर्म के नाम पर होने वाले इस पापाचार को रोकने की कोशिश करनी चाहिये। तीर्थों का यह दुरुपयोग शीघ्र ही नष्ट होजाना चाहिये। नहीं तो भारत के गौरवस्थल ये तीर्थ लोगों की अश्रद्धा के पात्र होंगे।

तीर्थों का वैज्ञानिक-महत्व

[लेखक-श्रीयुत डा० विश्वपालजी शर्मा, साहित्यरत्न]

हिन्दू धर्म-शास्त्र की प्रत्येक व्यवस्था विज्ञान के किसी न किसी गहरे तत्व पर आधारित है, यह विश्वास आज बहुत से वैज्ञानिकों के अन्वेषण का रहस्य बना हुआ है।

ईश्वर और सत्य की खोज और उसकी प्राप्ति की साधना जीवन विज्ञान का अब तक एक रहस्य पूर्ण अङ्ग है। हमारे ऋषियों ने इस रहस्य के अन्वेषण में जो सफलता प्राप्त की, उसे आज का सारा सभ्य कहलाने वाला संसार भारतीय दर्शन-शास्त्र के नाम से पुकारता है।

भारतीय दर्शन-शास्त्र त्रिविध विज्ञानों का एक रहस्य पूर्ण सम्मिश्रण और आज का 'मनो-विज्ञान' जिसे लेकर मनुष्य युग परिवर्तन की कल्पना कर रहा है, वह भारतीय दर्शन-शास्त्र की एक ऐसी शाखा है, जिसका हमारे दार्शनिकों ने अपने काल में पूर्ण व्यावहारिक और वास्तविक प्रदर्शन कर दिखाया था।

तीर्थों की स्थापना इसी मनोविज्ञान के एक गम्भीर और व्यवहारिक तत्व से सम्बन्ध रखती है। ईश्वर एवं सत्य का ज्ञान भारतीय जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा है और मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता और सफलता के लिये भारतीय दार्शनिकों ने संसार को ईश्वरवाद और सत्यनिष्ठा का ही सन्देश दिया।

आज का सभ्य संसार भौतिक और रासाय-निक तत्वों के ज्ञान पर भूला हुआ पशुता की ओर बढ़ रहा है। मनुष्य और मनुष्य में परस्पर व्यव-हार के ज्ञान से शून्य, प्राणी मात्र को सुखी बनाने के मानवी कर्तव्य से विमुख, ईश्वर और सत्य के ज्ञान से उदासीन, मानवी जीवन के आदर्श से बिलकुल दूर, पशुता, अहंकार, स्वार्थ और हिंसा में लिप्त—आज के वैज्ञानिक भौतिक तत्वों द्वारा मनुष्य जीवन को सुखी बनाने की कल्पना कर रहे
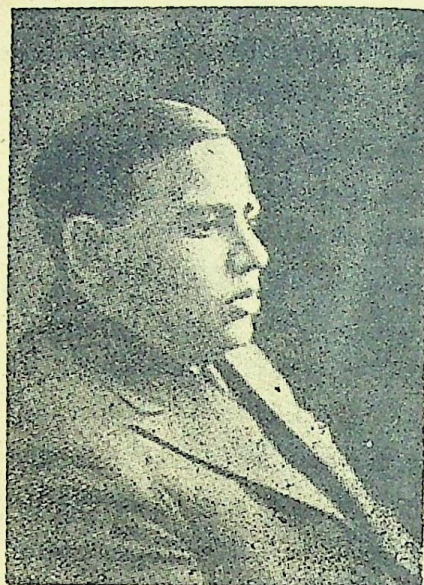
[इस लेख के लेखक]

हैं, किन्तु भारतीय ऋषियों ने यह बात भली भाँति समझ ली थी कि मनुष्य-जीवन में पूर्णता और शान्ति प्राप्त करने के लिये सत्य एवं ईश्वर का उपासक होना नितान्त आवश्यक है। जब तक मनुष्य ईश्वर-निष्ठ न हो, संसार के किसी कर्तव्य को पूरा नहीं कर सकता। इस निश्चय पर पहुँचने के साथ-साथ ही हमारे ऋषियों ने मनुष्य को ईश्वर-निष्ठ बनाने के साधनों पर विचार किया और इसके लिये सभी आवश्यक वैज्ञानिक तत्व खोज निकाले।

ईश्वरवाद जैसे गूढ़ तत्व को समझने के लिये जिन मानसिक तत्वों की आवश्यकता है और जिस मनोवैज्ञानिक परिस्थिति की आवश्यकता है, उसके सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन के उपरान्त हमारे दार्शनिकों ने मन्दिरों, तीर्थों और ऐसे केन्द्र-स्थानों की आवश्यकता अनुभव की, जहाँ एकत्रित होकर लोग भगवद्भक्ति की चर्चा सुनें और अपनी मान-सिक शक्तियों को ईश्वर प्राप्ति के लिये केन्द्रित करें।

तीर्थों की वैज्ञानिकता, पूर्णता और उनका

वैज्ञानिक महत्व इसी से प्रकट है कि सहस्रों वर्षों से विपरीत अवस्था में भी उनका अस्तित्व मनुष्यता के उपकार के लिये पूर्ण प्रतिभा के साथ विद्यमान है। आधुनिक विज्ञान ने ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की, जो इतने समय तक स्थायी रही हो, और जिसके द्वारा मनुष्यता को इतना लाभ हुआ हो।

आध्यात्मवाद के गूढ़ सिद्धान्तों के अतिरिक्त यदि हम केवल मोटे तौर पर सांसारिक दृष्टिकोण से ही विचार करें, तो हमें मानव जीवन की पूर्णता का तत्व इसी में दिखाई देगा कि हम मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिक से अधिक प्रेम उत्पन्न कर सकें, मनुष्य जीवन में अधिक से अधिक समता उत्पन्न कर सकें, मनुष्य मात्र के जीवन को शारीरिक आवश्यकताओं और मानसिक शान्ति से पूर्ण कर सकें। संसार के सभी विचारकों ने जीवन-विज्ञान के इस तत्व की ओर अधिक से अधिक विचार के उपरान्त मनुष्यों में परस्पर प्रेम बढ़ाने की योजनाएँ बनाईं। सभी मनुष्यों को एक सूत्र में बाँधने के लिये उस केन्द्रीय शक्ति की उपासना का प्रचार किया, जिसे सभी धर्म ईश्वर के विभिन्न नामों से पुकारते हैं। हमारे दार्शनिकों ने यह भली भाँति निश्चय कर लिया था कि जब तक मनुष्य ईश्वरीय सत्ता का पूर्ण उपासक बन कर परस्पर प्रेम के सूत्र में नहीं बँध जाता, तब तक संसार की कोई व्यवस्था मनुष्य के दुःखों का अन्त नहीं कर सकती। इसी लिये भारतीय वैज्ञानिकों ने भौतिक और रासायनिक तत्वों की ओर केवल उतना ही ध्यान दिया जितना उन्हें मनुष्य को ईश्वरवादी बनाने के लिये आवश्यक प्रतीत हुआ। इस ओर हमारे वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की खोज इतनी पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी कि अभी तक उसके प्रारम्भिक तत्वों को समझने में भी सारे संसार के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक असफल हो रहे हैं। मनुष्य मस्तिष्क की सूक्ष्म प्रति-क्रियाएँ और रासायनिक और भौतिक तत्वों का मनुष्य मस्तिष्क पर प्रभाव भारतीय वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने पूर्ण रूपेण निश्चय करके उनके सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ दी थीं। किस प्रकार का भोजन, किस प्रकार का आहार-विहार, किस प्रकार का वस्त्र यह सब कुछ पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर निश्चय किया जा चुका था और इन सभी वैज्ञानिक खोजों का लक्ष्य था मनुष्य मस्तिष्क को आत्म-ज्ञानी और ईश्वरनिष्ठ बनाना। इस थोड़े स्थान में हम उन सभी वैज्ञानिक बातों की चर्चा नहीं कर सकते जो हमारे वैज्ञानिकों ने जीवन विज्ञान के आवश्यक तत्वों के रूप में निश्चित करदी थी।

मनोविज्ञान के कुछ ऐसे तत्व हैं जिनका प्रभाव हम केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मस्तिष्क की आत्म प्रति क्रियाओं से ही निश्चय कर सकते हैं, तीर्थों के निर्माण में इन तत्वों का विशेष ध्यान रक्खा गया है। इन तत्वों में स्थान का महत्व सब से अधिक है। प्रकृति ने जहाँ अपना पूर्ण वैभव-प्रदर्शन कर रक्खा हो, वह स्थान मस्तिष्क की विचारक शक्तियों को केन्द्रित करने और उद्बोधित करने वाला होता है, यह वैज्ञानिक निश्चय है, अतएव ईश्वर और आत्म ज्ञान की चर्चा के लिये ऐसे केन्द्र स्थान चुने गये जिन्हें प्रकृति और ईश्वर ने स्वयं इस कार्य के लिये उपयुक्त बनाया था, इन स्थानों की प्राकृतिक विशेषता स्वयं ईश्वरवाद को प्रमाणित करती है।

स्नान का मनोवैज्ञानिक प्रभाव बड़ा विचित्र और तात्कालिक है, जल प्रकृति की सब से महत्व पूर्ण देन है और जल प्रकृति के सभी ललित कला पूर्ण निर्माणों का आधार है। अतएव हमारे सभी तीर्थ स्थान, नदियों और स्वच्छ जलाशयों के तट पर निर्मित हैं और इनमें स्नान का हमारे तीर्थ स्थानों में आवश्यक निर्देश है।

हम में से जो लोग अवतारों को अवतार ही मानते हैं उन्हें यह मानना चाहिये ईश्वर ने इन विशिष्ट स्थानों का निर्माण मनुष्य के कल्याण के लिये किया और स्वयं भी इन्हीं स्थानों को अपना क्रीड़ास्थल बनाया।

पाप और पुण्य की व्यवस्था—

जीवन विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले सभी सूक्ष्म तत्वों का विवेचन करके हानिकारक क्रियाओं का नाम पाप और उपयोगी क्रियाओं का नाम पुण्य रक्खा गया। संसार के सभी धर्माचार्यों ने पाप और पुण्य की व्याख्या की है। किन्तु मानव-शरीर और मस्तिष्क के निर्माण का इतना अच्छा वैज्ञानिक विवेचन और शरीर और मस्तिष्क की उन्नति और अवनति के कारणों का ऐसा स्पष्ट विभाजन जैसा भारतीय धार्मिक दार्शनिकों ने किया वैसा न तो आधुनिक कहलाने वाले वैज्ञानिक कर सकते, न किसी और धर्मज्ञ ने किया है। विलासिता और प्रतिहिंसा सभी धर्मों में पशु प्रवृत्तियाँ मानी गई हैं और पाप कर्मों का बहुत-सा आधार इन प्रवृत्तियों में मिलता है, इन प्रवृत्तियों को रोककर मनुष्य के विचभूक-मस्तिष्क को सतेज बनाये रखने और उसके द्वारा मनुष्य में मानवी व्यवहार की क्षमता उत्पन्न करने की सभी वैज्ञानिक विधियों का उल्लेख हिन्दू धर्म शास्त्रों में ही मिलेगा।

प्रायः प्रवृत्तियों को रोकने में तीर्थों का सबसे अधिक महत्व है और अब भी हमारे तीर्थ स्थान विधर्मियों तक को पुण्य और ईश्वरवाद का संदेश देते हैं।

प्रत्यक्ष रूप से और सहज बुद्धि से यह समझा जा सकता है, कि मनुष्यों को एकत्रित करके वह ज्ञान सुनाने के लिये जो दार्शनिकों ने गहरी तपस्या और विचार के पश्चात् प्राप्त किया था—किसी भौगोलिक केन्द्रीय एवं ऐसे स्थान की आवश्यकता थी, जो मनुष्य स्वभाव को आकर्षक प्रतीत हो। ऐसे स्थानों को बड़े अन्वेषण के बाद निश्चित करके उन्हें धार्मिक केन्द्र घोषित किया गया। यहाँ मनुष्यों ने धर्माचार्यों और धर्म विशेषज्ञों से सत्य और ईश्वर ज्ञान सम्बन्धी चर्चा सुनी और उसका प्रचार किया। ग्रहों की गति विधि आदि सभी आवश्यक एवं वैज्ञानिक विचार के उपरान्त वह पर्व निश्चय किये गये, जिनमें मनुष्यों को साधारण और दैनिक कार्य छोड़कर इन स्थानों पर एकत्रित होना आवश्यक था, वहाँ उन्हें पाप और पुण्य की शिक्षा दी गई और भगवद्-भक्त होने की प्रेरणा की गई। इस प्रकार तीर्थों की योजना कितनी सहज और वैज्ञानिक थी। उसका प्रमाण यह है, कि उस काल में भी जब रेल, तार और डाक की सुविधाएँ नहीं थी, यहाँ बहुत समारोह होता था, राष्ट्रीय पर्व अथवा किसी भी अवसर पर महीनों पहले बड़े-बड़े विज्ञापनों और ठहरने और यात्रा की बड़ी-बड़ी सुविधाओं के होते हुए भी ऐसी भीड़ नहीं होती, जैसी तीर्थों पर साधारण पर्वों पर भारी असुविधाओं के होते हुए भी होती है। तीर्थों की स्थापना को हजारों वर्ष बीत चुके। आज उनके महत्व का प्रचार शान्त हो चुका। आज की शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था तीर्थों और धर्म के विरुद्ध प्रचार कर रही है। समाचार पत्रों में पर्वों का महत्व नहीं छपता। किन्तु फिर भी आज जो समारोह हम तीर्थों पर देखते हैं उससे यह स्पष्ट है, इस विपरीत युग में भी तीर्थों का महत्व कितना शेष है और यह तीर्थ निर्माण में वैज्ञानिकता हमारे दार्शनियों की मनोवैज्ञानिक पूर्णता और तीर्थों के वैज्ञानिक महत्व का कितना स्पष्ट प्रमाण है।

मनुष्य जीवन को उत्कृष्ट बनाने, एवं पुण्य और पाप का ज्ञान कराने में तीर्थों का मनुष्य की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक क्रियाओं पर कितना सूक्ष्म और स्पष्ट वैज्ञानिक प्रभाव है, यह इतने थोड़े स्थान में लिखना सम्भव नहीं है, अतएव इस विवेचन को इन्हीं पंक्तियों में समाप्त किया जाता है। अवसर हुआ तो फिर कभी 'नाम-माहात्म्य' के प्रेमी पाठकों को इस अवगत करने की चेष्टा करेंगे।
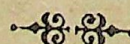
तीर्थ-साहित्य

[लेखक—श्रीयुत प्रो० सत्येन्द्रजी एम० ए०, सम्पादक-'साधना']

भारत के धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में तीर्थों का एक विशेष स्थान है। उसमें तीर्थों का जाल-सा पुरा हुआ है। चारों धाम उसकी राष्ट्रीयता एकता की पताका फहरा रहे हैं। अन्य विविध तीर्थ-स्थल भारत के कोने-कोने के मनुष्यों को मिलाने का कार्य करते हुए उस भौगोलिक राष्ट्रीय एकता को प्रतिदिन और प्रतिक्षण सजीव भाव रूप में मूर्त बना रहा है। तीर्थाटन की धार्मिक योजना में कौन कह सकता है। इस देश की महान् एकता को सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं था? ये तीर्थ संस्कृति के प्रबल निर्माणक थे। यहाँ पर धर्म और अध्यात्म के जिज्ञासुओं के समानार्थ सदा धर्म के आचार्य और पहुँचे हुए साधु-पुरुषों का निवास रहा है और आज भी रहता ही है। वे निरन्तर भारत की संस्कृति और धर्म की रूप रेखा स्पष्ट करते रहते हैं। ये तीर्थ विद्या-क्षेत्र भी रहे हैं। गुरुओं के पास उपनिष्ठ होकर विद्यार्थी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा पाते रहे हैं।

यही नहीं, सभी तीर्थ-स्थल विशेष प्राकृतिक सौन्दर्य श्री से आवृत रहते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेम करने वाले व्यक्तियों को इन तीर्थ-स्थलों में यों भी मन को मोहने वाली सामग्री मिल सकती है।

ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं ये तीर्थ, फिर भी कितने खेद की बात है, कि हमारे साहित्य-निर्माताओं ने इन पर कुछ लिखने का विशेष कष्ट नहीं उठाया। किसी ने कैलाश यात्रा, किसी ने गंगोत्री या रामेश्वर या द्वारका, या अमरनाथ आदि की यात्रा का वर्णन कर दिया तो कर दिया। कुछ पुस्तकें 'माहात्म्य' के नाम से मिलती हैं—मथुरा माहात्म्य, सोरों माहात्म्य, प्रयाग माहात्म्य आदि। इनमें भी वह वस्तु नहीं मिलती जो तीर्थ-साहित्य में होनी चाहिये। बहुधा ये पुस्तकें तीर्थ-यात्रियों को बहकाने और ठगने के निमित्त होती हैं और प्रामाणिकता का इनमें बहुत अभावसा रहता है। गंगा का इतिहास लिखने की जैसी योजना जैसी रूप-रेखा पं० श्रीराम शर्मा ने उपस्थित की है वह भी सराहनीय समझी जा सकती है। उस इतिहास में निश्चय ही उत्तरी भारत के अनेकों प्रमुख तीर्थों का उल्लेख होगा। पर वह इतनी विशद है, कि अभी केवल आकाश कुसुम-सी प्रतीत होती हैं। उधर प्रयाग में प्रौफेसर दयाशङ्कर दुवे को इस प्रकार के साहित्य से विशेष भक्ति है और वे इस दिशा में कुछ प्रयास कर रहे हैं।

वस्तुतः तीर्थ-साहित्य के निर्माण की आज हिन्दी में अत्यन्त आवश्यकता है। वह साहित्य वैज्ञानिक शैली में लिखा जाना चाहिये। उसकी एक मोटी रूप-रेखा यहाँ सुनाई जा सकती है।

तीर्थ-साहित्य में सबसे पहले उसकी भौगोलिक-स्थिति का वर्णन होना चाहिये। फिर उस स्थान पर बसने वाले मनुष्य समुदाय का इतिहास होना चाहिये, उसमें यह बताया जाय कि कौन मानव-वर्ग प्रायः कब यहाँ बसा। उस तीर्थ के सम्बन्ध में विविध पुराणोंमें जो उल्लेख हो उसे देकर उसके माहात्म्य की धार्मिक, वैज्ञानिक और युक्तियुक्त व्याख्या होनी चाहिये। उस तीर्थ के विशेष देवता कौन-कौन हैं? उन देवताओं और उनकी पूजा की विधि से वहाँ के निवासियों की मानसिक तथा अमानसिक प्रवृत्तियों का कहाँ तक साम्य है? उन्होंने उस पूजा को क्यों-क्यों अपनाया और क्यों अपनाने दिया? तीर्थ का मूल कहाँ है? प्राकृतिक शोभा में, किसी काल में उसकी ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक अथवा सामाजिक महत्ता में, किसी महान पुरुष या संस्था, सिद्ध या ऋषि का

विशेष स्थल होने में किसी धर्माचार्य के द्वारा प्रतिष्ठापित होने में अथवा किसी अन्य ऐसी ही बात में उस तीर्थ का मूल्य क्या है ? उस तीर्थ की शक्तियों का विविध कथनों और दन्त कथाओं से परिपुष्ट किया जाना चाहिये। यहीं यह देखना होगा कि तीर्थ के कला-कौशल का क्या रूप है ? लोगों के रहन-सहन का क्या प्रकार है—अर्थात् तीर्थों का सांस्कृतिक मूल्य क्या है ? प्रत्येक तीर्थ की अपनी संप्रदाय-धारा कोई है क्या ? वह किसी विशेष भाव-संपत्ति का आगार है क्या ? विविध राजनीतिक परिवर्त्तनों में उस तीर्थ ने किस प्रकार अपने को बनाया या संभाला है ? अन्य अनेकों तीर्थों की तुलना में इस तीर्थ की निजी विशेषतायें क्या है ? ऐसी ही विविध बातों पर तीर्थ-साहित्य लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिये पर इन्हें लिखते समय यह अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यथा सम्भव प्रत्येक कथन युक्ति युक्त और प्रमाण-पुष्ट हो।

इस प्रकार की साहित्य-रचना से भारत की संस्कृति के एक महान् अङ्ग पर प्रकाश पड़ जायगा। देश के इतिहास की विविध धर्म और भाव की धाराओं को क्रिया--प्रतिक्रियाओं का विशद ज्ञान उपलब्ध होगा। सबसे बड़ी एक आवश्यकता की पूर्ति यह होगी, कि हमें तीर्थों की ओर नया आकर्षण उत्पन्न होगा और इन तीर्थों का नया उपयोग हो सकेगा। नूतन दृष्टिकोण से भी इनका माहात्म्य स्थिति रखना भी आवश्यक है।

तीर्थों का आध्यात्मिक महत्त्व

[लेखक—श्रीयुत पं० श्रीरामजी शर्मा, सम्पादक-"अखण्ड-ज्योति"]

विज्ञान बतलाता है कि विश्व में किसी पदार्थ का नाश नहीं होता। समयानुसार वस्तुओं के स्वरूप में परिवर्तन होता है, परन्तु उनका मूल रूप किसी प्रकार नष्ट नहीं हो सकता, हजारों वर्ष पूर्व जो जड़ या चेतन पदार्थ मौजूद थे,वे आज अप्राप्य नहीं होगये हैं वरन् यदि हम तलाश करें तो आज भी उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

ग्रामोफोन के रिकार्डों में बन्धित शब्दावली असंख्य वर्षों तक उसी रूप में प्रतिध्वनित होती रहती है जिस रूप में कि मूल वक्ता ने उसका उच्चारण किया हो। ऐसे कितने ही रिकार्ड आज भी हम सुनते हैं जिनके मूल वक्ताओं के शरीरों का अवसान होगया। इससे प्रतीत होता है कि किसी प्राणी के शरीर का अन्त होजाने पर भी उसकी असंख्य विशेषताओं का नाश नहीं होता वरन वह विश्व के अन्तराल में अपनी सत्ता को बनाये ही रहती हैं। विज्ञान स्वीकार करता है कि विद्युत शक्ति या विशिष्ट यन्त्रों की सहायता से केवल उन्हीं पदार्थों को उत्तेजित या प्रकट किया जा सकता है जो संसार में उस समय मौजूद है। कोई भी यन्त्र अभाव को भाव के रूप में प्रकट नहीं कर सकता। मुख से निकले हुए शब्दों के परमाणु वायुतत्व (Ether) में कम्पन उत्पन्न करते हुए लहरों की तरह बहते रहते हैं। यन्त्रों की सहायता से विज्ञान उन्हें पकड़ने में समर्थ होगया है, तदनुसार ग्रामोफोन और रेडियो में अन्यत्र या अनुपस्थित व्यक्ति के शब्द हम सुनते हैं। यदि स्वाभाविक रूप से वे शब्द कम्पन प्रवाहित न होते रहते तो कदापि कोई यंत्र उन्हें पकड़ नहीं सकता था। यन्त्रों की तो इतनी ही सामर्थ्य है कि जिन उपस्थित वस्तुओं का अनुभव करने में हमारी इन्द्रियों की शक्ति न्यून है उन अनुभवों को करादें। दूरबीन, अणुवीक्षण यन्त्र, टेलीफून लाउड-स्पीकर, रेडियो, टेलीविजन आदि यन्त्र

हमारी आँख कान आदि इन्द्रियों को कुछ सहायता प्रदान करते हैं। विश्व के मूल तत्त्वों में हस्तक्षेप करने की इनमें सामर्थ्य नहीं है।

ग्रामोफोन के रिकार्डों द्वारा बहुत समय पूर्व कहे हुए शब्दों को आज हम सुनते हैं। खोज करने पर पता चला है कि बहुत समय पूर्व-यहाँ तक कि सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए शब्दों की लहरें भी अभी तक सूक्ष्म रूप से किसी न किसी तत्त्व में विद्यमान हैं और उनके आधार पर सृष्टि की रचना का अन्वेषण होरहा है। कुछ समय पूर्व भारतवर्ष के तानसैन नामक गायक का गान संसार में श्रेष्ठ समझा जाता था, परीक्षा से मालूम हुआ है कि तानसैन के गाने अभी तक वायु में बहुत स्पष्ट कम्पन कर रहे हैं। अमेरिका के वैज्ञानिक उन ध्वनि-लहरियों को यन्त्रों में आबद्ध करके रिकार्ड बनाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। जैसे-जैसे बालक भौतिक विज्ञान बड़ा होता जायगा, वैसे ही वैसे वह अपने पिता आध्यात्मिक विज्ञान की सचाइयों को स्वीकार करता जायगा। उनकी बुद्धि को हम क्या कहें जो बालक भौतिक विज्ञान की पिछली खोजों के आधार पर सुदृढ़ सत्यों को मानने में हिचकिचाहट करने लगते हैं।

प्राचीन काल में जिन स्थानों पर विशेष धर्म कृत्य हुए हैं, किसी शक्तिशाली देवता या महापुरुष का निवास स्थान रहा है, जहाँ धर्म-प्रसङ्ग, तपोनिष्ठा, विद्योपार्जन आदि के शुभ कार्य हुए हैं उन्हें ही इस समय तीर्थ स्थान समझा जाता है। भारतीय महापुरुष अपनी आत्म शक्ति का विकाश करने में बहुत आगे तक सफलता प्राप्त कर चुके हैं, वे जहाँ तक पहुँच चुके हैं, वहाँ तक का अनुभव वर्णन कर चुके हैं धीरे-धीरे भौतिक विज्ञान उन बातों को सत्य और सम्भव स्वीकार करता जाता है। अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों को कुछ दिन पूर्व शेखचिल्लियों की कल्पना कहा जाता था, पर आज तो विज्ञान स्वीकार करता है कि शरीर के कुछ विशिष्ट तत्त्वों में कमीवेशी करने की क्रिया ज्ञात हो जावे, तो जीवित मनुष्य अदृश्य बन सकता है, हवा या पानी में उड़ फिर सकता है। हाँ, तो आध्यात्म विज्ञान के आचार्यों ने तीर्थ स्थानों का चुनाव करने में, उनका शिलान्यास करने में बड़ी दूर की दिव्य दृष्टि से काम लिया है। हम देखते हैं कि बहुत से तीर्थ दुर्गम पर्वतों की चोटियों पर, भयङ्कर वन्य प्रदेशों में, घाटियों में, यातायात के लिए कष्टकर स्थलों में उपस्थित हैं। इस समय हमें ऐसा लगता है कि ऐसे बेढंगे स्थानों पर क्यों तीर्थों का निर्माण हुआ ? उनके निर्माण-कर्ताओं ने आगन्तुकों की कठिनाइयों का ध्यान क्यों नहीं रखा ? जानना चाहिये कि हमारी स्थूल बुद्धि जहाँ यातायात की कठिनाइयों तक ही जाकर अटक जाती है वहाँ हमारे पूर्वजों की दृष्टि बहुत बारीकी के साथ निरीक्षण करने में सफल हुई है। तीर्थों की भूमि का चुनाव उन्होंने उन स्थानों पर, किया है जहाँ उसी प्रकार के तीर्थ पहले कल्पों में थे। प्रलय होने पर भू-भागों का रूपान्तर होता रहा है परन्तु तत्त्व दर्शियों ने उन पुण्य स्थलों को ढूँढ़ ही निकाला है। अनेक कल्पों में जो जो स्थल पवित्रता के परिमाणुओं से परिपूर्ण रहे हैं, वही वही स्थान साधना के लिए अधिक उपयुक्त समझ कर उन्होंने असंख्य वर्षों और शरीर व्यय करने के पश्चात् वह स्थान ढूँढ़े और पुनः वहीं तीर्थों की स्थापना की। भारतीय तीर्थों की यह विशेषता है कि वह नवीन नहीं है। उनकी स्थापना का समय वहाँ के अन्तिम महानुभाव के जन्म मरण के लेखे के अनुसार नहीं नापना चाहिए। मथुरा, अयोध्या, काशी, प्रयाग, प्रभृति तीर्थ कुछ शताब्दियों या सहस्राब्दियों से ही स्थापित नहीं हैं इन भूमि खण्डों में असंख्यों बार असंख्य तीर्थ रहे हैं और जब तक विश्व रहेगा तब तक होते रहेंगे-भले ही उनके नाम और रूपों का परिवर्तन होता रहेगा।

विचार धाराएँ जहाँ से प्रवाहित होती हैं लौट कर फिर वहीं आजाती हैं। भौतिक विज्ञान

कहता है कि विश्व एक गोला है जो वस्तु जहाँ से चले भी उससे वापिस आकर ठहरने का वही स्थान होगा। आध्यात्म विज्ञान कहता है कि दूसरों के साथ भलाई करने या बुराई करने का बुरा भला परिणाम, करने वाले को अवश्य मिलता है। मानस शास्त्र इसको यह बतलाता है कि जिस प्रकार गेंद को जिस ओर से फेंक कर किसी चीज़ में मारा जाय वह ठोकर खाकर उसी ओर उतने ही वेग से वापिस आती है, उसी प्रकार जो भले बुरे विचार या कार्य किये जाते हैं वे संसार के अन्य पदार्थों से टकराते हुए अपने मूल प्रेषक के पास लौट आते हैं। तीर्थ स्थानों में उत्पन्न हुई या निवास करने वाली विभूतियों की दिव्य आध्यात्मिक धारा प्रवाहित होकर सर्वत्र घूमती है और अन्त में अपने उद्‌गम स्थान पर आकर ठहरती है। इस प्रकार असंख्य महात्माओं की शक्ति के मेघ उन तीर्थ स्थानों पर मेघमाला की तरह छाये रहते हैं। जो गङ्गाजल से भी मदिरा बनाने में दत्त-चित्त रहते हैं। ऐसे अभागे व्यक्तियों की बात छोड़िये वे तो तीर्थ क्या साक्षात् स्वर्ग में रहें तो भी पापों की दुर्गन्धि ही कुरेदेंगे। अन्यथा जिनमें थोड़ी भी विवेक बुद्धि है, जिनकी आत्मा में थोड़ा भी प्रकाश है, वह पुरुष तीर्थ स्थानों पर जाकर अद्भुत शान्ति का अनुभव करता है, उसे प्रतीत होता है कि यहाँ का वातावरण इस समय भले ही कोलाहल-पूर्ण हो पर उसके अन्तराल में एक ऐसी शान्ति छिपी हुई है, जो भावुक हृदयों को छूती है और उन्हें एक दिव्य सन्देश प्रदान करती है।

क्या व्रज-भूमि में से भगवान् कृष्ण चले गये ? ऐसा समझना अपने आपको अँधेरे में रखना होगा। जिनकी आँखें हों, वे देखें कि श्याम की साँवली मूर्ति यहाँ की लता-कुञ्जों में अब भी झाँकती है, उस सलौनी छवि को यमुना अपने नेत्रों में अब भी छिपाये हुए है, कदम्ब के कुंजों में अब भी व्रज-विहारी झूलते दृष्टि गोचर होते हैं। जिनके कान हों, वे सुनें मन्द पवन के परमाणु अब भी वंशी की ध्वनि से गुञ्जित होरहे हैं, करील की हीस की कटीली झाड़ियों की सनसनाहट वीणा की झंकार से बिनादित है। जिनके विवेक-बुद्धि हो वे अनुभव करें कि युग बदल गये अवश्य-वे शरीर दिखाई नहीं पड़ते अवश्य-परन्तु वह सारा तत्त्व ज्यों का त्यों वर्तमान है, उसमें राई रत्ती भर भी अन्तर नहीं आया है। ज्ञान और वैराग्य की, प्रेम और भक्ति की, त्याग और तपस्या की, प्रेम और सेवा की अजस्त्र धाराएँ इन पुण्य-स्थानों के एक-एक परमाणु से प्रवाहित हो रही हैं। ऐसे बन्दनीय स्थानों में भला किसे आध्यात्मिक शान्ति न मिलेगी ? ऐसे पुण्य भूखण्डों का आध्यात्मिक महत्त्व भला कौन मूढ़ न समझेगा ? तीर्थों की महिमा का शास्त्रीय वर्णन व्यर्थ नहीं है, वह न तो अत्युक्ति पूर्ण और न दंभमय । सचमुच तीर्थ स्थानों का महत्त्व अपार है उनकी धूलि में लोट कर '*काक होंहि बक, पिकहु मराला।*'

बालक भौतिक विज्ञान जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है वैसे ही वैसे तीर्थ स्थानों का मानसिक महत्त्व स्वीकार करता हुआ श्रद्धा से झुकता जाता है। वृद्ध आध्यात्म विज्ञान अपने श्वेत केशों के बीच में से नेत्र अपकाता हुआ कहता है—मनुष्यों करोड़ों वर्ष हुए वे अनुभव के आधार पर मेरी घोषणा है कि तीर्थों का आध्यात्मिक महत्त्व महान है।

श्रीवृन्दावन

[रचयिता—पूज्यपाद श्रीभगवतरसिकजी]

नमो-नमो वृन्दाबनचंद।
नित्य, अनन्त, अनादि एकरस पिय प्यारी बिहरत स्वच्छंद ॥
सत्, चित, आनँद-मय खग, मृग, द्रुम, बेलीवर वृन्द।
'भगवतरसिक' निरंतर सेवत मधुप भये पीवत मकरन्द ॥

एक तीर्थ यात्रा की स्मृति

[लेखक—श्रीदेवकीनन्दनजी 'बन्सल' सम्पादक—'हिन्दू गृहस्थ']

हरिद्वार से कनखल जाने का हमने निश्चय कर लिया था। क़रीब ३ बजे के तांगा बुलाया और सब बैठकर चल दिये। बादल हो आये थे, संभावना होती थी कि बूँदे पड़ने लगेंगी। मार्ग के वे सुहावने दृश्य, गङ्गा की निर्मल धारा, पहाड़ों के छोटे-छोटे झरने और सघन लता वृक्ष कुञ्जों की मनोहर दृश्यावलियाँ, जब याद आती हैं, तो हृदय चाहता है कि अभी उड़कर पहुँच जाँय, या मनोज सिद्धि प्राप्त करलें। मैंने बम्बई का 'तुलसी तलाब' और कलकत्ते का बोटैनिक गार्डन भी देखा है। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ बहुमूल्य वनस्पतियाँ हैं, लताएँ हैं, कमल हैं और सुन्दर पुष्प हैं, परन्तु वह शान्ति नहीं जो कनखल में है, ऋषिकेश में है और स्वर्गाश्रम में है। पुष्कर क्षेत्र के मार्ग में सूखी झाड़ियाँ देखकर जो शान्ति मिलती है और वृन्दावन की करील कुञ्जों में जो शक्ति नृत्य करती है वह 'लाहोर' के सालामार बाग में नहीं।

कनखल में गङ्गा स्नान किया और शिव पूजन भी। जिस समय हम लोग शिव पूजन कर रहे थे, मेरी पत्नी के नेत्रों से अश्रु बह रहे थे, रमेश (पुत्र, उस समय आयु १ वर्ष) एक टक देख रहा था और मैं कुछ और ही अनुभव कर रहा। पूजन करने के बाद अब हम हाथजोड़कर आशुतोष श्रीशङ्कर की विनय कर रहे थे, उस समय जो आनन्द विभोरावस्था प्रभु ने प्रदान की, अगर वह निरन्तर मिल जाय, तो यह संसार जिसके पीछे हम पागल बने घूम रहे हैं,वास्तव में तृणवत् हो जाय। मैंने आँखें खोली, किसी ने मुझे धक्का देकर फेंक दिया—बाहर आया, पत्नी ने कहा "आध घन्टे से ज्यादा होगया तुम्हें" मैंने सोचा 'प्रभु! क्या कभी आधा युग भी ऐसे बीत सकेगा ?'

तीर्थों में सच्चे मनुष्य रहते हैं। क्षमा और प्रेम का आदर्श उनसे हमें सीखने को मिलता है।

दोपहर के १ बजे क़रीब एक मील पहाड़ी चढ़ाई के बाद हम 'तपोवन' नामक परम-रम्य स्थल पर पहुँचे। झरनों की ऐसी विशाल दृश्यावली मैंने अभी तक नहीं देखी। विचार था कि लौट आने पर भोजन का प्रबन्ध किया जायगा। परन्तु तपोवन पर क्षुधा ने ऐसा प्रबल प्रहार किया कि हृय सब के सब तिलमिला उठे।

वहाँ एक कुटी में,क़रीब पाँच,छः महात्मा पुरुष रह रहे थे। मैंने उनसे विवश होकर कहा कि 'बाबा हमें तो बड़ी भूख लग रही है, अगर आटा इत्यादि हो तो रोटी बनवालें।'

"हाँ! हाँ! बड़ी प्रसन्नता से, भगवान् का स्थान है, उनकी दया से सब उपस्थित है" महात्मा ने कहा। उड़द की दाल, आलू का शाक और रोटी बनीं। परन्तु एक बात और हुई। पत्नी को हाथ की रोटियाँ बनानी नहीं आतीं। जब सब सामान तय्यार होगया और रोटियों का नम्बर आया, तो बेलन की मांग की गई। उत्तर मिला "यहाँ बेलन तो है ही नहीं, सब हाथ से बनाकर खाते हैं"

हम लोग सन्न रह गये। क्या करते? विवशता थी। रोटी बनाने को हम प्रयत्नशील थे, इतने ही में दो एक महात्मा आये उन्होंने स्वयं चौके में जाकर रोटियाँ बनाकर हमें खिलाईं। हमको तो स्वप्न में ही ऐसी सम्भावना न थी।

तीर्थों में अतिथि सत्कार और सेवा का सजीव चित्र मिलता है। तीर्थ हमारे लिए गुरु हैं, वहाँ हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

धर्मवीर श्रीयुत सेठ चिरंजीलालजी लायलका का तीर्थ-विषयक सन्देश

(श्रीसेठ लायलकाजी)

हमारे पावन तीर्थ, चाहे वे जड़ हों अथवा जङ्गम, सदैव से ही धर्म और आर्य-सनातन संस्कृति की लौकिक एवं पारलौकिक सिद्धि-साधकता में, लोक-सेवा, भगवद्भक्ति, लोक-संग्रह, तथा लोक-कल्याण के केन्द्र रहे हैं। इनने हमारी परम्परा, श्रद्धा और विश्वास की सतत रक्षा की है। इनकी प्रेरणा के अमर अमी को जिन-जिन ने जाने या अनजाने में सच्चे अर्थ में पिया, वे सहज ही में अपना जीवन सफल बना गये। गौ माता हिन्दुओं की सचेतन धर्म-ध्वजा है तथा बहुत अंशों में सच्चा तीर्थराज भी हैं। यही विश्व की-मानवमात्र की-संजीवनी शक्ति भी हैं।

गोलोकधाम, पावन व्रजभूमि, उसी तीर्थराज की उद्गम-गाय की गंगोत्री है। यदि ऐसे पवित्र स्थान--तीर्थ ही नहीं, अपितु तीर्थों से बहुत ऊँचे पुनीत धाम में हम गो हत्या बन्द कराकर इसकी शुद्धि कर सकें, तो हमारा जीवन, लोक--परलोक सभी सफल और धन्य हैं। तभी सच्चे तीर्थ--तत्त्व को हमारा पहिचानना माना जायगा और तभी हम तीर्थ के वास्तविक फल पाने के अधिकारी बन सकेंगे। अन्यथा हमारा क्या भविष्य होगा, यह भगवान् गोपाल ही जानें।

आज तो देश की—पवित्र गोलोकधाम श्रीव्रज की—पावन भूमि इस वास्तविक तीर्थ (गौ) के रक्त से कलङ्कित है। क्या हमलोग इस कलंक को अपने मस्तक से दूर करने में प्रयत्नशील होंगे?

आकाङ्क्षा

[लेखक—भारती--भूषण, वाणी--विशारद, कविता-कलाधर, काव्य-कौस्तुभ, व्याख्यान-वारिधि, साहित्य-रत्न, संकीर्तन सुधानिधि, गोस्वामी श्री पं० 'बिन्दुजी' महाराज]

अवधनाथ, वृजनाथ, तुम्हारा सदा सदा मैं दास रहूँ।
जहाँ जहाँ भी जन्मूँ जग में पद पंकज के पास रहूँ॥
मणि पर्वत, या गोवर्धन गिरि का तृण मूल बना देना॥
या प्रमोद वन, या वृन्दावन का फलफूल बना देना॥
या सरिता सरजू, या कालिन्दी का कूल बना देना।
अवध भूमि, व्रजभूमि, कहीं के पथ की धूल बना देना॥
या बनकर शर चाप रहूँ, या बनकर बंशी बाँस रहूँ।
जहाँ जहाँ भी जन्मूँ जग में, पद पङ्कज के पास रहूँ॥
वृज निकुञ्ज की बाट बनूँ, या अवधपुरी का हाट बनूँ।
बनूँ सुदामा अश्रु 'बिन्दु' या केवट गङ्गा घाट बनूँ॥
या वृजेश का गुणगायक, या कौशलेश का भाट बनूँ।
शुक का हृदय बनूँ, या नारद की वीणा का ठाट बनूँ॥
युगल नाम का जप करता, प्रतिपल, प्रतिक्षण, प्रति स्वाँस रहूँ।
जहाँ जहाँ भी जन्मूँ जग में, पद पङ्कज के पास रहूँ॥
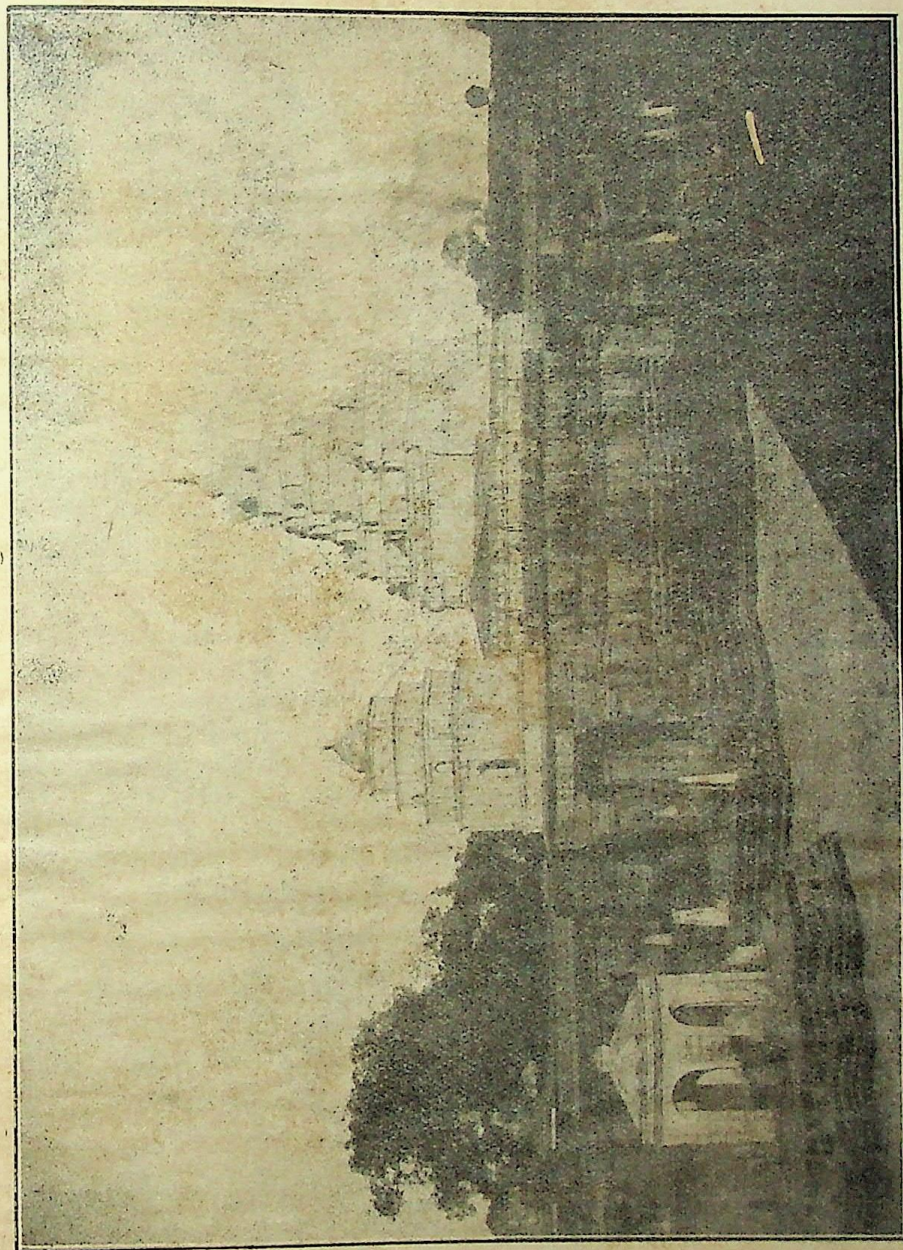
श्रीनागेश्वरका मन्दिर (श्रीद्वारिकाजीके पास)
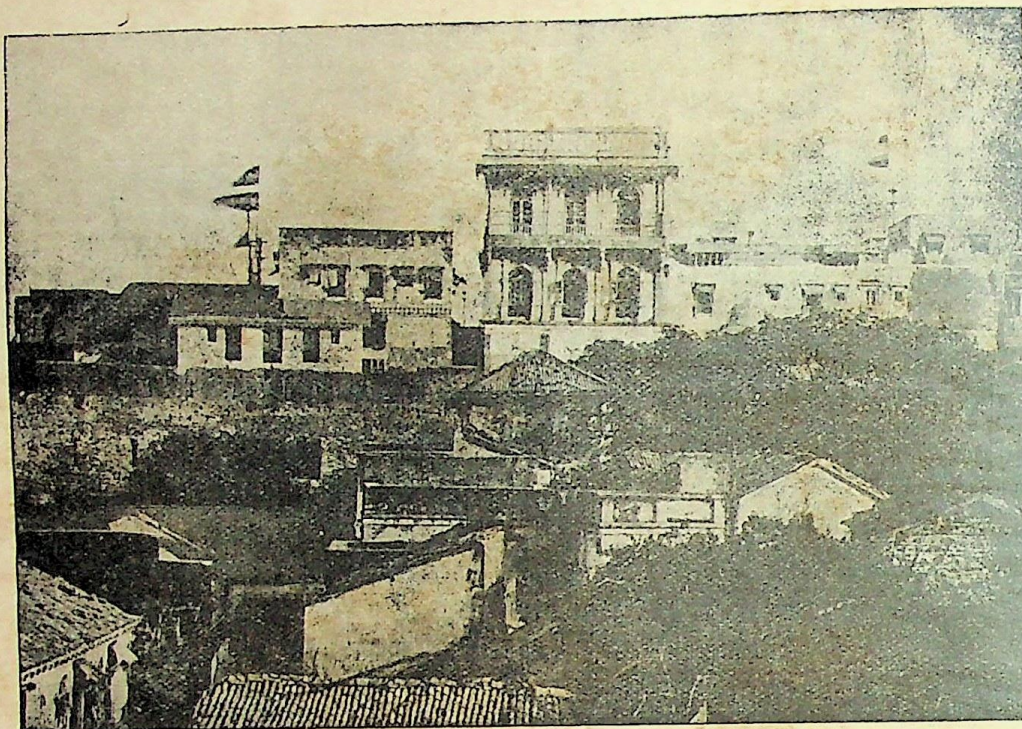
श्रीद्वारिकापुरी बेट
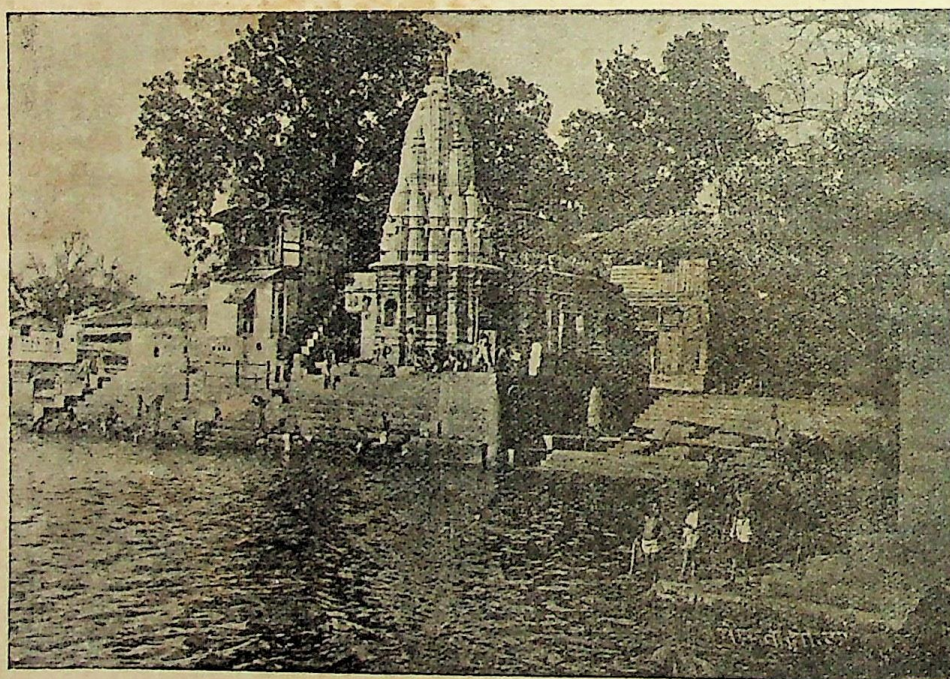
गोमती द्वारिका

तीर्थों में अश्रद्धा के कारण

[लेखक-भक्तवर सेठ श्रीबालकृष्णदासजी खेमका]

जिनका मन संसार के अशान्त वातावरण से ऊब जाता है, वे परम शान्ति लाभ करने की इच्छा से अपने जीवन के बचे-खुचे अमूल्य समय को तीर्थों का आश्रय लेकर वहाँ के निवासी सन्त महानुभावों के त्रितापहारी, परम शान्तिकारी उपदेशामृतों को सुन कर संतप्त हृदय को शान्ति पहुँचाते थे। क्योंकि शास्त्रों में लिखा है:—

"तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता"

अर्थात्—अपने हृदय मन्दिर में श्रीहरि को विराजमान किये हुए महात्मा लोगों से ही तीर्थ का तीर्थत्व यथार्थ रूप सिद्ध होता है।

हमें श्रीमद्भागवत, श्रीरामायण आदि धर्म-शास्त्रों में इस बात का प्रमाण मिलता है कि तीर्थों में ही इन जगत मङ्गलकारी ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

श्रीरामायण के इतिहास का प्रारम्भ प्रयागराज में श्रीयाज्ञवल्कमुनी और श्रीभरद्वाजजी द्वारा प्रश्नोत्तर के रूप होते हैं। माघ का महीना मकर संक्रान्ति में प्राय: प्रयागराज में ऐसे विचारवान् पुरुषों का समागम होता है। ऐसे सुअवसर पर ही श्रीयाज्ञवल्क मुनी को श्रीरामचरित पिपासु स्थानीय सन्त भी भरद्वाजमुनी ने एक समय प्रार्थना करके श्रीरामचरित सुनने की इच्छा से अपने आश्रम में रक्खा और यहीं पर श्रीरामायण ग्रन्थ का प्रणयन हुआ। क्योंकि भगवान् श्रीगीता जी में कहते हैं कि:—

मच्चित्तामद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्चमां नित्यं तुष्यंन्तिच रमन्तिच॥

इस प्रकार हमें यह पता लगता है कि ऐसे भगवदीय जन सन्त महानुभावों के चित्त निर्मल-कारी उपदेशों का सौभाग्य हमें तीर्थों में ही प्राप्त हो सकता है।

वर्त्तमान समय में व्यापारिक और आर्थिक समस्यायों के कारण हम व्यवसाय प्रधान शहरों में उतना सत्संग का लाभ नहीं उठा सकते? दिन रात व्यवसाय में संलग्न रहने के कारण सत्संग के लिये समय नहीं मिलता है। अतः हमारा कर्त्तव्य होता है कि हम अपने अनादिकाल से विषय-वासना में फँसे हुये मनको श्रीहरि के चरण कमल में लगाने के लिये तीर्थों में जाकर उन भगवत् चरणानुरागी सन्तजनों की खोज करें और उनके उपदेशानुसार जीवन को बनाने की चेष्टा करें।

हमें श्रीवृन्दावन के एक प्रसिद्ध रसिक सन्त जब कलकत्ते पधारे थे, तब की घटना के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि वे एक कलकत्ता निवासी सेठ के यहाँ निमन्त्रित किये गये, वहाँ उन से सत्संग होरहा था, सत्सङ्ग में उस सेठ के भाई ने कहा:— महाराज आप श्रीवृन्दावन की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं हम तो एक दफा वहाँ गये थे सो वहाँ तो बड़ी गन्दगी है। तब महाराज ने बड़े मार्मिक शब्दों में उनसे कहा कि आप श्रीवृन्दावन तो नहीं गये थे, आप तो वहाँ की चमक-दमक और नाले मोरी की सफाई देखने गये थे, यदि आप श्रीवृन्दावन की भावना लेकर जाते तो वहाँ पर जो सन्त-जन अपना सर्वस्व छोड़ कर केवल श्रीवृन्दावन की "रज" का आश्रय लिये पड़े हैं, "फटी गुदड़ी" और फूटा करवा (एक प्रकार का व्रजरज का बना हुआ जल का पात्र) ही उनके जीवन निर्वाह की सर्वस्व सामिग्री है और न किसी से कुछ कहते हैं न लेते हैं। सब दिन और सब रात श्रीवृन्दावनेश्वर श्रीवृन्दावनेश्वरी के लीला, कथा में मग्न और उनके दिव्य नामों का उच्चारण करते हुये श्रीवृन्दावन की दिव्य लताओं में पड़े हैं, उनसे मिलते तो आपका श्रीवृन्दावन जाना सफल होता। आप तो मोटर में गये और धूल उड़ाकर चले आये।

उनका यह मर्मस्पर्शी उपदेशपूर्ण उत्तर सुन कर बैठे हुये सभी भक्तगण, 'तीर्थ के महत्त्व का पता स्थानीय सन्तों के दर्शन से ही लग सकता है।' ऐसा अनुभव करने लगे।

अतः हम तीर्थों में उन बातों की खोज ही नहीं करते। जिसके लिये ये तीर्थों का प्रागट्य हुआ है। हम तो वहाँ जाकर भी अपनी वही भोग-विलास आनन्द-प्रमोद की सामग्रियों की ही तलाश करते हैं, जिसके कि हम अनादि काल से आदि हैं। हमारी ऐसी मनोवृत्तियों के कारण ही वहाँ के निवासी ग्रामीण जीवन से पले हुये अपढ़ भोले-भाले मनुष्य हमारी कुत्सित वासनाओं को हमारी ऊपरी चमक-दमक में फँस कर हमारे साथ चरितार्थ करने के लिये दृढ़ होजाते हैं और फिर हम उन्हीं को दोषी ठहराकर तीर्थों की निन्दा करने में नहीं हिचकते, यह है तीर्थों में प्रधान अश्रद्धा का कारण।

अतः हमें चाहिये कि हम तीर्थों में तो अपनी कुत्सित चेष्टा को झलकती बनाने की भूल कर भी चेष्टा न करें।

तीर्थों में हमें सद्भावना लेकर जाना चाहिये, भावना एक ऐसी वस्तु है, जिसका प्रभाव बहुत शीघ्र और बड़ा गहरा पड़ता है, जिसकी भावना दृढ़ होजाती है उसे पत्थर में भी भगवान् के दर्शन होते हैं। भावनाहीन मनुष्यों के लिये तो साक्षात् ईश्वर भी सामने खड़ा हो तो उन्हें कुछ और ही दिखाई देता है। तीर्थों में हम जाते हैं अश्रद्धा और असद्भावना को लेकर, यही कारण है कि हमारा मन तीर्थ की सद्वस्तु को ग्रहण न कर वहाँ की बुराइयों को ग्रहण करता है, इसीसे तीर्थ में अश्रद्धा होजाती है।

अन्त में मेरी तीर्थ विहारी, सन्तापहारी, गदाधारी श्रीहरि से यही प्रार्थना है कि वे मेरे अव्यवस्थित जीवन को तीर्थ-निवासी सन्त चरणों के उपदेशामृत पान करने का सुख प्रदान करते हुये अपने अभय प्रद श्रीचरणों में मन लगाये रहने की शक्ति प्रदान करने की अवश्य कृपा करें।

श्रीवासुकीनाथ महादेव

[लेखक—श्रीगोवर्द्धनदासजी केडिया]

यह तीर्थ स्थान वैद्यनाथ धाम से २७ मील की दूरी पर है। यह अत्यन्त रमणीक स्थान है और मंदिर भी बहुत बड़ा है। यह वैद्यनाथ धाम से दुमका जाने के रास्ते में पड़ता है। मोटर में जाना होता है। रास्ता बहुत सुहावना है, और जङ्गल के दृश्यों को देखकर हृदय प्रफुल्लित होजाता है। कुछ लोग काँवर लेकर पैदल भी जाते हैं, यहाँ शिवरात्री में मेला लगता है जो कि ४--५ दिन तक रहता है। यहाँ एक धर्मशाला भी है। किसी समय धर्मशाला में जगह न रहने पर यात्री लोग पंडों के घरों पर भी ठहरते हैं, यहाँ यात्रियों को रहने की तकलीफ नहीं है। यहाँ एक तालाब भी है, इनका माहात्म्य ऐसा है कि उसको मैं वर्णन करने में असमर्थ हूँ। यहाँ धरना देने के लिए बहुत से लोग आते हैं। धरना देने वालों को फल शीघ्र ही मालूम होजाता है, किम्बदन्ती है कि वैद्यनाथ महादेव की तो दीवानी अदालत है और वासुकीनाथ की फौजदारी अदालत है। वासुकीनाथ जाने वालों की कामना अति--शीघ्र सिद्ध होती है। एक बार जो इनका दर्शन कर लेता है, उसका मन आनन्द में मग्न होजाता है। वैद्यनाथ धाम की यात्रा करने वाले को तो इनका दर्शन अवश्य ही करना चाहिये। श्रावण मास में दर्शनार्थी बहुत आते हैं। बहुत से आदमी तो यहाँ रहकर बाबा की पूजा का आनन्द प्राप्त करते हैं। यहाँ आने से सभी बीमारियाँ दूर होती हैं। कुष्ठ रोग तक ठीक होता है। कुष्ठ रोग के कई रोगी यहाँ से ठीक होकर गये हैं। इस तीर्थ के चमत्कार अगणित हैं।

तीर्थों का भौगोलिक महत्त्व

[लेखक-श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसादजी गुप्त, एम. एस-सी., एल-एल. बी., एल. टी.]

भारतवर्ष अनादि काल से एक तीर्थ-भूमि है। यहाँ के अनेक स्थान परम पवित्र और दर्शनीय हैं। हिन्दू धर्म की भिन्न-भिन्न भावनाओं को लिये हुये प्रत्येक तीर्थ अपना एक अलग महत्त्व रखता है। इनके महत्त्वों को लेकर यदि इनका पृथक्-पृथक् निरूपण करना प्रारम्भ करें, तो एक वृहद् ग्रन्थ की रचना होसकती है। किसी तीर्थ विशेष के ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्त्व का एक अनुपम सम्मिश्रण है, जिनका उल्लेख अलग-अलग करना मानो पानी को दूध से अलग करना है। इस कठिनाई के होते हुये भी हम प्रस्तुत लेख में तीर्थों के केवल भौगोलिक महत्त्व पर ही प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थों की उत्पत्ति, विकास तथा उन्नति की ओर ध्यान दें, तो प्रकृति किसी न किसी रूप में उनकी अवश्य ही सहायक प्रतीत होती है। काशी, प्रयाग जैसे तीर्थों की महिमा श्रीगङ्गाजी के तटस्थ होने के कारण ही है, कि जिसका परम पवित्र जल जन्म--जन्मान्तर से कर्म बन्धनों में जकड़े हुये जीवों को उनके पापों से निवृत्ति कराकर उनको मोक्ष का एक साधन प्राप्त कराता है। इसी प्रकार कहीं पुण्य सरोवर तो कहीं सागर अथवा प्राचीन पर्वत किंचित धार्मिक भावनाओं से मंडित अपने निकटवर्त्ती नगरों को तीर्थ की पदवी से विभूषित कर रहे हैं। इन्हीं प्राकृतिक दृश्यों को लेकर हम तीर्थों के महत्त्व का संक्षेप में दिग्दर्शन कराने जारहे हैं। भारतवर्ष में धर्म-मंडप के स्तम्भ चार धाम हैं। जो प्रत्येक अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अत्यन्त सुरम्य एवं दर्शनीय बने हुये हैं। भारतवर्ष के सभी तीर्थ ऐसे ही रमणीय स्थानों पर हैं। श्रीजगन्नाथजी, श्रीरामेश्वरम्, श्रीद्वारिकानाथजी और श्रीबदरीनारायणजी। ये चारों धाम भी अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण भारतवर्ष के चार द्वार-रक्षक कहलायें तो अनुचित नहीं। श्रीबदरीनारायणजी हिमालय पर्वत के हिमाच्छिन्न भागों में ठीक उत्तर दिशा में, श्रीजगन्नाथजी अथवा पुरी पूर्व दिशा में बँगाल सागर के किनारे बसा हुआ है। श्रीद्वारिकानाथपुरी ठीक पश्चिम में गुजरात प्रान्त में हिन्द सागर के किनारे है और श्रीरामेश्वरम् दक्षिण दिशा में समुद्र तट पर अन्तरीप के रूप में बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से स्थित है।

तीर्थ यात्रा का महत्त्व बहुत ही गौरवमय है। तीर्थयात्रा स्वास्थ्य के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है, क्योंकि वहाँ की जलवायु, जैसा ऊपर दिखाया है, अति-उत्तम एवं स्वच्छ होती है। इसके अतिरिक्त वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन करने से ही नाना प्रकार के कष्ट दूर होजाते हैं और हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगती हैं। प्रकृति निरीक्षण, इन्द्रिय-विकास, साधु-सत्सङ्ग एवं ज्ञान वृद्धि के लिये सुलभ अवसर प्राप्त होता है। ईश्वर की अद्भुत लीला है कि वे नदी, सागर, कुण्ड तथा गिरि जो भिन्न-भिन्न तीर्थों से संलग्न हैं, स्वास्थ्य सुधार में किसी न किसी रूप से लाभप्रद होते हैं। श्रीगङ्गाजल सहस्रों कीटकों तथा कीटाणुओं का नाश करने वाला, अनेक बीमारियों को लाभ पहुँचाने वाला तथा स्वतः एक पवित्र, पुष्ट एवं आध्यात्मिक पेय है। इसी प्रकार ऐसे कुण्ड भी अनेक हैं, जिनका जल गर्म है और औषधि--मिश्रित होने से अनेक गुण रखता है। बहुधा देखा गया है कि अस्वस्थ पुरुष स्त्री तीर्थ धामों में निरोग होने की कामना से वास करने गये हैं और अपनी धार्मिक भावनाओं को भी

आप्लावित कराते हुये बिलकुल स्वस्थ होगये हैं। ऐसे तीर्थों को स्वास्थ्य-सुधार केन्द्र भी कहते हैं।

तीर्थों में कोटानकोट यात्री तथा दर्शक आते रहते हैं, जिनके आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कृति तथा वेश-भूषा पृथक्-पृथक् होती हैं। मनुष्य जीवन से सम्बन्धित इन बातों का एक ही स्थान पर अनुभव एवं अध्ययन करने का सुअवसर केवल तीर्थों में ही सहज प्राप्त है, जो कहीं नहीं प्राप्त हो सकता। सामाजिक जीवन की झांकी सापेक्षिक दृष्टि से बड़ी आसानी से होजाती है जो समाज-शास्त्र वेत्ता तथा लेखकों को विविध प्रकार की सामिग्री देने में पर्याप्त सहायक होती हैं। शिल्प कला की दृष्टि से भी तीर्थों में प्राचीन से प्राचीन तथा आधुनिक ढङ्ग से निर्माण किये गये अनेक मन्दिर एवं भवन देखने में आते हैं। जिनमें से कुछों के तो भग्नावशेष ही किसी प्राचीन कला या युग का दिग्दर्शन करा रहे हैं। बाहर्देशों के निवासियों ने, जो समय-समय पर भारतभूमि में आते रहे हैं, हमारे देश की निर्माण-कला तथा प्राकृतिक सौन्दर्य्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह कुछ कम गौरव की बात नहीं है।

परन्तु खेद है कि जिन भौगोलिक तथा अन्य कारणों से देश विदेश के लोग तीर्थों में एकत्रित होते हैं, उनकी विभिन्न प्रकार की संस्कृति तथा आचार-विचार के पारस्परिक आदर प्रदान से जो उज्ज्वलतर विचार अंकुर होने की सम्भावना हो सकती है, कहीं-कहीं वैसा न होकर फूट, कलह और अनाचार के बीज उपजते दृष्टिगोचर हुये हैं। इसका एक मात्र कारण हमारे सामाजिक जीवन की कुछ कमजोरियाँ ही हैं। समाज में कुछ ऐसी व्यवस्था पैदा होगई है कि मनुष्यों के बाह्य एवं आंतरिक जीवन में एक बड़ा भेद खड़ा कर दिया है। नवीन अवस्थाओं ने हमारे विचारों में, हमारे आचारों में एक कृत्रिमता उत्पन्न कर दी है। संकीर्ण विचारों से लोगों की श्रद्धा और भक्ति के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी होगई है। तीर्थ स्थलों के पवित्र वातावरण में दूषित वायु का वेग बढ़ता जारहा है। शिष्टाचार तथा शिक्षा की कमी से, कुछ आर्थिक समस्या के कारण कई एक तीर्थ जैसे पवित्र स्थानों में दुर्व्यवहार और दुराचार के समाचार सुनने को मिले हैं। सहज-प्रकृति के लोगों में तथा नवागन्तुकों में ये अरुचि पैदा करने म सहायक होते हैं। सेवा-भाव और परोपकार की मात्रा घटने लगी है। स्वास्थ्य-सुधार केन्द्र न बन कर तीर्थ यात्रियों और दर्शकों के स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के सामान्य नियमों की ओर उदासीन होने के कारण ये तीर्थ अनेक संक्रामक रोगों के घर बनते दिखलाई देते हैं। कोई सुधार या उन्नति दृष्टिगोचर न हो सकेगी।

श्रीवृन्दावनधाम

[दोहे] [रचयिता-पूज्यपाद श्रीरूपरसिकदेवजी]

जय वृन्दावन धाम निज, सकल लोक सिरताज।
सर्वेश्वर सर्वेश्वरी, जहाँ रहत जुवराज ॥
अवधादिक हरिधाम को, फल बैकुण्ठ कहंत।
बन रज ऊपर वारिये, सो बैकुण्ठ अनंत ॥
जय जय जय वृन्दाविपिन, जुगल केलि आगार।
ताकी महिमा कहन को, हारे वेद हजार ॥
अज, अव्यय, अविनासि पद, हद वेहद ते दूरि।
श्रीवृन्दावन धाम है, रसिकन जीवन-मूरि ॥

जयति जयति नम जयति नम, श्रीवृन्दावन बाग।
जामें प्यारी पिय को, अविचल सदा सुहाग ॥
नित्य किशोरी वपुष यह, श्रीवृन्दावन-धाम।
नव निकुञ्ज कल केलि हित, राजत भूपर धाम ॥
स्यामा-स्याम विहार निज, वृन्दाविपिन उदार।
अर्व खर्व बैकुण्ठ को, गर्व मिटावन-हार ॥
श्रीवृन्दावन-महल सुख, है सब रस को सार।
'रूपरसिक' जिनको मिले, तिन पर कृपा अपार ॥

तीर्थ प्रेमियों के विचारार्थ

[लेखक—श्रीयुत भगवानदासजी केला,]

साधारण तौर से यह अनुभव में आया है कि भक्त और श्रद्धालु सज्जन तर्क और विवेक का स्वागत नहीं करते, अनादर ही किया करते हैं। उनसे किसी विचार या विवेक की आशा करना स्वाभाविक नहीं होता। यह होते हुए भी इन पंक्तियों का लेखक बहुमत के स्वर में स्वर न मिलाकर अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण पाठकों के सामने रखने का उत्साह करता है। मैं समझता हूँ कि अधिकांश तीर्थों की कीर्ति उनकी पूर्व सञ्चित कमायी है, जो उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। जो लोग उस कीर्ति को स्थायी रखने के अभिलाषी हैं, वे प्रायः कृत्रिम साधनों का प्रयोग करते हैं, इन उपायों में कुछ दम नहीं है। पूर्वजों की सम्पत्ति कितनी ही अधिक क्यों न हों, यदि उनके उत्तराधिकारी उसमें वास्तविक वृद्धि न करते जायेंगे, और उसी भण्डार में से नित्य प्रति खर्च करते रहेंगे, तो वह भण्डार एक दिन खाली होकर रहेगा, हमारे तीर्थ-प्रेमी तीर्थों का प्राचीन इतिहास, दन्त-कथाएँ, माहात्म्य आदि का वर्णन करते हैं; दर्शनीय स्थानों के सुन्दर आकर्षक चित्र प्रकाशित करते हैं, पुस्तकें और अखबार छपाते हैं, उनका खूब प्रचार करते हैं, कुछ सम्पत्तिमान व्यक्ति वहाँ नये-नये विशाल मन्दिर, देवालय, घाट आदि बनाते हैं, और दर्शकों को आकर्षित करने के लिए अन्य नाना विधि उपाय करते हैं। पर क्या ये बातें तीर्थों की कीर्त्ति अक्षुण बनाये रख सकती हैं? क्या बाहरी वैभव के भरोसे ही हम उन्हें मान प्रतिष्ठा दिलाते रहने में समर्थ होंगे?

क्या हम कभी तीर्थों के आन्तरिक जीवन पर भी कुछ विचार करेंगे? भिखारी सबसे ज्यादा कहाँ हैं? तीर्थों में। इसका हमने क्या उपाय किया है? क्या तीर्थों में अनेक आदमी ऐसे नहीं है, जो नितान्त अक्षर-शून्य है। क्या कुछ पण्डितों और विद्वानों के होने से दूसरे लोगों का निरक्षर रहना क्षम्य है। ऐसा कौनसा तीर्थ है, जहाँ भाँग, अफ़ीम आदि का बहुत प्रचार नहीं है, तीर्थों पर शराब की बिक्री नहीं होती है। फिर यहाँ रेल और पुलिस की नौकरी करने वाले क्या केवल परलोक सुधारने के विचार से ही आते हैं? हमारे अनेक पण्डे पुजारी आदि ही लोभ और वासनाओं का परित्याग कर सात्विक भाव से सेवामय जीवन कहाँ बिताते हैं? अनैतिक, धर्मविरुद्ध, गैर-क़ानूनी जीवन के यहाँ कितने उदाहरण नित्य-प्रति उपस्थित होते रहते हैं? इन बातों की ओर कौन ध्यान देता है।

ओफ़! हमारे तीर्थ की परिभाषा क्या है? तीर्थ का आदर्श क्या है? भारतवर्ष में आदर्श तीर्थों की गिनती तो की जाय। क्या हम तीर्थों को आदर्श बनाने में कुछ सहायक होरहे हैं, हम तीर्थों का आदर्श गिराने में सहायक न हों, यही बहुत है। तीर्थों को आदर्श तीर्थ बनाने के लिये हमें अपना जीवन आदर्श बनाना चाहिए। क्या हम ऐसा करने को तैयार हैं? कम से कम कुछ विचार तो करना चाहिए।

चित्रकूट-वर्णन

[रचयिता—परमभक्त गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी]

[राग चंचरी]

चित्रकूट अति विचित्र, सुन्दर बन महि पवित्र पावन पय सरित सकल मल-निकन्दिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम, बाम अङ्ग बामाबर बिस्व-बंदिनी ॥
चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर, अक्षय अकलंक सरद चंद-चंदिनी ॥
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत 'तुलसिदास', जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी ॥

तीर्थों का स्वरूप

[लेखक—गोस्वामी श्रीविजयकृष्णजी महाराज, व्याख्यान-वाचस्पति, वाणी-भूषण, विद्या-वागीश]

सब से प्राचीन वैदिक समय से लेकर "जो कि अनादि काल के नाम से प्रसिद्ध है," आज के वर्तमान समय तक के कार्यों की ओर यदि दृष्टि-पात किया जाता है, तो एक ही फल प्रत्येक कार्य्य की गोद में छुपा हुआ है, जिसे अनुभवी जन "कार्य्य की सफलता" या "परिणाम" अथवा लक्ष्य की प्राप्ति आदि वाक्यों से कहते हैं, और बराबर ढूँढ़ने में व्यस्त रहते हैं, यदि सब ही शब्दाडम्बरों को हटाकर, सीधी--सादी भाषा में उसे कहा जाय, तो हमें तो एक ही शब्द मिलता है, वह है सुख"। इसी की इच्छा, अभिलाषा प्रत्येक में देख पड़ती है। यदि सुख की प्राप्ति हो जाती है, तो हम एक वार आनन्द से कह उठते हैं, कि हमारा जीवन सफल होगया। यही वेद में भी मिलता है—

यथा—"सुखं मे भूयात्"।

अर्थात् –मुझे सुख मिले। सुख की प्राप्ति के अनन्त साधन शास्त्रों में मिलते हैं। यदि यहाँ साधनों का विस्तार किया जाय, तो विषय बढ़ जायगा तथापि संक्षेप में प्रकाश डालने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

इस विषय में हम सर्वसार-भूत श्रीगीता के महावाक्य ही पाठकों की सेवा में रखना समुचित समझते हैं। क्योंकि वर्तमान समय का यही क़ानून या धर्म ग्रन्थ या यों कहना चाहिये मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने का एकमात्र उपाय है।

यथा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

अर्थात्—साधन रहित पुरुष की बुद्धि निश्चय वाली नहीं होती है और साधन रहित पुरुष में भावना (तत्त्व विचार करने की मनोवृत्ति) भी नहीं होती है। भावना-रहित पुरुष को शान्ति कदापि नहीं मिलती और जहाँ शान्ति का अभाव है, उन्हें भला सुख कहाँ?

सार यह है, बुद्धि-मूलक सुख है, यदि बुद्धि स्थिर रहेगी, तो सुख अवश्य प्राप्त होगा और बुद्धि चञ्चल होगी तो सुख के प्रतिकूल दुख प्राप्त होगा, जो तीन प्रकार का है।

'आध्यात्मिक', आधिदैविक', 'आधिभौतिक'। आध्यात्मिक दुख–शरीर और मन के भेद से दो प्रकार का है, शारीरिक और मानसिक।

आधिदैविक—सर्दी, गर्मी, आंधी, वर्षा, बिजली आदि से उत्पन्न दुःख का नाम है।

आधिभौतिक--शत्रु, राक्षस, हिंसक, पशु आदि से उत्पन्न दुःख का नाम है।

इसी से मनुष्य–मात्रों में यह अनादि वैदिक काल से धारणा है। 'दुःखं मे माऽभूत्'। अर्थात् मुझे दुख कदापि न हो।

यह सब लिखने का अभिप्राय यह, कि दुःख की निवृत्ति और सुख को प्राप्ति ही मनुष्य मात्रों का ध्येय है और दोनों ही बुद्धि द्वारा प्राप्त हैं, "चञ्चल बुद्धि से दुख" और "तत्त्व विचार करने वाली स्थिर बुद्धि से सुख" अतः सदा सुख प्राप्ति के लिए सचेष्ट रहना चाहिये, इससे दुःख की निवृत्ति भी हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है, कि बुद्धि को तत्त्व से दूर ले-जाने वाली कौनसी चेष्टाएँ हैं। यथा—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

अर्थात्--इन्द्रियों के विचरने के समय उनके संसर्ग से उत्पन्न होने वाले जिन भावों से मन प्रभावित होगा, जैसे नदी में चलने वाली नौका

वायुः के आधीन होकर अनुकूल या प्रतिकूल पथ-गामिनी हो जाती है।

जब सुख और दुख दो वस्तु हैं, तो उनके मार्ग भी दो ही होने स्वाभाविक हैं। उन दोनों मार्गों के नाम भी शास्त्रों में मिलते हैं। 'सन्मार्ग' और 'असन्मार्ग' सन्मार्ग पर चलने वालों को सद्देश, सत्काल, सत्पात्र का अवलम्बन होता है और असन्मार्ग पर चलने वालों को असद्देश, असत्पात्र, असत्काल का सदा अवलम्बन रहता है। इन दोनों मार्गों का वर्णन उपनिषदों में सुन्दर मिलता है।

यथा—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

अर्थात्—आत्मा को रथी जानना चाहिये और शरीर को रथ। बुद्धि को सारथि जानना चाहिये और मन लगाम है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय को घोड़ा कहते हैं। इन्द्रिय रूप घोड़ों के चलने का मार्ग, रूप रसादिक विषय है। देह, इन्द्रिय, मन करके युक्त जीवात्मा को मनीषि लोग भोक्ता कहते हैं। ऐसे जीवात्मा बुद्धि शून्य होते हैं। इसी से यह असत्पात्र हो जाते हैं, जिस देश में यह रहते हैं वह असद्देश होता है, इनका समय असत्कार्य्यों में व्यतीत होने से, उसे असत्काल कहते हैं। यथा—

यस्त्वविज्ञानवान्भवति अमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥

अर्थात्—जो जीवात्मा जानकर बुद्धि सारथि से रहित है, वह चञ्चल मन वाले सदा अपवित्र होते हैं। उनको तत्पद अर्थात् श्रीभगवान् का पद प्राप्त नहीं होता है, किन्तु जन्म-मरण रूप दुखमय संसार ही मिलता है और जो बुद्धि वाले होते हैं वह सत्पात्र, सद्देश, सत्काल-सेवी होकर तत्पद लाभ करते हैं। यथा—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
सतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥

अर्थात्—जो जीवात्मा शिक्षित जानकार बुद्धि वाले होते हैं, उनका मन सदा वस में होता है। और सदा पवित्र रहकर "तत्पद" प्राप्त करते हैं। जहाँ पहुँच ने पर फिर जन्म मरण के चक्र में नहीं आना पड़ता है। ऐसे सद्बुद्धि महात्माओं का जीवन किस प्रकार का होता है, यह भी गीता में स्पष्ट है।

यथा—

बुध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्यच।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्यच॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

अर्थात्—शुद्ध-बुद्धि युक्त होकर धृति अर्थात् सात्विकी धारणा से मन को वश में करके शब्दादिक विषयों को छोड़कर राग द्वेश में अनासक्त होजाय। यह सत्पात्र का स्वरूप है। बिना सत्पात्रता के सद्देश (तीर्थ) सेवन नहीं होता है और यदि अनायास हो भी जाय तो वास्तविक लाभ नहीं होता इसके उदाहरण तो प्रत्यक्ष ही दीख रहे हैं।

सत्पात्र को सत्पात्रता स्थायी रखने के लिए "विविक्तसेवी" अर्थात् तीर्थ सेवी होना चाहिये, तीर्थ सेवन के यथार्थ फल लाभ के लिए लघुभोजी होना चाहिये। वाणी, शरीर, मन को वश में करके प्रति क्षण भगवत् ध्यान में निमग्न रहना चाहिये। यह तब होगा जब वैराग्य का समुपाश्रय होगा। अर्थात प्रत्येक विषय में अरुचि का हर समय निकट समीप होगा। यह है सद्देश का स्वरूप। ऐसे नियम से जो सत्पात्र सद्देश का सदा सेवन करते हैं, उनमें सत्काल-यापन भाव स्वाभाविक उदय हो जाता है। ऐसे महात्माओं से अहङ्कार, (असत् वस्तु में सत् का अभिमान) बल, दर्प, काम, क्रोध, परिग्रह (किसी सांसारिक वस्तु का संग्रह) दूर हो जाते हैं। इनके दूर होते ही जड़

देह से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुमात्र से ममता का अभाव हो जाता है, फिर वह हर समय में शान्त अर्थात् विक्षेप, उद्वेग से रहित होकर ब्रह्म-भावना में अपना काल-यापन करते हैं। ब्रह्मभावना में काल-यापन करनेवालों का स्वरूप और फल भी वहाँ ही मिलता है।

ब्रह्मभूत: प्रशन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां॥

अर्थात्—ब्रह्मभावना में निमग्न रहने वाले सदा प्रसन्न रहते हैं। शोच और इच्छा कभी नहीं करते हैं। समस्त प्राणी मात्रों में समान भाव हो जाता है। ऐसे महानुभाव श्रीभगवान् की परा-भक्ति लाभ करते हैं।

अत: मनुष्योंको सत्पत्र-सद्देश-सत्कालकी आवश्यकता है,यह अवस्थाबुद्धिवालों को प्राप्त होती हैं जो बुद्धिमान इस बात का ध्यान रखते हैं—उनकी सांसारिक भावना दूर होकर भगवान में भावना का उदय हो जाता है। क्योंकि जब कभी संसार पथ में भ्रमण करते-करते सत्पुरुषों के संग से, अथवा पूर्व पुण्य से या अनायास भाव से मन इन्द्रियों के परामर्श से विचलित या क्षुब्ध होकर बुद्धि से परामर्श करने लगता है, तब बुद्धि मन को स्वाभाविक उपदेश करती है वही उपदेश मन को प्रभावित करता है, यहाँ से सत्पात्रता अंकुरित होती है यदि ऐसे समय में सद्देश (तीर्थ) की प्राप्ति हो जाय और सत्कार्य्य में काल-यापन होने लगे तो मनुष्य जीवन का लक्ष्य प्राप्त होजाता है। स्मरण रखनेकी बात है, जब तक यह त्रिक साथ में न रहेंगे कोई भी लाभ न होगा।

विचार धारा के आश्रय से हम इस लक्ष्य पर पहुँचते हैं कि हमारा अन्त:करण जब सत् वस्तु का पात्र बनेगा तब सद्देश की खोज होगी या प्राप्त होगा। "सद्देश" कहते हैं सत् वस्तु के प्रकाश-मय स्थान को। इस की प्राप्ति होती है तीर्थों के सेवन से। "तीर्थ" का अक्षरार्थ है, (तारने वाला या तरने वाला तृसंप्लवने धातु से उणादि में थक् प्रत्यय होकर तीर्थ बनता है) तीर या तट पर रहना। अर्थात् "सद्देश" के द्वार पर पहुँच जाना। जैसे-जैसे "सद्देश" के द्वार (तीर) पर पहुँच कर सत्काल-यापन की उत्कंठा होगी वैसे ही सद्देश में प्रवेश हो जायगा। फिर सत्य स्वरूप श्रीभगवान् की सेवा में काल-यापन प्रतिक्षण होगा। असत् त्रिक दूर हो जायगा।

प्रिय पाठक हम तो यही तीर्थों का स्वरूप और फल समझते हैं यदि तीर्थों में रहकर सत् वस्तु श्रीभगवान् सद्देश, श्रीभगवद्धाम, सत्काल श्रीभगवान् की लीला गुण कीर्तन श्रवण स्मरण में समय यापन न हुआ तो जान लेना चाहिये ऐसे लोग सत्पात्रों की गणना में नहीं आ सकते हैं किन्तु उनका स्वरूप निम्न-लिखित ही होगा। यथा-

अत्युग्र भूरि कर्माणो नास्तिका रौरवा:जना:।
तेपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थ सारस्ततो गज:।

अर्थात्-अति भयावने कर्म करने वाले रौरव नास्तिक अर्थात् असत्पात्र' तीर्थ में रहते हैं, अत: तीर्थों का सार "सद्देश" की प्राप्ति फल चला जाता है। क्योंकि सत्पात्र ही सद्देश के तीर पर रह सकते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में कह दीजिये जहाँ सत्पात्र है, वही तीर्थ है। यदि असत्पात्र तीर्थों में जाकर रहने लगते हैं, तो तीर्थों का सार चला जाता है, अर्थात् तीर्थ दूर चले जाते हैं, क्योंकि सद्देश (भगवद्धाम) के किनारे का नाम तीर्थ है। वह उन ही को मिल सकता है। जो सत्पात्र है। असत्पात्रों को असत् संसार का ही किनारा मिलता है।

जैसे भगवद्धाम नित्य सत्पदार्थ है, वैसे ही भगवद्धाम का तट (किनारा) तीर्थ भी नित्य सत्पदार्थ है। सत्पात्रों के जाने पर तीर्थों का उदय हो जाता है और असत्पात्रों के जाने से तीर्थ छुप जाते हैं। जैसे श्रीभगवान् भक्तों के सामने उदय हो जाते हैं और सर्व व्यापक होते हुए भी अभक्तों से छुपे रहते हैं। बस अब हम अपने वक्तव्य को विराम देते हैं।

तीर्थों का ऐतिहासिक महत्व

[लेखक—आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री काव्यतीर्थ]

आर्य्य-धर्म सनातन तथा उसके शास्त्र (वेद) अनादि एवं अपौरुषेय हैं और इसका विकास एशिया के भूभाग में सर्वप्रथम हुआ था। उस समय देश में 'आर्य्य' और 'अनार्य्य' नामक दो जातियाँ थीं। आर्य्य-जाति शनैः शनैः पूर्व और पश्चिम की ओर अग्रसर हुई यह सर्वसम्मत मत है। उस समय आर्य्य-धर्म समस्त राष्ट्र का एक मात्र धर्म था और उसीके फलस्वरूप एशिया तथा यूरोप में आर्य्य-सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा का एक ऐसा अमिट प्रभाव पड़ा जिसके कारण आज भी वहाँ इसका तात्त्विक निर्दर्शन स्पष्टतः प्रतिभासमान हो रहा है।

'आर्य्य' शब्द का इतिवृत्त देखने से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम एक आर्य्य ही जाति थी जो आर्य्य कहलाती थी।

'विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो—
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।'
(ऋ० १।५१।८)

इन्द्र! तुम आर्य्य और दस्युओं (अनार्य्य) के विषय में भली-भाँति परिचित रहो।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अनेक स्थलों में आर्य्य और अनार्य्य शब्द का जो अर्थ किया है उससे ज्ञात होता है कि आर्य्य शब्द समस्त 'हिन्दू' शब्द प्रतिपादक था।

'तथाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः'।
(अथर्ववेद ४।२०।४)

शतपथब्राह्मण कात्यायन ❀ कृत श्रौत्र सूत्रादिकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इस वर्णत्रय को ही आर्य्य कहा है और इन्हीं आर्य्यों ने भारत में आकर चतुर्थवर्णात्मक शूद्र नामक अनार्य्य जाति को अपने में मिला लिया।

पारसियों का 'अवस्ता' नामक प्राचीन ग्रन्थ में 'ऐर्य्य' (आर्य्य) 'ऐर्य्यनम्वयेजों' (आर्य्यवीज) तथा ऐर्य्या' को क्रमशः सम्मानास्पद, जनसाधारण, आदिम-स्थान और स्वाधिकार-भूमि के रूप में उल्लेख किया है।

ग्रीक ग्रन्थकार 'स्ट्रावों' ने कुछ स्थानविशेषों का 'आरिआवा' तथा 'हिरोडोटस' (VII 62) मीडदेशियों को 'आरिआई' और हेलेनिकस फारस को 'आरिया' कह कर उल्लेख किया है एवं इसी प्रकार "आर्य्यलेण्ड" द्वीपस्थ केलर जातियाँ इन्हीं आर्य्य वंशियों की शाखा है। +

'आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः'॥
(मनुसंहिता २)

उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्य पूर्व और पश्चिम में समुद्र इस भाग का ही नाम आर्य्यावर्त्त है और यही आर्य्यों की आवास-भूमि है।

"आर्य्यावर्त्तं पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमागयोः"।
(अमरकोष)

'इदं द्यावा पृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवेवाम्'
(ऋ० १।१८५।११)

❀ 'शूद्रार्य्यौ चर्म्मणि परिमण्डले व्यायच्छेते' (१३।३।७) 'शूद्रश्चतुर्थवर्णः आर्य्यस्त्रैवर्णिकः' (भाष्यकारः)

\+ Lectures on the Science of Language by Mox Miiller 1st Series Lecture VI.

'गिरियस्ते पर्वता: हिमवन्तोऽरण्यंते पृथिवीस्योनमस्तु'
(अथ० १२।१।११)

पितद्यौः ! मातः पृथिवी ! इस यज्ञ में जो हम सब करते हैं वह सत्य और सफल हो। पृथिवी तुम्हारे सब पर्वत हिमवान् और बनस्थली शोभा शालिनी हो।

आदि ऋचाओं में परमपुनीता पृथ्वी की प्रशंसा की गई है और इसके साथ ही इस भूमि में प्रवाहिता नदीमातृकाओं की भी अनेक भाँति प्रशंसा की गई है।

= सुवास्त्वा अधितुग्वनि' (ऋ० ८-१९-३७) इस पर 'यास्क' ने सुवास्तु का अर्थ नदी और तुग्व का अर्थ तीर्थविशेष किया है।

'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि-
स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मद्वृधे वितस्तयार्जीकीये-
शृणुह्या सुषोमया' ॥
(ऋ० १०।७५।६)

इन उपर्युक्त नदीओं में सरस्वती नदी को आर्य्यों ने—नदीतमे ! देवितमे ! अम्बितमे !
(ऋ० ६-६१-१४)
शब्दों में श्रद्धास्पद रूप से परिगणन किया है।
'त्वेविश्व सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्।'
(ऋ० २.४१।१७)

सरस्वति ! तुम देवी स्वरूपा हो और सम्पूर्ण प्राणि तुम ही से जीवन पाते हैं, आदि से ज्ञात होता है कि उस समय सरस्वती नाम्नी पवित्र नदी का विशेष महत्व था एवं इसी को दृष्टिकोण में रखकर—

'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरं ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्त प्रचक्षते ॥'

'तस्मिन् देशेय आचारः पारम्पर्य्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानांस सदाचार उच्यते' ॥
(मनु० २।१७।१८)

सरस्वती और दृषद्वती के किनारे के स्थानों को देवनिर्म्मित ÷ देश कहा है एवं यहाँ की अनुष्ठित आचार-प्रणाली को सदाचार कहा है।

यही नहीं प्रत्युत आर्य्यावर्त्त से ही समस्तदेशों ने सभ्यता ग्रहण की है यह भारतीय आर्यग्रन्थों में विशेषरूपेण वर्णित है--

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः' ॥
(मनु० २।२०)

और आर्य्यावर्त्त ही प्राचीनार्य्य-भाषा × का उद्गम स्थान है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आर्य्यों ने भारत को ही पुण्य तथा पुनीतभूमि देखकर स्थान विशेषों में तीर्थों की स्थापना कर उसका उत्कर्ष बढ़ाया है।

ज्ञान, योग, विज्ञान, भाषा प्राकृतिकदृश्यों में भारत सबसे बढ़-चढ़ कर था इसके सौन्दर्य पर देवगण भी विमुग्ध थे।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषासुरत्वात्
(विष्णुपुराण २।३।२४)

अहो अमीषां किमकारि शोभनं,
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्मलब्धं नृषु भारताजिरे,
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हिनः ॥
(श्रीमद्भागवत)

यह सब शास्त्रों में वर्णित है ही और तभी से भारत आज तक तीर्थ (पुण्य, पुनीत, यज्ञभूमि) शब्द से घोषित होरहा है, यही इसका संक्षिप्त इतिवृत्त है।

= 'सुवास्तु नदी तुग्व तीर्थं भवति' (निरुक्त ४।१५)
÷ 'देवनदी देवनिर्मितशब्दौ नदीदेशप्रशस्त्यार्थौ' (कुल्लूकभट्टः)
× 'पथ्या स्वस्तिरुदीची दिशं प्राजानाद् वाग वै पथ्या स्वस्तिस्तस्माद् उदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागु द्यते।' (कौषीतकी ब्राह्मण १७।६)

तप-तीर्थ

[रचयिता-- सुकविर श्रीयुत पु० श्रीप्रतापनारायणजी, कविरत्न]

बस रहे हैं अपने में ही,
सदा जब शंकर अविनाशी।
लोग तब किस कारण से हैं,
भला जाया करते काशी ॥१॥

(२)
देह ही असली हरि-मन्दिर,
सदा है सब का कहलाता।
अचेतन हुए विना वह क्यों,
भला है हरिद्वार जाता॥

(३)
जहां हैं राम-श्याम सन्तत,
अयोध्या वही, वही व्रज है।
मिलेगा, तुम निज में ढूंढो,
वही जो अमर और अज है॥

(४)
बह रही है पावन गंगा,
सर्वदा अपने में ही तो।
हमारा दिन उग सकता है,
जगत के सपने में ही तो॥

(५)
है न यह तीर्थों की निन्दा,
क्योंकि उनमें भी ईश्वर है।
वही जो अपने अन्दर है,
वही बस बसता बाहर है॥

दूर पर क्यों जावे मानव,
ईश जब सदा पास में है।
भूमि में, जल में, पावक में,
व्योम में, वही श्वास में है ॥६॥

(लेखक)

स्थान है ऐसा कहीं नहीं,
कभी हो जो तुमसे खाली।
भले ही बकवादी नास्तिक,
न देखें मेहँदी की लाली ॥७॥

(८)
वही कर्त्ता—भर्त्ता--हर्त्ता,
वही है प्रजा, वही राजा।
वही है राग और बाजा,
बजाता है वह ही बाजा॥

(९)
वही माला है, गन्ध वही,
वही बस वन है, वनमाली।
वही श्री महामोहिनी है,
वही है कंकाली काली॥

(१०)
हमें जो उसे मिला देगा,
वही तप, तीर्थ कहाता है।
वही चाहे तो यह होगा,
वही निज रूप दिखाता है॥

(११)
स्वमन को वशीभूत करना,
लोक में तप है बस सच्चा।
चित्त की वृत्ति विना जीते,
तपस्वी रहता है कच्चा॥

मनोहर-पावन होकर भी,
तीर्थ तो सब ही हैं नकली।
शुद्धि ही अपने मन की है,
सर्वदा तीर्थराज असली ॥१२॥
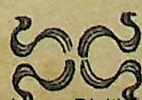
तीर्थों का माहात्म्य

[ले०—श्रीयुत पं० राधिकादासजी महाराज]

तीर्थ किसे कहते हैं ?

अज्ञान का अथवा पाप का नाशक तीर्थ कहलाता है। 'तीर्थ' यह वर्णद्वय कर्णगोचर होते ही 'शुद्धता' का भाव सहसा मस्तिष्क में उत्पन्न हो जाता है। शुद्ध या पवित्र करने वाले को 'तीर्थ' कहते हैं। दो अक्षर वाले इस तीर्थ शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है।

तीर्थ महिमा—

तीर्थ असंख्य हैं और उनका माहात्म्य अपार है। वेद, पुराणादि प्रायः सर्व आर्यशास्त्रों में तीर्थों का माहात्म्य वर्णित है। यद्यपि प्रत्येक पवित्र करने वाला तत्त्व तीर्थ है, तो भी प्रायः वैदिक काल से अब तक गङ्गादि नदी और मानसरोवर आदि जलाशय तीर्थ कहलाते रहे हैं। ऋग्वेद में श्रीगङ्गा, यमुना आदि तीर्थों की प्रार्थना की गई है। वह प्रार्थना-मन्त्र यह है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया॥

(ऋग्वेद मण्डल १० अध्याय ३ सूक्त ७५ मन्त्र ५)

अर्थ—हे गङ्गे! हे यमुने! हे सरस्वती! हे शुतुद्रि! (आप) मेरे इस यज्ञ का सेवन करें। हे मरुद्वृधे! हे आर्जीकीये (आप भी) परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता और सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ का सेवन करें (और) मेरी स्तुति को सब ओर से श्रवण करें।

अथर्ववेदीय पिप्पलादशाखान्तर्गत श्रीगोपालोत्तरतापनी उपनिषद् में श्रीमथुरापुरी को साक्षात ब्रह्मरूप कहा गया है। वैसे तो तीर्थ असंख्य हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है, परन्तु उनमें सप्त पुरियों का विशिष्ट स्थान है जिसका वर्णन आप अन्यत्र पढ़ेंगे। इन सप्तपुरियों में श्रीमथुरा का माहात्म्य अनुपम है। सब तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन अत्यन्त दुःसाध्य है, अतः स्थाली पुलाक न्याय से यत्किञ्चित् निवेदन किया जाता है—

तां मथुरापुरीं प्राप्य सदा ब्रह्मादिसेविताम्।
यत्रासौ संस्थितः कृष्णस्त्रिभिः शक्त्या समाहितः॥
मथुरायां स्थितिर्ब्रह्मन् सर्वदा मे भविष्यति।
मथुरामण्डले यस्तु जम्बूद्वीपे स्थितोऽपि वा॥
योऽर्च्चयेत् प्रतिमां माञ्च स मे प्रियतरो भुवि।

(श्रीगोपालोत्तर तापनी उपनिषद्)

भावार्थ—नित्य ब्रह्मादि देव सेवित उस मथुरापुरी को प्राप्त कर मनुष्य धन्य, कृतार्थ अथवा कृतकृत्य हो जाते हैं।

जहाँ (मथुरापुरी में) यह श्रीकृष्ण आह्लादिनी अथवा श्रीदेवी आदि तीन शक्तियों के सहित समाहित भाव से सम्यक्तया स्थित हैं। हे ब्रह्माजी! (अव्यक्त रूप से) मथुरा में मैं (श्रीकृष्ण) सर्वदा स्थित रहूँगा। जम्बूद्वीप में कहीं भी मेरी प्रतिमा का पूजन करने वाला मेरा प्रियतर है, फिर मथुरामण्डल में मेरी (श्रीकृष्ण की) पूजा करने वाले का क्या कहना? अर्थात् वह श्रीकृष्ण को अवश्य बहुत प्रिय होगा। श्रीमद्भागवत, श्रीवाराहपुराण, पद्मपुराण आदि पुराणों में श्रीमथुरा, श्रीवृन्दावन एवं अन्यान्य तीर्थों का बहुशः माहात्म्य वर्णित हुआ है।

'मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः।'

—श्रीमद्भागवत १० स्कं०, १ अ०

काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके,
तासान्तु मध्ये मथुरैव धन्या।
या जन्ममौञ्जीव्रतदेहदाहैर्मुक्तिं,
ददातीह सदा मनुष्यान्॥

—वराहपुराण।

आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनां ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथञ्च हित्वा
भेजर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।
—श्रीमद्भागवत स्क० १० पू० ।

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा,
प्रेमैकरूपा सहसाऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !,
नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ।।
—पद्मपुराण ।

प्रिय पाठकवृन्द ! अधिक उद्धरण देने से लेख बढ़ जायगा; अतः इतने ही से सन्तोष करें । 'श्री-मथुरापुरी में श्रीहरि भगवान्❀ नित्य विराजमान हैं। काशी आदि सात पुरी लोक प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन सब में मथुरा ही धन्य है (क्योंकि) जो (मथुरापुरी) जन्म, यज्ञोपवीत, अन्त्येष्टि आदि से ही इस लोक में मनुष्यों को मुक्ति देती है। तात्पर्य:—मथुरापुरी में किसी मनुष्य का जन्म हो, यज्ञोपवीत संस्कार हो अथवा अन्त्येष्टि (दाह) संस्कार हो, तो भी उसकी मुक्ति होजाती है ।

साक्षात् वृहस्पतिजी के शिष्य महाज्ञानी श्री-कृष्णसखा उद्धवजी श्रीवृन्दावनमहिमा को बड़े सुन्दर रूप में उपस्थित करते हैं—"मैं (उद्धव) श्रीवृन्दावन में कोई लता, झाड़ी, वनस्पति आदि होऊँ, जिससे अपना सर्वस्व दुस्त्यज सगे-सम्बन्धी और श्रेष्ठ मार्ग को त्याग श्रीकृष्ण-चरण सेविका गोपिगण की चरण रज मेरे ऊपर पड़ा करे और मैं पवित्र-कृतार्थ हो जाऊँ।" दशम स्कन्ध १४वें अध्याय में इससे मिलती-जुलती ब्रह्माजी की उक्ति है। अस्तु—

श्रीवृन्दावन के उत्कृष्ट माहात्म्य का वर्णन एक कथानक द्वारा पद्मपुराण में संक्षेपतः इस प्रकार वर्णित है:—

किसी समय कलिकाल में भक्ति वृद्ध होगई। अपने (वृद्ध) पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य) के सहित जब उनका आगमन श्रीवन× में हुआ—तो वह (भक्ति) तरुणी होगई। आगे वर्णित है कि श्रीनारदजी के उद्योग से हरिद्वार में आनन्द तट पर सप्ताहयज्ञ हुआ। श्रीसनत्कुमारादि चतुःसन वक्ता एवं नारद भगवान् मुख्य श्रोता हुए। वहीं भक्ति भी अपने तरुण पुत्रों (ज्ञान एवं वैराग्य जो पहले वृद्ध होगये थे) को लेकर केवल प्रेम-लक्षणा रूप में प्रकट हो गई और श्रीकृष्ण, गोविन्द, हरे, मुरारे, नाथ इत्यादि नामों का बारम्बार उच्चारण करती रही।

अयोध्यादि सात पुरी मोक्षदायिनी प्रसिद्ध ही हैं और वह श्लोक भी अवलोकन कीजिये:—

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।

चलतीर्थ—

अचल तीर्थों में मथुरादि पुरी, श्रीवृन्दावनादि वन श्रीगोवर्द्धनादि पर्वत और मानसरोवरादि सरोवर प्रसिद्ध हैं, परन्तु तीर्थों के एक चल रूप के विषय में श्रीमद्भागवत का कथन है:—

"साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
स्वकाले फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ।।

अर्थात् साधुओं का दर्शन पुण्य है, निश्चयतः साधु तीर्थभूत हैं और इस चल तीर्थ में एक विशेषता भी है, अचल तीर्थ समय आने पर फल देते हैं, किन्तु साधुसङ्ग शीघ्र फलप्रद होता है। श्री-नारदजी ने बाल्मीकि मुनि को क्या से क्या बना दिया।

❀उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति ।। प्राणियों के उत्पत्ति, प्रलय, बन्ध, मोक्ष, ज्ञान और अज्ञान को जानने वाला भगवान् है।

× वृन्दावन का एक नाम 'श्रीवन' भी है।

तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाले भगवद्भक्त भागवत जन ही होते हैं।

"भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता॥"
(श्रीमद्भागवत)

युधिष्ठिर विदुरजी से कहते हैं:--

आपके समान भागवत स्वयं तीर्थ रूप हैं। अपने अन्तःकरण में स्थित गदाधर भगवान् के द्वारा (भगवद्भक्तगण) तीर्थों को तीर्थ अर्थात् पवित्र कर देते हैं।

– उपसंहार –

तीर्थों का एक चल रूप और है और उसे कथातीर्थ कह सकते हैं, प्रमाण देखिये:--

"तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी,
गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र,
यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः॥"

भावः—जहाँ अच्युत भगवान् की कथा होती है, वहीं श्रीगङ्गा यमुनाऽदि सर्वतीर्थ रहते हैं।

"कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम्॥"
(पद्मपुराण)

और अधिक क्या कहा जाय जैसे ? नाम एवं नामी में भेद नहीं, वैसे ही भगवद्धाम और भगवान् में भेद नहीं। श्रीमुखका प्रमाण भी लीजिये—'स्रोतसामस्मि जान्हवी' नदियों में (मैं श्रीकृष्ण) गङ्गा हूँ। अब श्वेताश्वतर उपनिषत् के एक मन्त्र जिसका भाव यह है कि 'समुद्रस्थ सर्वाग्रगामी हंसनारायण की उपासना बिना उनको प्रसन्न करने वा प्राप्त करने का अन्य मार्ग नहीं' उद्धृत है—

"एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये,
स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति,
नान्यः पन्था विद्यतेऽनाय॥"

अब श्रीमद्भागवत के अन्तिम प्रणामात्मक श्लोक का अवलोकन कीजिये।

"नामसङ्कीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥"

श्रीवृन्दावन

[लेखिका--श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली' साहित्य-चन्द्रिका]

ओ वृन्दावन के सघन कुंज ! ओ छटा सिन्धु ओ शान्ति धाम।
वनकी अनवरत प्रतीक्षा में, रखते अक्षुण्ण सुषमा ललाम॥
वे वृक्षलतायें पृथ्वी तक, झुक झुक कर ऐसीं घनी हुईं।
ऊँची लख मचल न जाँय कहीं, घुटनों से चलते हुये श्याम॥
या वंशीध्वनि का सुमधुर स्वर, उस सुमधुर कुंजवन में भरकर।
गौओं का प्रेम परखने को, छिप जाँय कहीं कौतुकी श्याम॥
या छिप कर रीझ खीझ मधु से मिश्रित दधि गोरस आशा में।
अनजाने ही लुट जांय और, सब कहें चोर है चपल श्याम॥
विरहाकुल वृजवनिताओं वा, राधा सी प्रेम पुजारिनि का।
क्षण ही भर मन बहलाने को, तेरा अणु-अणु बन जाय श्याम॥
श्रीवृन्दावन तुम धन्य 'लली' अपलक रह कर पथ जोह रहे।
ना जाने किस युग किस क्षण में, वंशीधर बन आ जांय श्याम॥

तीर्थोंमें पालन करने योग्य कुछ उपयोगी बातें ।

[लेखक—परम भक्त सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दका]

संसार में चार पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । तीर्थों में (पवित्र स्थानों में) यात्रा करते समय अर्थ (धन) तो व्यय होता है । अब रहे धर्म, काम और मोक्ष—सो जो राजसी पुरुष होते हैं, वे तो तीर्थों में सांसारिक कामना पूर्ति के लिये जाते हैं और जो सात्विक लोग होते हैं, वे धर्म और मोक्ष के लिये जाते हैं । धर्म का पालन भी वे आत्मोद्धार के लिये ही निष्काम भाव से करते हैं ।

अतएव कल्याणकामी पुरुषों को तो अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही तीर्थोंमें जाना चाहिये । तीर्थोंमें जाकर किस प्रकार क्या-क्या करना चाहिये - ये बातें बतलायी जाती हैं ।

(१) पैदल यात्रा करते समय मनके द्वारा भगवान्के स्वरूपका ध्यान और वाणी द्वारा नाम-जप करते हुए चलना चाहिए । यदि बहुत आदमी साथ हों, तो सबको मिलकर भगवान्का नाम कीर्तन करते हुए चलना चाहिये । रेलगाड़ी आदि सवारियों पर यात्रा करते समय भी भगवान्के याद रखते हुए ही धार्मिक पुस्तकोंका अध्ययन अथवा भगवान्के नामका जप करते रहना चाहिये ।

(२) गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, यमुना, गोदावरी, नर्मदा- कावेरी, कृष्णा, सरयू, मानसरोवर, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, गङ्गासागर, आदि तीर्थों में उनके गुण, प्रभाव, तत्व रहस्य और महिमा का स्मरण करते हुए आत्मशुद्धि और कल्याण के लिये स्नान करना चाहिये ।

(३) तीर्थस्थानोंमें श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव, श्रीविष्णु, आदि भगवद्-विग्रहों का श्रद्धा, प्रेमपूर्वक दर्शन करते हुए उनके गुण, प्रभाव, लीला-तत्व, रहस्य और महिमा आदिका स्मरण करके दिव्य-स्तोत्रोंके द्वारा आत्मोद्धारके लिए उनकी स्तुति प्रार्थना करनी चाहिये ।

(४ तीर्थोंमें साधु, माहात्मा, ज्ञानी, योगी और भक्तों के दर्शन, सेवा, सत्सङ्ग, नमस्कार, उपदेश, आदेश और वार्तालापके द्वारा विशेष लाभ उठानेके लिये उनकी खोज करनी चाहिये । भगवान्ने अर्जुनके प्रति गीतामें कहा है :—

> तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
> उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥
> (गीता ४।३४)

उस ज्ञान को समझ, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास जाकर उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे, और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे परमात्म-तत्वको भलीभाँति जाननेवाले वे ज्ञानीमहात्मा तुझे उस तत्वज्ञानका उपदेश करेंगे ।

(५) कञ्चन, कामिनीलोलुप, अपने नाम-रूपको पुजवाकर लोगोंको उच्छिष्ट (जूँठन) खिलानेवाले, मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाके गुलाम, प्रमादी, और विषयासक्त पुरुषोंका भूलकर भी सङ्ग नहीं करना चाहिये, चाहे वे साधु, ब्रह्मचारी और तपस्वीके वेष में ही क्यों न हो । मांसाहारी, मादक पदार्थोंका सेवन करनेवाले, पापी, दुराचारी और नास्तिक पुरुषोंका ।तो दर्शन भी नहीं करना चाहिये ।

तीर्थोंमें किसी-किसी स्थानपर तो पण्डे-पुजारी और महन्त आदि यात्रियोंको अनेक प्रकारसे तंग किया करते हैं । जैसे—यात्रा सफल करवानेके नाम पर दुराग्रहपूर्वक अधिक धन लेनेके लिये अड़ जाना देवमन्दिरोंमें बिना पैसे लिये दर्शन न करवाना, बिना भेंट लिये स्नान न करने देना, यात्रियोंको धमकाकर और पापका भय दिखलाकर ज़बरदस्ती रुपये ऐंठना, मन्दिरों और तीर्थोंपर भोग-भण्डारे और अटके आदिके नामपर अधिक भेंट लेनेके लिये

अनुचित दबाव डालना, अपने स्थानोंपर ठहराकर अधिक धन प्राप्त करनेका दुराग्रह करना, सफेद चील (गिद्ध) पक्षियोंको देवताकारूप देकर और उनकी जूँठन खिलाकर भोलेभाले यात्रियोंसे धन ठगना तथा देवमूर्तियोंद्वारा शर्बत पिये जाने आदि झूठी करामातों प्रसिद्ध करके लोगोंको ठगना, इत्यादि। यात्रियोंको इन सबसे सावधान रहना चाहिये।

(६) साधु, ब्राह्मण, तपस्वी, ब्रह्मचारी, विद्यार्थी आदि सत्पात्रों तथा दुखी, अनाथ, आतुर, अङ्गहीन बीमार और साधक पुरुषोंकी अन्न, वस्त्र, औषध और धार्मिक पुस्तकें आदिके द्वारा यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

(७) भोग और ऐश्वर्यको अनित्य समझते हुए विवेक-वैराग्यपूर्वक वशमें किये हुए मन और इन्द्रियोंको शरीर-निर्वाहके अतिरिक्त अपने-अपने विषयोंसे हटानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(८) अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार संध्या, तर्पण, जप, ध्यान, पूजा-पाठ, स्वाध्याय, हवन, बलि-वैश्व आदि नित्य और नैमित्तिक कर्म ठीक समय पर करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। यदि किसी विशेष कारणवश समयका उल्लङ्घन हो जाय तो भी कर्मका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये।

गीता, रामायण आदि शास्त्रोंका अध्ययन, भगवन्नामजप, सूर्यभगवानको अर्घ्यदान, इष्टदेवकी पूजा, ध्यान, स्तुति और प्रार्थना आदि तो सभी वर्ण और आश्रमके स्त्री-पुरुषोंको अवश्य ही करने चाहिये।

(९) काम, क्रोध, लोभ आदिके वशमें होकर किसी भी जीवको किसीप्रकार किञ्चिन्मात्र भी दुख कभी नहीं पहुँचाना चाहिये।

(१०) कीर्तन और स्वाध्यायके अतिरिक्तसमय में मौन रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि मौन रहनेसे जप और ध्यानके साधनमें विशेष मदद मिलती है। यदि विशेष कार्यवश बोलना पड़े तो सत्य, प्रिय और हितकारक वचन बोलने चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें वाणीके तपका लक्षण करते हुए कहा है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
(१७।१५)

'जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन एवं परमेश्वर नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।'

(११) निवासस्थान और बरतनोंके अतिरिक्त किसीकी कोई भी चीज काममें नहीं लानी चाहिये। बिना माँगे देनेपर भी बिना मूल्य स्वीकार नहीं करनी चाहिये। तीर्थोंमें सगे-सम्बन्धी, मित्र आदिकी भेंट-सौगात आदि भी नहीं लेनी चाहिये। बिना अनुमतिके तो किसीकी कोई भी वस्तु काममें लेना चोरीके समान है। बिना मूल्य औषधादि लेना भी दान लेने के समान ही है।

(१२) मन, वाणी और शरीरसे ब्रह्मचर्यके पालनपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। स्त्रीको पर-पुरुषका और पुरुषको परस्त्रीका तो दर्शन, स्पर्श, भाषण और चिन्तन आदि भी कभी नहीं करना चाहिये। यदि विशेष आवश्यकता हो जाय तो स्त्रियाँ परपुरुषोंको पिता या भाईके समान समझते हुई, और पुरुष परस्त्रियोंको माता या बहिनके समान समझते हुए नीची दृष्टि करके संक्षेप वार्तालाप कर सकते हैं। यदि एक दूसरेकी किसीके ऊपर पापबुद्धि हो जाय तो कम-से-कम एक दिनका उपवास करे।

(१३) ऐश, आराम, स्वाद, शौक और भोग-बुद्धिसे तीर्थोंमें न तो किसी पदार्थका संग्रह करना चाहिये और न सेवन ही करना चाहिये। केवल शरीरनिर्वाह मात्रके लिये वैराग्यबुद्धिसे अन्न-वस्त्रका उपयोग करना चाहिये।

(१४) तीर्थोंमें अपनी कमाईके द्रव्यसे पवित्रतापूर्वक बनाये हुए अन्न और दूध-फल आदि सात्विक पदार्थोंका भोजन करना चाहिये। सबके साथ स्वार्थ और अहङ्कारको त्याग कर दया, विनय और प्रेमपूर्वक सात्विक व्यवहार करना चाहिये।

(१५) तीर्थोंमें बीड़ी, सिगरेट, तमाखू, गाँजा, भाँग चरस, कोकिन आदि मादक वस्तुओंका, लहसुन,

प्याज, बिस्कुट, बर्फ,सोडा, लेमोनेड आदि अपवित्र पदार्थोंका, ताश,चौपड़ शतरञ्ज खेलना और नाटक-सिनेमा देखना आदि प्रमादकर तथा गाली-गलौज, चुगली-निन्दा, हँसी-मजाक, फालतू बकवाद, आक्षेप आदि व्यर्थ वार्तालाप कतई त्याग करना चाहिये।

(१६) गङ्गा, यमुना और देवालय आदि तीर्थ-स्थानोंसे बहुत दूरीपर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। जो मनुष्य गङ्गा,यमुना आदिके तटपर मल-मूत्रका त्याग करता है तथा गङ्गा-यमुना आदिमें दँतुअन और कुल्ले करता है, वह स्नान-पान के पुण्य को न पाकर पापका ही भागी होता है।

(१७) काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मात्सर्य, राग-द्वेष, दम्भ-कपट, प्रमाद-आलस्य आदि दुर्गुणों का तीर्थोंमें सर्वथा त्याग करना चाहिये।

(१८) सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख और अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थोंके प्राप्त होनेपर उनको भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर सदा-सर्वथा प्रसन्न-चित्त और सन्तुष्ट रहना चाहिये।

(१९) तीर्थयात्रामें अपने सङ्गवालोंसेमें किसी साथी तथा आश्रितको भारी विपत्ति आनेपर काम, क्रोध या भयके कारण उसे अकेले कभी नहीं छोड़ना चाहिये। महाराज युधिष्ठिरने तो स्वर्गका तिरस्कार करके परम धर्म समझकर अपने साथी कुत्तेका भी त्याग नहीं किया। जो लोग अपने किसी साथी या आश्रितके बीमार पड़ जानेपर उसे छोड़कर तीर्थ-स्नान और भगवद्विग्रहके दर्शन आदि के लिये चले जाते हैं उनपर भगवान् प्रसन्न न होकर उलटे नाराज़ होते हैं क्योंकि 'परमात्मा ही सबकी आत्मा है' इस न्यायसे उस आपद्ग्रस्त साथीका तिरस्कार परमात्माका ही तिरस्कार है। इसलिये विपत्तिग्रस्त साथीका त्याग तो भूलकर भी कभी नहीं करना चाहिये।

(२०) जैसे तीर्थोंमें किये हुए स्नान, दान,जप, तप,यज्ञ व्रत, उपवास,ध्यान,दर्शन, पूजा-पाठ, सेवा-सत्सङ्ग आदि महान् फलदायक होते हैं,वैसे ही वहाँ किये हुए झूठ,कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि पापकर्म भी वज्रपात हो जाते हैं। इसलिये तीर्थोंमें किसी प्रकारका किञ्चिन्मात्र भी पाप कभी नहीं करना चाहिये।

शास्त्रोंमें तीर्थोंकी अनेक प्रकारकी महिमा मिलती है। महाभारतमें पुलस्त्य ऋषिने कहा है—

पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे गङ्गायां मगधेषु च ।
स्नात्वा तारयते जन्तुः सप्त सप्तावरांस्तथा ॥
(वनपर्व ८५। १३)

'पुष्करराज, कुरुक्षेत्र, गङ्गा और मगधदेशीय तीर्थोंमें स्नान करनेवाला मनुष्य अपनी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है।'

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥
(वनपर्व ८५। ९४)

'गङ्गा अपना नाम उच्चारण करनेवालेके पापों का नाश करती है। दर्शन करनेवालेका कल्याण करती है और स्नान-पान करनेवालेकी सात पीढ़ियों तकको पवित्र करती है।'

ऐसे-ऐसे वचनोंको लोग अर्थवाद और रोचक मानने लगते हैं, किन्तु इनको रोचक एवं अर्थवाद न मानकर यथार्थ ही समझना चाहिये। इनका फल यदि पूरा देखने में न आता हो, तो उसका कारण हमारे पूर्वसञ्चित पाप, वर्तमान नास्तिक वातावरण, पण्डे और पुजारियोंके दुर्व्यवहार तथा तीर्थोंमें पाखण्डी, नास्तिक और भयानक कर्म करनेवालोंका निवास आदिसे लोगों की तीर्थोंमें श्रद्धा और प्रेमका कम हो जाना ही है।

अतएव कुसङ्गसे बचकर तीर्थोंमें श्रद्धा-प्रेम रखते हुए सावधानी के साथ उपर्युक्त नियमोंका भली-भाँति पालन करके तीर्थोंसे लाभ उठाना चाहिये। यदि इन नियमोंके पालनमें कहीं कुछ कभी भी रह जाय,तो इतना हर्ज नहीं,परन्तु चलते-फिरते, उठते-बैठते खाते-पीते,सोते-जागते भगवान्‌के नामका जप तथा गुण-प्रभाव और लीलाके सहित उनके स्वरूपका ध्यान तो सदा-सर्वदा निरन्तर ही करने की चेष्टा करनी चाहिये।

तीर्थों का वैज्ञानिक महत्त्व ।

[लेखक—भक्तरत्न श्रीमथुराप्रसादजी 'मथुरेश' रिटायर्ड जज्ज]

विज्ञान बतलाता है कि मनुष्य के मस्तिष्क में भले बुरे जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे वेखरी वाणी द्वारा प्रकट हुआ करते हैं, वे वायुमण्डल द्वारा ईथर (नभस्थल) में अङ्कित हो जाते हैं। और जिस जगह स्थित होकर उन भावों की उत्पत्ति तथा विकास होता है, उस स्थल के समस्त जलवायु तथा पृथ्वी के परमाणुओं पर उनका प्रभाव पड़ता है।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिस स्थान में प्रायः दुराचारी लोगों की बैठक हुआ करती है अथवा चौर्य्य, व्यभिचार, द्यूत, प्राण-हिंसा आदि दुष्कृत्य बहुधा होते रहते हैं, उस स्थान में प्रवेश और स्थिति करने वाले सदाचारी शिष्ट मनुष्य की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है और वहाँ के दूषित परमाणुओं से उसका चित्त प्रभावित हो जाता है, और वीरभूमि में प्रविष्ट होने पर कातर मनुष्य का मन भी युद्ध के लिये उत्साहित हो जाता है। और जिस स्थल में यज्ञ योगादि शुभ कर्म या देवार्चन, हरि कथादि सत्कृत्य होते रहते हैं, या महात्मा, योगी, तपस्वी, योगसाधन हरि भजन में संलग्न रहते हों, उस स्थान में जाने से दुराचारियों के चित्त में भी परिवर्त्तन होने लगता है। इसका कारण यह है कि सद् असद् भाव के परमाणु उस देशस्थ ईथर, आकाश तथा वायुमण्डल से आच्छादित होकर उस देश को भावाक्रान्त बना देते हैं।

जो पुनीत स्थल समुद्र या गङ्गा यमुनादि नदियों के तट पर समुपस्थित हैं और चिरकाल से जहाँ हरिभजन, यज्ञादि शुभकृत्य ही होते चले आते हैं, वे तीर्थ कहे जाते हैं। महात्माओं की स्थिति ऐसे स्थानों पर ही विशेष हुआ करती है। इसलिये पुनीत भावाक्रान्त प्रदेश तीर्थ कहलाते हैं और उन स्थानों जाने वालों को अवश्य लाभ होता है।

दूसरे जिन स्थलों में निखलेश्वर परमात्मा का साकार रूप में अवतरण होता है, या जहां निवास करके अवतरित प्रभु ने लीला विहार अथवा असुर दमनादि व्यवहार किया है, उन स्थानों में उस पवित्र दिव्य शरीर के स्पर्श का प्रभाव चिरस्थायी होने से उस परम पुनीत स्थल में पापनाशकता फलीभूत हो जाती है। इस कारण से उस प्रदेश की तीर्थ संज्ञा हो जाती है।

तीसरे—साधारण जल से स्नान का प्रत्यक्ष महत्व सर्वानुभूत है। इससे कि शरीर शुद्ध और निर्मल हो जाता है। और वैज्ञानिक बाथ द्वारा रोग निवृत्ति देखने में आती अतः गङ्गा आदि नदियों का जल तथा समुद्र जल के स्नान से शारीरिक निर्मलता के अतिरिक्त आध्यात्मिक शुद्धि अवश्य मानी है। और प्राचीनकाल के वैज्ञानिक अपने पूर्वज ऋषि मुनियों ने जो स्वयं अनुभव करके तीर्थों का महत्व स्थापित किया है, वह अवश्य विश्वासनीय और मान्य हैं।

कीर्त्तन-कला

[लेखक—सुकविवर श्रीयुत "रसिकेन्द्रजी"]

भ्रान्ति-वश भूल ही रहे थे भारतीय जिसे, उसी भक्ति-भावना को भक्तों से मिला दिया।
'रसिकेन्द्र' आत्म बोध होने लगा ज्ञानियों को, प्रबल-विरोध के भी दुर्ग को हिला दिया॥
व्यापने लगी जिन्हें लहर विषैली उन्हें, हरि-नाम अमृत का प्याला है पिला दिया॥
गूँजने लगी है कर्म-योग की पवित्र तान, कीर्त्तन-कला ने मृत-धर्म को जिला दिया॥

पुराणों में तीर्थों की महिमा

[लेखक—पं० श्रीविश्वनाथजी जोशी, साहित्य-व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न]

"तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञै रपि विशिष्यते"।
(महाभारत)

यों तो हमारे सभी प्राचीन आर्य-ग्रन्थों में पुराणों की महिमा के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु महर्षि व्यास की ललित भारती से समलंकृत पुराणों में तीर्थ महिमा का जो विस्तृत व रोचक वर्णन मिलता है, वह विशेष गौरव पूर्ण पठनीय है।

सच पूछिए तो परम कारुणिक, स्वनामधन्य, महर्षि कृष्णद्वैपायन ने तीर्थमहिमा आदि तीर्थ-सम्बन्धी वर्णन के मिष से मानव-समाज के विषम विषमय जीवन के समय को सुख शान्ति-मय बनाने का सरल उपाय सुझाया है।

'न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता।
न द्वेषरागौ नच काचिदिच्छा॥

इस विशाल एवं विशद, आदर्श के असीम आनन्द को चाहने वालों के लिए तीर्थ-सेवन प्रथम साधन है।

गृहस्थ जीवन के नानाविध चिन्ता संतप्त हुए दम्पतिवर्ग के लिए तो तीर्थ उस महान धन के समान है, जो अपनी शीतल छाया, निर्मल-जल-धारा और नवीन जीवन संचार से जनता को आनन्दित कर रहा हो।

जहाँ की वसुन्धरा का एक-एक कण तपोमय जीवन से अमल हुए प्रातः स्मरणीय महर्षि-समूह के पवित्र पादन्यास से पवित्र होने के कारण आगन्तुकों के पाप-पुञ्ज को दूर करता है, जहाँ की पावन जल धारा, नवनीत सरीखे कोमल हृदय में पाषाण सम कठोरता का सम्पादन करने वाली, सरस जीवन में नीरसता लाने वाली, सर्वविधि तृष्णाओं का शमन करती है, और जहाँ प्रकृति-देवी, अपनी अनुपम छटा से शान्तिमय वातावरण से हर एक व्यक्ति को शान्ति का पाठ पढ़ाती है, उन तीर्थों की पुनीत-महिमा के प्रारम्भिक वर्णन में महर्षि व्यास ने लिखा है—

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित् पुण्यतमाः स्मृताः॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड अध्याय ६)

अर्थात् –जिस भाँति शरीर के कतिपय भाग पवित्रतम माने गये हैं उसी तरह पृथिवी के कतिपय भाग (तीर्थ आदि) बहुत पवित्र व धर्म हेतु माने गये हैं। इसी प्रसङ्ग में आगे लिखते हैं--

प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसः।
परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥

अर्थात्—पृथिवी का, जलका, तेजका, विचित्र प्रभाव होने के कारण, तथा मुनि महर्षियों के निरन्तर निवास के कारण तीर्थ पवित्र होते हैं।

वास्तव में तीर्थ स्थान के पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, ये पाँचो महाभूत ही अपनी अद्वितीय विशेषता रखते हैं।

पुराणों में तीर्थों की महिमा का वर्णन इतना लम्बा चौड़ा किया है, जिसका दिग्दर्शन मात्र भी यहाँ करें, तो एक विशालकाय ग्रन्थ बन सकता है, अतः प्रकृत लेख में सम्पूर्ण तीर्थों की या किसी तीर्थ विशेष की महिमा का तद्रूप में वर्णन न करके 'तीर्थ महिमा' के सकल अधिकारी कौन हैं, इत्यादि अवान्तर दो एक विषयों का, पुराणों के आधार पर, विचार किया गया है।

तीर्थों की महिमा में वर्णित तीर्थों में स्नान आदि का यथोक्त फल किसे मिलता है, इस विषय में महाभारत वनपर्व में तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में लिखा है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सतीर्थफलमश्नुते ॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलोदृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥

इनका सारांश यह है कि--

जिसके मन, तथा हाथ पैर आदि इन्द्रियाँ आधीन हैं और जिसने दान लेना छोड़ दिया है, रूखे-सूखे मिले हुए अन्न से जो सन्तुष्ट है, अहङ्कार तथा क्रोध से रहित है, सच बोलने वाला है, सब प्राणियों पर दया रखता है,वह मनुष्य तीर्थ महिमा के फल का अधिकारी है।

तीर्थ-महिमोक्त तीर्थ स्नान आदि का फल किसको नहीं मिलता है, इस विषय में भी देखिये—

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थ फलभागिनः ॥

अर्थात् जो मनुष्य तीर्थों में श्रद्धा नहीं रखते हों, बुरे विचार रखते हों, परलोक तथा धार्मिक ग्रन्थों को न मानते हों, धार्मिक विषयों में सन्देह रखते हों और स्वार्थ परायण हों, वे तीर्थ महिमोक्त तीर्थस्नानादि के फल को नहीं प्राप्त कर सकते।

तीर्थों की महिमा में कहे हुए, तीर्थस्नान आदि के फलों की प्राप्ति के लिए मनका शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है, जैसे कहा है—

"तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा।"

भूमि भाग में होने वाले वाह्य तीर्थों के अतिरिक्त शरीर सम्बन्धी आन्तरिक तीर्थों का भी वर्णन पुराणों में मिलता है। जैसे-

सत्यंतीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमार्जवमेवच ।
सर्वभूतदयातीर्थं संतोषं तीर्थमुच्यते ॥
दानं तीर्थं दयातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थञ्च प्रियावादिता ॥

(स्कन्दपुराण)

इस तरह पुराणों में वाह्य और आन्तरिक इन दो प्रकार के तीर्थों का वर्णन व महत्त्व मिलता है, आन्तरिक तीर्थों का महत्त्व देखिए—

ज्ञानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमांगतिम् ॥

अर्थात्—जो मनुष्य ज्ञान से पवित्र, ज्ञान रूपी जल से पूर्ण रागद्वेष आदि आन्तरिक मल को दूर करने वाले मानस तीर्थ में स्नान करता है, वह परम-पद को पाता है।

तीर्थयात्रा-महत्त्व तथा विधि

[लेखक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल, शास्त्री]

इस कराल कलिकाल के पापरूपी दावानल में पड़े हुए जीव झुलस रहे हैं और जिधर देखिये उधर ही हाहाकार मचा हुआ है। त्राहि-त्राहि के उच्च घोष कर्णविवरों को जर्जरित करते रहते हैं। कहीं किसी को शान्ति प्राप्त होती दृष्टिगोचर नहीं होती। इसकी शान्ति के लिये अनेक प्रकार के उपकरण हमारे शास्त्रों में बतलाये गये हैं, परन्तु आज के जगत् का उन पर विश्वास नहीं होता। जब तक विश्वास नहीं होगा तब तक शान्ति मिलनी भी असम्भव है। जब तक हमारा झुकाव भगवान् की ओर नहीं होगा, तब तक यों ही हम इस संसारानल में दग्ध होते रहेंगे, परन्तु ज्यों ही उस कृपावारिधर भगवान् की एक भी बूँद पड़ी कि, सारा ताप क्षणमात्र में न जाने कहाँ विलीन हो जायगा। अतएव उसी बूँद की खोज में हमें तन, मन, धन से लग जाना चाहिये।

मनुष्य को, चाहे वह बाल, युवा या वृद्ध किसी भी अवस्था में हो, एकमात्र श्रीहरि की ही शरण ग्रहण करनी चाहिये तथा उन्हीं के श्रवण, कीर्तन, वन्दन, पूजन आदि में दत्तचित्त होना चाहिये।

अन्यत्र स्त्री–पुत्रादि सांसारिक पदार्थों में नहीं; क्योंकि ये सब जीव के बन्धन के हेतु हैं। इन सब को नश्वर, क्षणभङ्गुर और अत्यन्त दुःखदायी समझकर इनमें आसक्ति तथा ममता का त्याग करना चाहिये, तथा जन्म, मृत्यु, जरा आदि विकारों से रहित, भक्तिवल्लभ भगवान् अच्युत का जिस किसी भी प्रकार से हो, अत्यन्त दृढ़ता से भजन करना चाहिये, जिससे कभी दुःख की प्राप्ति हो ही नहीं सकती।

उस करुणावरुणालय की कृपाबूँद संत-समागम द्वारा ही प्राप्त हो सकती है और काम, क्रोध, मोह, लोभ रहित, आत्माराम महात्मा लोग प्रायः तीर्थों में मिलते हैं, जिनके दर्शन मात्र से ही मनुष्यों के पापों की अनन्त राशि क्षणमात्र में भस्म हो जाती है। अतः संसारभीरु जीव को तीर्थों का ही आश्रय लेना चाहिये। यह ऐसा साधन है कि धनी अथवा निर्धन सभी इसे कर सकते हैं। पद्मपुराण में महामुनि मार्कण्डेयजी ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा है—'हे राजन् ऋषियों ने भगवत्प्राप्ति के साधन यज्ञों को बतलाया है, परन्तु वे यज्ञ निर्धनों की सामर्थ्य के बाहर हैं; अतएव उनके लिये तीर्थयात्रा का फल यज्ञों से भी बढ़कर है। बहुत बड़ी–बड़ी दक्षिणा वाले अग्निष्टोमादि यज्ञों के करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल तीर्थयात्रा से प्राप्त होता है।'

विधि पूर्वक तीर्थ सेवन से भगवत्प्राप्ति हो जाती है, इसमें ज़रा–सा भी संशय नहीं है। तीर्थों की कोई कहाँ तक प्रशंसा करेगा और उनके सेवन की तो बात ही क्या है, जिनके कर्णों में तीर्थों का पापनाशी नाम प्रविष्ट होता है या जिस सौभाग्यशाली जीव के मुख से तीर्थों का पावन नाम निकलता है, उसके भी सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। पद्मपुराण में तीर्थ–नाम–संकीर्तन का फल इस प्रकार आता है—

मेधाजननमग्र्यं वै तीर्थवंशानुकीर्तनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ॥
महीं विजयते राजा वैश्यो धनमवाप्नुयात् ।
शूद्रो यातीप्सितान् कामान् ब्राह्मणः पारगः पठन् ॥
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं सदा शुचि ।
जातिस्मरत्वमाप्नोति नाकपृष्ठे च मोदते ॥

'तीर्थों का कीर्तन करना अथवा सुनना बुद्धि को बढ़ाता है, उन्नति–पथ पर अग्रसर करता है, पुत्रहीन को पुत्र–प्राप्ति करा देता है, निर्धन को प्रभूत धन का स्वामी बनाता है, राजा को सारी पृथ्वी का राजा बना देता है, वैश्य की धन की अभिलाषा पूर्ण करता है, शूद्र के सारे मनोरथों को सफल कर देता है, ब्राह्मण को मुक्तिभागी करता है। जो मनुष्य इस परम पवित्र तीर्थ–महत्त्व को नित्य ही सुनता है उसे पूर्व जन्म की स्मृति भी प्राप्त हो जाती है और वह स्वर्गलोक में जाकर सुख पूर्वक वास करता है।'

जिस समय सूतजी व्यासासन पर बैठकर ऋषियों को भगवत्कथाएँ सुना रहे थे, उसी समय घूमते हुए बलरामजी भी वहाँ पहुँचे और शूद्र को ब्राह्मण के स्थान पर बैठा हुआ देखकर धर्मरक्षक शेषावतार बलरामजी ने उनके सिर को काट डाला। इस पर ऋषियों ने कहा कि आपने यह बड़ा भारी अनर्थ कर डाला है। तत्पश्चात् बलरामजी के पूछने पर ऋषियों ने इसका प्रायश्चित्त यों बतलाया—

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ।
चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुद्ध्यसे ॥

'आप समाहित चित्त होकर भारतवर्ष के सारे तीर्थों में भ्रमण करें और बारह महीने के उपरान्त तीर्थों में स्नान करने के कारण आप शुद्ध हो जायेंगे।' इसी प्रकार गोहत्या, ब्राह्मणहत्या आदि बड़े–बड़े पापों का प्रायश्चित्त आजकल भी मिताक्षरा देखने वाले विद्वान् तीर्थ स्नान बतलाते हैं। ऐसे भवसागर से पार उतारने वाले सरल साधन की, करतलगत होने पर भी, हम लोग उपेक्षा कर बैठते हैं, क्योंकि हमारा मन तो माया की चकाचौंध में फँसा हुआ है। उसे तो परमार्थ पथ सूझता

ही नहीं। यदि हम विधि पूर्वक इस साधन का आश्रय लें तो हमारा उद्धार अवश्यम्भावी है।

मनुष्य को चाहिये कि पहले स्त्री-पुत्रादि में विराग उत्पन्न करे तथा उनको विनाशी समझ कर भगवन्नाम में अपनी निष्ठा दृढ़ करे, तदुपरान्त 'हरे-राम' 'हरे कृष्ण' आदि नामों का अपनी जिह्वा से उच्च स्वर से उच्चारण करता हुआ और मन से भगवान् का स्मरण करता हुआ पैदल ही तीर्थयात्रा करे; क्योंकि सवारी से यात्रा करने पर पूर्ण फल प्राप्त नहीं होता। पद्मपुराण में इसका वर्णन आता है—

यानेन गच्छन् पुरुषः समभागफलं लभेत्।
उपानद्भ्यां चतुर्थांशं गोयाने गोवधादिकम्॥
व्यवहर्ता तृतीयांशं सेवयाष्टमभागभाक्।
अनिच्छया व्रजंस्तत्र तीर्थमर्धफलं लभेत्॥

'जो लोग सवारी से यात्रा करते हैं। उनको तदनुसार फल भी प्राप्त होता है। जूता पहनने वाले को चतुर्थांश फल प्राप्त होता है, बैलगाड़ी से जाने वाले को गोहत्या का पाप लगता है, फल की तो बात ही क्या है। व्यापार करने वाले को तिहाई फल मिलता है तथा सेवा कराने वाले को आठवाँ भाग मिलता है। और जो लोग अनिच्छा से जाते हैं उन्हें तीर्थ का आधा फल प्राप्त होता है।'

बैलगाड़ी पर यात्रा करना अत्यन्त ही हानिकारक है, क्योंकि मार्कण्डेयजी ने महाराज युधिष्ठिर से ऐसे यात्रियों के पापों का वर्णन इस प्रकार किया है—'जो लोग बैल की सवारी पर यात्रा करते हैं, वे बहुत दिनों तक नरक में वास करते हैं और उनके दिये हुए जल को पितर लोग स्वीकार नहीं करते तथा उनका वह तीर्थ फल नष्ट हो जाता है।' अतः जो लोग तीर्थयात्रा विधि के अनुसार पैदल ही यात्रा करते है। उनके पाप पद पद पर क्षीण होते जाते हैं और वे विशेष फलभागी होते हैं। यात्रा में न तो बहुत तेजी से चले न बहुत धीरे-धीरे ही बल्कि सज्जन पुरुषों के साथ हर्ष पूर्वक घर से यात्रा करनी चाहिये।

तीर्थ में जाकर स्नान करके चौर कर्म करावे; क्योंकि तीर्थयात्री मनुष्यों के बालों पर ही पाप सवार होकर बैठता है। इसीलिये चौर कर्म की विधि प्रत्येक तीर्थों में कही गयी है—'मुण्डनं सर्वगात्रेषु सर्वतीर्थेषु कारयेत्। कक्षोपस्थशिखां विना।' अर्थात् सब तीर्थों में सम्पूर्ण गात्र का मुण्डन करा डाले परन्तु कक्ष, उपस्थ और शिखाको छोड़कर। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, कुशासन पर सोना और जितेन्द्रिय होना चाहिये। जिसके हाथ, पैर और मन वश में होते हैं, जो प्रतिग्रह नहीं लेता, सर्वथा सन्तुष्ट रहता है, पवित्रता युक्त, अहङ्कार रहित, निराहार, सब दोषों से रहित, दृढ़व्रती तथा सब प्राणियों को आत्मोपम देखने वाला होता है, वही तीर्थ के सम्पूर्ण फल का भागी होता है।

आमिष, मैथुन, दोला, अश्व, गज, उपानह, छाता आदि का उपयोग न करे, मार्ग के श्रम को दुष्कर न माने, यात्रा में गृह सुखका स्मरण न करे, असत्यभाषण भूलकर भी न करे, पाखण्ड और दुःसङ्ग कभी न करे, दो बार भोजन और किसीसे कलह न करे, पर निन्दा, लोभ, गर्व, क्रोध, मत्सर, अत्यन्त हास्य और शोक न करे, भूमि पर सोया हुआ भी अपने को मंचपर सोये हुए के सदृश समझे, कोमल वचन बोले, प्राणिमात्र पर दया करे, तन, मन, वचन से हिंसा न करे, तेल न लगावे पान न खाय, सूर्योदय से पहले उठे, द्विज हो तो त्रिकाल सन्ध्या करे, देवर्षिपितृतर्पण करे नित्य कुछ समय तक मौनव्रत करे, यथाशक्ति सुपात्र को दान करे, हरि कथा श्रवण करे, साधुओं की सेवा और चरणवन्दन करे, तीर्थों के जल में स्नान करके वस्त्र न निचोड़े, जल में प्रवेश करके दन्तधावन न करे, यदि करता है तो स्नान का फल जाता रहता है—प्रधानतः इन नियमों का अवश्य ही पालन करने की चेष्टा करनी चाहिये।

महा-तीर्थ

[लेखक—श्रीयुत बाबू परिपूर्णानन्दजी बर्म्मा]

बौद्ध ग्रन्थों में भी 'तीर्थ' शब्द तथा उसकी महत्ता का वर्णन मिलता है। 'महापरि निब्बाण सुत्त' में पाटलीपुत्र के निर्माण की रोचक कथा का वर्णन है। भगवान् बुद्ध ने जिस घाट किनारे से गङ्गा पार किया, उसका नाम गौतम-तीर्थ रखा गया।

इस प्रकार प्रायः सभी तीर्थ किसी न किसी महापुरुष तथा महादेव के संस्मरण तथा प्रसाद से युक्त हों और उनकी यात्रा करने से, वहाँ प्रवास करने से उस महापुरुष, महादेव, महाविभूति के संस्मरण तथा अनुकरण का अवसर और उपदेश मिलता है। तीर्थों का यही सबसे बड़ा महत्व है।

किन्तु, समय काल के अनुसार अब तीर्थों का भी महत्व बिगड़ गया है। तीर्थ-यात्री तीर्थ के स्वामी की कीर्त्ति सुनने की चेष्टा या इच्छा नहीं करता, उसको चिन्ता रहती है पहले अपना पाप नष्ट कर देने की और इस स्वार्थमय भाव से वह सब कुछ भूल जाता है। उसे यह स्मरण करने का अवकाश ही नहीं मिलता कि पाप धोने का उपाय ही यह है कि परम पुण्य आत्माओं का स्मरण तथा अनुकरण किया जावे।

पाप-पुण्य क्या है, फल क्या है, लाभ तथा हानि किसे कहते हैं—इन सब विस्तार में न जानकर मैं तो केवल एक ही बात जानता हूँ—वह यह कि मन पर अधिकार कर लेना और उसकी गङ्गा को निर्मल रख कर, उसमें स्नान करने से बढ़कर और कोई भी पुण्य-कार्य या महान कार्य नहीं है। मन ही महा तीर्थ है। यहीं पर सब संस्कारों तथा विकारों का संग्रह होता है। यहीं से वह कामना तथा वासना उदित होती है, जो चित्त को, चेतना को तथा जीव को संसार के महान दुःख सागर में डुबा देती है। यदि यही मन शुद्ध तथा सात्विक रहे और हमारे मन की गङ्गा में हरेक कुविचार शीघ्र नष्ट हो जाते हों और धारा को भ्रष्ट न कर सकते हों, तो उस धारा और प्रवाह में स्नान करने से बढ़कर और क्या तीर्थ-यात्रा होगी? बड़े-बड़े तीर्थों में बैठकर भी इस महातीर्थ की यात्रा करनी ही पड़ेगी। एक सनातन धर्मी के नाते मुझे तीर्थ-यात्रा में पूरा विश्वास है। मैं उसे अत्यावश्यक तथा पापनाशक वस्तु समझता हूँ—पर उन्हीं के लिये जिनके हृदय के नेत्र बन्द नहीं हैं और जो केवल पानी में गोता लगाने से ही पापी के पाप के धुल जाने में विश्वास नहीं करते। गङ्गा और यमुना पाप को नष्ट करती हैं जो उनको पहिचानते हैं, जिनको गङ्गा और यमुना का प्रताप मालूम है।

एक महा विजय—

छान्दोग्य का बड़ा सुन्दर वचन है:—

"यथा कृताय विजितायाधरेमाः संयन्त्येवमेनं सर्वं तपभिसमेति यत्किंच प्रजाः साधुकुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद।" (छा० ४।१।४)

यानी, जिस प्रकार (चौपड़ के खेल में) कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि नामक चार पासे होते हैं, उनमें कृतयुग नामक पासे को जीत लेने से शेष तीनों पासे भी आप से आप जीत लिये जाते हैं, ऐसे ही जिसको वह रैक्व जानता है, उस ब्रह्म को जो कोई भी जान लेता है, वह सब कुछ जान लेता है और प्रजा जो कुछ भी कर्म करती है उसका फल उसको आप ही आप मिल जाता है।

ठीक यही दशा मन की है—मन के ऊपर विजय प्राप्त कर लेने पर, उसकी शुद्धि के उपरान्त, मनुष्य के लिये केवल यही आवश्यक है कि उस महातीर्थ की पवित्रता का सुख से—उसे संसार का सब सुख अपने पैरों के नीचे लोटता दिखाई पड़ेगा

यही नहीं, उसका मन शुद्ध हो जाने पर संसार उसका सेवक और वह निर्विकार स्वामी हो जावेगा।

तीर्थ में जाकर कठोर तपस्या करने से बड़ा लाभ होता है। मन महातीर्थ की तपस्या बिल्कुल साफ़ और सर्व-सुलभ है और कोई भी इसका पालन कर सकता है। मनुस्मृति की टीका करते हुए कुल्लूक भट्ट 'तपस्' की व्याख्या करते हैं:—

ब्रह्मचर्यं जपो होम: काले शुद्धाल्प भोजनम्।
अपाजद्वेष लोभाश्च तप उक्तं स्वयम्भुवा॥

'तप' की उपर्लिखित व्याख्या कितनी सरल है—फिर भी कितनी कठिन है। कबीरदासजी ने सत्य कहा है:—

तजि अभिमान लेहु मन मोल।
राम नाम हिरदै मँह तोल॥

अस्तु, मैं अधिक स्थान नहीं लेना चाहता। मैं अपने मन्तव्य को काफ़ी अच्छी तरह से समझ भी न सकूँगा, क्योंकि स्वयं मेरा मन पवित्र और शुद्ध नहीं है। मुझे स्वयं इस महातीर्थ की यात्रा करनी है। पर, यह अवश्य जानता हूँ कि यदि मैं हृदय से निम्न-लिखित वेदवाक्य को स्मरण रख सकूँ और उनका अर्थ समझ जाऊँ तो मेरा मन का महातीर्थ तथा यात्रा का उद्देश्य दोनों ही सिद्ध हो जावेगा:—

"यस्तद्वेद स वेद सर्वथ्ंसर्वादिशो बलिमस्मै-हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत् तद् व्रतम तद्व्रतम्॥"
(अ० २-२१ खण्ड ४ श्लो०)

अर्थात् "जो इस सर्वात्मक साम को जानता है, वह सबका ज्ञाता होता है। सब दिशायें उसे भोग्य वस्तु देती हैं। सब कुछ मैं हूँ, मुझसे इतर कुछ भी नहीं--ऐसी ही उपासना उचित है और यही नियम पालनीय है।"

—❀—
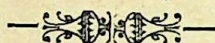
तीर्थ

[लेखक—श्रीयुत पं० रामगोपालजी शर्मा 'गुपलेश', वैद्य-विशारद, फ़िरोज़ाबाद]

(१)

तीर्थ मनोरम पावन हैं,
पुण्य प्रतिभा के ये आगार।
जीव का करते हैं कल्याण,
धार्मिकता के हैं भण्डार॥

(२)

परम-पावन सलिल-धारा,
नित्य ही उनके पग धोती।
चिदानन्द का वर्षण कर,
महत्ता के देकर मोती॥

(३)

हृदय-कालिमा को धोते ये,
भारतीय-संस्कृति स्मारक।
ज्ञान-भक्ति का पाठ पढ़ाते,
युग युग के ये धर्म-प्रचारक॥

(४)

रज-कण से होता है जिनकी,
मानवी-जीवन का उद्धार।
प्रभु के प्रिय निवास-स्थल ये,
लौकिक-नौका करते पार॥

(५)

गिरिवर, तरुवर से आच्छादित,
प्रकृति के रम्य-सहज श्रृङ्गार।
अज्ञान-मोह को दूर हटाकर;
आध्यात्मिकता का करें प्रसार॥

(६)

व्यापक-चेतनता देकर ये,
पाप-पुञ्ज हैं हर लेते।
मानवता का कर उत्थान;
जीव को भुक्ति-मुक्ति देते॥

(७)

प्रभू-साक्षात कराते ये, सदा 'गुपलेश' करें गुणगान।
स्वर्ग-सुषमा के द्योतक ये, धवल-कीर्ति की हैं ये खान॥

तीर्थों में दान करने का महत्त्व

(लेखक—भक्तवर श्रीयुत सेठ रामगोपालजी पाटोदिया)

यद्यपि वैसे तो दान करने का महत्त्व यथार्थ रीति से वर्णन करना मुझ जैसे अनभिज्ञ लेखक की सामर्थ्य के बाहर है, परन्तु इस लेख द्वारा सूक्ष्म रूप से दान का महत्त्व लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

संसार में जितने भी धर्म प्रचलित हैं, उन सब में 'दान' धर्म का एक आवश्यक अङ्ग माना गया है, वैसे तो इसका प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ में न्यूनाधिक रूप से प्रतिपादन है, परन्तु हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में इसका अत्यधिक महत्त्व है। हिन्दू लोग प्रायः किसी न किसी रूप में दान करते भी रहते हैं, लेकिन शास्त्रोक्त दान बहुत कम देखने में आता है। श्रीभगवान् ने अर्जुन को श्रीगीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के दान बतलाये हैं—सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी।

श्रीभगवान् कहते हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेनुपऽकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विक स्मृतम्॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥
आदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

दान देना आवश्यक धर्म है, ऐसा विचार करके जो दान शुद्ध-भूमि (तीर्थ) और पुण्यकाल में, शुद्ध पात्र और विद्या सम्पन्न कुलीन में अनु-पकारी पुरुष के लिये प्रत्युपकार की इच्छा न करते हुए दिया जाता है, वह दान सतोगुणी दान समझा गया है। जो दान प्रत्युपकार के लिये स्वर्गादि फल की इच्छा लेकर कृपणता सहित दिया जाता है, वह दान रजोगुणी समझा गया है और जो दान निषिद्ध देश और काल में कुपात्रों को सत्कार रहित निन्दा पूर्वक दिया जाता है, वह दान तमो-गुणी कहा गया है।

हिन्दू जाति दान-शीलता में प्रसिद्ध है, इस जाति के बराबर दान-शीलता दूसरी किसी जाति में भी नहीं है। देश में लाखों करोड़ों रुपयों का दान हुआ और हो रहा है, लेकिन देखना यह है, कि आज जो दान हो रहे हैं, वह श्रीभगवान् के श्री-गीताजी में बतलाये हुए—कौन सी श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं?

साधरणतया जो लोग दान किया करते हैं, वह देश और काल का विचार न करके अपने नाम और बड़ाई के लिये कुपात्रों को दान दिया करते हैं। श्रीतीर्थाटन करने भी बहुत से हिन्दू आते जाते रहते हैं! उन्होंने वहाँ साधु वेशधारी दुराचारी तथा पण्डे पुजारियों को ही दान का पात्र समझ रक्खा है और इसी के अनुसार वे दान करते भी हैं। दान किये हुये धन से वे वेषधारी साधु अधिकांश गाँजा, सुलफा, भङ्ग, चरस आदि में और पण्डे लोग नाच, रङ्ग तमाशे आदि में लगा कर उस धन का दुरुपयोग किया करते हैं। ऐसा दान श्रीभगवान् के बतलाये हुए—तीसरी श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

कितने ही साधना करने वाले महान् पुरुष जो संसार के विषय-भोगों से विरक्त हो—श्रीभगवान् की तरफ़ अपनी चित्त की वृत्तियां लगा दी हैं और किसी के पास याचना करने नहीं जाते—ऐसे महान् पुरुषों की सेवा में द्रव्य लगाया जाता है, वह सतोगुणी दान कहलाता है। परन्तु ऐसे महान् पुरुष तो भूखे रह जाते हैं और वे वेशधारी पाखंडी नित्य प्रति रुपया दो रुपया कमा लेते हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण आज हमारे देश में लाखों भिख-मंगे पैदा होकर देश की आर्थिक स्थिति को नित्य-

प्रति भयानक बना रहे हैं और सार्वजनिक-संस्थाएँ धनाभाव के कारण निर्बल होती जा रही हैं।

बहुत से लोग केवल नाम के लिये ही दान दिया करते हैं, वे दान करते वक्त यह नहीं देखते कि यह योग्य है या अयोग्य। इस प्रकार का दान रजोगुणी कहलाता है। दानकर्त्ता अपने नाम ही के लिये क्यों न दान करता हो—लेकिन देश, धर्म, जाति की आवश्यकता को पूर्ण करने वाला दान हो, तो वह रजोगुणी होते हुए भी लाभकारी है; जैसे दुष्काल में अनाथों के रक्षार्थ, देश-विपत्ति रक्षार्थ, बालक-बालिकाओं के लिये शिक्षार्थ जो द्रव्य दान दिया जाता है, वह नाम के लिये किये जाने पर भी, मध्यम कोटि का होते हुए भी, फल-दायक व उपयोगी है।

दान कैसे पात्र को देना चाहिये, यह तो ऊपर लिखा जा चुका है। दान कहीं भी योग्य पात्र को दिया जाय, वह बहुत उत्तम है, परन्तु श्रीतीर्थों में जो दान योग्य पात्र को शास्त्रानुकूल रीति से दिया जाता है, उसका फल दानकर्त्ता को, दूसरी जगह जो दान दिया जाता है, उससे सहस्रों गुना होकर फल देता है। इसी तरह श्रीतीर्थों में रजोगुणी और तमोगुणी दान किया जाता है, उसका फल भी उसी तरह सहस्रों गुना होता है, इसलिये श्री-तीर्थों में श्रेष्ठ कर्त्तव्य या दान करना श्रेयस्कर है।

श्रीभगवान् ने श्रीगीता मे सत्तरहवीं अध्याय के अन्त में कहा है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

जो अश्रद्धा करके अग्नि में हवन करता है और अश्रद्धा करके केवल दिखलावे के लिये दान देता है, ऐसे दान न इस लोक में फल दे सकते हैं और न परलोक में फल दे सकते है।

कहानी—

तीर्थों की शक्ति

(लेखक—श्रीयुत "जयराम"जी)

श्रावण का महीना था। आकाश में घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं। विश्व को विश्राम देने वाली सुन्दर रजनी अपने अन्धकार पर गर्व कर रहीं थीं। ऐसी रात्रि में शय्या पर लेटे हुये श्रीकृष्णमोहनजी आधुनिक विचार-धारा में गोते लगा रहे थे, कि द्वार पर किसी ने पुकारा कि "यदि कोई दयालु सुनता हो तो मुझे दो रोटी खिलादे।" रात्रि के ६ बज चुके थे, लाइट लेकर श्रीकृष्णमोहनजी ने देखा—एक महात्मा खड़े हुये हैं। उन वृद्ध महात्माजी के मुखमण्डल पर तेज छाया हुआ था। कृष्णमोहन ने उनको सादर भोजन कराया और उनसे कुछ सत्सङ्ग छेड़ दिया। पूछा—"आप इस समय किधर से पधारे हैं?" महात्मा जी ने कहा—"काशी से।"

कृष्णमोहन—महाराज! मेरा मन शान्त नहीं होता है, कृपा करके कोई उपाय बतलाइये।

महात्माजी—आपका मन गृह में, स्त्री में, पुत्रों में, धन कमाने में आसक्त रहता है, आप कुछ दिन तीर्थ-भ्रमण कर आइये, तो ममता कम हो जायगी। जैसे नाली में पड़ा हुआ कोई मनुष्य कहे कि—मैं पवित्र नहीं होता, तो जाकर उसे नदी में खूब स्नान करना चाहिये—निर्मल हो जायगा, इसी तरह तीर्थ सेवन है।

कृष्णमोहन—अजी तीर्थों में तो बड़े-बड़े पाप

होते हैं; मुझे तो तीर्थों में ज़रा भी श्रद्धा नहीं है। जब तीर्थ में जाकर मैं पवित्र हो सकता हूँ, तो वहाँ के रहने वाले ही क्यों नहीं पवित्र होते ? इसका क्या मतलब है ?

महात्माजी—आप ठीक कहते हैं, तीर्थों में पाप होते हैं; परन्तु, तीर्थों में तीर्थों की पृथ्वी तथा गङ्गा आदि नदियाँ जिन्हें कि तीर्थ कहा जाता है, वे तो पाप नहीं करतीं। पाप, वहाँ इधर-उधर से जाकर रोज़गारी लोग बस गये हैं. वे करते हैं। इसलिये तीर्थों को क्यों बदनाम करते हो। आपको उधर ध्यान ही नहीं देना चाहिये। शहद के छत्ते काटने वाली मधुमक्खियों को देख कर कोई शहद को गालियाँ दे, तो मूर्ख समझा जायगा। शहद लेने वाला मक्खियों की परवाह नहीं करता, वे मक्खियाँ उसे काटती हैं, फिर भी वह शहद ले ही आता है। इससे यदि तीर्थ में तुम्हें क्लेश भी मिले, तो सहन करो। पाप की ओर ध्यान भी मत दो। वरना तुम निर्मल नहीं हो सकते।

जड़ चेतन गुन दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार॥

कृष्णमोहन—यह बात तो समझ में आगई। पर तीर्थों की भूमि तीर्थ के पण्डों की बुद्धि को पवित्र क्यों नहीं करती है ?

महात्माजी—उसका कारण कुछ और है। सारे संसार के पापी हज़ारों, लाखों, तीर्थों में नित्य-प्रति जाया करते हैं। वे अपने जीवन भर के किये हुए पापों की निवृत्ति के लिये तीर्थ में पण्डों को दान करते हैं। उस दान से उनके पाप तो निवृत्त हो जाते हैं, पर पण्डों को लग जाते हैं। इस प्रकार निरन्तर पापों की निवृत्ति के लिये दिये हुये दान को लेने के कारण उनकी बुद्धि मलिन रहती है। वे पण्डे बड़े ही परोपकारी हैं, आपके पाप लेकर आपको पवित्र करते हैं और स्वयं मलिन हो जाते हैं। इसलिये आप लोगों को उनका अहसान मानना चाहिये। अपने ऊपर परोपकार करने वाले को गालियाँ देना अनुचित है।

कृष्णमोहन—यह बात भी आपकी माननीय है, किन्तु तीर्थों में भटकने क्यों जाँय ? हम घर ही में भजन कर सकते हैं।

महात्माजी—बिना तीर्थ भ्रमण के ज्ञान नहीं होता, जैसे कुयें का मेढक समुद्र का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। मैंने पहिले ही कह दिया है कि गृह में आसक्ति के कारण जो मोह हो गया है, वह बिना सत्सङ्ग के और तीर्थ-भ्रमण के नहीं जाता। तीर्थों में जाकर व्रत, जप, तप, दान, सत्सङ्ग करना चाहिये, तीर्थों में दिल बहलाने के लिये, सैर करने जाना बुरा है। तीर्थों में छिपे हुये, बनों में तप करने वाले सैकड़ों महात्मा, सिद्ध पुरुष अब भी रहते हैं, उनकी खोज करनी चाहिये, और उनकी सेवा तथा सत्सङ्ग करना चाहिये। मैंने विरक्त होकर ऐसे सहस्रों सिद्धपुरुषों की खोज की है। चित्रकूट, और बदरिनारायण, व्रज के बनों में, अयोध्या काशी आदि में छिपे हुये सन्त निवास करते हैं। मुझे बड़े-बडे मठाधीश महन्तों में वह बात नहीं मिली, जो तपस्वी एकान्तिक सन्तों में मिली। वह सन्त उसको मिलते हैं, जो कष्ट सहन करके उनकी खोज करता है। तुम तीर्थों में जाओ और कुसङ्ग में न पड़ कर, तीर्थों में पाप होता है या नहीं इसके ही झगड़े में न पड़के, स्वयं तप करो और तपस्वी महात्माओं को खोज का सत्सङ्ग करो। बस, मैं जाता हूँ।

कृष्णमोहनजी और कुछ पूछना चाहते थे, पर महात्माजी ज़रा भी न ठहरे। और कमण्डल उठा कर सघन-बन की ओर चल दिये। कृष्णमोहनजी महात्माजी की बातों पर रात भर विचारते रहे, प्रातःकाल उन्होंने चित्रकूट जाने की तैय्यारी की। बड़ी ही श्रद्धापूर्वक उन्होंने चित्रकूट का दर्शन किया और लौट आये। तदनन्तर हरिद्वार के लिये प्रस्थान किया। हरिद्वार के स्टेशन पर पण्डों की भीड़ देखकर और अपना नाम पता बताते-बताते हैरान हो गये। पण्डों ने बहियाँ दिखलायीं और बड़ी ज़िद की, पर इन्होंने किसी पण्डे के घर

स्वीकार नहीं किया । स्टेशन पर ही इनको एक सज्जन मिल गये, उन्होंने कहा—'हम भी दर्शनार्थ आये हैं, चलिये धर्मशाले में ठहरें ।' उन सज्जन के साथ धर्मशाले में आये और एक कमरे में दोनों ठहराये गये ।

दूसरे दिन कृष्णमोहनजी उन सज्जन को बैठाल कर शौच को गये, लौट कर आये तो देखा । वे सज्जन ग़ायब हैं और साथ ही अपना ट्रंक जिसमें ५०) रक्खे थे, वह भी नदारद हैं । बड़ा आश्चर्य है, कहते हुए उन्होंने खोज की, पर कुछ भी पता न लगा । गृह से तार देकर रुपये मँगवाये और हरिद्वार से ऋषिकेश में आगये । एक बार गङ्गा किनारे से आ रहे थे कि एक ओर गली में एक नौजवान स्त्री से हँसी-मज़ाक करते हुये उन्हीं सज्जन को साधुवेष में देखा । जो रुपये लेकर ग़ायब हो गये थे । यदि वे चाहते तो उसको पकड़वा देते, पर उनका मन शान्त था, उन्होंने चुपचाप कदम बढ़ाया और अपने निवास स्थान पर आ-गये । वे मन ही मन विचारने लगे कि- 'यही तीर्थों का पाप है, यह गुण्डे ही सज्जनों का वेष बना और साधुओं का वेष बना कर लोगों को ठगते हैं और यही लोग व्यभिचार करके साधुओं को और तीर्थों को बदनाम करते हैं, पर वास्तव में सच्चे साधु और पवित्र तीर्थों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं ।

ऋषिकेश से वे लक्ष्मण झूला में आये और सच्चे महात्माओं की खोज की । उन्होंने बड़े-बड़े तपस्वी सन्तों की सेवा की और सत्सङ्ग किया । एक दिन वे लक्ष्मण झूले से आगे गरुड़चट्टी पर गये । वहाँ पर पर्वतों का दृश्य देखते हुये इनको साँयकाल हो गया । गरुड़चट्टी से २ मील लक्ष्मण-झूले पर लौटना था । मार्ग में इन्होंने देखा--एक अत्यन्त दुर्बल महात्मा पर्वत से उतर कर गङ्गाजी की ओर जा रहे हैं । कृष्णमोहनजी ने उनको प्रणाम किया और बड़ी दीनता दिखला कर कुछ उपदेश करने की प्रार्थना की । वे महात्मा द्रवित होकर बोले-- 'इस कलिकाल में उपदेश किसी को रुचिकर नहीं, लोग सुनते भी हैं तो इस कान से सुन कर उस कान से निकाल देते हैं । यही कारण है कि सिद्धमहापुरुष आजकल उपदेश नहीं देते, वे कलिकाल के भय से छिपे रहते हैं । कलिकाल में ढोंगियों की पूजा होती है और सिद्ध महापुरुषों की निन्दा । यदि आप उपदेश चाहते हैं तो सुनो ! नित्य-प्रति नामसंकीर्त्तन दो घण्टे अवश्य करो । इससे बढ़कर कलि में कोई साधना नहीं, पर इन्द्रियों को वस में रखना । चाहे महात्मा साधु कैसा भी ढोंगी हो, उसकी सेवा करना । बस, यही उपदेश स्मरण रखो । और क्या चाहते हो ?

कृष्ण मोहन-इस वक्त और कुछ नहीं चाहिये, परन्तु मुझे प्यास और भूख बड़ी जोर से लग रही है । अब मैं शीघ्र दौड़ कर जाता हूँ और लक्ष्मण-झूला में पहुँच कर कुछ भोजन करूँगा ।

महात्माजी--ठहरो, अभी मैं आपकी भूख दूर करता हूँ । वह महात्माजी पास ही लगे हुए एक बेल के पेड़ पर चढ़ गये और एक बेल तोड़ लाये, उसको पत्थर पर फोड़ा, उसके दो हिस्से करके, गङ्गा में धोकर दे दिये । कृष्णमोहनजी ने बड़े प्रेम से बेल खाना आरम्भ किया । पर उसमें बेल का गूदा नहीं था, गरम-गरम खीर भरी हुई थी । खा-पी कर आनन्द से लौट आये ।

दूसरे दिन फिर उसी समय गये, पर महात्माजी नहीं मिले । उसी तरह उस बेल को तोड़कर गङ्गाजी में धोकर खाया पर उसमें खीर नहीं थी । वही बेल का गूदा और बेल का स्वाद था । बेचारे लौट आये । कृष्णमोहनजी ने विचार किया कि महात्माजी सिद्ध पुरुष थे; उन्होंने अपनी सिद्धि से खीर प्रकट कर दी थी । इसी तरह सिद्ध पुरुष अपने लिए भोजन प्रकट कर लेते हैं; उन्हें पेट के लिये भटकना नहीं पड़ता ।

तीर्थ-महिमा

[लेखक—आदरणीय पण्डित श्रीकलाधरजी त्रिपाठी]

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(गीता २।७१)

श्रीभगवद्गीता के इस श्लोक का आशय यह है कि जो भक्तजन समस्त लौकिक कामनाओं को त्याग और निःस्पृह होकर विचरते हैं अर्थात तीर्थादि में भ्रमण करते हैं, उन्हें स्त्री, पुत्रादि की ममता नहीं रहती और न अपने सत्कर्मों का का अहङ्कार होता है। ऐसे ही मनुष्यों को शान्ति मिलती है।

जब तक मनुष्य में भोग--वासना बनी रहती है और वह निःस्पृह नहीं होता, तब तक उसका मन तीर्थादि में नहीं लगता और जो सब सांसारिक कामनाओं को छोड़कर तथा अनित्य सुख की स्पृहा से रहित होकर, तीर्थों में भ्रमण करते हैं, उन्हें न तो अपने घर और घर वालों की ममता रहती है और न अपनी योग्यता, ऐश्वर्य तथा पुण्यकर्मों का अभिमान होता है। ऐसे ही निःस्पृह, निर्मम और निरहंकार मनुष्यों को शान्ति मोक्ष (मिलती) है।

तीर्थ-यात्रा द्वारा यह सब किस प्रकार सुलभ है, यह आगे लिखा जाता है।

मनुष्य का स्वभाव प्रेम करना है। जिस स्थान पर वह उत्पन्न होता है, वहाँ के मनुष्यों और वस्तुओं के प्रति उसकी आसक्ति निरन्तर बढ़ती रहती है। अर्थात् जब वह शिशुरूप में होता है, तब सबसे पहले उसका प्रेम अपनी माता में, फिर पिता, पितामह, पितामही, भाई-बहिन, आदि घर के दूसरे आदमियों में होता है। जिन-जिन मनुष्यों से उसका सम्पर्क बढ़ता जाता है, उन्हीं के प्रति उसका ममत्व भी बढ़ता है। यौवनावस्था में यही प्रेम अथवा आसक्ति स्त्री-पुत्रों की ओर हो जाती है। इसी प्रकार अपने घर, घर की चीज़ों रुपया--ज़ेवर आदि में उसका अनुराग होता है। यही प्रेम जब अपनी उच्च दशा को पहुँचता है, तब वह जाति-प्रेम, देश--प्रेम और विश्व--प्रेम कहलाता है।

जिस प्रकार किसी जलाशय में एक पत्थर पटकने से गोलाकार लहर उत्पन्न होती है, पहले वह लहर छोटी होती है, बाद को धीरे--धीरे बढ़ती जाती है, उसी प्रकार यह सांसारिक प्रेम भी बढ़ता रहता है, परन्तु यह सभी प्रेम सांसारिक होने के कारण भौतिक ताप का उत्पादक है; इससे जो सुख मिलता है, वह सुख की छाया मात्र है, वास्तव में इसका परिणाम दुःखी ही है। सच्चा और नित्य सुख तो भगवान् से प्रेम करने पर ही प्राप्त होता है।

भगवान् में प्रेम, भगवच्चरणों में आसक्ति किस प्रकार बढ़े ? इसके लिए तीर्थ--यात्रा और तीर्थों में निवास करना उत्तम साधन है। तीर्थों की यात्रा करने से मनुष्य कुछ दिनों को गृहस्थी के अनेक झंझटों से मुक्त हो जाता है। अपने घर वालों के सुख--दुःख की चिन्ता कम होकर उसे भगवान् के चरणारविन्दों में चित्त लगाने का सुअवसर मिलता है। वहाँ पर भगवच्चरित्र और भगवद्लीला का अनुभव तथा अनेक भगवद्भक्तों का समागम होता है, जिससे हरि--चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है। सच्चे साधु--महात्माओं का सत्संग भी तीर्थ--स्थानों में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सुलभ है। इस सत्सङ्ग से ही सांसारिक आसक्ति घटकर विवेक और वैराग्य का उदय होता है।

इसीलिए ज्ञान की सात भूमिकाओं में से शुभेच्छा नाम्नी प्रथम भूमिका में 'विषय विषै भई

रूपता, गुरु तीरथ अनुराग" रक्खा गया है। इससे प्रकट होता है, कि तीर्थों में अनुराग होने से सांसारिक विषयों के प्रति विरक्ति होना अवश्यम्भावी है। एदर्थ ज्ञानमार्गियों के लिए भी तीर्थों से प्रेम करना परम आवश्यक है; क्योंकि तीर्थ-यात्रा के विना ज्ञानी आगे बढ़ ही नहीं सकता। पहली सीढ़ी पर पहुँचे विना दूसरी सीढ़ी पर पहुँचना असम्भव सा ही है।

केवल भक्तों और ज्ञानियों के लिए ही तीर्थों में भ्रमण करना उपादेय नहीं है; अपितु कर्म-काण्डियों को भी इससे विशेष लाभ होता है। तीर्थ में बहुत से श्रद्धालु जन यज्ञ, दान प्रभृति कृत्य करते रहते हैं; उन्हें देखकर दूसरे मनुष्यों को भी यज्ञ, दानादि करने की इच्छा होती है और ऐसे पवित्र कर्म करने का उत्साह बढ़ता है। दूसरों को बहुत बड़ा दान करते देखकर अपने छोटे--छोटे दानों के लिए जो अभिमान होता था, वह नष्ट हो जाता है। इसी कारण तीर्थों में दान करने का अधिक महत्त्व माना जाता है।

धौलपुर राज्य में भी "श्रीमुचुकुन्द" नामक एक तीर्थ है। यह स्थान जी० आई० पी० रेलवे लाइन पर स्थित, आगरा और ग्वालियर के बीच में, धौलपुर जङ्कशन स्टेशन से तीन मील की दूरी पर है। स्टेशन के निकट ही एक धर्मशाला है, जहाँ यात्रियों को ठहरने की सुविधा है। और स्टेशन से श्रीमुचुकुन्द तीर्थ तक धौलपुर-नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज श्रीसवाई महाराजा राना सर उदयभानुसिंहजूदेव बहादुर जी० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आई०, के० सी० बी० ओ० ने पक्की सड़क बनवादी है।

यहाँ भाद्रपद मास में ऋषिपञ्चमी और देव-षष्ठी को एक बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें आगरा ज़िला, ग्वालियर राज्य और धौलपुर राज्य की बहुत--सी जनता एकत्र होती है। इस मेले में ग्रामीण जनता की संख्या अधिक होती है। धौलपुर राज्य की ओर से मेलों का समुचित प्रबन्ध होता है। बहुत से धौलपुर निवासियों के बालकों के मुण्डन आदि संस्कार भी इसी तीर्थ पर होते हैं। यह स्थान बड़ा पवित्र है।

यह तीर्थ ऊँचे स्थान पर अवस्थित है, इस कारण वर्षा ऋतु में इसकी प्राकृतिक शोभा बड़ी मनोरम हो जाती है। यहाँ एक सुन्दर सरोवर है, जिसके चारों ओर पक्के घाट बने हुए हैं और उसके इर्द--गिर्द बहुत से मन्दिर हैं। धौलपुर के स्त्री--पुरुष वैशाख में प्रत्येक रविवार को और ज्येष्ठ में श्रीगङ्गा दशहरा को भी इस तीर्थ में स्नान करने जाते हैं। यद्यपि आजकल इसमें पानी बहुत कम है; परन्तु बरसात में अच्छी तरह नहाने लायक़ हो जाता है।

श्रीमद्भागवत के दशवें स्कन्ध, अध्याय ५१ में श्रीमुचुकुन्द का इतिहास वर्णित है, जिसका सारांश यह है कि इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्दजी बड़े प्रतापी महाराज थे। इन्होंने देवताओं को युद्ध में बड़ी सहायता दी थी और दैत्यों से बहुत वर्षों तक संग्राम किया था। इससे प्रसन्न होकर देवगण ने उन्हें यह वर दिया कि जो कोई उनको सोते से जगावेगा वह तुरन्त भस्म हो जावेगा। यह वर पाकर श्रीमुचुकुन्दजी एक पर्वत की कन्दरा में जा सोये। मगध के सम्राट् जरासंध का मित्र कालयवन भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे--पीछे उसी कन्दरा में पहुँच गया और मुचुकुन्दजी को श्रीकृष्ण समझकर जगा दिया, जिससे वह तुरन्त भस्म होगया। इसके बाद भगवान् ने मुचुकुन्द को दर्शन दिये। उसने फिर उस पर्वत के निकट ही एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। इसीसे इस तीर्थ का नाम श्रीमुचुकुन्द तीर्थ पड़ा।

तीर्थों की महिमा से हमारे सभी शास्त्र भरे पड़े हैं। कहाँ तक कोई इनकी महिमा का वर्णन कर सकता है?
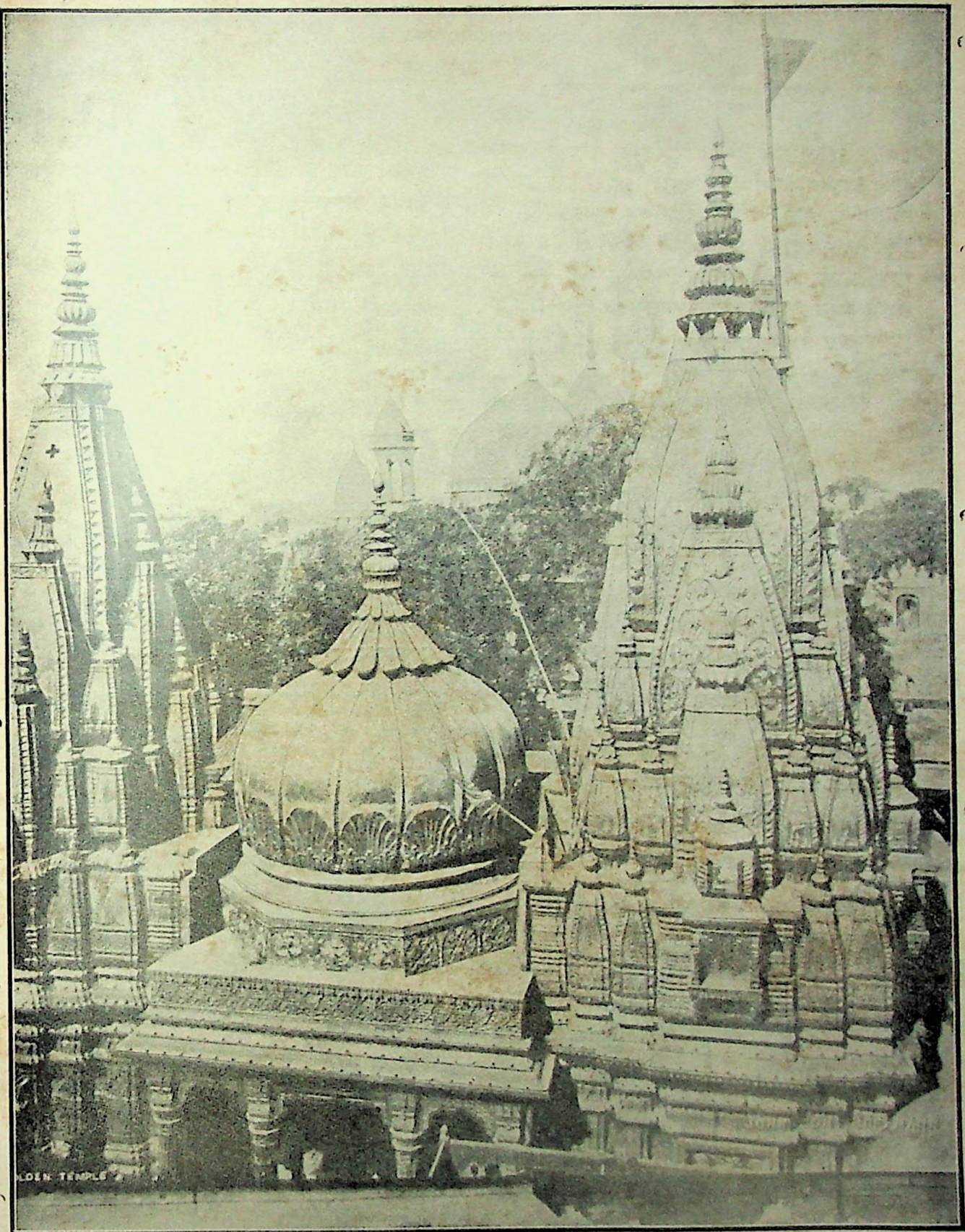
श्रीविश्वनाथजीका मन्दिर—काशी

काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें गङ्गावतरणकी झाँकी
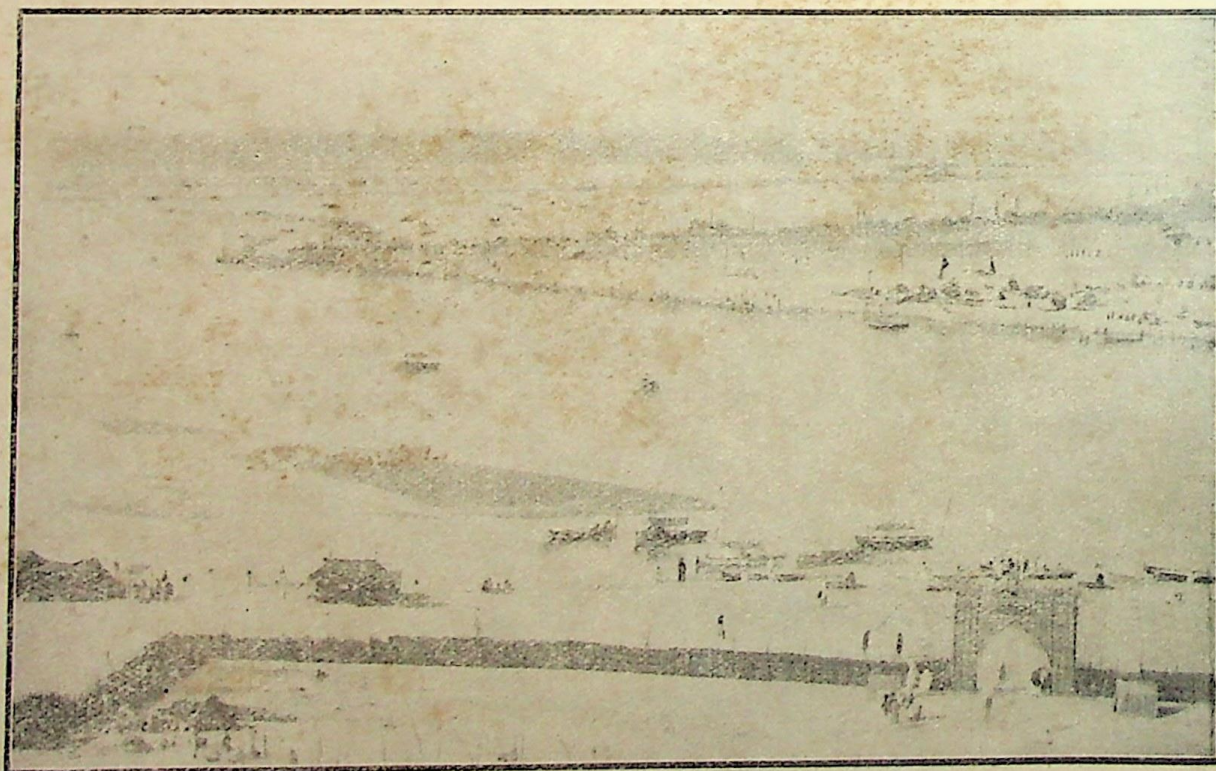
गङ्गा-यमुना-सङ्गम—प्रयागराज

तीर्थ-तत्त्व

[लेखक—विद्वद्वर श्रीरामप्रसादजी पाण्डेय, एम० ए०]
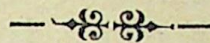
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ,
नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ।
जहँ सिय रामु लषनु निसि सोये,
कहत भरे जल लोचन-कोये ॥

भक्त-प्रवर भरत की इस वाणी और अवस्था में सारा तीर्थ-विज्ञान अत्यन्त सुन्दर रूप से दिखाया गया है। राम, सीता एवं लक्ष्मण से भरत की प्रीति है। उन्हीं में उनकी मति एवं गति है। अत: उनके सम्बन्ध की सभी वस्तु और सभी स्थान भरत की प्रीति और भक्ति के पात्र हैं। उपास्य देवी-देव का जहाँ साक्षात्कार नहीं है, वहाँ भरत उस स्थान का दर्शन करना चाहते हैं, जहाँ 'सिय-राम-लषनु' ने रात्रि बितायी थी और उस प्रश्न से ही उनमें तन्मयता आ जाती है। यही तीर्थ है और तीर्थ का महत्त्व है। वास-स्थान के स्मरण और दर्शन से वासी के स्मरण और दर्शन का आभास मिलता है। इसीलिए—

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं,
तिन्हहिं नाग सुर नगर सिहाहीं।
केहि सुकृती केहि घरी बसाये,
धन्य पुण्य मय परम सिहाये ॥
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं,
तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥

'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।' आत्म-भिन्न यदि कोई वस्तु, कल्पनावश, प्रतीति में आती है और प्रिय लगती है तो उसका कारण वह वस्तु नहीं है, आत्म-सम्बन्ध से वह प्रेम लगती है। प्रधान तीर्थ आत्मा ही है। आत्म-प्राप्ति का साधन ज्ञान-भक्ति योग वैराग्यादि हैं। अत: दूसरी श्रेणी के तीर्थ ये मानसिक पदार्थ हैं। परन्तु इनकी कल्पना इनसे आधार के सङ्ग होती है। ज्ञानी से भिन्न ज्ञान, भक्त से भिन्न भक्ति आदि की कल्पना क्लिष्ट है। ज्ञान-भक्ति आदि की कल्पना सुगमता से ज्ञानी और भक्त, के द्वारा की जाती है। इसलिये ज्ञानी एवं भक्त तपस्वी आदि तृतीय श्रेणी के तीर्थ हैं। व्यापक दृष्टि से अवतार पुरुष भी इन्हीं में सम्मिलित हैं क्योंकि—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

शंसार में जो वस्तु ऐश्वर्यमान्, कांतिमान और बलवान् है, वह सब भगवदंश है। तत्त्वत: 'सर्वं वासदेवम्' है, परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से जहाँ विशेष गुणोत्कर्ष है, अर्थात् जहाँ भगवान् की अधिकधनीभूत विभूति है, वहाँ भगवान् की स्थिति मानी जाती है अर्थात् लीला पुरुषों से लेकर साधु-सन्त तक सभी तीर्थ हैं।

इन सभी की लीला भूमि इनका स्मारक है, इनकी ओर उन्मुख करने वाली है, इसलिये वह सब स्थली भी तीर्थ हैं। इस तीर्थ को हम चौथी कोटि देते हैं, परन्तु और तीर्थ अपने यौगिक नाम से प्रसिद्ध हैं और केवल ये स्थल रूढ़ि तीर्थ रह गये हैं, इसलिये तीर्थ पद से इन लीला-भूमियों को ही समझा जाता है। सामान्य बोल-चाल में तीर्थ इन्हीं को कहा जाता है।

साधारण लोगों में, जब किसी बात को स्मरण रखना आवश्यक समझा जाता है, तब वह बात कहकर रूमाल या दुपट्टे में एक गाँठ दे दी जाती है। कहा भी जाता है कि गाँठ देकर यह बात कहता हूँ, जिसका भाव यह है कि इसे कभी नहीं भूलूँगा। उस गाँठ को देखकर उस सारी स्थिति का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है, जिसमें वह दी गयी। मनोविज्ञान में इसे घटना चक्र का नियम कहते हैं। इसका बड़ा मनोहर चित्र एवं विवेचन कविवर मतिराम ने किया है—

ह्यां मन मोहन सों मतिराम,
सुकेलि करी अति आनन्द वारी।
सोइ लताद्रुम देखि के हाय,
कढ़ै अँसुवा अँखियान तें न्यारी।
आवति हौं जमुना जल को,
नहि जान परै बिछुरे गिरधारी।
जानति हौं सखि आवन चाहत,
कुंजन तें कढ़ि कुंज–बिहारी॥

जिस स्थल में स्वनामधन्य गोपी ने भगवान् के सङ्ग विहार किया था, अब उस स्थल और वहाँ के लताद्रुम को देखते ही अतीत के समस्त अनुभव मूर्तिमान हो सामने आ जाते हैं। अधिक तो क्या, गोपिका भगवान् को अपनी ओर आता हुआ सा देखती हैं।

तीर्थों का महत्त्व इससे अधिक सजीव भाषा में क्या वर्णन हो सकता है? सवैया कही गई है और ही संसर्ग में, परन्तु हमारे विषय का भी कैसा सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती है। भगवान् राम, कृष्ण के चरित्र का कैसा सजीव चित्र अयोध्या-मथुरा-वृन्दावन को देखते ही सामने आ जाता है। भक्तों के लिए भगवान् का यह भाव-दर्शन है। यह साथ ही साथ सत्सङ्ग एवं सत्संग का सरस फल भी है। इसीलिए भक्त लोग कामना किया करते हैं कि—

'*ब्रज के लता–पता मोहि कीजै।*'

अथवा, '*जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।*

यह विज्ञान 'प्रत्यक्षा गमं धर्म्मं सुसुखं कर्तुमव्ययम्' है।

परन्तु इस सिलसिले में एक और बात का अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिए। यदि हम यह सोचें कि हम कैसे भी हों और तीर्थ में जाकर पवित्र हो जायेंगे, तो वह अन्ध विश्वास होगा। पथ्य उसको लाभकारी होगा जिसमें संयम हो। यमनियम श्रद्धा भक्ति हममें होना चाहिए, तब हम तीर्थ द्वारा पवित्र होने की अथवा भगवान् द्वारा अपनाये जाने की आशा कर सकते हैं। विगत विकार अधिकारी तीर्थ अथवा अन्य साधनों से लाभ उठा सकता है। इसी तत्त्व को दृढ़ करने के लिए बीतिकार ने कहा है कि दूसरे स्थल के विकार तीर्थ में नष्ट हो जाते हैं, परन्तु यदि दुर्भाग्यवश वहाँ भी विकार का कारण उपस्थित कर लिया जाय, तो वह कहीं नष्ट नहीं होता है। आत्मिक–भाव से तीर्थों में प्रभाव है। अतः तीर्थ सेवी का यह परम कर्त्तव्य है कि अपने भाव दान से तीर्थ को अधिक प्रभावशाली करे। अपने भक्ति-भाव से तीर्थ के भण्डार को अधिकाधिक भरे। जहाँ-जहाँ 'भरद्वाज' 'कहहिं कथा भागवत् के, संयुत ज्ञान-विराग', वहाँ-वहाँ 'तीरथराज प्रयाग' की सृष्टि होगी।

'*तथां तेषु वर्तेथाः, एष आदेशः, एष उपदेशः।*'

तीर्थ

[लेखक—पं० श्रीश्यामनारायणजी मिश्र, 'श्याम']

समय-समय पर जहाँ, विविधि-वपु में विभु आये।
नचे कहीं यदि आप, तो कहीं भक्त नचाए॥
इन क्षेत्रों की कीर्ति-गान, निगमागम गाते।
जो भी जाते वहाँ पाप लेकर, खो आते॥
यह प्रभु-क्रीड़ास्थल-समय पर–तीर्थ कहे जाने लगे।
शुचि-भक्ति-त्रिपथगा-वीचि में, जन-मन इठलाने लगे॥

अधिक नहीं, तो प्रभु-पद-अङ्कित-भूमि वही है।
किसी समय में जहाँ, भक्ति-रस-सरित वही है॥
वहाँ, आज भी जाते ही, चित–श्रद्धा जगती।
पाप पङ्क–धूसरित–बुद्धि, सद्भावों पगती॥
होतीं नित, लीला वहाँ—वे नित–लीला–धाम हैं।
लखते अब भी, हरि-कृपा, जिनको जन ही 'श्याम' हैं॥

तीनों ताप जलें जहाँ, मिलता शान्ति-प्रसाद है।
हाय! आज, जाना वहीं, जाता गिना प्रमाद है॥

तीर्थों में संत

[लेखक—श्रीयुत भक्त रामशरणदासजी, पिलखुवा]

गढ़मुक्तेश्वर—गढ़मुक्तेश्वर मेरठ जिले में एक सुप्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ पर श्रीगङ्गाजी हैं। पूर्णिमा और अमावस्या को दूर-दूर से यात्री स्नानार्थ आते हैं। कार्तिक पूर्णिमा पर हर साल बहुत बड़ा मेला होता है, जिसमें ४-५ लाख के क़रीब जनता आती है और स्नान करती है। शहर में नक्का कुआ है, प्राचीन शङ्करजी का मन्दिर है, जिसका दर्शन करते हैं। गङ्गा मन्दिर भी दर्शनीय है। यह बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है। इसमें बहुत बड़े-बड़े महात्मा हो चुके हैं। अब इस समय श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी १०८ कृष्णबोधाश्रमजी महाराज बहुत प्रसिद्ध महात्मा हैं। आप दण्डी संन्यासी हैं और पैदल ही विचरा करते हैं। मिट्टी का करवा रखते हैं तथा बड़े त्यागी और तपस्वी हैं। आप तम्बाखू पीने वाले के यहाँ की भिक्षा ग्रहण नहीं करते। हज़ारों से आपने तम्बाखू पीना छुड़ाया होगा। हज़ारों ब्राह्मणों की सनातन-धर्म में श्रद्धा कराई होगी। ऐसे संन्यासी कम ही देखने में आते हैं।

प्रयाग—प्रयाग तीर्थों का राजा है। त्रिवेणीजी महारानी का स्नान दर्शन करना होता ही है। भूसी में बाल ब्रह्मचारी श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी महाराज बड़े अच्छे महात्मा हैं। आप मौन रहते हैं, 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवा' यह आप हर समय बोलते रहते हैं। एक वर्ष का आपने अखण्ड-कीर्त्तन भी कराया था। पूज्यपाद श्रीस्वामी अवधविहारीदासजी महाराज (परमहंस नागा बाबा) बड़े उच्चकोटि के महात्मा हैं। आप बाँध गुफ़ा में रहते हैं। पूज्यपाद श्रीपण्डित जयरामदासजी 'दीन' रामायणीजी महाराज भी बड़े रामभक्त सन्त हैं। और भी बहुत सन्त महात्मा हैं, जिन्हें हम कम जानते हैं।
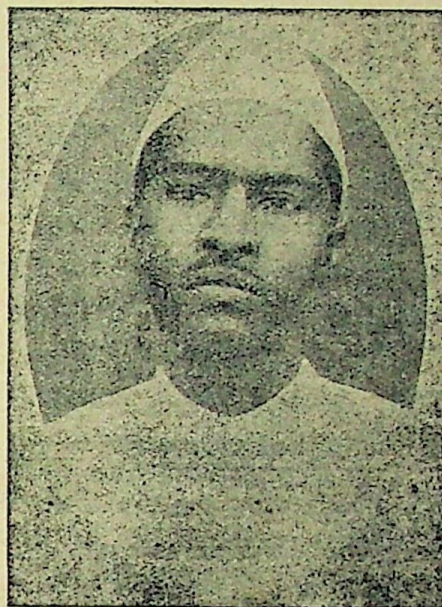
(इस लेख के लेखक)

काशी—काशी को कौन है जो न जानता होगा ? भगवान् विश्वनाथ या अन्नपूर्णा यहाँ विराजती हैं। काशी में मरने पर मोक्ष होती है। यहाँ भी बड़े-बड़े सन्त महात्मा हैं। इस समय वहाँ पर श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य वीतराग ब्रह्मनिष्ठ श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज बड़े उच्चकोटि के महात्मा रहते हैं। आपके उपदेश सुनने को बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित पधारते हैं। सनातन धर्म की रक्षा के लिये प्राणपण प्रयत्न करते हैं। ऐसे त्यागी महात्मा कम देखने में आते हैं। अस्सीघाट पर माता श्रीगङ्गाजी में नौका पर काशी के सुप्रसिद्ध सिद्ध-महात्मा श्रीहरिहर बाबाजी महाराज बैठे रहते हैं। आप बिल्कुल नग्न रहते हैं और पूरे सिद्ध महात्मा हैं। आपने पहिले सूर्य की घोर तपस्या की थी। पूज्यपाद श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी जयन्द्रपुरीजी मण्डलेश्वर, महेश्वरानन्दजी मण्डलेश्वर, श्रीस्वामी गंगेश्वरानन्दजी मण्ड-

लेश्वर आदि और भी बहुत से महात्मा रहते हैं। माध्व सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी दामोदरजी शास्त्री भी यहीं पर रहते हैं। सिद्धान्त और सन्मार्ग नामक दो धार्मिक पत्र भी यहाँ से निकलते हैं। विद्वानों की तो खान है।

अयोध्या—अयोध्या का परिचय देना—सूर्य को दीपक दिखाना है। रामब्रह्म की जन्मभूमि है। चारों ओर ही सीताराम की ध्वनियाँ गूँजती मिलेंगी। रामभक्तों की तो प्राण ही है। यहाँ पर बड़े-बड़े सिद्ध सन्त हो चुके हैं और अब भी हैं। परम पूज्यपाद पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज बड़े उच्चकोटि के महात्मा हैं। महात्मा श्रीबालक-रामजी विनायक, बिन्दु ब्रह्मचारीजी, रामबालक-दासजी, रामपदार्थदासजी आदि बहुत से सन्त महात्मा रहते हैं।

श्रीहरिद्वार—श्रीहरिद्वार तो हरि का द्वार ही ठहरा। लाखों मनुष्य स्नान करने आते हैं। १२ वर्ष में एक कुम्भ भी पड़ता है। यहाँ बड़े-बड़े सिद्ध-सन्त हो चुके हैं और रहते हैं। कनखल में भगवतानन्दजी मण्डलेश्वर, परमानन्दजी मण्ड-लेश्वर, कृष्णानन्दजी मण्डलेश्वर आदि बहुत से सन्त महात्मा हैं।

ऋषीकेश—ऋषीकेश में भी सन्तों की खान है। हजारों साधु झाड़ियों में मस्त पड़े रहते हैं। बड़े-बड़े उच्चकोटि के महातमा विचरा करते हैं। अभी पिछले दिनों गङ्गा के किनारे परम पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्रीस्वामी केशवानन्दजी अवधूत खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। बड़े सिद्ध महात्मा थे। महाराजा पटियाला, सेठ जुगलकिशोर बिड़ला और पं० मदनमोहनजी मालवीय आदि सब के सब आपके दर्शनार्थ आया करते थे। हाल ही में आपका कैलाशवास होगया। यहाँ श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती भी रहते हैं। बड़े-बड़े विरक्त महात्मा झाड़ियों में रहते हैं।

लक्ष्मणझूला—यह भी प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ पर भी बड़े-बड़े सन्त महात्मा रहते हैं। सिद्ध महात्मा सुन्दरनाथजी बड़े योगी महात्मा हैं। इनका दर्शन कभी-कभी होता है।

गङ्गोत्री—गङ्गोत्री में नहीं गया हूँ, इससे मुझे वहाँ का कुछ पता नहीं है। वहाँ के सन्तों का भी दर्शन नहीं मिला है, देखो कब भगवत्कृपा होती है। पूज्यपाद श्रीस्वामी ब्रह्मप्रकाशजी महा-राज का दर्शन अवश्य हुआ है। आप बड़े उच्च-कोटि के महात्मा हैं। सुप्रसिद्ध महात्मा कृष्णा-श्रमजी महाराज भी यहीं पर रहते हैं, शान्ति-आश्रम भी महापुरुष हैं। तपोवनजी महाराज भी यहाँ पर ही अधिकतर रहा करते हैं।

वृन्दावन—वृन्दावन तो साक्षात् गौलोक ही ठहरा। बाँकेबिहारी, राधारमण, राधावल्लभ के दर्शन कर लेने पर—फिर वृन्दावन छोड़ने को जी नहीं चाहता। यहाँ पर हाल ही में परम पूज्य-पाद ब्रजराज सखा श्रीग्वारिया बाबाजी महाराज, परमपूज्यपाद परमहंस श्रीरामकृष्णदासजी महाराज जो वृन्दावन के रत्न थे, गौलोक वास होगया। अब भी बहुत से सन्त-महात्मा रसिक-भक्त छुपे पड़े हैं। पूज्यपाद वेदान्त-शिरोमणि श्रीस्वामी १०८ श्रीरा-मानुजाचार्यजी महाराज, पूज्यपाद बाबा रघुनाथ-दासजी महाराज, श्रीहाथीबाबाजी महाराज, प्रिया-शरणजी, केशवानन्दजी, बाबा माधवदासजी आदि बहुत से सन्त रहते हैं।

जगन्नाथजी—जगन्नाथजी सुप्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ गोवर्धमठ है। श्रीमत्परमहंस परिव्राज-काचार्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य तथा ११०८ श्री-स्वामी भारती कृष्णतीर्थजी महाराज यहीं पर अधिकतर रहते हैं। और भी अनेकों तीर्थ एवं महात्मा हैं, किन्तु स्थानाभाव के कारण यहीं पर लेख समाप्त किया जाता है।

तीर्थों का वैभव

[लेखिका—श्रीमती सावित्रीदेवीजी अग्रवाल, विदुषी, विशारदा]

तीर्थेन हि प्रतरन्ति तद्यथा समुद्रं तीर्थेन प्रतरेयुः।
(गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग ५ । २)

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बुद्वीपे महामुने।
यतोहि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः॥
अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्य सञ्चयात्॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि।
धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे॥
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
(विष्णु पुराण २ । ३ । २२—२४)

इस जम्बुद्वीप में भारतवर्ष सब से श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि यह कर्मभूमि है, इसके सिवाय अन्य देश भोगभूमि हैं। अपने पुण्यों के सञ्चय से सहस्त्रों जन्म धारण करने के पश्चात् कभी एक बार इस भूमि पर प्राणी-दुर्लभ मनुष्य-योनि को पाता है। इस भारत-भूमि के भाग्य धन्य हैं। देवता लोग भी इस भारतवर्ष के गीत गाते हैं और स्वर्ग तथा अपवर्ग प्राप्त करने के लिये अपने देवत्व को छोड़ कर इस भूमि में मनुष्य रूप से जन्म लेने में अपना सौभाग्य समझते हैं।

तीर्थों के विषय में कुछ कहने के पहिले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि तीर्थ किसे कहते हैं। 'तरति पापादिकं यस्मात् स तीर्थम्' यह तीर्थ शब्द की व्याख्या हुई, अर्थात् जिन पवित्र स्थलों में जाने से मनुष्य के पाप नाश हो जाते हैं, वह तीर्थ स्थान कहलाते हैं। अब यह विचार उपस्थित होता है कि वहाँ ऐसी क्या बात है, जिससे वहाँ जाने पर पाप नष्ट हो जाते हैं। उसका उत्तर यह है कि:—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥
(मार्कण्डेय पुराण)

समस्त भूत प्राणियों में तथा सब स्थलों में विश्व स्थावर जङ्गम सब वस्तुओं में एक दैवी शक्ति निहित रहती है। तीर्थ-स्थानों में दैवी शक्ति विशेष रूप से विद्यमान रहती है अर्थात् वहाँ इसका प्रभाव अधिक है। इसी शक्ति के प्रभाव से तीर्थों में जाने से मनुष्य के पाप नाश होकर उसे पुण्य लाभ होता है। जैसे कि मनुष्य के शरीर के कोई-कोई अङ्ग पवित्र कहलाते हैं और विशेष शक्ति वाले होते हैं, जैसे—नाभि, हृदय, मस्तिष्क इत्यादि उसी प्रकार पृथ्वी पर कोई-कोई स्थान विशेष शक्ति वाले तथा पवित्र होते हैं और वे तीर्थ के नाम से पुकारे जाते हैं। तीर्थों के तीन कारणों से यह पवित्रता और दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है। भूमि के स्वभाविक प्रभाव से, जल की अलौकिक शक्ति से अथवा ऋषि मुनि सिद्ध पुरुषों के वहाँ निरन्तर निवास करने से और भगवान के भजन, पूजन तथा तपश्चर्या आदिक करने के कारण।

विद्वानों द्वारा तीर्थों के कई भेद किये गये हैं। तीर्थ तीन प्रकार के होते हैं। जङ्गम, मानस और स्थावर।

ब्राह्मण लोग सब अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हैं। ये ही जङ्गम अर्थात् जो सब जगह विचरण कर सकें, ऐसे तीर्थ हैं। इनके शुद्ध पवित्र एवं मनोहर उपदेशामृत से मनुष्य के समस्त पाप धुल जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने ब्राह्मणों की बन्दना करते समय बालकाण्ड के प्रारम्भ में कहा है—

मुद मङ्गल-मय संत समाजू ।
जो जग जङ्गम तीरथ राजू ॥
(श्रीरामचरितमानस से)

सत्य और प्रिय भाषण, क्षमा, इन्द्रिय संयम, शील, दान, सन्तोष, ब्रह्मचर्य्य, ज्ञान, धैर्य्य, तप, इत्यादि जितने अच्छे २ गुण मनुष्य में हैं यह सब मानस तीर्थ कहलाते हैं। एक बार भीष्म-पितामह ने राजा युधिष्ठिर से कहा था।

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था:,
सत्योदका शील तटा दयोर्मि ।
तत्राभिषेकं कुरु पांडु पुत्रः,
न वारिणा शुद्धयति चांतरात्मा ॥
(महाभारत)

आत्मा नदी है। संयम ही पवित्र तीर्थ हैं। सत्यरूपी जल है। शील रूपी नदी के तट हैं। दया रूपी लहरें हैं। ऐसी नदी के जल में हे राजन्! तुम स्नान करो, इस साधारण जल से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होती हैं। किसी संस्कृत कवि का बनाया एक और श्लोक याद आता है।

बनेऽपिदोषाः प्रभवन्ति रागिणां ।
गृहेऽपि पंचेन्द्रिय निग्रहस्तप: ॥
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

जो जोगी पुरुष हैं वह चाहें तीर्थों का सेवन करें, चाहे वन में जायँ कहीं उनका चित्त शान्त नहीं होता है और जो अच्छे बुरे में समवृत्ति वाले हैं जिनकी विषय वासना छूट गई है उनके लिये उनका घर ही तीर्थ है, उनके मनमें ही सब तीर्थ वराजते हैं।

स्थावर तीर्थ दो प्रकार के हैं नित्य या दैवतीर्थ और नैमितिक तीर्थ। दैवतीर्थ वह हैं जो नित्य अटल रहते हैं, और दैवनिर्मित हैं जैसे ब्रह्मा विष्णु,महेश,द्वारा स्थापित किये हुये काशी,प्रभास, पुष्कर, इत्यादि गङ्गा, सरस्वती, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, यह देव नदियाँ भी दैवतीर्थ हैं। नैमित्तिक तीर्थ पुनः तीन तरह के होते हैं आर्ष, आसुर और मानुषी।

ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ जैसे नैमिषारण्य इत्यादि आर्षतीर्थ कहलाते हैं। गया इत्यादि तीर्थ जो असुरों द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं, वह आसुर और सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ जैसे अयोध्या शूरसेन (मथुरा) इत्यादि मानुषी तीर्थ हैं।

मनुष्य तीर्थों में जाकर अपनी बहुत कुछ आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। विषयों की चिन्तन करते करते मनुष्य की बुद्धि मलिन हो जाती है और पाप कर्म करने लगता है। इसलिये यदि वह तीर्थ स्थानों से जायगा तो कुछ समय तक तो वह विषयों के सम्पर्क मे दूर रहेगा। तीर्थ स्थानों के नियमों को जान कर यहाँ रह कर यथाशक्ति संयम, उपवास, व्रत दानादि, करके मनुष्य बहुत कुछ आत्मोन्नति कर सकता है। वहाँ का वातावरण तथा जलवायु भी कुछ ऐसा विलक्षण होता है कि वहाँ के दर्शन स्पर्श मात्र से ही कुवासनायें दब जाती हैं। वहाँ रहने से पूजन भजन इत्यादि करने से मन की अभिलाषा पूर्ण होती है। वहाँ महात्माओं के दर्शन करने से पापी भी तर जाते हैं तथा जो महात्मा ब्रह्मलीन हो गये हैं उनकी महिमा का गान करके उनके स्मृति चिन्हों को देख कर हृदय श्रद्धा से भर जाता है। हृदय में किसी दैवीशक्ति द्वारा आप ही आप शक्ति दया, क्षमा, भक्ति ज्ञान और वैराग्य की स्फुरणा होने लगती है। चित्त निर्मल हो जाता है और सर्वत्र प्रकाश दीखने लगता है।

आध्यात्मिक उन्नति के अतिरिक्त तीर्थों से शारीरिक उन्नति भी होती है। बहुत से तीर्थों की जलवायु हमारे लिये बहुत स्वास्थ्यदायक और नैरोग्यप्रद है। परम पावनी श्रीगङ्गाजी की धारा में स्नान करने से जलपान करनेसे समस्त व्याधियाँ दूर होती हैं। बहुत से कठिन रोग गङ्गा जल से दूर हो जाते हैं रोग के कीटाणुओं को दूर करने की गङ्गाजल में एक विलक्षण शक्ति है। इस बात

का समर्थन पाश्चात्य देशों के बड़े-बड़े विद्वान् डाक्टर तक करते हैं। नर्मदा और सिन्धु का जल बहुत पाचक है। हरद्वार, भुवनेश्वर, बदरिकाश्रम, जगन्नाथ चित्रकूट, पंचवटी, इत्यादि स्थान बहुत स्वास्थ्य-वर्धक हैं

भारतवर्ष के तीर्थ स्थानों की प्राकृतिक शोभा बड़ी नेत्र-मनहारी है। गगनचुम्बी हिमालय पर्वत को देखो, कैसा सगर्व खड़ा हो कर प्रतिहारी की भाँति भारत की रक्षा करता है। यहीं पर भगवान् शिव का वासस्थान कैलाश पर्वत है। यहीं गुफाओं में बड़े-बड़े योगी चिरकाल से अपनी योग-निद्रा में मग्न ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। नीचे को उतरिये भगवती जान्हवी सहस्र धाराओं में हो कर कल-कल निनाद करती बहती जा रही हैं यही हरिद्वार है। और नीचे गङ्गा के किनारे समतल भूमि पर हरे-हरे खेत कैसे सुहावने लगते हैं। विन्ध्याचल पर्वत के ऊपर वनों की अपूर्व शोभा है। नीचे समुद्र अपनी लहरियों से सदा भगवान् के चरण धोया करता है। यहीं श्रीसेतुवन्धु रामेश्वर हैं। कहीं सरोवरों में कमल खिले हैं कहीं पुष्पों पर भौंरे गुञ्जार रहे हैं। कभी प्रातःकालीन सुषमा को देख कर मन नहीं अघाता, तो कभी सन्ध्या समय की शोभा देख कर नेत्र नहीं थकते। योगी, कवि तथा भावुक भक्तगण सदा इस सौंदर्य सागर में अवगाहते रहते हैं। तीर्थ भ्रमण करने से ही यह सब देखने में आ सकता है। इसके सिवा तीर्थों में भ्रमण करने से मनुष्य बहुत से देशों की संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहन आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

तीर्थयात्रा करने से पहले तीर्थ संबन्धी कुछ नियमों का लेना जान आवश्यक है। हमारे प्राचीन ग्रंथ रामायण महाभारत तथा अठारहों पुराण तीर्थों की महिमा का गान करते हैं। इन ग्रंथों में बहुत से तीर्थ संबन्धी नियम वर्णित है। इन्हीं ग्रंथों के आधार पर मुख्य २ अत्यावश्यक कुछ थोड़े से नियम बतलाये जाते हैं, हमारे पूर्वज युधिष्ठरादि राजा लोगों का बहुत वर तीर्थ यात्रा के लिये जाना लिखा हुआ पाया जाता है। वह सब इन नियमों के ज्ञाता बड़े विद्वान् तथा धर्मिष्ठ थे। आजकल के लोग वैसे नहीं हैं। वह उन सब नियमों को भूल गये हैं। इस कारण उन्हें इस विषय में कुछ जानकारी अवश्य कर लेनी चाहिये।

बहुत-सी दक्षिणा दे कर नाना प्रकार के यज्ञादिक करने पर जो फल मिलता है, वह तीर्थों का सेवन करने से मिलता है। तीर्थ सेवी पुरुष नीच योनियों को प्राप्त नहीं होते। तीर्थ यात्रा का फल सत्पुरुष को ही होता है। श्रद्धा रहित, अविश्वासी, पापी और नास्तिक को नहीं।

तीर्थ को जाने से पहिले तथा तीर्थ से लौट आकर यथाशक्ति देवता, पितर, साधुओं का पूजन और व्रत उपवास आदि करना चाहिये। यान द्वारा तीर्थ यात्रा नहीं करना चाहिये। छत्र पादुका सहित जाना तथा तैल, मांस इत्यादि निकृष्ट वस्तुओं का सेवन करने का भी निषेध है। तीर्थ में दान लेने का भी निषेध है। तीर्थ में जाकर केशमुण्डन करावे, जितेन्द्रिय रहे तथा परान्न भक्षण न करे। असमर्थ के लिये यान द्वारा तीर्थ यात्रा करने में दोष नहीं है। तीर्थ स्थान में पितृ-तर्पण देवतर्पण, श्राद्ध, दान और गोदान अवश्य करने चाहिये। तीर्थ में पापाचरण कदापि नहीं करना चाहिये, कारण कि—

यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थ तदयादि लाघवम्।
न तीर्थं कृतमन्यत्र कचित् पापं व्यपोहति ॥

(पद्मपुराण)

अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थ में घट जाता है, किन्तु तीर्थ में किया पाप कहीं नहीं घटता।

अब श्रीगङ्गाजी तथा भारतवर्ष के कुछ प्रधान तीर्थों की महिमा और वैभव का वर्णन किया जायगा।

दर्शनात् स्पर्शनात् पानात्तथा गङ्गेतिकीर्तनात्।
स्मरणा देव गङ्गायाः सद्यः पापात् प्रमुच्यते ॥ महा०

श्रीगङ्गाजी भगवान् के चरणों से प्रकट हुई हैं। श्रीगङ्गाजी के दर्शन, स्पर्श, गुण कीर्तन, जलपान और स्मरण मात्र से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। मरण के पश्चात् जिस प्राणी का गङ्गा तीर पर शव दाह हो और अस्थियाँ जल में बहाई जाँय वह बड़ा बड़भागी है। गङ्गाजी की जब इतनी महिमा है, तो हमें चाहिये कि गङ्गाजीमें दन्तधावन, कुल्ला करना, मुख धोना, जलक्रीड़ा करना, तैल, साबुन इत्यादि व्यवहार करना, उनके प्रति अपमान जनक कार्य न करें। कभी गङ्गाजी की निन्दा न करें तथा प्रयाग की भाँति अन्यान्य संगमों को भी पवित्र मानें।

हमारे भारतवर्ष में अनेक शिवलिङ्ग और देवीपीठ है। शिवलिङ्गों के पूजन दर्शन इत्यादि से शीघ्र ही मुक्ति होती है तथा देवीपीठों में जप अनुष्ठान आदि करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

कतिपय पंक्तियों में तीर्थ के ऊपर कुछ अपना विचार प्रकट करके अब मैं इस लेख को समाप्त करूँगी। जो स्थल श्रीभगवान् के चरण चिन्हों से मण्डित हैं, वह अत्यन्त पावन तीर्थ स्थान हैं। ऐसी जगह यदि रहना हो जाय तो यह प्राणी के बड़े सौभाग्य का विषय है। श्रीभगवान् के चरण सब तीर्थों के मूल हैं। भगवान् के चरणामृत को भी तीर्थ कहते हैं। इस कारण हमें सदा श्री भगवान् के चरणों का सेवन करना चाहिये। सदा उन चरणों का ही पूजन वन्दन और ध्यान करना चाहिये।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं।
तीर्थास्पदं शिव विरंचिनुतं शरण्यम्॥
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धि पोतं।
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

तीर्थोपदेश

[लेखक—पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी 'लक्ष्मनि']

तीर्थ जाने के समय, यह ध्यान रखना मित्रवर॥
शुभ कर्म करना जा वहाँपर, छल-कपट को त्याग कर॥
दीन और सुपात्र को ही, दान देना चाहिये॥
सज्जनों का सङ्ग कर, सद्ज्ञान लेना चाहिये॥१॥
हो धर्म में श्रद्धा अटल, औ सात्विकी आहार हो॥
व्रत पूर्ण हो ब्रह्मचर्य्य का, नहिं निन्दनीय विचार हो॥
श्रद्धा तथा विश्वास युत, करना भजन भगवान् का॥
सुख-दुःख एक समान हों, औ त्याग हो अभिमान का॥२॥
दुर्गुण तथा दुर्व्यसन को, जो तीर्थ में त्यागे नहीं॥
ऐसे अभागे मनुज का, कल्याण नहिं होता कहीं॥
साथियों से प्रेम का, वर्ताव करना धर्म्म है॥
हो अपरचित या विदेशी, देना न उसको मर्म है॥३॥
है तीर्थ का साधन यही, सद्धर्म्म पर विश्वास हो॥
द्वेष ममता के लिये, नहिं तीर्थ में अवकाश हो॥
दास 'लक्ष्मनि' की विनय पर, ध्यान जो नर लाँयगे॥
तीर्थ की यात्रा सुफल कर, वे परम-पद पाँयगे॥४॥
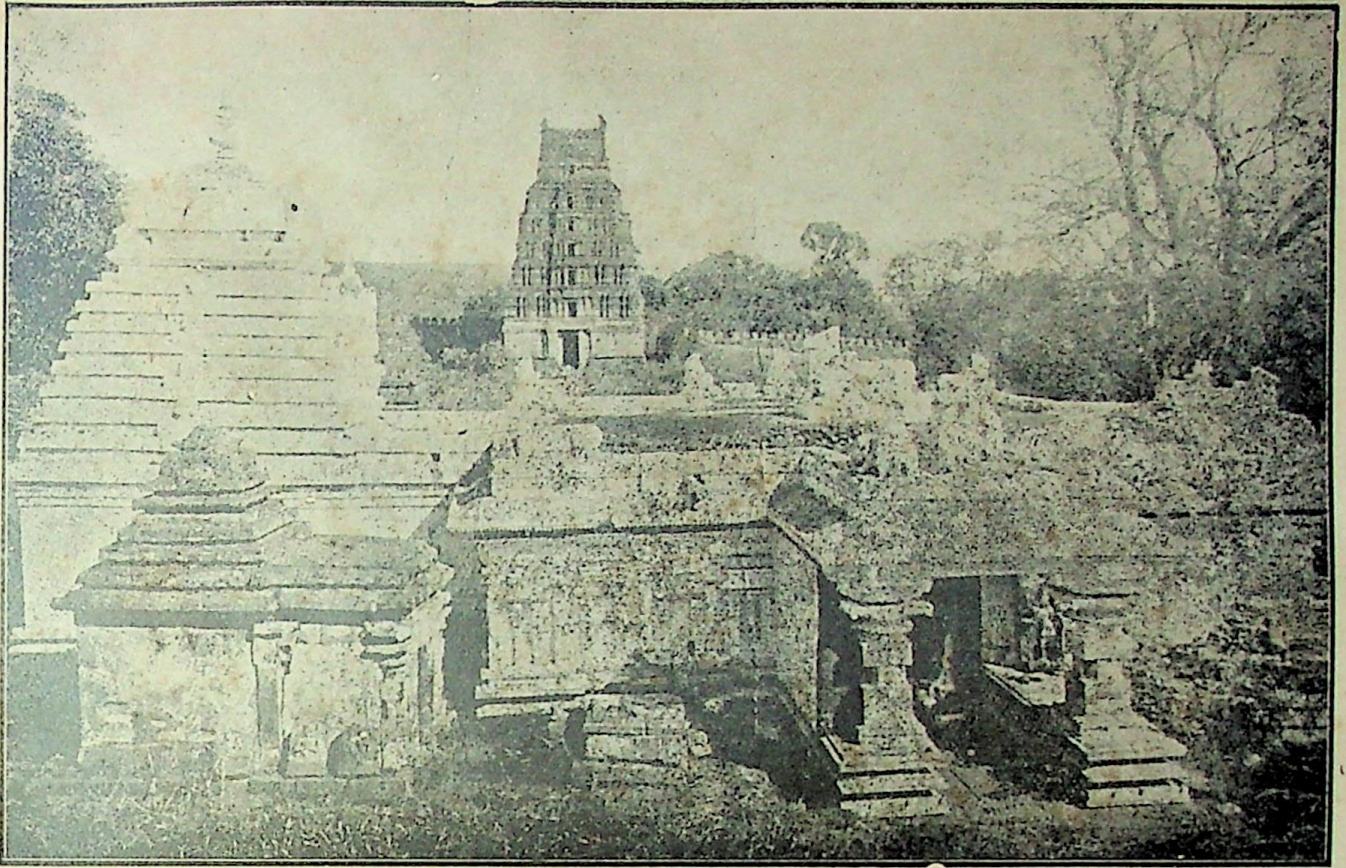
कृष्णानदीके तटपर श्रीशैलम् पर्वतके ऊपर श्रीमल्लिकार्जुनका मन्दिर
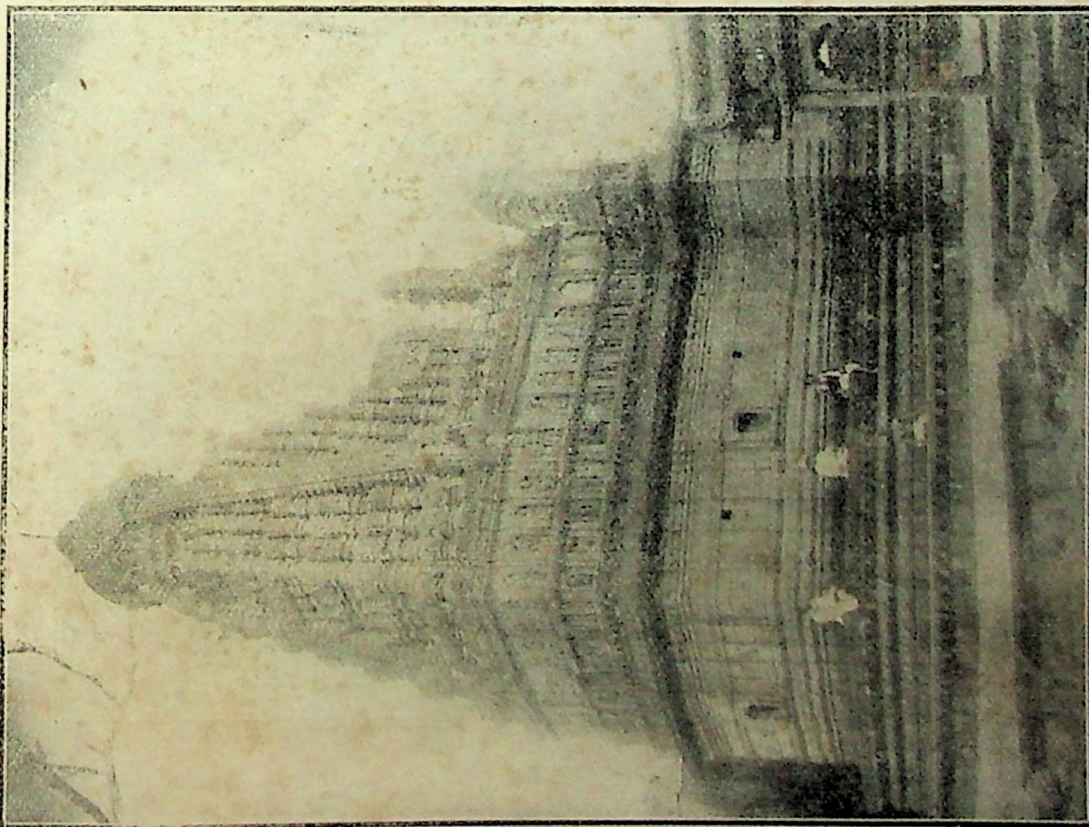
श्रीघुष्णेश्वर-मन्दिर (निजाम स्टेट)
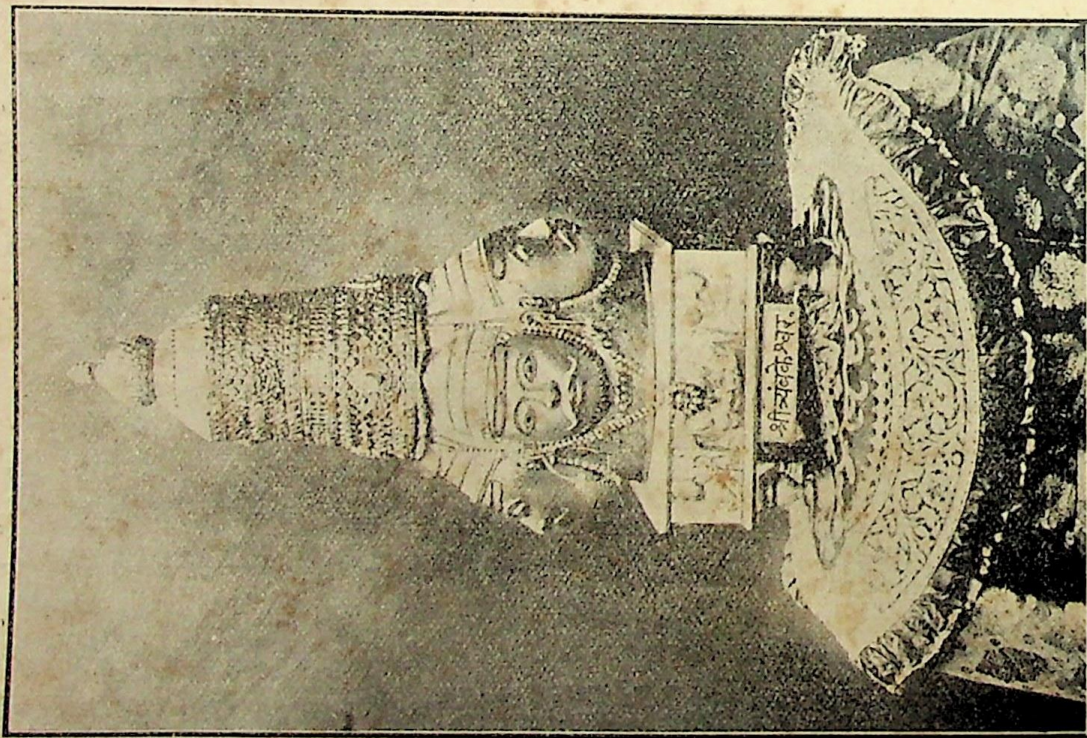
श्रीत्र्यम्बकेश्वर (दण्डकारण्य, नासिक)
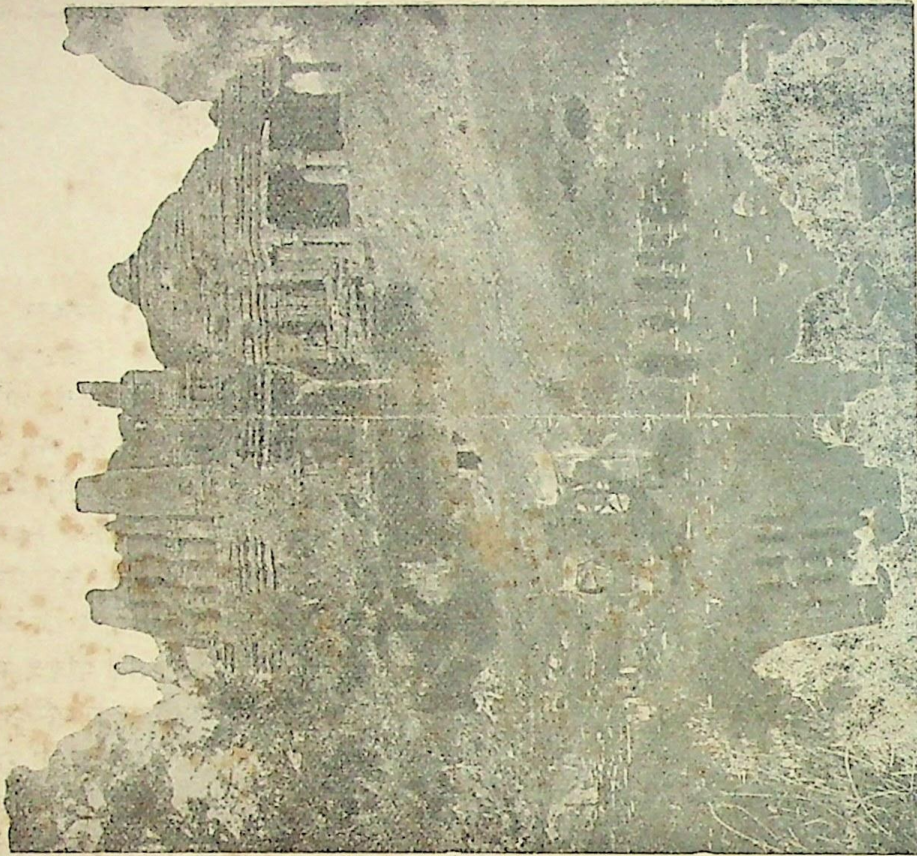
सह्यपर्वतके ऊपर भीमा नदीके निकासपर श्रीभीमशंकरका मन्दिर

उत्तर भारत के तीर्थ

हरिद्वार से केदारनाथधाम—

हरिद्वार—(मायापुरी) भारत की सात मुख्य पवित्र पुरियों में से एक है। उत्तर भारत में जहाँ से विख्यात हिमालय पर्वत-श्रेणी का भू-भाग और सघन वन प्रारम्भ होता है, वहीं पर यह मनोरम हृदयहारी पवित्र स्थान है। गङ्गा की विचित्र शोभा का जितना सुन्दर दृश्य यहाँ देखने को मिलता है, उतना कम स्थानों में मिलता है। गङ्गा समतल भू-भाग में यहीं से बहना प्रारम्भ करती है। इसी कारण पुराणों में इस स्थान का नाम गङ्गा द्वार भी बतलाया गया है। हिन्दुओंकी सप्त-मोक्ष-दायिनी पुरियों में मायापुरी हरिद्वार को ही कहा जाता है। इस समय मायापुरी खण्ड रूप में विद्यमान है। मायापुरी के अन्तर्गत वर्तमान हरिद्वार, कनखल और मायापुर आस-पास ही बसे हुये हैं। वर्त्तमान हरिद्वार तो अब एक बड़ा नगर ही बन गया है। यहाँ पर इस समय सभी नागरिक सुविधायें हैं। यात्रियों को यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। हरिद्वार का स्टेशन ई० आई० आर० की एक शाखा पर है, जो लुकसर जंकशन से देहरादून तक गई है। हरिद्वार तीर्थ-स्थान होने से यहाँ पर ठहरने के लिये पर्याप्त स्थान है। हरिद्वार में लगभग ४५ धर्मशालायें हैं। इनमें से सेठ करोरीमल धर्मशाला, बीकानेर धर्मशाला, महाराजा बिलासपुर धर्मशाला, पं० चैनसुख धर्मशाला, मारवाड़ी धर्मशाला, आदि प्रसिद्ध हैं। हद्विार में यात्रियों का मुख्य कर्म स्नान देवदर्शन है और स्नान करने का सबसे प्रसिद्ध घाट 'हरि की पैड़ी' है। यह स्थान हरिद्वार का केन्द्र है। पत्थर का पक्का घाट बना है। घाट के दोनों तरफ अनेकों मन्दिर हैं। हरि की पैड़ियों से पूर्व की ओर गङ्गा के बीच घाट में पानी से ऊपर एक चबूतरा (प्लेटफार्म) है। सरकार ने इस प्लेटफार्म तथा सीढ़ियों के मध्य में एक लोहे का छोटा-सा पुल बाँध दिया है। प्लेटफार्म और पैड़ियों के बीच में जहाँ गङ्गा की धारा है, उस स्थान को 'ब्रह्मकुण्ड' कहते हैं। ब्रह्मकुण्ड में कमर से अधिक जल नहीं है। ब्रह्मकुण्ड के पास बीच धारा में मनसा-देवी का मन्दिर है। 'ब्रह्मकुण्ड' का हरिद्वार में सबसे अधिक महात्म्य है। इसी स्थान पर ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था। तभी से यह अति पवित्र माना जाता है, ब्रह्मकुण्ड पर ही श्रीगङ्गाजी का मन्दिर है। ब्रह्मकुण्ड पर रात दिन मनुष्यों की भीड़ लगी रहती है। कहीं भगवत्कथा, कहीं उपदेश, कहीं व्याख्यान एवं कीर्त्तन होता ही रहता है। हरि की पैड़ी (ब्रह्मकुण्ड) का दृश्य देखते ही बनता है।

कुशावर्त्त—हरि की पैड़ी से दाहिनी ओर थोड़ी दूर पर कुशावर्त्त नाम का सुप्रसिद्ध घाट है। यहाँ यात्री सुख से पाठ पूजा और पिण्डदान करते हैं। मेष की संक्रांति के समय यहाँ पिंडदान की बड़ी भीड़ होती है। स्कन्द पुराण में इसका बड़ा माहात्म्य है।

बिल्वकेश्वर—हरिद्वार से पश्चिम की ओर तथा हरि की पैड़ी से पश्चिमोत्तर पहाड़ी के नीचे रेलवे लाइन के उस पार बिल्व नामक पर्वत है। यहाँ बिल्व (बेल) के वृक्ष अधिक हैं। पहले यहाँ एक विशाल बिल्व का वृक्ष था, पुराना होने के कारण वह नष्ट होगया, तब से बिल्वकेश्वर भगवान उसी स्थान पर एक चबूतरे पर पेड़ के नीचे विराज-मान है। बिल्वकेश्वर महादेव की महिमा गरुड़ पुराण में लिखी हुइ है। बिल्वकेश्वर पर्वत के पीछे गौरी कुण्ड है। इसका जल लोटा डोरी से निकाला जाता है। पुराणों के आधार पर पता

चलता है कि यहाँ पर पहिले गङ्गा की धारा रही होगी। इस समय यहाँ प्रवाह नहीं है।

नील पर्वत—श्रीगङ्गा की दूसरी तरफ़ सामने एक पहाड़ी है, जिसे नील पर्वत कहते हैं। इसके नीचे जो धारा बहती है, उसे नील धारा कहते हैं। इस नील पर्वत के ऊपर चण्डी देवी का एक मन्दर है। यह ठीक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। यह मन्दिर निरजन स्थान में है। हिंसक जीवों का यहां भय रहता है। पहाड़ पर चढ़ने के दो मार्ग हैं। पहला गौरीशङ्कर महादेव के मन्दिर से होकर, और दूसरा कामराज की काली के मन्दिर के पास होकर है। पहिला कठिन है और दूसरा सुगम है पर यात्रियों को चाहिये कि पहिले से चढ़ें और दूसरे से उतरें, ऐसा करने से नील पर्वत की परिक्रमा होजाती है। यहाँ नीलेश्वर महादेव भी हैं। इनकी कथा पुराणान्तरों में प्रसिद्ध है।

कनखल—हरिद्वार से तीन मील की दूरी पर दक्षिण की ओर कनखल तीर्थ है। यह गङ्गा के दक्षिण किनारे पर बसा हुआ है। इसका माहात्म्य पुराणों में इस प्रकार लिखा है—'खलः को नाम मुक्तिं वैभजतेतत्रमज्जनात्' अर्थात् ऐसा कौन खल है, जिसकी यहाँ स्नान करने से मुक्ति न हो। इसीलिये इसका नाम 'कनखल' है। कनखल जाने के लिये गङ्गाजी को पुल से पार करना पड़ता है। यहाँ गङ्गाजी और नील धारा का सङ्गम है। पास में दक्ष प्रजापति, नीलकेश्वर महादेव, श्रीकृष्ण मन्दिर और सतीकुण्ड हैं। कनखल में भी कई धर्मशालायें, मन्दिर, आश्रम आदि हैं। यात्रियों के ठहरने के लिये सुभीता है। यहाँ का बाज़ार भी रमणीय और सब सामानों से परिपूर्ण रहता है। कनखल का विशेष महत्व दक्षप्रजापति के कारण है। दक्ष प्रजापति ने यहीं पर यज्ञ किया था।

हरिद्वार के कुछ प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान ये हैं—श्रवणनाथ महादेव का मन्दिर। यह कुशावर्त्त के समीप है। श्रीगङ्गाजी का मन्दिर, श्रवणनाथ मन्दिर के पूर्व बीकानेर नरेश का बनवाया हुआ गङ्गाजी का शिखरदार मन्दिर है। चौबीस अवतार, हरि की पैड़ी से उत्तर की ओर भीमगोड़ा के मार्ग में गङ्गाजी के तट पर चौबीस अवतारों का एक मन्दिर है।

भीमगोड़ा—हरि की पैड़ी से बाईं ओर जो पक्की सड़क जाती है, उसी सड़क पर दो फर्लांग जाने पर एक स्थान मिलता है, जिसे 'भीमगोड़ा' कहते हैं। यहाँ भीमसेन ने तपस्या की थी।

आसादेवी—हरिद्वार स्टेशन से थोड़ी दूर रेलवे लाइन की दूसरी तरफ़ एक पहाड़ी है। उस पर आसादेवी का सुन्दर मन्दिर है। स्थान दर्शनीय है।

मायादेवी—सूर्यमलजी की धर्मशाला से दक्षिण की ओर थोड़ी दूर पर सबसे पुराने तीन मन्दिर हैं। पहला मायादेवी का, दूसरा भैरवजी का और तीसरा अष्टभुजी शिवजी का। गङ्गातट पर होने से स्थान रमणीक है।

मायापुर—मायाक्षेत्र का मायापुर एक प्रधान केन्द्र था। प्राचीन समय में यह नगर अति सुन्दर और वैभव सम्पन्न था। काल की गति से सब नष्ट भ्रष्ट होगया। इस समय मायापुर में बस्ती नहीं है। मायापुर हरिद्वार से एक मील दक्षिण-पश्चिम गङ्गा के दाहिने तट पर खण्डर के रूप में विद्यमान है और इसकी स्मृति मात्र शेष है। हरिद्वार से चार मील पश्चिम गङ्गा नहर के उत्तर ज्वालापुर है। यह हरिद्वार म्यूनिसिपैलिटी के अन्तर्गत है। यह दर्शनीय है। ज्वालापुर से दो मील की दूरी पर रानीपुर का दर्शनीय पुल है, इसके नीचे गङ्गा की नहर और ऊपर एक नदी बहती है।

सत्यनारायण चट्टी—हरिद्वार से ऋषिकेश जाने के लिये पक्की सड़क है। उस सड़क पर हरिद्वार से ४ मील पर सत्यनारायण चट्टी है। यहाँ श्रीसत्यनारायणजी का मन्दिर है। सुन्दर कुण्ड भी है।

ऋषिकेश—यह कसबा गङ्गाजी के किनारे पर है। गंगा स्नान और भरतजी के मन्दिर का दर्शन यहाँ की मुख्य यात्रा है। स्कन्द पुराण में इस स्थान

का उल्लेख आता है। बाबा काली कमली वाले का प्रधान कार्यालय यहीं पर है। यात्रियों के लिये यहां भी अनेकों धर्मशालायें हैं। यहाँ से थोड़ी दूर कैलाश-आश्रम नामक दर्शनीय स्थान है। ऋषिकेश से कुछ दूर आगे चलने पर मौनी बाबा की रेती है। यह स्थान टेहरी गढ़वाल राज्य में है। टेहरी दरबार की ओर से यहाँ पर प्रबन्ध है कि यात्रियों के सामान को तौलवा कर कुलियों को सौंपने के पहले उनका नाम, पता ठिकाना लिखकर एक चिट्ठी तैयार करके उस पर कुली की सही बनवाकर यात्री को दी जाती है। उसी प्रकार दूसरी चिट्ठी यात्री की सही कराकर कुली को मिलती है। ऋषिकेश से देव-प्रयाग तक जिसका फासिला ४५ मील है, मोटर की सड़क बनी हुई है। यह सड़क गंगाजी की दाहिनी ओर होकर गयी है। ऋषिकेश से देवप्रयाग तक मोटर बस का भाड़ा फ़ी सवारी पाँच रुपया है।

लक्ष्मणझूला—ऋषिकेश से तीन मील की दूरी पर लक्ष्मण झूला है। यहाँ लक्ष्मणजी का मन्दिर प्रसिद्ध है, पास ही में पुण्य सलिला श्रीगङ्गाजी की धारा है। यद्यपि यहाँ पर गंगाजी का पाट अधिक नहीं है, किन्तु गहराई अधिक है। पर्वतों को चीर कर सैकड़ों हाथ के नीचे धारा का प्रवाह है। गंगाजी स्नान करने के लिये नसेनियाँ बनी हुई हैं—जिनसे यात्रीगण सरलता से नीचे जाकर गंगाजी और ध्रुवकुण्ड में स्नान कर सकते हैं। घाट पर दो-चार दूकानें हैं। बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला तथा सदावर्त्त भी लगा है। गंगाजी के उस पार जाने के लिये लोहे का एक सुदृढ़ पुल बना है। इस पुल में बीच में एक भी स्तम्भ नहीं है। दोनों ओर से दो लोहे के मजबूत स्तम्भों पर यह पुल झूल रहा है। इधर आगे जितने भी पुल मिलते हैं। वे सब लटकौआ ही होते हैं। इसी से वे झूला कहे जाते हैं, लक्ष्मण झूला के इस पुल को कलकत्ते के सेठ राय सूरजमल ने यात्रियों के उपकारार्थ निर्माण कराया है। गंगाजी के उस पार सीताकुण्ड और सूर्य कुण्ड हैं। कुछ वतीर तपस्वियोंके आश्रम मन्दिर धर्मशाला और पाठशाला हैं। स्वर्गाश्रम भी देखने योग्य हैं।

गरुड़ चट्टी—चट्टी छोटी है,पर इस की प्राकृतिक शोभा मनोरम है। यहाँ एक दो मंजिला धर्मशाला है। धर्मशाला के पास ही गरुड़ भगवान् का मन्दिर है, पक्के कुण्ड भी हैं। पर्वत पर से एक मोटी धारा का झरना प्रवाहित होकर कुण्डों को भरता रहता है।

नई मोहन चट्टी—इसके पास फूल नदी बहती है और पानी का नल भी है, पाँच-सात दूकानें भी हैं, जिनमें आटा, दाल, चावल, भी आदि मिल जाता है। रात में ठहरने और भोजन बनाने का सुपास है। यहाँ से कुछ चढ़ाई का रास्ता आता है। चढ़ाई पार कर लेने पर बीजनी चट्टी आती है, यहाँ दूध की दूकाने हैं। इसके आगे 'कुंण्ड चट्टी' और फिर तीन मील की उतराई के बाद—

बन्दर भेल चट्टी—आती है। यह चट्टी बिल्कुल भागीरथी के जल के पास है। यहाँ एक जीर्ण-शीर्ण धर्मशाला है। इसके आगे 'महादेव चट्टी' औरओखट घाट आता है और इसके एक मील आगे-सिमाला चट्टी-यहाँ पर अनार, आम, कचनार, केला आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के जंगली वृक्ष और लता-पताएँ देखने में आती हैं। इससे आगे कई चट्टियों के पार करने पर—

व्यासघाट चट्टी—आती है। यहाँ व्यास गंगा और भागीरथी का संगम है। मोदियों की दूकानें हैं। बाबा काली कमली वालों की धर्मशाला तथा सदा-वर्त्त भी है। इसके आगे 'छालड़ी चट्टी' और 'उमरासू चट्टी' के पार करने पर—'सौड़ चट्टी' आती है। यहाँ का नल पर्याप्त जल देता है। गङ्गाजी समीप में ही बहती हैं। यात्रियों के ठहरने योग्य कुछ झोंपड़े और दूकानें हैं। इसके दो मील आगे—

देव-प्रयाग तीर्थ—आता है। यह पहाड़ पर बसा हुआ रमणीक स्थान है और बस्ती अलकनन्दा गङ्गा के दोनों किनारों पर बसी है। यहाँ का बाजार बड़ा है। सभी आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं, डाकखाना, तारघर और पुलिस स्टेशन भी है। यहाँ धर्मशाला और सदावर्त्त का अच्छा प्रबन्ध

है। यहाँ अलकनन्दा और भागीरथीगङ्गा का सङ्गम ही प्रधान तीर्थ है। सङ्गम में स्नान करके यात्रीगण बेतालशिला पर श्राद्ध करते हैं। घाट के ऊपर एक विशाल राम-मन्दिर है, उसमें श्रीरामचन्द्रजी की श्यामल मूर्त्ति है। कहते हैं इस मूर्त्ति की स्थापना श्री शंकराचार्यजी ने की है। हरिद्वार से देव प्रयाग ५६ मील है। केदारनाथ ६३ मील, यमुनोत्री ६६ मील गङ्गोत्री १३५ मील और गोमुखी धारा १४५ मील है। यहाँ से यात्रीगण केदारनाथ की ओर चलते हैं। विद्या कोटी, सीता कोटी और इसके आगे 'रानी बाग चट्टी' है। रानी बाग से तीन मील आगे जाने पर—

रामपुर चट्टी—मिलती है। यहाँ पर यात्रीगण विश्राम करते हैं। इसके आगे—

विल्वकेदार—आता है। यहाँ पर अलकनन्दा और खाण्डव नदी का सङ्गम है। नदी पार करने के लिये लोहे का झूला है। समीप में खाण्डव बन भी है। कहते हैं भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिये अर्जुन ने यहीं पर तपस्या की थी, यहाँ पर एक शिवजी का मन्दिर भी है। मोदियों की दूकानें हैं

श्रीनगर—इसको शिव-प्रयाग भी कहते हैं। यह प्राचीन नगर अलकनन्दा के किनारे पर बसा हुआ है। यहाँ कमलेश्वर महादेव का मन्दिर है। बाज़ार अच्छा है। आवश्यकीय वस्तुयें सभी यहाँ मिलती हैं। इसके आगे—

भट्टी सेटा चट्टी—यहाँ बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला और सदावर्त्त भी है। दूकानें हैं। सामान्यतः चट्टी सुविधा जनक है। भट्टी सेटा से साढ़े नौ मील पर गुलाबराय चट्टी है यहाँ यात्रियों को ठहरने और भोजन बनाने के लिये स्थान अच्छा मिलता है। पानी का बड़ा सुपास है। नल मोटी धार से जल प्रपात करता है। इसके आगे—

रुद्र प्रयाग तीर्थ—आता है। यहाँ अलकनन्दा और मन्दाकिनी का गङ्गा सङ्गम है। लोहे के झूले से अलकनन्दा को पार कर स्नानार्थ सीढ़ियों से उतर कर सङ्गम जाना पड़ता है। सङ्गम के पास रुद्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। उसमें ताड़केश्वर, गोपालेश्वर और अन्नपूर्णा देवी की मूर्त्तियाँ हैं। बाज़ार अच्छा है, खाने-पीने की सभी चीजें मिल जाती हैं यहाँ से पूर्व-दिशा में १८ मील कर्ण प्रयाग है। जो यात्री केदारनाथ नहीं जाना चाहते, सीधे बद्रीनाथ जाते हैं, वे अलकनन्दा के बांयीं ओर वाली सड़क पर चले जाते हैं। जो यात्री केदारनाथ जाते हैं, उन्हें अलकनन्दा को पुल से पार करके मन्दाकिनी के किनारे होकर जो सड़क जाती है, उसी से जाना पड़ता है। केदारनाथ को जाते हुए पहले 'छबीली-चट्टी पड़ती है, यहाँ ठहरने योग्य स्थान और पानी का सुभीता है, इसके आगे 'अगस्त्यमुनि चट्टी' आती है। यहाँ अगस्त्य मुनि का प्राचीन मन्दिर है और बस्ती भी प्राचीन है। मोदी मिठाई, और पूड़ी की दूकानें हैं और यात्रियों को ठहरने का सुपास है। यहाँ पर हवाई जहाज का स्टेशन भी है। इस आश्रम के ढाई मील आगे चलने पर 'सौड़ चट्टी' आती है। इसमें ठहरने की चट्टियाँ और मोदियों की दूकानें हैं। इसके आगे कई चट्टी तय करने पर—

गुप्त काशी—आती है। यहां विश्वेश्वर भगवान् का मन्दिर है। मन्दिर के शिखर का कलश सुवर्ण-पत्र से मढ़ा है। सामने गरुड़जी का मन्दिर है।

उसके आगे एक कुण्ड है, जिसमें हस्ति-शुण्ड से गङ्गाजी की, और गोमुख से श्रीयमुनाजी की धारा निरन्तर बहती रहती है। यहाँ गुप्त दान दिया जाता है। विश्वेश्वर महादेव के मन्दिर में अष्ट धातु की नन्दीश्वर की छोटी-सी मूर्त्ति है। यहाँ का बाज़ार अच्छा है, और सभी वस्तुयें सुगमता से प्राप्त हो जाती हैं। डाकखाना आदि का प्रबन्ध है। इसके आगे—

योग चट्टी—आती है। यहां भद्रेश्वर, लक्ष्मी नारायण, सत्यनारायण और शंकरजी के बहुकालीन बड़े मन्दिर हैं। इसके आगे—

बादल चट्टी—आती है। यहाँ प्रायः यात्रीगण विश्राम करते हैं। ठहरने का अच्छा सुभीता है।

इसके आगे चलने पर यात्रियों को वन-उपवनों की छटा देखने को मिलती है। इस प्रान्त में सर्दी का भी बड़ा ज़ोर है। 'पाटागाड चट्टी' से आगे चलने पर दो सड़क हो जाती हैं। सामने वाली केदारनाथ को और बायें कठिन चढ़ाई का मार्ग 'त्रियुगी नारायण' को जाता है। रास्ते में 'शाकम्भरी देवी का मन्दिर मिलता है। यहाँ पर शाकाहार करके तीन दिन व्रत रखते हुए निवास करने का माहात्म्य है। इसके आगे प्रसिद्ध तीर्थ—

त्रियुगी नारायण—आता है। यहां त्रियुगी नारायण (विष्णु भगवान्) का मन्दिर है। नाभि से सरस्वती गङ्गाजी की धारा निकलती है। उसका जल सरस्वती कुण्ड से होकर अन्यान्य कुण्डों में जाता है। यहां पर इधर-उधर अनेकों देवी-देवताओं की प्रतिमायें हैं। मन्दिर के सभा मण्डप में एक धूनी जलती है। कहा जाता है यह धूनी त्रेतायुग से जलती आ रही है, कभी बुझी नहीं। जो भी हो, दर्शन अपूर्व हैं। त्रियुगी नारायण की बस्ती लगभग १५० घरों की हैं। दूकानें आदि भी हैं। कहा जाता है कि हिमवान ने अपनी कन्या पार्वतीजी का पाणि-ग्रहण इसी स्थान में शिवजी के साथ कराया था। यहां की धर्मशिला पर शय्यादान की प्रथा है। यहां से आगे—

सोनप्रयाग—आता है। यहाँ वासुकी गङ्गा और मन्दाकिनी गङ्गा का सङ्गम है। गङ्गा पर लोहे का पुल है। यहाँ यात्रियों के ठहरने योग्य कोई स्थान नहीं है। पुल के पार होकर एक मील की दूरी पर 'सिरकटा गनेश' मिलता है। यहाँ से दो मील आगे 'गोटीकुण्ड' है। यहाँ शिव पार्वती तथा राधाकृष्ण का मन्दिर भी है। गोटीकुण्ड की बस्ती विस्तीर्ण और अच्छी है। आगे चलकर 'चीर पटिया भैरों' का स्थान आता है। जो यात्री यहाँ चीर नहीं चढ़ाता, उसकी आधी यात्रा को भैरोजी ले लेते हैं। इसके आगे 'अमार चट्टी' है। यहाँ यात्रियों को कोई विशेष सुविधा नहीं है। यहाँ से कुछ दूर आगे चलकर श्रीकेदारजी का मन्दिर दिखाई देने लगता है। यहाँ पर पर्वत बर्फ ही से ढके रहते हैं। मन्दाकिनी गङ्गा को पुल से पार करने पर—

श्रीकेदारनाथ धाम—आता है। श्रीकेदारनाथ की मूर्ति नहीं है और न लिङ्ग स्वरूप ही है। ऐसा कहा जाता है कि एक समय श्रीशिवजी भैंसे का रूप धारण कर पर्वत पर विचर रहे थे। भीमसेन ने उनको जङ्गली भैंसा समझकर खदेड़कर गदा प्रहार किया, जिससे अगला धड़ पर्वत में घुस गया और पिछला वहीं पत्थर होगया। अगला धड़ नेपाल में प्रगट होकर पशुपतिनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पिछला श्रीकेदारनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। केदारनाथ का मन्दिर अच्छा बना है। परिक्रमा में अनेकों कुण्ड हैं। केदारनाथजी द्वादशलिङ्गों में से हैं। इनकी पूजा सेवा का प्रबन्ध एक मात्र रावलजी के आधीन रहता है। यहाँ पर मन्दाकिनी और सरस्वती का सङ्गम है। यहाँ अनेकों स्थान परम रम्य और दर्शनीय हैं, जिन्हें देखकर हृदय को बड़ा आनन्द होता है। यहाँ पर कई एक धर्मशालायें बनी हुई हैं। बाबा काली कमली वाले का सदावर्त्त भी लगा हुआ है। केदारनाथ की बस्ती लगभग २०० घरों की है। यहाँ के बाज़ार में पंसारी, बजाज़ और हलवाई आदि की दूकानें हैं। यहाँ सर्दी बहुत अधिक पड़ती है। दर्शनार्थी दर्शन-पूजन करके उसी दिन रामबाड़ा चट्टी अथवा गोरीकुण्ड लौट आते हैं।

केदारनाथ से बद्रीनाथधाम।

केदारनाथजी के दर्शन कर यात्रीगण बद्रीनाथ को चलते हैं। केदारनाथजी से बद्रीनाथ तक नौ दिन का रास्ता है। केदारनाथजी से लौटकर गौरीकुण्ड होते हुए 'नालाचट्टी' पर आते हैं। यहाँ से आगे गुप्त काशी को जाने वाली सड़क को छोड़कर बांये हाथ बद्रीनाथ जाने वाली सड़क पर चलते हैं, मन्दाकिनी गङ्गा को पार करने पर 'उषी मठ' आता है, यहाँ केदारनाथजी के पुजारी रावलजी की गद्दी है।

गद्दी पर केदारनाथजी का पञ्चमुखी सुवर्ण का मुकुट रखा रहता है। यहाँ का मन्दिर विस्तृत और ऊँचा है, राजा मान्धाता की मूर्ति काले पत्थर की है। यहाँ उन्होंने तपस्या की थी। सामने ओंकारेश्वर का मन्दिर है। मन्दिर में इधर-उधर अनेकों देवताओं की प्रतिमायें हैं। यहाँ की बस्ती विस्तीर्ण है और खासी चहल-पहल रहती है। इससे आगे चलने पर 'पोथीवासा चट्टी' आती है। यहाँ यात्रियों के ठहरने की सुविधायें हैं। इसके आगे 'चोपता चट्टी' पर होते हुए जब चलते हैं, तो दो रास्ते मिलते हैं। एक तो दाहिने हाथ से नीचे की ओर बद्रीनाथ को जाता है, दूसरा बाँये हाथ होकर कड़ी चढ़ाई के बाद 'तुङ्गनाथ' को जाता है। 'तुङ्गनाथ' की रमणीयता चित्ताकर्षक है। तुङ्गनाथजी का मन्दिर ऊँचा है और भी छोटे-मोटे कुछ मन्दिर हैं। मन्दिर मूर्त्ति लिङ्ग स्वरूप है। इसके आगे 'भीम द्वार चट्टी' 'पाँगर वासा चट्टी' पार करते हुए 'मण्डल चट्टी' आती है। इसके आगे 'सिंधेना चट्टी' और 'वैतरणी कुण्ड' आता है। यहाँ से आधमील आगे—

गोपेश्वर चट्टी—आती है। यहाँ गोपेश्वर नामक स्वयम्भूलिङ्ग है। यहाँ और भी अनेकों देवताओं की प्रतिमायें है। यह स्थान चतुर्थ केदार श्रीरुद्रनाथजी का गद्दी स्थान है। यहाँ भी रावल की गद्दी है। यहाँ की बस्ती तो बड़ी है, किन्तु जल का कष्ट है। यहाँ से आगे 'चमोली वालाल सांगा' चट्टी आती है। यह चट्टी नदी के बाँये किनारे पर बसी है। बद्रीनाथ जाने वाली सड़क अलकनन्दा के इसी पार से गयी है। यहाँ दूकान भी बहुत हैं। डिप्टी कलक्टर की कचहरी, अस्पताल, डाकघर और पुलिस स्टेशन भी है। बाबा कालीकमली वालों का सदावर्त भी लगा है। हरिद्वार से चमोली १३६ मील है। बद्रीनाथ ४७मील रह जाते हैं। इसके आगे 'मठ चट्टी' और फिर 'सिया सैव चट्टी' मिलती है। यह चट्टी कुछ बड़ी है। यहाँ धर्मशाला और दूकानें भी हैं। यात्रियों को यहाँ ठहरने में सुविधा रहती है इसके आगे 'पीपल कोटी चट्टी' आती है। यहाँ की बस्ती बड़ी है। ऊनी आसनी, कम्बल, मृगचर्म, शिलाजीत, और सुरागाय के चँवर की कई दूकानें हैं। इसके आगे 'गरुड़ गङ्गा चट्टी' आती है। यहाँ गरुड़ गङ्गा पहाड़ की ऊँचाई से नीचे गिरती है। गरुड़ गङ्गा के दोनों किनारों पर बस्ती बसी है। यहाँ गरुड़जी का मन्दिर भी है। धर्मशाला और सदावर्त्त भी लगे हैं। इसके आगे 'टँगड़ी चट्टी' आती है। पास में ही गणेश कुण्ड है। यहाँ देवदारू के वृक्ष अधिक हैं। इससे आगे 'पाताल गङ्गा चट्टी' 'गुलाब कोटी चट्टी' आदि कई चट्टियों के पार कर लेने पर—

जोशी मठ—आता है। यहाँ नर नारायण का मन्दिर है। शीतकाल में श्रीबद्रीनारायण की चल मूर्ति इसी मन्दिर में ले आते हैं। छः महीने तक यहीं पूजा होती है। यहाँ पर भी अनेकों मन्दिर तथा दर्शनीय स्थान है। यहाँ गुलाब फूल अधिक होता है। बस्ती अच्छी है। बाजार में सब सामान मिलता है। यहाँ से आठ मील की दूरी पर तपोवन नामक स्थान है। यहाँ भविष्य बद्री की मूर्त्ति है। स्थान भयानक है। केदारनाथ से जोशीमठ ८८॥ मील है। बद्रीनाथ धाम यहाँ से लगभग २० मील है। इसके पश्चात् विष्णु गङ्गा को पार करने पर—

विष्णु प्रयाग तीर्थ—आता है। यहाँ अलकनन्दा और विष्णु गङ्गा का सङ्गम है। यहाँ सङ्गम में स्नान करने में बड़ा खतरा है। इससे आगे 'बलदोड़ा चट्टी' 'घाट चट्टी' और 'पाण्डुकेश्वर चट्टी' आती है। यहाँ योगबद्री और वासुदेव भगवान् के मन्दिर हैं। बस्ती पुरानी है। कहा जाता है कि राजा पाण्डु ने कुन्ती और माद्री के साथ यहीं पर बन-विहार किया था। पाण्डुकेश्वर के आगे 'शेष धारा' 'विनीक वा गणेश चट्टी' 'लाम बगुड़ चट्टी' आती है। यहाँ धर्मशाला तथा सदावर्त्त भी है, इसके थोड़ी दूर आगे 'अग्नि कुण्ड' है। कहा जाता है कि राजा श्वेतकेतु ने इसी स्थान पर सौ वर्ष पर्यन्त महायज्ञ किया था। इसके आगे 'हनुमान चट्टी' आती है। यहाँ हनुमानजी का मन्दिर है।

यहाँ यात्रियों के ठहरने को हर तरह की सुविधायें हैं। यहाँ पर शुद्ध शिलाजीत मिलने का अच्छा प्रबन्ध है। बद्रीनाथ से लगभग सवा मील पहिले ही गणेशजी का मन्दिर तथा कुबेर शिला है। यहाँ से श्रीबद्रीनारायण का मन्दिर तथा समस्तपुरी का दर्शन होता है। लोहे के झूले से अलकनन्दा और काठ के पुल से ऋषि गङ्गा पार कर लेने पर—

श्रीबद्रीनाथ धाम—में प्रवेश होता है। यह पुरी मन्दराचल पर्वत पर अलकनन्दा के दाहिने किनारे पर स्थित है। यहाँ की बस्ती लगभग ३०० घरों की है। मकान पक्के और अधिकाँश दोमञ्जिले हैं। यहाँ सभी आवश्यकीय वस्तुयें यथेष्ट रूप से मिलती हैं, परन्तु बहुत मँहगी। प्रधानतीर्थ होने के कारण यहाँ हर समय चहल-पहल रही आती है। बद्रीनारायण का मन्दिर लगभग ४५ फ़ीट ऊँचा है। सभा मण्डप के पश्चिम वाले मन्दिर में श्रीबद्रीनारायण की ध्यान परायण काले पाषाण की मूर्ति है। मस्तक में हीरा चमकता है। मन्दिर में अनेकों देवताओं की दर्शनीय मूर्त्तियाँ हैं। यहाँ का सब प्रबन्ध रावलों के हाथ में है। कहा जाता है कि श्रीबद्रीनाथ की मूर्ति को भी शङ्कराचार्यजी ने नारद कुण्ड से निकाल कर मन्दिर में स्थापित किया था। श्रीबद्रीनारायण के मन्दिर के सामने नीचे अलकनन्दा बहती है। नीचे की ओर 'तृप्तकुण्ड' है। इस कुण्ड में गरम जल की दो धारायें गिरती हैं एक पतली धारा से शीतल जल भी गिरता है। जो यात्री इस कुण्ड में स्नान तर्पण नहीं करता, उसकी यात्रा निष्फल होजाती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेकों कुण्ड और शिलायें हैं। उत्तर की ओर ब्रह्म कपाल शिला है। यहाँ भगवान् का प्रसाद भात मोल लेकर उसीका पिण्डदान दिया जाता है। बद्री माहात्म्य में लिखा है कि यहाँ श्राद्ध करने से पितृगण ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और फिर उस मनुष्य को आजीवन श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती ब्रह्मकपाल शिला के पास अनेकों दर्शनीय स्थान हैं। यहीं गणेश गुफ़ा और व्यासाश्रम भी है। कहा जाता है यहीं पर व्यासजी ने महाभारत और अष्टादश पुराणों की रचना की थी। यहीं पर मुचुकुन्द की भी गुफा है। यहीं से तिब्बत, मानसरोवर और कैलाश जाने का मार्ग है। बद्रीनाथ के यात्रियों को जोशीमठ से मानसरोवर और कैलाश जाने का रास्ता अधिक सुभीते का है। यहाँ और भी अनेकों तीर्थ हैं। 'चक्रतीर्थ' और 'शतपथ' के आगे पाण्डवों के स्वर्गारोहण का मार्ग है। पाण्डवों के स्वर्गारोहण का मार्ग गंगोली और केदारनाथ से भी बताया जाता है। 'वसुधारा' से अलकापुरी का पहाड़ धुएँ का सा दिखाई देता है। बद्रीनारायण में पहाड़ी आलुओं की पैदावार अधिक है। यह स्थान समुद्र तट से ११,५०० फीट की ऊँचाई पर बताया जाता है। मन्दिर की वार्षिक-आय एक लाख से अधिक है, जिसके एक मात्र अधिकारी रावल ही हैं। ये रावल दक्षिणी नम्बूरी ब्राह्मण होते हैं। मन्दिर का आय-व्यय महाराज टेहरी की देख-रेख में होता है।

बद्रीनाथ से काठगोदाम।

बद्रीनाथ से चमोली चट्टी तक ४७ मील उसी मार्ग से लौटना पड़ता है। जिसका वर्णन होचुका है, चमेली से 'कुहेड़ चट्टी' होते हुये—

नन्द प्रयाग तीर्थ—आते हैं। यहाँ अलकनन्द और मन्दाकिनी का सङ्गम है। कहा जाता है कि यहाँ नन्दजी ने यज्ञानुष्ठान किया था। नन्द और गोपालजी का मन्दिर है। यहाँ बस्ती बड़ी है। डाकघर और टेलीफोन भी है। इसके पश्चात् कई चट्टियों के पार करने पर—

कर्णप्रयाग तीर्थ—आता है। यहाँ पर कर्ण गंगा और पिण्डर गङ्गा और अलकनन्दा का संगम है। कर्णप्रयाग उत्तराखण्ड का एक प्रसिद्ध तीर्थ पञ्च प्रयाग में माना जाता है। यात्रियों को यहाँ पर सभी तरह की सुविधायें हैं। पश्चिम पञ्जाब और सिंध आदि के यात्री यहाँ से श्रीनगर, देवप्रयाग होकर हरिद्वार जाते हैं। पूर्व जाने वाले यात्री मेलचौरी से रानीखेत होकर काठ गोदाम रेलवे स्टेशन को अथवा

चौखुटिया चट्टी से रामनगर जाकर रेल पर सवार होते हैं। यहाँ से मेलचौरी २६।। मील और चौखुटिया ३४।। मील है। यहाँ से काठ गोदाम की ओर चलते समय 'सेमली चट्टी' 'आदि बदरी चट्टी' 'काली मट्टी चट्टी' और 'मेलचौरी' मिलती है। यह चट्टी जितनी प्रसिद्ध है, उतनी यहाँ यात्रियों को सुविधा नहीं है। इसके आगे 'सेमलखेत चट्टी' आती है। यहाँ से एक सड़क रामनगर को जाती है। इसके आगे 'चित्रेश्वर चट्टी' आती है। यहाँ चित्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। इसके आगे द्वाराहाट आता है। यह क़स्बा बड़ा और सुन्दर है। यह स्थान ऐतिहासिक है। कहते हैं 'द्रोणगिरि' पर्वत इसीके समीप है। जिसपर अनेकों जड़ी बूटियाँ हैं। लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर हनुमानजी इसी पर्वत का एक भाग उखाड़कर लेगए थे। बस्ती में अनेकों मठ मन्दिर हैं। इसके आगे 'गंगास चट्टी' आती है और फिर रानीखेत आता है। यहाँ पर चीड़ के बड़े-बड़े विशालकाय वृक्ष अधिकतर देखने में आते हैं। इसके पश्चात् कई चट्टियों के पार करने पर—

काठ गोदाम—आता है। यह रेलवे स्टेशन है उत्तरा खण्ड के यात्री यहीं से रेल में सवार होकर अपने-अपने स्थानों पर पहुँचते हैं।

गङ्गोत्री और यमुनोत्री।

गङ्गाजी के यात्रा-मार्ग को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। १—देव प्रयाग से गङ्गोत्री, २—देहरादून से गङ्गोत्री, ३—गङ्गोत्री से केदारनाथ और धरासू से यमुनोत्री। हरिद्वार से देव प्रयाग ५६ मील है। जिसका वर्णन हो चुका है। देव-प्रयाग से गंगोत्री १३५ मील और गोमुखी धारा १४५ मील है। हरिद्वार से गोमुखी धारा तक कुल २०४ मील होती हैं।

देव प्रयाग से गङ्गोत्री—देव प्रयाग से चलने पर 'खोवेगांव' 'धौलार घाट का झरना' विड़कोट' आदि गांव मार्ग में पड़ते हैं। इससे आगे 'खरसाड़ चट्टी' पड़ती है। यहाँ यात्रियों के ठहरने के लिये सुभीता है। कई चट्टी पार करने पर 'टेहरी राजधानी दिखाई देती है। टेहरी नगर भागीरथी गङ्गा और मिलन गङ्गा के सङ्गम पर बसा है। सङ्गम स्थान को गणेश प्रयाग भी कहते हैं। टेहरी राज्य यात्रा-मार्ग से लगभग १० मील की दूरी पर है। देव प्रयाग से टेहरी राजधानी ३५ मील पर है। इसके आगे कई चट्टियों के पार करने पर 'भल्डियाना' आता है। यहां पर टेहरी से आने वाली सड़क देहरादून से गङ्गोत्री जाने वाली सड़क से यहाँ मिलती है। अतः 'भल्डियाना' से गंगोत्री के मार्ग का वर्णन आगे दिया गया है। यहां से यमुनोत्री ६२।। मील और गङ्गोत्री ८८।। मील है।

देहरादून से गङ्गोत्री—देहरादून से राजपुर और मंसूरी तक मोटर जाती है—यह स्थान जल वायु के लिये प्रसिद्ध है। इसके आगे कई स्थानों को पार कराने पर'कराना ताल' आता है। यात्रियों को ठहरने के लिये अच्छी सुविधायें हैं। काना ताल से आगे 'भल्डियाना' आता है। टेहरी से गङ्गोत्री जाने वाली सड़क भल्डियाना में आकर देहरादून की सड़क से मिलती है। इससे आगे कई चट्टियों के पार करने पर 'धरासू चट्टी' मिलती है। इस चट्टी से वायें हाथ होकर ४७ मील की लम्बी सड़क यमुनोत्री को गयी है। दाहिने हाथ का मार्ग गङ्गोत्री को जाता है। यमुनोत्री के मार्ग का वर्णन आगे दिया गया है। गङ्गोत्री जाने वाले यात्रियों को 'कल्याणी' 'डुण्डा चट्टी' 'नागोर चट्टी' आती है। धरासू के आगे चार मील चलने पर 'लक्कड़ घाट' और तीन मील चलने पर—

उत्तर काशी—आती है। यहाँ गङ्गाजी का एक घाट पक्का बना है। जिसे मणिकर्णिका कहते हैं। विश्वनाथजी का पुराना मन्दिर भी है और भी देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। यहां सभी नागरिक सुविधायें हैं। उत्तर काशी और केदारनाथ के अतिरिक्त यहां कहीं पर भी दूसरा डाक घर नहीं है। पास में लक्षेश्वर महादेव भी हैं। इसके समीपका स्थान बाराहाट (बारवावत) कहाता है। कहा जाता है कि दुर्योधन ने पाण्डवों के बिनाशार्थ यहीं पर लाक्षागृह बन-

चाया था। इससे कई चट्टी आगे 'भटवारी चट्टी आती है। यहाँ भास्करेश्वर का प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि सूर्य भगवान् ने यहां पर तपस्या की थी। यात्रियों के ठहरने का अच्छा सुभीता है। धर्मशाला तथा सदावर्त्त का प्रबन्ध है। यहां से ६० मील लम्बी सड़क त्रियुगी नारायण को भी गयी है। इसके बाद 'गङ्गानी चट्टी' 'सूकी चट्टी' और 'धराली चट्टी' आती हैं। यहां सुरगाय बहुत हैं। यहां गङ्गाजी का मंदिर है। शीत-काल में गङ्गाजी की चल मूर्त्ति को छः महीने के लिये पण्डा लोग यहीं ले आते हैं। इसके आगे, भैरों-घाटी चट्टी आती है। यहां भैरोंजी का मन्दिर है। यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध है। यहां से गङ्गोत्री पांच मील रह जाती है—

गङ्गोत्री—यहां गंगाजी का मन्दिर है, एक लम्बा मैदान है। चारों ओर हिमालय से घिरी हुई बीच में गङ्गाजी की पतली धारा चल रही है। यहां की बस्ती में कई धर्मशालायें हैं। मन्दिर में गङ्गाजी की मूर्त्ति सुवर्ण-रचित है। गङ्गोत्री से एक मील नीचे गोरी कुण्ड है। यहां केदार गङ्गा और 'पातङ्गती' नामक स्थान है। गंगोत्री से १० मील आगे 'गोमुखी धारा' है। यही गङ्गाजी का उत्पत्ति स्थान है। गोमुख द्वारा गंगाजी की धारा पर्वत से बाहर निकलती है। वर्फ की अधिकता के कारण यात्री का इस स्थान पर जाना सहज नहीं है। श्रावण या भाद्रपद में ही बड़ी कठिनता से यात्री इस स्थान पर पहुँच पाता है। गोमुखी धारा से ४८ मील और गङ्गोत्री से ३८ मील की दूरी पर भटवारी है। केदारनाथ के यत्रियों को भटवारी तक उसी राह से लौटना पड़ता है—जिससे वे गङ्गोत्री जाते हैं।

गङ्गोत्री से केदारनाथ।

भटवारी से वायें हाथ केदारनाथ जाने के लिये सड़क जाती है। यह मार्ग दुर्गम है। टेहरी श्रीनगर से होकर जाने में सुगमता पड़ती है, किन्तु ६० मील का चक्कर लगता है। इसी कारण अधिकांश यात्री पहले मार्ग से ही जाते हैं। केदारनाथ की ओर चलने पर 'सौड़ गांव' 'रेवा कुण्ड' पड़ते हैं। भटवारी से नौ मील चलने पर 'सिंपाली चट्टी' पड़ती है। गंगाजी से इधर ज़हरीली मक्खियों का साम्राज्य है। इसके आगे 'छुन्नू चट्टी' आती है। इधर देवदारु के बहुत मोटे और लम्बे वृक्ष होते हैं। इससे आगे—'बूढ़ा केदार चट्टी' आती है। यहां धर्म नदी और बाल-गङ्गा का संगम है। बूढ़े केदार का मन्दिर है। स्थान दर्शनीय है, धर्मशाला और सदावर्त्त का प्रबन्ध है। इससे कई चट्टी आगे—

धुत्तू वा गुत्तू चट्टी—आती है। यह चट्टी भृगु-गंगा और मिलन गंगा के किनारे पर है। इधर का मार्ग कुछ कठिन जान पड़ता है। यात्रियों को ठहरने की सुविधा है। यहां से आगे 'त्रियुगी नारायण तीर्थ आता है। यहां से केदारनाथ १३॥ मील रह जाते हैं। इस मार्ग का वर्णन पहले किया जा चुका है। गंगोत्री से'त्रियुगी नारायण'१०८ मील है। इस मार्ग में बहुत-सी छोटी-मोटी चट्टियां पड़ती हैं। उनको छोड़ दिया गया है।

धरासू से यमुनोत्री।

धरासू से यमुनोत्री जाने के लिये वायें हाथ नाले के किनारे से ऊपर होकर मार्ग गया है। मार्ग में कई चट्टियां पड़ती हैं। इससे आगे 'राड़ी का डाँड़ा' मिलता है। यहाँ से एक सड़क 'बड़कोट' को गयी है और दूसरी उत्तर काशी को जाती है। इधर लकड़ी चीरने का व्यापार अधिक होता है। कुछ मार्ग तय करने पर यमुनाजी के किनारे 'गंगणानी चट्टी' आती है। यहां जाड़ा कम रहता है। यात्रियों के ठहरने का स्थान भी बना है। यहां का प्राकृतिक दृश्य मनोहर है। इससे आगे 'यमुना वा कुयनोर चट्टी' 'ओजरी चट्टी' 'राना गांव' और 'हनुमान चट्टी' आती है इससे चार मील आगे—

खरसाली चट्टी—आती है। यह कसवा सुन्दर है। शनैश्चर का मन्दिर भी है। यात्रियों को ठहरने का सुभीता है। यहां से आगे चार मील का रास्ता चढ़ाव—उतार कर तय करके—

श्रीयमुनोत्री—के दर्शन होते हैं। कई एक धाराओं को मिलकर श्रीयमुनाजी प्रवाहित होती हैं। यमुनाजी का उत्पत्ति स्थान यमुनोत्री नामक बन्दर पुच्छ पर्वत की तीसरी चोटी पर है। यह स्थान सुमेरु पर्वत से मिला हुआ है। यहां से १४ मील कैलाश का नीचे का अंश है। यमुनाजी का छोटा-सा मन्दिर है। धर्मशालायें भी हैं। कई दर्शनीय कुण्ड भी हैं। यहां से एक सड़क उत्तर काशी को गयी है। इस रास्ते से उत्तर काशी होकर गंगोत्री जाने में ६४ मील का चक्कर पड़ता है और 'धरासू' होकर गंगोत्री जाने में भी ६४ मील का फेर पड़ता है। उत्तर काशी से गंगोत्री जाने का मार्ग पहले वर्णन किया जा चुका है।

पञ्जाब प्रान्त के दर्शनीय तीर्थ

हस्तिनापुर—मेरठ शहर से २२ मील पूर्वोत्तर गङ्गा के प्रथम बेड़ बूढ़ी गङ्गा के किनारे पर पश्चिमोत्तर देश के मेरठ जिले में हस्तिनापुर है। मेरठ शहर से २१ मील उत्तर खतौली का रेलवे स्टेशन है। वहाँ से पूर्व की ओर हस्तिनापुर के लिये एक मार्ग है। हस्तिनापुर एक समय जगत विख्यात् कौरव पाण्डवों की राजधानी का प्रसिद्ध नगर था। कालचक्र ने सब नष्ट भ्रष्ट कर दिया। पुराणों में उल्लेख है कि जब हस्तिनापुर गङ्गाकी बाढ़से बह जायगा, तब कौशाम्बी नगरी पाण्डुवंशियों की राजधानी होगी। हस्तिनापुर में एक शिव मन्दिर है और साधु लोग रहते हैं। प्राचीन नगर के कुछ चिन्ह अभी तक देखने में आते हैं।

थानेसर (कुरुक्षेत्र)

अम्बाला जंकशन से २६ मील दक्षिण थानेसर का रेलवे स्टेशन है। थानेसर अम्बाले ज़िले में पवित्र देश कुरुक्षेत्र के मध्य में रेलवे स्टेशन से एक मील की दूरी पर सरस्वती नदी के किनारे का क़स्बा है। स्थाणुसर (महादेव) से थानेसर नाम की उत्पत्ति है। यह क़स्बा भारतवर्ष के सबसे अधिक प्राचीन और प्रसिद्ध क़स्बों में से एक है। क़स्बे के पास अनेकों सरोवर हैं। जिनमें कुरुक्षेत्र सरोवर सबसे प्रसिद्ध है। यहाँ प्रतिवर्ष साधारणतया तीन चार लाख यात्री आते हैं, परन्तु सूर्य-ग्रहण के समय आठ दस लाख यात्री भारत के प्रत्येक विभागों से यहाँ आकर स्नान दान करते हैं। कुरुक्षेत्र में दान करने का विशेष माहात्म्य है। कुरुक्षेत्र में अनेकों सरोवर, तालाब, कुण्ड आदि हैं, जो किसी न किसी इतिहास को लिये हुये हैं। कौरव-पाण्डव तथा अन्य देवी देवताओं के अनेकों मन्दिर भी बने हैं। महाभारत की रणस्थली यही कुरुक्षेत्र है। इसका महत्व सभी पुराणों में विशेषकर महाभारत में वर्णित है। कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण के स्नान दान महत्व विशेष है।

सरस्वती नदी—यह अम्बाले ज़िले की सीमा से बाहर नाहन स्टेट की नीची पहाड़ियों से निकलती है और कुछ दूर आगे चलकर एक पवित्र स्थान में प्रकट होती है। कई एक मील मैदान में बहने के पश्चात् कुछ समय के लिये बालू में गुप्त होजाती है। किन्तु तीन मील दक्षिण भूमि के भीतर बहने के उपरान्त 'भावतपुर' के समीप फिर प्रकट होजाती है। एक स्थान पर यह फिर भूमि में लुप्त होजाती है। परन्तु फिर प्रकट होकर बहने लगती है। इस प्रकार यह नदी थानेसर क़स्बे और कुरुक्षेत्र के अन्य कई स्थानों में होती हुई कर्नाल ज़िले को लाँघकर पटियाला राज्य में गागरा (दृषद्वती) नदी में मिल जाती है।

जलन्धर—फिलौर से २४ मील (अम्बाला जंकशन से १०६ मील) पश्चिमोत्तर जलन्धर शहर का रेलवे स्टेशन है। यह एक ऐतिहासिक नगर है। पुराने नगर की निशानी दो तालाब और कुछ भग्नावशेष स्थान भी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि जलन्धर दैत्य ने इस नगरी को बसाया था। जिसको अन्त में भगवान् शिव ने मार डाला था। इसी दैत्य जलन्धर की स्त्री वृन्दा ने तपस्या द्वारा शरीर त्यागकर मथुरा के पास शरीर छोड़ा था, जिससे वृन्दावन नाम पड़ा।

ज्वालामुखी—होशियारपुर क़स्बे से ४६ मील (जलन्धर से ७४ मील) पूर्वोत्तर एक पहाड़ी के

पादमूल पर 'ज्वालामुखी' एक क़स्बा है । जिसमें ज्वालामुखी देवी का मन्दिर है । होशियारपुर से ८० मील (जलन्धर से १०५ मील) काङ्ड़ा क़स्बा होकर धर्मशाला छावनी तक सुगम चढ़ाव-उतार का पहाड़ी मार्ग है। रास्ते पर ताँगे और इक्के भी चलते हैं। बीच-बीच में पड़ाव बने हुये हैं। जिनमें यात्रियों को ठहरने के लिये धर्मशाला आदि स्थान बने हैं। इसी मार्ग से ४१ मील जाकर ८ मील दूसरे मार्ग से ज्वालामुखी पहुँचना होता है। मार्ग में यात्रियों को किसी तरह का भय नहीं है । पहाड़ी जङ्गलों का दृश्य भी देखने में आता है। मार्ग में एक-दो स्थान दर्शनीय भी पड़ते हैं। ज्वालामुखी क़स्बे में महाराजा पटियाला की ओर से एक सराय, डाकघर, पुलिस स्टेशन आदि आवश्यकीय प्रबन्ध है । इसके अतिरिक्त ८ धर्मशालायें और हैं। ज्वालादेवी का मन्दिर गुम्बजदार है । मन्दिर देखने में बड़ा सुहावना प्रतीत होता है। मन्दिर के भीतर देवी का प्रकाश भूमि की अग्नि से निकलते हुये छोटे-बड़े दश लाफ दिन रात जलते हैं। ये लाफ चारों कोनों से निकलते हैं। मन्दिर के मध्य में मार्बल के चार पतले स्तम्भों के भीतर एक लम्बा चौखूँटा गहरा कुण्ड है। यात्री लोग कुण्ड के ऊपर देवी की पूजा करते हैं। कुण्ड की दीवार में चार लाफ जलते रहते हैं । मन्दिर के पीछे एक कूप है। कूप के भीतर भी लाफ जलते रहते हैं। इसके पास एक दूसरे कूप का जल खौलता रहता है। ज्वालामुखी में नित्य ही यात्री आते हैं, किन्तु आश्विन के नवरात्र में लगभग ५०,००० यात्री आजाते हैं । ज्वालादेवी को जीव बलिदान नहीं दिया जाता है।

अमृतसर—जलन्धर के रेलवे स्टेशन से ३३ मील पश्चिमोत्तर व्यास नदी के रेलवे पुल को लाँघने पर व्यास स्टेशन मिलता है। व्यास नदी हिमालय के दक्षिण काँगड़ा ज़िले से निकली है और हरी के मदन के पास सतलज में मिल गई है। महाभारत बन पर्व अध्याय १३० में लिखा है कि वशिष्ठ मुनि पुत्र के शोक से व्याकुल होकर व्यास नदी पर पृथ्वी में गिर गये, फिर प्यास से घबराकर उठे थे। इसीलिये इस नदी का नाम 'वियासा' होगया। अनुशासन पर्व के २५ वें अध्याय में लिखा है कि जो मनुष्य इस वियासा (व्यास) नदी में स्नान करता है, वह जन्म जन्मान्तरों के पापों से छूट जाता है। व्यास स्टेशन से ३६ मील और जलंधर से ४६ मील (अम्बाला छावनी से १५५ मील पश्चिमोत्तर और बटाला से २४ मील दक्षिण पश्चिम अमृतशहर का रेलवे स्टेशन है। पञ्जाब की व्यास और रावी नदी के बीच ज़िले का सदर स्थान अमृतसर एक सुन्दर शहर है। यहाँ सिक्ख सम्प्रदाय की राजधानी है। शहर के मध्य भाग में एक प्राचीन अमृतसर नामक तालाब है। जिसके नाम पर शहर का नाम विख्यात है। शहर में एक शिव मन्दिर और सत्यनारायण मन्दिर दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त अमृतसर में कई सरोवर और कई मन्दिर हैं । नानकशाहियों के यहाँ १३ अखाड़े हैं । अमृतसर का सबसे बड़ा और दर्शनीय स्थान 'स्वर्ण-मन्दिर' है। इसको गुरुद्वारा और दरबार साहब भी कहते हैं। यह मन्दिर अमृतसर तालाब के मध्य में ६५ फीट लम्बे और इतने ही चौड़े चबूतरे पर बना है। भारतवर्ष के किसी भी मन्दिर में इस मन्दिर के समान सोना नहीं लगा है। सिक्खों का यह मन्दिर भारतवर्ष में दर्शनीय है। अटलमीनार भी देखने योग्य है।

तरनतारन—अमृतसर से १२ मील दक्षिण व्यास और सतलज नदियों के सङ्गम से उत्तर अमृतसर ज़िले में सिक्खों का पवित्र स्थान 'तरन-तारन' है अमृतसर से तरन तारन को पक्की सड़क जाती है। यहाँ पर भी एक तालाब है । उसमें एक सुन्दर मन्दिर बना है। यह स्थान सिक्खों के पाँचवे गुरु अर्जुनमल ने नियत किया था। ऐसा प्रसिद्ध है कि जो कोढ़ी इस तालाब में तैर कर पार होजाता है उसका कुष्ठ रोग नहीं रहता, इसी कारण इसका नाम तरन-तारन है। अमृतसर से यह स्थान पुराना है। बैशाख की अमावस्या को यहाँ बड़ा मेला होता है।

लाहौर—अमृतसर से पश्चिम ३२ मील लाहौर का रेलवे स्टेशन है। यह पञ्जाब प्रान्त की राजधानी है।

शहर बहुत अच्छा और बड़ा है । यहाँ कई एक धर्मशाला और देव मन्दिर भी हैं ।

सिक्खों के भी कई द्वारे बने हैं । चैत्र में यहां एक प्रसिद्ध मेला होता है । ऐसा कहा जाता है, कि भगवान् रामचन्द्र के पुत्र लव ने लाहौर को और कुश ने कसूर को (जो लाहौर ज़िले में हैं) नियत किया था ।

श्रीनागर—काश्मीर की राजधानी श्रीनगर जाने के लिये कई एक मार्ग हैं । जिनमें से रावलपिण्डी से गाड़ी का मार्ग सबसे उत्तम है । बीच में कहीं तांगे से, कहीं घोड़ों से और कहीं नाव से भी चलना पड़ता है । श्रीनगर काश्मीर के पश्चिमी विभाग में समुद्र तट से ५२५० फीट ऊपर झेलम नदी के दोनों किनारों पर २ मील की लम्बाई में बसा है । नदी पर सात पुल और दोनों ओर सुन्दर पक्के घाट बने हैं । श्रीनगर की प्राकृतिक रमणीयता अत्यन्त अपूर्व है ।

अमरनाथ—श्रीनगर से २० कोस पूर्वोत्तर अमरनाथ शिव का गुहा मन्दिर है। गुफा में ऊपर से नीचे को लिंगाकार स्तम्भ के समान जल की धारा सर्वदा गिरती रहती है । जिसको शिवलिंग कहा जाता है । यहां श्रावण में सलोने के समय यात्रियों का बड़ा मेला होता है ।

सूर्य का मन्दिर—यह मन्दिर कश्मीर घाटी के पूर्वी छोर के पास है । नाव पर सवार होकर 'कन वल' जाना होता है । जहाँ से एक मील इसलामा स्थान के बाद एक कस्बा है । वरमूला से इसलामा-बाद के पड़ोस तक करीब ६० मील झेलम में नाव चलती है । इसलामा बाद से ४॥ मील पूर्वोत्तर घाटी के ऊपर एक ऊँचे प्लेट पर मार्तण्ड अर्थात् सूर्य भगवान् का मन्दिर है । मन्दिर प्राचीन है । यात्रीगण यहां भी दर्शन करने जाते हैं । महाभारत में लिखा कि एक सप्ताह तक निराहार रहकर चन्द्रभागा (चनाव) और वितस्ता (झेलम) में स्नान करने से मनुष्य मुनियों के तुल्य पवित्र हो जाता है ।

दिल्ली—भारतवर्ष की प्रधान राजधानी इसी नगर में है । दिल्ली शहर पवित्रतया श्रीयमुनाजी के किनारे पर बसा हुआ है । कौरव पाण्डवों के समय से लेकर आज तक के राजाओं की राजधानी इसी नगर में रही है । यहां सैकड़ों ऐतिहासिक स्थान देखने योग्य हैं । पाण्डवों के समय का किला भी वर्त्तमान है । दिल्ली का पुराना नाम 'इन्द्र प्रस्थ' भी है ।

मथुरा (व्रज-मण्डल)

व्रज में प्राचीन वस्तुयें तीन हैं । पर्वत, नदी और भूमि । इनके अतिरिक्त जो प्राचीन वस्तुयें विद्यमान हैं—उनके विषय में दो ही बातें हो सकती हैं—या तो उनके स्थान पर नयी बन गई हैं, या पुरानी का ही जीर्णोद्धार हो गया है । कुछ भी हो नवीनता तो सबमें आगई है । मथुरा का नाम वेदों भी आता है—पुराणों ने तो इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । श्रीमद्भागवत में तो लिखा है कि "मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः" अर्थात् मथुरा में भगवान् नित्य ही विहार करते हैं । मथुरा का ऐतिहासिक वर्णन भी बड़ा विचित्र है । वैसे तो मथुरा सर्वदा से ही दूसरों के आक्रमणों को सहता चला आरहा है । अधिकतर यवन-साम्राज्य ने इस पुरी को नष्ट प्रायः ही कर दिया था । वर्त्तमान मथुरा की रूप-रेखा जैसी कुछ है—वह हमारे सामने है । मथुरा के चारों ओर चार शिव मन्दिर हैं । मथुरा आदि बाराह भूतेश्वर क्षेत्र कहलाती है । मथुरा के चतुर्दिग के शिव लिंगों में से पश्चिम में भूतेश्वर, पूर्व में पिपलेश्वर, दक्षिण में रंगेश्वर, और उत्तर में गोकर्णेश्वर का मन्दिर है । चारों दिशाओं में स्थित होने के कारण शिवजी को मथुरा का कोतवाल कहा जाता है । मानिकचौक में नील बाराह और श्वेत बाराह के विशाल मन्दिर हैं । श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने श्रीकेशवदेवजी की मूर्त्ति की स्थापना की थी । औरंगजेब के समय में इस मूर्त्ति को 'रज धाम' पधरा दिया गया था । मन्दिर के स्थान पर मसजिद खड़ी है । मसजिद के पीछे श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर बना हुआ है । प्राचीन

केशव मन्दिर के स्थान को 'केशव कटरा' कहते हैं। इसी के पास वर्त्तमान कृष्ण-जन्म-भूमि का मन्दिर है। (वास्तविक जन्म स्थान पर तो मसजिद बनी है) मथुरा की पुरानी बस्ती यहीं पर थी। इसी स्थान पर कंस के प्रसिद्ध मल्ल, चाडूर और मुष्टिक आदि पहलवान रहा करते थे। 'योगमाया' का मन्दिर भी इसी के पास है। मथुरा के प्रसिद्ध मन्दिर और स्थानों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

कंस निकन्दन—होली दरवाजे के पास है। वज्रनाभ द्वारा मूर्ति प्रतिष्ठित है। पद्मनाभ-महौली की पौर में वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित है। मथुरा देवी व्रज की प्रमुख देवियों में से यह एक मन्दिर शीतला पाइसा में है। ध्रुवटीला-यह वह स्थान है जहाँ पर ध्रुवजी ने पांच वर्ष की अवस्था में ही भगवत्प्राप्ति की थी। सप्त ऋषि टीला—यहां अरुधन्ती के सहित सप्त ऋषियों के दर्शन हैं। पास ही में महर्षि गोतम की भी समाधि है। महाविद्या देवी—मथुरा के पश्चिम में बहुत ऊँचे टीले पर मन्दिर है। यहाँ पर पशुपति महादेवजी का भी मन्दिर है। सरस्वती नदी (जिसका जल अब सूख गया है) के पास सरस्वतीकुण्ड और सरस्वती देवी का मन्दिर है। अक्षय नवमी को यहां मेला लगता है। चामुंडा का मन्दिर तथा अम्बरीष का तप-स्थान भी यहीं पर है। मथुरा के नवीन मन्दिरों में से प्रसिद्ध मन्दिर श्रीद्वारिकाधीशजी का है। यह सेठ गोकुलदास (जो ग्वालियर राज्य के खजान्ची थे, कई करोड़ की सम्पत्ति के मालिक थे) का बनवाया हुआ है। इस मन्दिर में सेवा-पूजा सुन्दर रीति से भाव पूर्ण होती है। सेवा संचालन के लिये अनेकों गांव लगे हुए हैं। इस मन्दिर का निर्माण सं० १८७० वि० हुआ है। इसके अतिरिक्त–श्रीगोविन्ददेवजी, श्रीकिशोरीरमणजी, श्रीगोवर्द्धनलालजी, श्रीराधेश्यामजी, गताश्रम, श्रीनारायण,श्रीदाऊजी,श्रीगोपालजी,श्रीराधाकान्तजी, श्रीमथुरानाथजी, श्रीवीरभद्रेश्वरजी, श्रीगोकुलेशजी, श्रीरंगेश्वर महादेव, गौकर्णेश्वर, बलिटीला (यहां खोदने से यज्ञ-भस्म निकलती है) वेणी माधव, मान महेश्वर आदि अनेकों मन्दिर हैं। श्रीमथुरा-कालिन्दी-कूल के दाहिने किनारे पर बसी है। यमुनाजी के २४ घाट प्रसिद्ध हैं। जिनमें से विश्रामघाट (जहां भगवान् ने कंस को मारकर विश्राम किया था) योगघाट, प्रयागघाट, श्यामघाट, सूर्यघाट, सरस्वती संगमतीर्थ, दशाश्वमेधघाट, चक्रतीर्थघाट, गौघाट, ब्रह्मघाट, वैकुण्ठघाट, स्वामीघाट, (वसुदेवघाट) असिकुण्डा और मणि कर्णिका आदि घाट मुख्य हैं। व्रज के ११ कूपों में से यहां कृष्ण कूप, कुब्जाकूप, और सप्त समुद्र कूप हैं। मथुरा नगरी की शोभा अपूर्व है। यमुना पार से खड़े होकर देखने में अत्यन्त सुहावनी प्रतीत होती है। नगर में बहुत सी धर्मशालायें हैं। जिनमें मुख्य-मुख्य ये हैं—माहेश्वरियों की धर्मशाला, हाथरस वालों की धर्मशाला, कलकत्ता वालों की धर्मशाला, सिन्धी धर्मशाला, बीकानेरियों की धर्मशाला, लुहाणों की धर्मशाला, भाटियों की धर्मशाला, पञ्जाबियों की धर्मशाला आदि सौ से भी ऊपर धर्मशालायें हैं। इनमें भी हाथरस वालों और कलकत्ता वालों की धर्मशालाओं में यात्रियों के ठहरने का ठीक प्रबन्ध है। मथुरा में चार दरवाजे हैं। १—भरतपुर दरवाजा, २—डीग दरवाजा, ३—वृन्दावन दरवाजा और ४—होली दरवाजा। इन में होली दरवाजा विशाल पत्थर का बना हुआ है। यमुना पार जाने के लिये रेलवे का पक्का पुल बना है। मथुरा में चार रेलवे स्टेशन हैं। १—मथुराकैन्टोमैन्ट, २—मथुरा जंकशन, ३—मसानी (मथुरा सिटी) ४—भूतेश्वर। मथुरा के पेड़े और खुरचन तथा भगवान् के शृङ्गार की वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध है। मथुरा में दो कालेज और दो हाईस्कूल तथा अनेकों शिक्षा संस्थायें एवं धार्मिक संस्थायें हैं। संस्कृत शिक्षा के लिये अनेकों पाठशालायें हैं, मथुरा का म्यूजियम भी देखने योग्य है। व्रजभूमि का विस्तार ८४ कोस का है। व्रज में सैकड़ों स्थान अपनी निराली अनुपम छटा विशेष के लिये दर्शनीय है। व्रजमण्डल में १२

बन, १२ उपवन, ५ सरितायें, ५ सरोवर, ६ झूलन स्थान, ६ पोखर, २ ताल, १२ देवी, ६ महादेव (जिनमें ४ बज्रनाभ द्वारा स्थापित हैं) ११ कूप, ६ सिंहासन, ११ शिला, ७ चरण चिन्ह, ५ कदम्ब खण्डी और ६० से ऊपर ही कुण्ड भी हैं। व्रजमण्डल की प्रति वर्ष भाद्र मास में परिक्रमा लगती है। भाद्र मास में हजारों नर-नारियों के कई समूह सम्मिलित होकर प्रदक्षिणा करते हैं। जो लगभग १ माह में पूर्ण होजाती है। व्रजमण्डल के कुछ मुख्य स्थानों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। यह परिचय परिक्रमा-क्रम के अनुसार है।

मथुरा से प्रदक्षिणा के लिये प्रस्थान करने पर—

मधुवन—आता है। त्रेतायुग में श्रीशत्रुघ्नजी ने मधु दैत्य के किले को नष्ट कर लवण्यासुर का संहार किया और इस स्थान का नाम मधुपुरी रक्खा था। प्राचीन मथुरा यहीं बताई जाती है। यहां लवण्यासुर की गुफा और ध्रुवजी का मन्दिर दर्शनीय है।

तालवन—बलरामजी ने यहाँ धेनुकासुर का बध किया था। बलदेवजी का मन्दिर तथा एक कुण्ड है।

कुमुदवन—यहाँ विहार कुण्ड है, लाल कदम्ब और कपिल मुनि का स्थान दर्शनीय है।

बहुलावन—भगवान् ने यहाँ बहुला गौ की मृगराज से रक्षा की थी।

राधाकुण्ड—भगवान् ने अरिष्टासुर (जो बछड़े के रूप में था) का संहार किया। जहाँ उसे मारा, वह स्थान अरिष्ट गाँव (अड़ींग) के नाम से प्रसिद्ध है। बैल रूपी राक्षस के मारने के प्रायश्चित्त के लिये त्रिभुवनेश्वरी श्रीराधाजी ने नख से पृथ्वी खोद कर जल निकाला। उसी के दाईं ओर भगवान् ने भी नख द्वारा पृथ्वी से जल निकाला। पहले राधाकृत कुण्ड में फिर निज कृत कुण्ड में स्नान किया। जो मनुष्य इन कुण्डों में स्नान करता है—वह समस्त पापों से छूट जाता है। राधाकुण्ड क़स्बा है। यहाँ अधिकतर भजनानन्दी साधु-महात्माओं का विशेष निवास है। यह स्थान गोवर्धन (गिरिराज) का शिरोमणि कहा जाता है।

गोवर्धन—गोवर्धन के आसपास बीस कोस के बीच में वृन्दावन था। वर्त्तमान वृन्दावन भी उसी सीमा में था। वर्त्तमान वृन्दावन को ही वृन्दावन मानने में समस्त वैष्णवाचार्यों का मत है। श्रीमद्भागवत में लिखा है—

"वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप॥"

स्कन्द पुराण में लिखा है—"अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धन गिरिः"।

वृहद् गोतमीय तन्त्र में लिखा है—'पञ्च योजन मेवास्तिवनं मे देहरूपकम्' किन्हीं-किन्हीं का मत है कि उक्त शास्त्रीय प्रमाण केवल सारस्वत कल्प के सम्बन्ध में ही है। वर्त्तमान वृन्दावन को श्वेत बाराह कल्प का मान लेना ही उचित प्रतीत होता है। प्रति कल्पों में लीलाओं में कुछ-कुछ तारतम्य हुआ ही करता है। भगवान् के प्राकट्य समय में गिरिराज विशाल रूप में था। वृन्दावन में ज़मीन खोदने से पता चला है कि लगभग ३०० फ़ीट की गहराई में गोवर्धन पर्वत मिलता है। अस्तु-गोवर्धन पर्वत की तलहटी में गोवर्धन बसा हुआ है। हरिदेव जी का विशाल मन्दिर है। यह मूर्त्ति वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित है।

चकलेश्वर—मानसीगङ्गा के ऊपर मन्दिर में विराजमान सुहावनी मूर्त्ति है। वज्रनाभ द्वारा स्थापित है।

मानसीगङ्गा—व्रज की पाँच सरिताओं में एक है। इसके मध्य में गिरिराज विराजमान हैं। ऊपर गिरिराज खण्ड में मुकुट के दर्शन हैं। तथा यही गिरिराज का मुखारविन्द है। गिरिराज की परिक्रमा में अनेकों कुण्ड तथा दर्शनीय स्थान मिलते हैं। यात्रियों को परिक्रमा अवश्य करनी चाहिये। परिक्रमा में आन्यौर और पूँछरी तथा जतीपुरा दर्शनीय हैं।

चन्दसरोवर—गोवर्धन से २ कोस की दूरी पर एक रमणीक स्थान है। रास चबूतरा, चन्दविहारी का मन्दिर, महाप्रभुजी, गुसाँईजी गोकुलनाथजी की बैठक है।

डीग (लठावन)—यहाँ से भरतपुर राज्य प्रारम्भ होता है। इसी कारण भरतपुर नरेशों को ब्रजेन्द्र की पदवी दी जाती है। यहाँ भरतपुर नरेश के भवन दर्शनीय हैं। पूर्व काल में सारा ब्रज इन्हीं के राज्य में था। भवनों में फुहारे चलने का अच्छा दृश्य देखने में आता है। यहाँ एक सरोवर (रूप सागर) बड़ा सुन्दर है।

आदि बद्री—डीग के आगे-पीछे कई स्थल दर्शनीय हैं। उनके पश्चात् आदि बद्री आता है। नन्दादि गोपों को यहीं पर श्री बद्रीनारायण का दर्शन हुआ था। यहाँ पर 'अलख गङ्गा' 'खोह' 'बड़े बद्री' और 'मानसरोवर' आदि कई उत्तराखण्ड के दर्शनीय स्थल हैं।

कामवन—यहाँ भगवान् ने गोप-गोपियों के साथ अनेकों क्रीड़ायें की हैं। एकबार भगवान् आँख मिचौनी खेलते-खेलते एक कन्दरा में अन्तर्ध्यान होगये फिर पर्वत पर प्रत्यक्ष हुए। उस कन्दरा का नाम जिसने ग्वाल-वालों को छकाया था—लुक-लुक कन्दरा है। यहां भगवान् का सिंहासन चरण चिन्ह, कौमासुर की गुफा, भोजन थाली, चित्र-विचित्र शाला, पर्वत की शिला में वृहत कटोरा तथा अनेक तरह की रेखाओं के चिन्ह हैं इनके अतिरिक्त लगभग २५ कुंड भी हैं और भी कई स्थान दर्शनीय हैं। वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित कामेश्वर महादेव भी हैं।

वृषभाकपुर (बरसाना)—जिस पहाड़ी की तलहटी में यह स्थित है, वह ब्रह्मा का रूप है, इसी लिये यह पहाड़ी चतुर्मुखी है। भुवनेश्वरी श्री राधिकाजी का जन्म इसी पुण्य स्थान में हुआ था। पहाड़ी के ऊपर श्रीप्रियाजी का विशाल सुन्दर मन्दिर है। जयपुर महाराज का बनवाया हुआ एक विशाल मन्दिर और है। सांकरी-खोर, मोरकुटी आदि स्थान अत्यन्त रमणीक हैं और दर्शनीय हैं। वृषभानु सरोवर, पीली पोखर और प्रेम सरोवर आदि दर्शनीय हैं।

संकेत वन—जहां नन्दनन्दन और वृषभानु नन्दिनी का प्रथम सम्मिलन हुआ है।

नन्दग्राम—गोकुल में उत्पात होने के कारण नन्द-बाबा यहां आकर बसे थे। नन्दग्राम में बहुत स्थान दर्शनीय हैं। नन्दगाँव एक छोटी पहाड़ी के ऊपर बसा है। बीच में एक विशाल मन्दिर है। जिसमें कृष्ण बलराम तथा नन्दबाबा और यशोदा मैया के दर्शन हैं। नन्दगाँव की पहाड़ी की महादेवजी ने प्रतिष्ठा की है। पावन सरोवर, दोना कदम्ब (जिसके पत्ते दोने के समान हैं) यहाँ पर वन-उपवन भी बहुत हैं।

दधिग्राम—गोपाल यहीं से गौ के नाम बंशी में ले-लेकर पुकारते थे। पास में कदम्ब कुंज भी है।

शेषशायी—जहां भगवान् श्रीबलरामजी ने शेषशायी रूप में ग्वाल-वालों को दर्शन दिये। एक मन्दिर और क्षीर सागर भी है।

इसके आगे छत्रवन, नन्दनवन, बढ़ाघाट होकर खेलवन आते हैं—

खेलवन—के पास दाऊजी की रासस्थली, जहाँ उन्होंने यमुनाजी को हल से अपनी ओर खींचा था—उस स्थान के दर्शन होते हैं।

चीरघाट—जहाँ भगवान ने गोप कन्याओं के चीर चुराये थे।

नन्दघाट—यमुना स्नान करते हुए नन्दबाबा को वरुण अपने लोक में लेगया, भगवान् वहां से बाबा को लाये और वरुण की लालसा पूर्ण की।

बेलवन—लक्ष्मीजी ब्रज में भगवान् की लीला-भूमि देखने आईं, पर ब्रज-वासियों ने उनका स्वागत नहीं किया। इसी कारण कुछ क्षुब्ध होकर यहीं बैठगयीं और ब्रजवासियों को श्राप दिया कि तुम्हें अपनी भक्ति पर इतना घमण्ड है, तो तुम मुझसे वंचित रहोगे।

मांठवन--जहां भगवान् दूध, माखन, दही खाकर खाली मटकों को फोड़ा करते थे।

भाण्डीरवन—वत्सासुर (जो बछड़े के रूप में था) का संहार कर भगवान् ने वंशी के द्वारा कूप का खनन कर उसमें समस्त तीर्थों का आह्वान किया और फिर स्नान किया। इस कूप में स्नान करने से समस्त तीर्थों का पुण्य प्राप्त होता है।

खेलनवन—भगवान् कृष्ण की बाल-क्रीड़ा का रमणीक स्थान।

मानसरोवर—श्रीराधिकाजी भगवान् से मान कर यहाँ आ बैठीं, श्रीराधिकाजी का सर्वाङ्ग गुप्त है केवल चक्षु-दर्शन होते हैं। मानसरोवर कुण्ड भी है।

लोहवन—भगवान् ने लोहासुर दैत्य का वध किया,लोहासुर की गुफा भी है। सनकादिकों ने यहां तपस्या भी की थी, दुर्वासाऋषि का आश्रम भी है।

बलदेव (दाऊजी)—श्रीकृष्ण के बड़े भ्राता श्रीबलरामजी के ही नाम पर यह नगर बसा है। यहां श्रीबलरामजी की विशाल और आकर्षक श्याम मूर्त्ति है। जिनकी ठोड़ी में हीरा लगा है। दाऊजी का मन्दिर भी बड़ा विशाल है। यह मूर्त्ति वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित है। कुछ काल के लिये यह मूर्त्ति लुप्त होगई थी। श्रीकल्याणजी ने भगवान् के स्वप्नादेश के अनुसार क्षीरसागर से निकाल कर मन्दिर में स्थापित किया था। इस मूर्त्ति के चमत्कार को देख कर औरङ्गजेब ने पाँच गांव भेंट किये थे। यह मूर्त्ति चमत्कारिक है

ब्रह्माण्ड घाट—यहाँ भगवान् ने मृत्तिका सेवन की थी, यशोदा मैया ने जब आपको धमकाया तो आपने मुख खोल दिया और मुख में ब्रह्माण्ड के दर्शन कराये। यह स्थान दर्शनीय है।

महावन—जहाँ श्रीनन्दबाबा अपने सब स्वजन युत रहते थे। यहाँ नन्द कूप भी है। चौरासी खम्भों का मन्दिर तथा अन्य कई स्थान दर्शनीय हैं। यहीं से दैत्यों के उत्पातों से दुखी होकर नन्दबाबा सब स्वजनों सहित वृन्दावन (नन्द ग्राम) में आये थे।

गोकुल--महावन के समीप है। बाबानन्द के नौलाख गौयें मुख्य थीं। यह स्थान उन्हीं गौ के रहने का स्थान था। यहां पर वल्लभकुल वंशज गोस्वामी स्वरूपों की गद्दियां तथा मन्दिर हैं। गोकुल के समीप एक रावल नामक गांव है। कहा जाता है कि यहां ही राधिकाजी की ननसाल है। किन्हीं-किन्हीं का मत है कि यहां उनका जन्म स्थान है।

वृन्दावन और उसके समीपवर्ती अन्य स्थान

वृन्दावन भगवान् का मुख्य लीला-स्थान है। यह भी एक शहर है। यहां की नागरिक सुविधायें सभी सुन्दर हैं। वृन्दावन की परिक्रमा पञ्च-कोशी कही जाती है। वृन्दा (तुलसी) का वन होने के कारण इसका नाम वृन्दावन है। वृन्दावन के अन्तर्गत जो स्थान हैं—उनका संक्षिप्त परिचय—

कालीदह (कालियदह) जहां भगवान् ने कालियनाग को मर्दन करके यहां से निकाला था। यहां कालिय मर्दन ठाकुरजी के दर्शन होते हैं।

युगलघाट—श्रीयुगलकिशोरजी का मन्दिर है—इसके पास ही मदनमोहनजी का विशाल दर्शनीय मन्दिर है। श्रीसनातन गोस्वामी को यह मूर्त्ति मिली थी। मदनमोहनजी की सेवाके लिये गांव लगे हैं। श्रीनरहरि चक्रवर्ती की बनायी तीन सौ वर्ष की पुरानी पुस्तक 'भक्ति' रत्नाकर' में इस मूर्त्ति की प्राप्ति महावन से बतायी गई है।

अद्वैतवट—श्रीअद्वैत गोस्वामीजी की तपोभूमि। अष्टसखियों का मन्दिर भी है। दर्शन सुन्दर हैं।

श्रीबांकेबिहारीजी—ये श्रीस्वामी हरिदासजी के पूज्य इष्टदेव हैं। बड़ी मनोहर मूर्त्ति है। यहां की सेवा पद्धति बड़ी ही विलक्षण है। स्वामी हरिदासजी एक सिद्ध पुरुष थे। जिनकी कुटीं पर अकबर बादशाह तानसेन के साथ आया था। श्रीबिहारीजी की प्राकट्य स्थली निधिवन में है। श्रीबिहारीजी के दर्शन एक साथ देर तक नहीं हो सकते हैं। पर्दा बदलता रहता है।

श्रीराधावल्लभजी—ये स्वामी श्रीहितहरिवंशजी के आराध्यदेव हैं। स्वामी श्रीहितहरिवंशजी प्रतापी

महात्मा थे। राधावल्लभजी के भोग में खिचड़ी नामी वस्तु है। इसके आगे दानगली, मानगली, यमुनागली, शृङ्गारवट, (यहां श्रीराधिका जी की बैठक है, श्रीराधिकाजी के चरण चिन्ह हैं) सेवाकुञ्ज (यहाँ प्रिया प्रीतम का रङ्ग महल है, यहाँ दर्शन बड़े ही विचित्र हैं)।

छोटे राधारमणजी—यह शाहविहारीलाल का बनवाया मन्दिर है। यहाँ की सेवा बड़े मधुर भाव से होती है। मन्दिर सङ्गमरमर का विशालकाय है।

निधिवन—श्रीविहारीजी का प्राकट्य स्थान और श्रीहरिदासजी की भजन स्थली है।

श्रीराधारमणजी का मन्दिर—यह श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु (श्रीमाध्वगौड़ेश्वर) सम्प्रदाय का मन्दिर है। श्रीगोपालभट्टजी के उपास्यदेव (जो शालिग्राम शिला में से मूर्तिरूप में प्रकट हुए थे,) श्रीराधारमणजी की बड़ी ही सुहावनी मूर्ति है। श्रीशालिग्राम शिला कूबड़ अभी तक उनकी शिखा के पास विद्यमान है।

श्रीगोपीनाथजी—यह भी माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय का मन्दिर है। परन्तु प्राचीन गोपीनाथजी जयपुर पधार गये हैं। यह मूर्ति वंशीवट के पास मधु पंडित को मिली थी।

श्रीगोकुलानन्दजी—श्रीलोकनाथ गोस्वामी की उपासना मूर्ति है।

गोपेश्वर महादेवजी—वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति है। भगवान् ने जब शरद-पूर्णिमा को महारास किया था, उस समय महादेवजी गोपीरूप धारण कर रास में सम्मिलित हुए थे। तब से यहीं श्रीवृन्दावन में गोपीरूप में विराजमान होगये हैं।

ब्रह्मचारीजी का मन्दिर—यह मन्दिर निम्बार्क सम्प्रदाय का है। महाराज ग्वालियर ने निर्माण कराया था। श्रीहंसगोपाल, सनकादिक, नारदजी और श्रीराधाकृष्ण के विचित्र दर्शन हैं। मन्दिर के संस्थापक श्रीब्रह्मचारीजी एक प्रसिद्ध सिद्ध थे। केवल भजन का प्रताप था। राजाओं से साड़ा (साला) कह कर बोलते थे। इनके मन्दिर में सदा (प्रति दिन) रास होता है।

लाला बाबू का मन्दिर—यह भी बड़ा विलक्षण मन्दिर है। मूर्त्ति बड़ी सुहावनी है। ये लाला-बाबू बड़े भक्त थे। श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय में दीक्षित थे। व्रजरज के तो इतने बड़े प्रेमी थे कि अपने मरने से पहिले ही कह दिया था कि मेरे शव का विमान न निकाला जाय। बल्कि व्रज की गलियों में खींचते हुए ले जाया जाय, ऐसा ही किया भी गया।

ब्रह्मकुण्ड—इसको ब्रह्मरुद्र भी कहते हैं। भगवान् ने एक बार गोपों को अपना ब्रह्मलोक दिखाया था। श्रीमद्भागवत में लिखा है—

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा॥

यह ब्रह्मकुण्ड इसी लीला का परिचायक है।

श्रीरङ्गनाथ का मन्दिर—दक्षिण में जैसा श्रीरङ्गजी का मन्दिर है, उसी के आकार-प्रकार का यह भी है। शिखर बहुत ऊँचा है। एक सुवर्ण का गरुड़ स्तम्भ है, विशाल पुस्करिणी है। बीसियों त्रिमालियाँ हैं। चार परकोटा हैं। श्रीरङ्गनाथ की बड़ी विशाल चतुर्भुजी मूर्त्ति है। चारों ओर अन्यान्य मन्दिरों में भी भगवान् की सुन्दर मूर्त्तियाँ हैं। यह मन्दिर उत्तर भारत में श्रीरामानुज सम्प्रदाय का प्रतीक है।

श्रीविजय अटलविहारीजी - केशीघाट के निकट यह श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का प्राचीन मन्दिर है। श्रीकेशव काश्मीरि भट्टाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित है।

गोविन्ददेवजी का मन्दिर—गोविन्ददेवजी वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित हैं। यह मूर्त्ति माध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीरूप गोस्वामी जी को मिली थी। यवनों के उत्पीडन से यह मूर्त्ति जयपुर पधार गई। जो आज कल राज महल में स्थित है। मूर्त्ति अत्यन्त मनोहर है। गोविन्ददेव का मन्दिर अत्यन्त विशाल काय है, लाल पत्थर का बना है। इसमें बड़ी विलक्षण भूल-भुलइयाँ हैं। यह पहले इतना ऊँचा था कि इसके ऊपर जलता हुआ दीपक दूर तक दिखाई

देता था। इसके ऊपर का भाग यवनों ने गिरवा दिया। यह मन्दिर जयपुर के महाराजा मानसिंह का बनवाया हुआ है।

ज्ञान गुदड़ी—रङ्गजी के मन्दिर के पूर्व यमुना किनारे पर है। यहाँ पर ज्ञान की गुदड़ी (पैठ-बाजार) लगती थी। प्राचीन महात्मा यहाँ बैठ कर ज्ञान भक्ति की चर्चा किया करते थे। ज्ञान गुदड़ी में कई दर्शनीय मन्दिर हैं।

जयपुरवाला मन्दिर—जयपुर महाराज ने इस मन्दिर को श्रीब्रह्मचारीजी के उपदेश से बनवाया। मन्दिर शहर से बाहर सुन्दर और विशाल है। जयपुर की कारीगरी का अच्छा दृश्य है। यह भी श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का दर्शनीय मन्दिर है।

तड़ास के राजा बनमालीराय का बनवाया हुआ मन्दिर इसके सामने है। राजा साहब भगवान् से जमाई बाबू का सम्बन्ध रखते थे।

वृन्दावन श्रीयमुनाजी के दाहिने कूल पर बसा हुआ है। यहाँ के कुछ प्रसिद्ध घाटों के नाम ये हैं—केशीघाट, धीरसमीर, बंशीवट, टिकारीघाट, जगन्नाथघाट, पानीघाट, राजघाट, वाराहघाट, सूर्यघाट, युगलघाट, विहारघाट, शृङ्गारघाट, चीर घाट और भ्रमर घाट आदि हैं।

मथुरा से ६ मील की दूरी पर वृन्दावन है। पक्की सड़क और रेलवे शाखा भी है। वृन्दावन में सैकड़ों स्थान दर्शनीय हैं। स्थानाभाव से यहाँ नहीं लिखे जा सके हैं।

जैत—दिल्ली को जाने वाली सड़क पर एक गाँव है। इसमें एक पत्थर का बना हुआ विशाल सर्प है जो अघासुर का निदर्शन है।

गरुड़ गोविन्द—वृन्दावन से दो कोस की दूरी पर स्थित है। जब भगवान् ने गोवर्धन पर्वत धारण किया था तब गरुड़जी सेवा करने को पधारे थे, ये उसी समय के दर्शन हैं।

अक्रूरघाट—वृन्दावन से मथुरा आते समय बीच में पड़ता है। यहाँ भगवान् ने अक्रूरजी को अपने स्वरूप के दर्शन कराये थे। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जब ब्रज में आये तो यहाँ की लता-पताओं को देखकर मूर्छित होकर गिर गए थे। यहाँ उनके दर्शन भी हैं।

भतरोंड़—यहाँ यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की धर्मपत्नियों ने भगवान् को और ग्वालवालों को भोजन कराया था।

गढ़मुक्तेश्वर—

मेरठ शहर से २६ मील दक्षिण पूर्व इसी ज़िले में गङ्गा के दाहिने किनारे ऊँचे टीले पर गढ़मुक्तेश्वर बसा है। बस्ती पुरानी है। प्राचीनकाल में यह हस्तिनापुर का एक मुहल्ला था। पुराना गढ़ और मुक्तेश्वर शिव के नाम पर इसका नाम गढ़मुक्तेश्वर पड़ा है। यहाँ शिवजी का एक विशाल मन्दिर है। २ तीर्थ स्थान टीले के ऊपर और २ तीर्थ स्थान इसके नीचे हैं। समीप ही में ८० सत्ती स्तम्भ खड़े हैं। यहाँ कार्त्तिक की पूर्णिमा को बड़ा मेला होता है। जो आठ-नौ दिन तक रहता है। मेले में लगभग दो लाख यात्री आते हैं।

सम्भल—मुरादाबाद शहर से २३ मील की दूरी पर दक्षिण पश्चिम सोत नदी से ४ मील पश्चिम मुरादाबाद ज़िले में संभल क़स्बा है। क़स्बा और उसके आस पास पक्की सड़कें हैं। संभल में ६८ तीर्थ बताये जाते हैं। सम्भल का विस्तार २४ कोस का है। यहाँ अनेकों स्थान दर्शनीय हैं। भावी कल्कि भगवान् का अवतार इसी पुण्य नगरी में होगा। महाभारत, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, देवी भागवत आदि में इनका विस्तृत वर्णन मिलता है।

सोरों—कासगंज से ६ मील पूर्वोत्तर सोरों तक रेलवे की शाखा गई है। एटा ज़िले में गङ्गा से ५ मील दाहिने सोरों एक तीर्थ है, गङ्गा की छोड़ी हुई धारा के किनारे पर दूर तक अनेकों पक्के घाट बने हैं। घाटों के समीप अनेक देव मन्दिर भी हैं। यहाँ वाराहजी का मन्दिर प्रधान है। शुक्ल वर्ण वाराहजी की चतुर्भुजी मूर्त्ति है। इनके मुखपर पृथ्वी का आकार और वाम भाग

में लक्ष्मीजी स्थित हैं। सोरों तीर्थ की परिक्रमा ३ कोस की है। सोरों को बाराह तीर्थ भी कहा जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष अगहन सुदी एकादशी को स्नान-दर्शन का मेला होता है।

कन्नौज—फर्रुखाबाद से ३७ मील, हाथरस जंकशन से १३८ मील, कानपुर से ५० मील कन्नौज का रेलवे स्टेशन है। प्राचीन काल में यह एक बहुत बड़ा नगर था। गङ्गा एक समय कन्नौज के नीचे होकर बहती थी। किन्तु इस समय ४ मील पूर्वोत्तर है। कन्नौज को अश्वतीर्थ भी कहा जाता है। इसका इतिहास इस प्रकार है—एक समय ऋचीक ऋषि ने राजा गाधि से कन्या मांगी। राजा ने ऋषि से एक सहस्र श्यामकर्ण अश्व लाने को कहा। ऋषि ने वरुण से कह कर उसी स्थान पर अश्व प्रकट किये थे। इसी कारण इसको अश्वतीर्थ कहा जाता है। कन्नौज में अभी तक कुछ पुराने चिन्ह दिखाई देते हैं।

खेरेश्वर महादेव—कन्नौज से २८ मील पूर्व दक्षिण और मन्धना के स्टेशन से १० मील पश्चिमोत्तर राजपुर का रेलवे स्टेशन है। स्टेशन से लगभग २ मील की दूरी पर एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर में खेरेश्वर महादेव हैं। इनका दूसरा नाम घेरेश्वर भी है। पास ही में अश्वत्थामा का भी स्थान है। वहाँ पर नाना प्रकार की प्राचीन मूर्त्तियां हैं। एक और चतुर्वक्र श्वेत शिवलिङ्ग भी स्थापित हैं। कहा जाता है कि खेरेश्वर महादेव को अश्वत्थामा ने स्थापित किया था। महादेवजी का मन्दिर विशाल और शिखरदार है। शिवरात्रि को यहाँ मेला होता है। प्रत्येक सोमवार को भी दर्शक लोग जाते हैं।

बिठूर—कन्नौज से ३८ मील, हाथरस से १७६ मील, और कानपुर जंकशन से १२ मील पश्चिमोत्तर मन्धना का रेलवे स्टेशन है। मन्धना से एक रेलवे शाखा बिठूर को जाती है। स्टेशन से चलते ही पहले गङ्गा के निकट ही नया बिठूर तब पुराना बिठूर मिलता है। पुराने बिठूर में ब्रह्माघाट प्रधान है। इसके अतिरिक्त और भी घाट हैं, घाटों के ऊपर अनेक देव मन्दिर हैं। जिनमें वाल्मीकेश्वर शिव का मन्दिर प्रधान है। गङ्गा के खास घाट की सीढ़ियों पर लगभग १ फुट ऊँची लोहे की कील खड़ी है। कहा जाता है कि यह ब्रह्मा की खूंटी है। बिठूर में प्रतिवर्ष कार्तिक की पूर्णिमा का बड़ा मेला होता है। कहा जाता है कि ब्रह्मावर्त्त तीर्थ बिठूर का ही नाम है। संवत् १७८४ का बना हुआ "तुलसी शब्दार्थ प्रकाश" नामक पद्यात्मक ग्रन्थ के द्वितीय भेद में लिखा है कि राजा मनु और ध्रुवजी का जन्म बिठूर ही में हुआ था।

बाल्मीकि मुनि का स्थान—बिठूर से ६ मील पश्चिम गङ्गाजी से १॥ मील दक्षिण बैलारुद्रपुर एक बस्ती है। "पूर्वकाल में इसका नाम बैलब था। लोगों का कहना है कि इसी नगरी में बाल्मीकि ऋषि का जन्म हुआ था। यहाँ एक पुराना कूप है, ऐसी प्रसिद्धि है कि बाल्मीकि जब बधिक का काम करते थे, तब इसी कूप में छिप कर रहते थे। कहा जाता है कि श्रीलक्ष्मणजी श्रीसीताजी को इसी के पास गङ्गा किनारे पर छोड़ गये थे। महाराणीजी जब बाल्मीकि आश्रम में आगईं और वहाँ उनके दो पुत्र जन्मे, तब महर्षि वाल्मीकि ने इस स्थान को उत्पलबन का जङ्गल जान कर मन्त्र से कील दिया था। इस कारण अभी तक वहाँ के निवासी निर्भय रह कर अपने मकानों के किवाड़ों को नहीं लगाते हैं, जो कोई किवाड़ लगाता है, वह सुखी नहीं रह सकता। गाँव में प्रायः चोरियाँ नहीं होती हैं। इसी स्थान पर महर्षि वाल्मीकिजी ने आदि काव्य वाल्मीकि रामायण की रचना की थी।

गोला गोकर्णनाथ—लखीमपुर से २० मील गोला गोकर्णनाथ को सड़क गई है, यहाँ साल भर में दो प्रसिद्ध मेले होते हैं। एक तो फाल्गुन में शिव रात्रि के समय होता है, जिसमें ५०००० मनुष्य आते हैं। दूसरा चैत्र में होता है जो दो सप्ताह तक रहता है, इसमें लगभग १॥ लाख यात्री आते हैं।

गोला गोकर्णनाथ एक तीर्थ है। जिसको उत्तर का गोकर्णक्षेत्र कहते हैं। यहां एक बड़े सरोवर के समीप गोकर्णनाथ महादेव का मन्दिर है। स्थान दर्शनीय है। मेले में अपार भीड़ होती है। इसकी कथा बाराह पुराण (उत्तरार्द्ध २०७ वाँ अध्याय) में विस्तार पूर्वक लिखी है।

सण्डीला (नैमिषारण्य)—

लखनऊ से ३१ मील पश्चिमोत्तर सण्डीला का स्टेशन है। सण्डीला एक क़स्बा है। कहा जाता है कि सूरदास मदनमोहन सण्डीले में ही रहते थे। बहुत से यात्री सण्डीला में रेलगाड़ी से उतर कर नैमिषारण्य मिश्रिक और हत्याहरण तीर्थ को जाते हैं। स्टेशन के पास सवारी के लिये बैलगाड़ी मिलती है। सण्डीला से नैमिषारण्य जाने के लिये पक्की सड़क नहीं है। इसलिये कुछ यात्री सण्डीला से १८ मील पश्चिमोत्तर बघौली स्टेशन पर उतर कर बघौली से १३ मील उत्तर गोमती नदी पार होकर नदी से १ मील आगे नैमिषारण्य में पहुँचते हैं। बघौली में सवारी के लिये इक्के मिलते हैं। सीतापुर ज़िले में गोमती नदी के बाँये किनारे पर सीतापुर से २० मील पश्चिम भारत के अति प्राचीन और पावन तीर्थों में से एक नैमिषारण्य भी है। प्राचीन समय में नैमिषारण्य ऋषि मुनियों का प्रधान केन्द्र था। आज यहां यात्रीगण कम आते हैं, फिर भी अब कुछ दिन से तो यात्री बहुत जाने लगे हैं। नैमिषारण्य बस्ती भी अच्छी है। इसके अतिरिक्त और भी बस्तियाँ यत्र-तत्र बसी हैं। पूर्वकाल में नैमिषारण्य में ही महाभारत और समस्त पुराणों की कथा हुई थी। शौनकादि अठासी हज़ार ऋषि यहीं पर निवास करते थे। नैमिषारण्य की बड़ी परिक्रमा ८४ कोस की है। प्रतिवर्ष फाल्गुन की अमावस्या को नैमिषारण्य से परिक्रमा प्रारम्भ होकर पूर्णिमा को इसी स्थान पर समाप्त होजाती है। यात्रियों की सुविधा के लिये साथ में बाजार भी चलता है। नैमिषारण्य की १॥ कोस की परिक्रमा में निम्न-लिखित देव स्थान मिलते हैं।

१—चक्रतीर्थ—यह १२० गज घेरे का पक्का कुण्ड है। इसमें अथाह जल है। कुंड का जल उमड़ कर एक नाले के द्वारा बाहर निकल जाता है, फिर आगे वह नदी रूप में हो जाता है और लोग उसे नर्वदा, गोदावरी कहते हैं। यहाँ कई एक देव मन्दिर हैं—जिनमें भूतनाथ प्रधान हैं। चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य का एक मुख्य स्थान है।

२—पञ्च प्रयाग—यह पक्का सरोवर है। इसके किनारे पर अक्षयवट नामक वृक्ष है, ३--ललितादेवी—यहाँ की प्रधान देवियों में से एक हैं, ४—गोवर्द्धन महादेव, ५ - क्षेमकायादेवी, ६ - जानकी कुंड, ७—हनुमानजी, ८ काशी, ९--धर्मराज की गद्दी, १०—शुकदेवजी व्यासजी आदि की गद्दी, ११- व्यास गङ्गा, १२ - ब्रह्मावर्त सरोवर, १३ गोमती सरोवर, १४ -पुष्कर सरोवर, १५—गोमती नदी, जो हिमालय से निकलकर लखनऊ जौनपुर होती हुई बनारस से नीचे गङ्गा में मिली है। १६—दशाश्वमेध टीला, १७--पाण्डव किला, यहाँ बहुत-सी छोटी-मोटी गुफायें भी हैं जिनमें साधु-जन निवास करते हैं १८—जगन्नाथजी का मन्दिर, १९—सूतजी की गद्दी, २०—भगवान् राम का मन्दिर।

मिश्रिक—नैमिषारण्य से लगभग ५ मील दूर सीतापुर से हरदोई जाने वाली सड़क के निकट सीतापुर से क़रीब १३ मील दक्षिण मिश्रिक एक तीर्थ है। मिश्रिक ब्राह्मणों की बस्ती है। यहाँ पर दधीचि नामक कुण्ड है, जो एक सुन्दर सरोवर के ढङ्ग से बना हुआ है। कहा जाता है कि महाराजा विक्रमादित्य ने इसे बनवाया था। दधीचि ऋषि का एक पुराना मन्दिर भी है। दधीचि ऋषि ने देवताओं के लिये अपने शरीर की हड्डियों का दान यहीं पर दिया था। जिस कुण्ड में दधीचि ऋषि ने स्नान किया था, उसमें भारतवर्ष के समस्त तीर्थों को बुलाया गया था, जो आजकल दधीचिकुण्ड करके प्रसिद्ध है।

हत्याहरण—मिश्रक से आठ दस मील दूर हरदोई ज़िले में नैमिषारण्य तीर्थ के अन्तर्गत 'हत्याहरण' नामक तीर्थ है। यहाँ भादों में महीने भर का मेला होता है। हत्याहरण नामक सरोवर में लोग स्नान करते हैं। लगभग एक लाख से ऊपर यात्री आते हैं। शास्त्रों में इसका बहुत महत्व वर्णित किया गया है। नैमिषारण्य की भूमि अत्यन्त पवित्र और तपस्थली है।

चित्रकूट—

शास्त्रों में चित्रकूट के माहात्म्य में लिखा है कि यह ब्रह्मपुरी है। इसमें तीस धनुष के प्रमाण एक यज्ञ वेदी है। जहाँ यज्ञ करने से अग्नि वेशादि मुनि परम सिद्धि को प्राप्त हुये थे और इसमें सारे तीर्थ निवास करते हैं। आजकल जो चित्रकूट कहलाता है, वह व्रज और नैमिषारण्य की भाँति फैला हुआ है। वस्तुत: तो चित्रकूट उस पहाड़ी को कहा जाता है 'जिस पर श्रीरामचन्द्रजी ने निवास किया था। जिस पहाड़ी को आजकल 'कामदनाथ' कहकर पुकारते हैं। वाल्मीकि रामायण (२।९४।४–६) में भगवान् ने चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते हुये महारानी श्रीसीताजी से कहा है कि–'भद्रे ! नाना प्रकार के पक्षियों से सेवित अनेक धातुओं से भूषित ऊँचे शिखरों के इस पर्वत को देखो, कोई सफेद है, कोई लाल है, कोई पीला है और कोई मजीठे रँग का है, इत्यादि, इससे सिद्ध है कि अनेक रङ्ग के धातुओं के कारण इस पहाड़ी का नाम चित्रकूट पड़ा।

वर्तमान चित्रकूट संयुक्त प्रान्त के ज़िला बांदा की करवी तहसील में स्थित है। चित्रकूट की पञ्च-कोशी परिक्रमा भी लगती है, जो पाँच दिन में इस प्रकार से पूर्ण होती है।

पहले दिन की परिक्रमा–राघव प्रयाग से स्नान करके कामदनाथ की परिक्रमा करे और पुरी की परिक्रमा करता हुआ सीतापुर लौट आवे ६ मील। दूसरे दिन की परिक्रमा—राघव प्रयाग में स्नान करके कोटितीर्थ, देवाङ्गना, सीतारसोई और हनुमान धारा की यात्रा करके नया गाँव होते हुए सीतापुर को लौटें, १२ मील।

तीसरे दिन की परिक्रमा—राघव प्रयाग में स्नान करके केशवगढ़, प्रमोदवन, जानकीकुण्ड, सिरसावन, फटिकशिला और अनुसूयाजी होकर बाबूपुर में रहे, १० मील।

चौथे दिन की परिक्रमा—बाबूपुर से गुप्त गोदा-वरी पहुँचकर वहाँ स्नान करे और वहाँ से कैलाश पर्वत देखकर चौबेपुर में रहे १० मील।

पाँचवें दिन की परिक्रमा—चौबेपुर से भरतकूप जाकर स्नान करे और रामशय्या होते हुये सीता-पुर लौट आवें, २२ मील।

चित्रकूट के स्थानों का परिचय—

सीतापुर—यह एक छोटा-सा सुहावना नगर पयोष्मी (मन्दाकिनी) के तट पर बसा है। यह उसी स्थान के आस-पास है, जहाँ भगवान् ने पर्ण-कुटी की रचना की थी। नदी के घाट कहीं-कहीं सौ फुट तक ऊँचे हैं। मन्दिरों का दृश्य अत्यन्त रमणीय है।

राघवप्रयाग—यह स्थान सीतापुर का बड़ा तीर्थ है। इस स्थान को प्रयाग इसलिये कहा जाता है, कि यहाँ एक गुप्त नदी गायत्री (सावित्री) मानी जाती है। जो आजकल प्रवाहित नहीं है। कहा जाता है कि श्रीरामचन्द्रजी ने इसी स्थान पर पितृ-तर्पण किया था। इसी घाट के ऊपर मत्त गजेन्द्रेश्वर का बड़ा मन्दिर है। इसे पन्ना के राजा अमानसिंह ने बनवाया था।

मन्दाकिनी घाट—राघवप्रयाग के सामने वाला मन्दाकिनी घाट कहलाता है। मन्दाकिनी के उस पार नया गाँव बसा है, यहाँ एक बहुत बड़े जागीदार रहते हैं, जो राजा करके बोले जाते हैं। इस घाट को जागीरदार के पूर्व पुरुषों ने बनवाया था।

रामघाट–बीच का घाट है। इसके ऊपर यज्ञ-देवी का मन्दिर है, जहाँ ब्रह्मा ने यज्ञ किया था।

इसी मन्दिर में 'पर्णकुटी' के दर्शन भी हैं। पर्णकुटी को साधारण जनता तुलसीदासजी की कुटी समझती है।

गोस्वामीजी के चित्रकूट में दो निवास स्थान हैं। एक रामघाट के सामने गली में, दूसरा कामदनाथ की परिक्रमा में चरण पादुका के समीप। कहा जाता है, कि इसी घाट पर गोस्वामीजी को भगवान् के दर्शन हुए थे। जिनके विषय में एक दोहा प्रचलित है—

चित्रकूट के घाट पर भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुवीर॥

जानकी कुण्ड—पर्णकुटी से कुछ दूर मन्दाकिनी के बिल्कुल ऊपर जानकी-कुण्ड मिलता है। प्राकृतिक रमणीयता यहां की अवर्णनीय है। नदी के दोनों तटों पर सुहावना वन है। बीच-बीच में सफेद पत्थर निकले हुए हैं। जिन पर युगल सरकार के चरण चिन्ह हैं।

स्फटिक शिला—इसके दो स्थान हैं और वे पास-पास ही हैं। भगवान् जब चित्रकूट के अत्रि मुनि के आश्रम को जाते थे, तब रास्ते में नदी तट पर एक विशाल शिला बैठे थे। और यहीं पर जयन्त ने (कौवे के रूप में) महाराणीजी के चरण में चोंच मारी थी--जिसकी कथा आरण्य-काण्ड में वर्णित है।

कामदनाथ (कामता) चित्रकूट का प्रधान तीर्थ यही है। यह एक पहाड़ी है। जिसका घेरा लगभग १॥ कोस में है। चित्रकूट इसी का नाम है। आजकल इसको 'कामता'कहते हैं। यह पहाड़ी विंध्याचल की शाखा में से है। यह सदा हरी भरी रहती है। 'कामता' की परिक्रमा में सैकड़ों दर्शनीय मन्दिर । हिन्दू जन इस पहाड़ी को भगवान् का सिंहासन करके मानते हैं। इसी कारण कोई हिन्दू इसके ऊपर नहीं चढ़ता है और न इसके वृक्षों को ही काटता है। 'भरत-मिलाप' का दर्शनीय स्थान 'कामता' की परिक्रमा में ही पड़ता है।

चरण चिन्ह—चरण-चिन्हों के यहां कई स्थान हैं (१) स्फटिक शिला (२) जानकी कुण्ड, और (३) चरण पादुका। स्फटिक शिला के चिन्ह सफेद अग्नेय पत्थर के बने हैं जिसका समय लाखों वर्ष होगा। इसी तरह के चिन्ह जानकी कुंड के पास में भी हैं। चरण--पादुका कामताकी परिक्रमामें है। यह वही स्थान है--जहाँ भगवान् श्रीरामजी से भरतजी ने मिलाप किया था। चरणों का चिन्ह बड़ा विचित्र है। महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत में लिखा है:----"वन्द्यैः पुंसां रघुपति पदै रङ्कितं मेखलासु"। इससे स्पष्ट है कि आज से दो हज़ार वर्ष पहले भी ये चरण-चिन्ह थे। रामशय्या---यह स्थान बड़ा विचित्र है। बनावट तो इसमें बिल्कुल नहीं है। एक बड़ी शिला पर दो ऐसे चिन्ह बने हुए हैं--जैसे कोमल रुई के गद्दे पर दो प्राणियों के सोने से बन जाते हैं--कहा जाता है कि युगल सरकार यहां शयन करते थे। पत्थर पर चिन्ह बन जाना एक अनोखी बात है।

चरण--चिन्हों का आकार भी आश्चर्य जनक है। भू--विज्ञान के अनुसार ऐसे चिन्ह जलके भीतर बनते हैं। पीछे पृथ्वी के उठने से पहाड़ बन जाते हैं। इस कार्य में लाखों वर्ष लग जाते हैं।

भरत कूप--यह एक बहुत बड़ा कुंआँ है। इसके नाम से रेलवे स्टेशन भी है। यह बात तो सभी को विदित है कि भरतजी श्रीरघुनाथजी के राज्याभिषेक के लिये समस्त तीर्थों का जल लाये थे। जब भगवान् ने राज्याभिषेक को स्वीकार नहीं किया, तब अत्रि ऋषि ने श्रीभरतजी से कहा—

अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमिय अनूप॥

भरतजी ने जब उस अशेषतीर्थ जल को उस कूप में स्थापित कर दिया—तब उन्होंने फिर कहा है—

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा।
अति पावन तीरथ जल जोगा॥

प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी।
होहहिं विमल करम मन वानी॥

श्रीभरतजी का मन्दिर भी दर्शनीय है।

हनुमान धारा—यह धारा (झरना) एक अत्यन्त सुहावना स्थान है। हनुमान धारा टेकरे के आधे से कुछ ऊपर से निकलती है। धारा पतली है। श्रीहनुमानजी के सामने एक कुण्ड में गिरती है। नीचे आकर इसको पाताल गंगा भी कहते हैं। यहाँ यात्रियों के विश्राम के लिये एक चौड़ा दालान बना है। इस पर्वत पर से सीतापुर तक का रमणीय दृश्य दिखाई देता है। इसी पहाड़ी पर 'बांके सिद्ध', 'देवाङ्गना', 'सीता रसोई' और 'अनसूया' आदि दर्शनीय तीर्थ हैं।

सीता की रसोई—यह स्थान हनुमान धारा के ऊपर उसी पर्वत पर है। कहा जाता है, कि चित्रकूट जाते समय श्रीसीताजी ने यहाँ भोजन बनाया था। एक छोटा-सा दालान बना हुआ है।

अनसूयाजी—यह स्थान कामता से ८ मील दक्षिण पहाड़ी के ऊपर है। श्रीअत्रिमुनि और अनसूया आदि के विचित्र दर्शन हैं। बनारस के किसी साहूकार ने यहां पर एक धर्मशाला और पर्वत पर पक्की सीढ़ी बनवादी हैं। मन्दाकिनी की उत्पत्ति यहीं से होती है। यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोरम है। दोनों ओर दो पर्वत श्रेणियां हैं, सुहावना वन है, बीच में मन्दाकिनी की धारा प्रवाहित है। यहाँ के जंगल में सिंह आदि भयंकर जन्तु भी रहते हैं।

गुप्त गोदावरी—अनसूयाजी से ६ मील गुप्त गोदावरी है। चित्रकूट से सीधा मार्ग भी जाता है। यहाँ एक अँधेरी गुफा में लगभग २० गज के भीतर सीता कुण्ड है। जिसमें झरने का पानी गिरता है, यह कुण्ड बहुत गहरा नहीं है। लोग इसी में बैठकर स्नान करते हैं। गुफा के भीतर अँधेरा बहुत है। दर्शन के लिये यात्रियों को प्रकाश साथ में ले जाना पड़ता है। कुण्डों में से आगे चलकर पानी पृथ्वी में लुप्त हो जाता है। इसी कारण इसको 'गुप्त गोदावरी' कहते हैं।

राजापुर—यह चित्रकूट से २३ मील पर और करवी से १८ मील की दूरी पर यमुना किनारे एक सुन्दर कस्बा है, गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की यही जन्मभूमि है। यहाँ पर अभी गोस्वामीजी के वंशज हैं। गोस्वामीजी के हाथ की लिखी हुई 'रामायण' अभी यहाँ मौजूद है।

बृहस्पति कुण्ड (शैलोदक) बृहस्पति कुण्ड जाने के लिये प्रयाग से चित्रकूट होती हुई जी० आई० पी० की एक लाइन जो झांसी को जाती है—उसी लाइन पर सतना स्टेशन पर उतरना पड़ता है। अथवा बाँदा और करवी के स्टेशनों के बीच अतरी स्टेशन पर उतरना पड़ता है। पहले मार्ग से लगभग २ मील पैदल चलना पड़ता है और दूसरे मार्ग से लगभग ६ मील। शास्त्रों में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है, कि भगवान् ने जब बाराह का रूप धारण किया, तब पृथ्वी उनके बोझ से दब गई और विकल होकर पसीने से लथपथ हो गई। वही पसीना पर्वतों में होकर बहता हुआ 'शैलोदक' कहाता है। इसके कई भेद हैं। कहा जाता है, कि इस कुण्ड का जल 'शैलोदक' है। इसमें अनेकों गुण हैं, इसके सेवन से समस्त रोगों की निवृत्ति होती है। यहाँ पर एक महात्मा (जिनकी आयु १०० वर्ष की है) को इस जल से बहुत लाभ प्राप्त हुए हैं। इस कुण्ड का जल प्रत्येक ऋतु में भिन्न-भिन्न रंगों में बदलता रहता है।

तीर्थराज (प्रयाग)—

प्रयाग में गङ्गा, यमुना और सरस्वती का सङ्गम, सघन सुन्दर वट वृक्ष है। तपश्चर्या का उत्तम स्थान देखकर किसी समय ऋषि मुनियों ने मिलकर यहाँ बड़े-बड़े बहुत से यज्ञ किये थे। प्रयाग शब्द के अर्थों से भी यही प्रकट होता है। 'प्र' अर्थात् प्रकृष्ट (श्रेष्ठ) या बहुत 'याग' अर्थात्

यज्ञ। जहाँ पर बहुत से या उत्तम यज्ञ हुए हों—उसको प्रयाग कहते हैं। प्रयाग भारत का बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध तीर्थ ही नहीं, अपितु तीर्थ-राज है। यवन साम्राज्य में इसी का नाम 'इलाहाबाद' पड़ गया।

प्रयाग—धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनैतिक आदि सभी दृष्टियों से तीर्थ है। प्रयाग की स्थापना सतयुग में हुई थी। भरद्वाज मुनि का आश्रम यहाँ बहुत पुराना है। यह स्थान सङ्गम पर है। यहाँ की प्राकृतिक रमणीयता बड़ी ही मनमोहक है। प्रयाग संयुक्तप्रान्त की राजधानी है (अब थोड़े दिनों से सरकार का हैडक्वार्टर लखनऊ होगया है) यह कलकत्ता से ५६४ मील पश्चिम की ओर है। प्रयाग से ३६० मील पश्चिमोत्तर में दिल्ली प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। प्रयाग से ८४४ मील दक्षिण में बम्बई नगर है।

प्रयाग आने के रेल मार्ग—(१) इलाहाबाद जङ्क्शन (कछपुरवा) ई० आई० आर०, (२) नैनी (जी० आई० पी०), (३) प्रयाग (एलन गञ्ज) ई० आई० आर०, (४) इलाहाबाद सिटी (रामबाग़) बी० एन० डब्ल्यू० आर०, (५) ऐजजब्रिज (दारागंज) बी०एन० डब्ल्यू० आर० (६) झूसी, बी० एन० डब्ल्यू० आर०। इलाहाबाद स्टेशन सबसे बड़ी रेलवे ई० आई० आर० पर है। जी० आई० पी० रेलवे की भी सारी गाड़ियाँ यहाँ आती हैं। प्रयाग आने वाले यात्री इसी स्टेशन (जङ्क्शन) पर उतरते हैं।

प्रयाग की कुछ प्रसिद्ध धर्मशालायें ये हैं-- इलाहाबाद स्टेशन के पास एक बड़ी धर्मशाला है, मुट्ठीगञ्ज में गोमती बीबी की धर्मशाला, गऊघाट वाली धर्मशाला, इसी के पास मुट्ठीगंज में गोकुल-दास तेजपाल की धर्मशाला आदि बड़ी हैं।

मुण्डन और स्नान—प्रयाग में मुण्डन की बड़ी महिमा है। गंगा के तट पर पहुँच कर पहले मुण्डन कराना चाहिये। मुण्डन के बाद त्रिवेणी का स्नान करे। प्रयाग में वेणीदान का भी बड़ा माहात्म्य है। महाभारत, रामायण और अन्य पुराणों में भी प्रयाग का बहुत माहात्म्य वर्णित है। प्रयाग के मुख्य देवस्थानों की गणना के सम्बन्ध में लिखा है —

त्रिवेणीं माधवं सोमं भारद्वाजं च वासुकिम्।
वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थ नायकम्॥

अर्थात् त्रिवेणी, वेणीमाधव, सोमेश्वर, भारद्वाज, वासुकी, अक्षयवट और शेषजी, ये छः स्थान प्रयाग में मुख्य हैं।

त्रिवेणी—यहाँ तीन नदियों का सङ्गम होता है। सङ्गम का स्थान एक निश्चित नहीं रहता, क्यों कि नदियों की गति वक्र होती है। गङ्गा यमुना का सङ्गम कभी किले के पास, कभी उससे आगे हट जाता है, कभी भारेल गाँव के समीप रहता है, कभी सोमेश्वर महादेव के सामने पहुँच जाता है। सङ्गम पर गङ्गा यमुना का जल अलग-अलग दिखाई देता है। गङ्गा का जल बिल्कुल श्वेत और यमुना का जल बिल्कुल नीले रँग का दिखाई देता है। त्रिवेणी की शोभा का वर्ण शास्त्रों में बड़ी रोचकता से किया है। सङ्गम से आगे गङ्गा का जल भी नीला होजाता। कहा जाता है कि यहाँ से आगे का नाम गङ्गा का और वर्ण यमुनाजी का होगया है। कहीं-कहीं ऐसा भी वर्णन है कि सङ्गम के बाद यमुनाजी का नाम-रूप कुछ भी नहीं रहता। वृष के वृहस्पति होने पर प्रयाग का कुम्भ मेला होता है। प्रयाग में सङ्गम के यथा स्थान न रहने के कारण पक्के घाट नहीं बन सके हैं।

वेणी माधव—प्रयाग के मुख्य देवता वेणी-माधव हैं। प्रयाग में १२ माधव क्षेत्रों का वर्णन आता है, परन्तु आज कल पाँच स्थानों का ही दर्शन होता है।

(१) त्रिवेणी सङ्गम के स्थान पर वेणी माधव जल रूप में, (२) वट वृक्ष के समीप वटमाधव या मूलमाधव, (३) यमुना और गङ्गा के दक्षिण

में सोमनाथ के पास वेणी माधव (आदि माधव) का प्राचीन मन्दिर, (४) झूँसी और छतनगा के बीच में गङ्गाजी के उत्तर तट पर विन्दुमाधव और (५) दारागञ्ज में श्रीवेणीमाधव का प्रधान मंदिर है। प्रयाग शताध्यायी में लिखा है कि गङ्गा यमुना के तीर श्रीवेणीमाधव विराजते हैं और बीस धनुष के विस्तार में उनका आश्रम है। त्रिवेणी के सम्बन्ध में लिखा है–कि तीन वर्ष वाली, तीन गुण वाली, तीन नेत्र वाली, विविध पापों को नष्ट करने वाली, तीन मार्गों से चलने वाली त्रिवेणी माधव के आगे विराजती हैं।

अक्षयवट—प्रयाग तीर्थों में इस वट का भी मुख्य स्थान है। त्रिवेणी सङ्गम से थोड़ी दूर यमुना किनारे किले के भीतर एक गुफा में यह स्थान है। यह गुफ़ा प्रयाग का अति प्राचीन स्थान है। गुफा के अन्दर एक वट वृक्ष है, जो वृक्ष रूप में तो अब नहीं, किन्तु वट वृक्ष का ठूँठ है। गुफ़ा के अन्दर लगभग ५० देव प्रतिमायें हैं, जो दर्शनीय हैं। वटवृक्ष की अवस्था स्वभावतः अधिक होती है, यह वृक्ष हज़ारों वर्ष रहता है। भड़ोंच में नर्मदा के तट पर एक वट वृक्ष हज़ार वर्ष से ऊपर का है। लङ्का में वोधि-वृक्ष की एक सन्तान है, जिसकी आयु लोग दो हज़ार से अधिक बताते हैं। एक पीपल वृक्ष की आयु जब दो हज़ार वर्ष होसकती है, तो निःसन्देह वट-वृक्ष ४-५ हज़ार वर्ष रह सकता है, यदि उसे कोई नष्ट न करे तो। प्रयाग का यह अक्षय वट अवश्य ही तीर्थ रूप होने से नष्ट–भ्रष्ट नहीं किया गया होगा। बाल्मीकि रामायण में जिस अक्षयवट का वर्णन आता है, वह उस समय ही अति प्राचीन होगया था, हो सकता है, यह अक्षयवट उसी वट वृक्ष का सूखा ठूँठ रह गया हो। कुछ लोगों का अनुमान है कि किले के अन्दरी गुप्त भाग में असली वट वृक्ष अब भी विद्यमान है, परन्तु वहाँ आजकल कोई जा नहीं सकता। शास्त्रों में तो इस वटवृक्ष के लिये कहा गया है कि–इसका नाश महाप्रलय में भी नहीं होता। महाप्रलय में भगवान् इसी वट वृक्ष के पत्ते पर शयन करते हैं।

मनकामेश्वर—किले से थोड़ी दूर पर एक प्राचीन मन्दिर है। इन महादेवजी की पूजा अर्चा करने से मनोरथ पूर्ण होते हैं।

सोमनाथ—गङ्गा के दाहिने तट पर अरैल ग्राम के पास एक मन्दिर है। यात्री लोग संगम अथवा किले के पास से नाव में सवार होकर दर्शन करने जाते हैं।

बिन्दुमाधव और छतनगा—गङ्गा के पार बाँये किनारे पर विन्दुमाधव का प्रसिद्ध मन्दिर है, उसी किनारे करीब दो मील पूर्व ग्राम छतनगा में नागेश्वर महादेव का प्रसिद्ध स्थान है।

झूँसी—यह गङ्गा के बाँये किनारे पर बसा हुआ है। यह अति प्राचीन है। पुराने समय में यह प्रतिष्ठानपुर कहा जाता था। महाभारत में प्रतिष्ठानपुर को ब्रह्मा की वेदी बताया गया है। यह स्थान बड़ा सुन्दर रमणीक है। झूँसी में भी कई प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनमें हंसकूप और समुद्रकूप प्रसिद्ध हैं। झूँसी में तिवारीजी का बनवाया हुआ शिवालय देखने योग्य है।

दशाश्वमेधेश्वर महादेव—तिवारीजी के शिवालय के बाद गङ्गाजी को पुल से पार करने पर दारागञ्ज का यह प्रसिद्ध मन्दिर है।

श्रीबेणीमाधव का प्रधान मन्दिर—दशाश्वमेध-घाट से थोड़ी दूर पर दारागञ्ज की पक्की सड़क पर श्रीवेणीमाधव का प्रधान मन्दिर है।

वासुकी—वेणीमाधव के मन्दिर से उत्तर की ओर सड़क से करीब एक मील जाने पर नागराज वासुकी का प्रसिद्ध देव स्थान बक्सी मुहल्ले में है। वासुकी की यह मूर्ति गङ्गाजी में से निकाली गई थी। स्थान अत्यन्त रमणीक है। वासुकी से आगे क़रीब दो मील पर पश्चिम और उत्तर की ओर गङ्गाजी के किनारे पर बल्देवजी का देखने योग्य मन्दिर है।

शिवकुटी—बलदाऊ से उत्तर में क़रीब दो मील आगे गङ्गा किनारे कोटितीर्थ नामक स्थान है, जिसे आज कल शिवकुटी कहते हैं।

भारद्वाज आश्रम—शिवकुटी का दर्शन कर शहर को लौटते समय मार्ग में पड़ता है। स्थान दर्शनीय है।

अलोपी देवी—चौक से दारागञ्ज जाने वाली सड़क पर देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसके अतिरिक्त प्रयाग क्षेत्र में गङ्गा और यमुना के सङ्गम के आस पास अनेक तीर्थ हैं, जिनमें कुछ प्रसिद्ध ये हैं—कम्बल तीर्थ, ऋणमोचन, अग्नि-तीर्थ, सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, वरुणतीर्थ, गौघाट, अत्रिमुनि का तीर्थ, एलतीर्थ, नलतीर्थ, यज्ञतीर्थ आदि कई स्थान हैं। प्रयाग में कई एक ऐतिहासिक स्थान भी दर्शनीय हैं। कुछ आधुनिक वस्तुयें भी यहाँ महत्वशाली और दर्शनीय हैं। प्रयाग में हिन्दी प्रचारिणी अच्छी-अच्छी संस्थायें हैं। यहाँ पर बहुत बड़े-बड़े पुस्तक प्रकाशक भी हैं। आधुनिक सामिग्री से भी यह नगर हर तरह से परिपूर्ण है।

विन्ध्याचल—विन्ध्याचल का रेलवे स्टेशन मिर्जापुर के स्टेशन से ५ मील पश्चिम (मुगल-सराय से ४५ मील) है, स्टेशन से एक मील दूर मिर्जापुर ज़िले में गङ्गा के दाहिने पर विन्ध्याचल एक बड़ी बस्ती है। यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालायें भी हैं। यहाँ की कई चीज़ प्रसिद्ध हैं।

यहाँ की प्रधानदेवी, जिनका नाम पुराणों में कौशिकी और कात्यायिनी लिखा है, इनका मन्दिर विन्ध्याचल बस्ती के भीतर पश्चिम मुख का है। मन्दिर दर्शनीय है। यहाँ अन्य भी देव स्थान दर्शनीय हैं। भगवती, काली और अष्टभुजी इन तीनों के दर्शन को 'त्रिकोण यात्रा' कहते हैं। भगवती तो बस्ती में है और काली देवी का मंदिर विन्ध्याचल से २ मील दक्षिण पश्चिम पहाड़ी की जड़ के पास 'काली खोह' नामक स्थान में है। इसमें चढ़ने के लिये १०८ सीढ़ियाँ हैं। समतल और सूखी पहाड़ी पर कालीखोह से पश्चिमोत्तर-दो मील चलने के उपरान्त हरे-भरे जङ्गल से भरा हुआ पहाड़ी के बगल पर अष्टभुजी देवी का मंदिर दर्शनीय है। वहाँ से विन्ध्याचल तक दो मील कच्ची सड़क है। महाभारत, वामनपुराण, पद्म-पुराण, मत्स्यादि पुराणों में इन देवियों की महिमा वर्णित है।

अयोध्या (पुरी)—

अयोध्या सप्तपुरियों में से एक है, अयोध्यापुरी का महत्व शास्त्रों में प्रचुरता से वर्णित है। अयोध्या पहले इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की राज-धानी थी। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से पूर्व सूर्य-वन्श के ६० प्रतापी राजाओं ने इस पुरी का उपभोग किया है। भगवान् राम का जन्म इसी पुण्य नगरी में हुआ था। भगवान् राम के राज्य की उपमा संसार में दूसरी है ही नहीं, गोस्वामीजी ने लिखा है—

> *"दैहिक दैविक भौतिक तापा।*
> *राम राज नहिं काहुहिं व्यापा ॥"*

श्रीराम राज्य में समस्त राष्ट्र सुख और समृद्धि से भरपूर थे।

वर्त्तमान अयोध्या—संयुक्त प्रान्त के फ़ैजाबाद ज़िले में है। प्राचीन नगर तो प्रायः लुप्त-सा होगया है। उसके कुछ खण्डर वर्त्तमान अयोध्या के आस पास दिखलाई पड़ते हैं। अयोध्या प्रयाग से १०४ मील उत्तर में है, उससे लखनऊ ८४ मील और काशी १२० मील है। यह नगर सरयू (घाघरा) नदी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है। मानस-सरोवर से उद्भव होने के कारण इस नदी को मानस-नन्दिनी भी कहते हैं। अयोध्या नागरिक सुविधाओं से भी सम्पन्न है। अयोध्या का स्टेशन उत्तर भारत की ई० आई० आर० की शाखा पर है। यह लाइन मुगलसराय से अयोध्या होती हुई फ़ैजाबाद होकर लखनऊ तक जाती है। अयोध्या के लिये बी० एन० डब्ल्यू० आर० का स्टेशन लकड़मण्डी है, यह सरयू नदी के उस पार है।

सरयू पार करने के लिये रेलवे का लोहे का पुल नहीं है, पीपों का पुल है। चातुर्मास्य में स्टीमर चलता है। अयोध्या की कुछ प्रधान धर्मशालाओं के ये नाम हैं—विन्दुवासिनी की धर्मशाला, लछमनलाल की धर्मशाला, हनुमान गढ़ी की धर्मशाला, हरनारायणदास की धर्मशाला, कन्हैयाल की धर्मशाला, महन्त सुखरामदास की धर्मशाला आदि हैं।

अयोध्याय के घाट और मन्दिर—पश्चिम में पूर्व को आते हुए निम्न लिखित प्रधान घाट मिलते हैं—ऋणमोचन घाट, सहस्रधारा, लक्ष्मण घाट, स्वर्गद्वार, गंगामहल, शिवालाघाट, जटाई घाट, अहिल्याबाई घाट, धौरहरा घाट, रूपकला घाट, नयाघाट, जानकी घाट और रामघाट।

लक्ष्मण घाट—कहा जाता है, कि लक्ष्मणजी ने इसी स्थान पर स्वधाम-यात्रा की थी। यहाँ लक्ष्मणजी का मन्दिर है। ५ फुट ऊँची लक्ष्मणजी की मूर्त्ति अत्यन्त सुहावनी है।

स्वर्गद्वार—लक्ष्मणघाट से दक्षिण की ओर थोड़ी दूर पर सरयू के किनारे पर है। यहाँ का दृश्य बहुत ही रमणीक है। पिंडदान इसी घाट पर होता है।

नागेश्वरनाथ—स्वर्गद्वार के पास नागेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है, कि भगवान् राम के पुत्र कुश ने इन महादेवजी की स्थापना की थी। इसकी कथा बड़ी रोचक है। राजा विक्रमादित्य ने इसी मन्दिर के आधार पर अयोध्या का पता लगाया था।

श्रीरामचन्द्रजी का प्राचीन मन्दिर नागेश्वरनाथ के पास ही उत्तर की ओर एक गली में देखने योग्य मन्दिर है। मन्दिर की मूर्त्तियां बहुत पुरानी हैं। जिस समय बाबर ने जन्मस्थान के मन्दिर को भंग किया, उस समय ब्राह्मण लोग उस मूर्त्ति को वहाँ से उठा लाये—तब से यह मूर्त्ति यहाँ पर स्थित है।

त्रेतानाथ का प्राचीन मन्दिर—अहिल्या बाई के घाट से थोड़ी दूर पर त्रेतानाथ का प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि रामजी ने यहाँ पर यज्ञ किया था। मन्दिर का जीर्णोद्धार इन्दौर की अहिल्या बाई होल्कर ने किया था।

श्रीतुलसीदासजी का मन्दिर—अहिल्या बाई के घाट से पूर्व की ओर सरयू किनारे पर यह मन्दिर है। यहाँ प्रतिदिन रात्रि को एक हज़ार वत्तियों की आर्ती होती है।

अयोध्या के दर्शनीय स्थान--

रामकोट—अयोध्या में रामकोट (रामजी का किला) एक प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है।

हनुमान गढ़ी—यह स्थान सरयू किनारे से क़रीब एक मील पर है। यह गढ़ी आसिफ़ुद्दौला के मन्त्री टिकैतराय ने फिर से पुराने स्थान पर बनाई थी—और इसीमें एक विशाल मूर्त्ति हनुमानजी की स्थापित की। हनुमान गढ़ी अयोध्या के प्रधान स्थानों और दर्शनीय स्थानों की उत्तम इमारतों में से एक है। हनुमानजी की विशाल मूर्त्ति दर्शनीय है। अयोध्या ख़ासकर विरक्त महात्माओं का घर है और हनुमान गढ़ी तो उनका दुर्ग ही है।

सुग्रीव और अङ्गद टीले—ये दोनों टीले गढ़ी के दक्षिण में हैं। कुछ लोगों का तो कहना है, कि सुग्रीव-टीला उसी स्थान पर है, जहाँ मणि पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में ५०० फुट की दूरी पर एक बड़ा बौद्ध मठ था। इस मठ से लगभग ५०० फुट आगे वह ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्तूप था--जहाँ भगवान् बुद्ध के नख और केश रक्खे थे।

जन्म स्थान—अयोध्या का यह स्थान भी बड़े महत्व का है। कहा जाता है राजा दशरथ ने इसी स्थान पर पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था। इसी स्थान पर बाबर ने सन् १५२८ में एक मसजिद बनवाई थी, जो आज तक उसके नाम से प्रसिद्ध है। सन् १८५५ में हिन्दु मुसलिम झगड़ा हुआ। उसी समय वैरागी महात्माओं ने मसजिद के आगे एक

पक्का चबूतरा बनाकर उस पर भगवान् की मूर्त्ति स्थापित करदी। अंग्रेजी राज्य होने पर मसजिद के आँगन में एक दीवार बनादी गई है, जिसके भीतर मुसलमान लोग निमाज़ पढ़ते हैं और मसजिद के बाहर के भाग में हिन्दू लोग दर्शन और पूजन करते हैं। जन्म स्थान के पास और भी कई दर्शनीय मन्दिर हैं।

कनकभवन—अयोध्या के सब मन्दिरों से बड़ा और सुन्दर है। इसे सीताजी का महल कहते हैं। इस मन्दिर को टीकमगढ़ के महाराज ने कई लाख रुपये लगाकर बनवाया है। इसकी सुन्दरता का अनुमान इसके नाम से ही लगाया जा सकता है।

राजमहल और मन्दिर—यह अयोध्या नरेश का सुप्रसिद्ध महल है। महल की वाटिका दर्शनीय है। दर्शनेश्वर शिवलिङ्ग भव्य दर्शनीय भी हैं। यह मन्दिर दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त 'तुलसी चोरा' 'मणि पर्वत' 'दतून कुण्ड' आदि देखने योग्य हैं। वृंदावन की भाँति अयोध्या में भी बहुत मन्दिर हैं। अयोध्या के आस-पास के कुछ ऐतिहासिक देखने योग्य स्थान ये हैं—सोनखर, सूर्यकुण्ड (रामकुंड से ५ मील पक्की सड़क पर है)।

गुप्तारघाट--यह अयोध्या से ६ मील पश्चिम में है। पक्की सड़क गई है। जनौरा—अयोध्या से ७ मील फ़ैजाबाद सुलतानपुर सड़क पर है।

नन्दीग्राम—फ़ैजाबाद से १० मील और अयोध्या से १६ मील दक्षिण नन्दग्राम में भरतकुंड नामक सरोवर है। अयोध्या की छोटी परिक्रमा केवल ६ मील की है—जिसमें अनेकों दर्शनीय स्थान हैं। जैनियों के २४ तीर्थङ्करों में से ५ यहाँ पर हैं। जिनके नाम ये हैं—(१) आदिनाथ, (२) अजितनाथ का मन्दिर (३) अभिनन्दन नाथ का मन्दिर (४) सुमन्तनाथ का मन्दिर (५) अनन्तनाथ का मन्दिर। इन मन्दिरों में से तीर्थङ्करों के चरण चिन्ह हैं, इनके दर्शनों को दूर-दूर से जैनी लोग आते हैं।

काशी (विश्वनाथपुरी)—

भारत की प्रसिद्ध सप्त पुरियों में से काशी भी एक है। काशी अपनी महिमा के कारण चिरकाल से अति प्रसिद्ध है। अन्य पुरियों की भाँति इसका प्रलयकाल में नाश नहीं होता, भगवती भागीरथी ने इसको अपने अङ्क में स्थान दिया है। काशी में अनेकों देव मन्दिर हैं किन्तु विश्वनाथजी का मन्दिर प्रधान है—इसी कारण इसको विश्वनाथ पुरी भी कहा जाता है। काशी में तीन रेलवे स्टेशन हैं। (१) बनारस कैन्ट (२) बनारस सिटी और (३) काशी (राजघाट)। बनारस कैन्टोमेंट पर ई० आई० आर० और बी० एन० डब्ल्यू० आर० मिलती है। बनारस सिटी बी० एन० डब्ल्यू० आर० का स्टेशन है और काशी (राजघाट) ई० आई० आर० का स्टेशन है। काशी की प्रधान धर्मशालायें–पत्थर गली में बैजनाथ पटैल की, बुलानालामें भाई शंकर ब्राह्मण की,गढ़वासी टोला में वृन्दावनजी सारस्वत ब्राह्मण की, दूध विनायक में विशनजी मुरार की, शटक में सुखलाल शाहू विशनसिंह की, मीरघाट में धर्मदास की, ज्ञानवापी में राधाकृष्ण शिवदत्तराय मारवाड़ी की, विश्वनाथजी के मन्दिर के पास लच्छीरामजी की, आदि अनेकों हैं। काशी की शोभा बड़ी ही चित्ताकर्षक है, गङ्गाजी के अर्धचन्द्राकार प्रवाह ने इसके सौन्दर्य को सहस्रगुना कर दिया है। काशी में लगभग ५० से ऊपर ही घाट हैं—जिनमें से कुछ प्रसिद्ध नीचे लिखे जाते हैं—

वरुण सङ्गमघाट—यहाँ वरुणम नाम की एक नदी गङ्गाजी में आकर मिलती है। यह सङ्गम बहुत प्राचीन है—इसी के नाम पर काशी को वाराणसी भी कहा जाता है। काशी वरुणम और असी गङ्गा के बीच में बसी है। असी गङ्गा का प्रवाह आजकल प्रायः बन्दसा होरहा है। राजघाट (यहां रेलवे का पुल है) प्रह्लादघाट, नयाघाट, त्रिलोचनघाट, गायघाट, लालघाट, शीतलघाट,
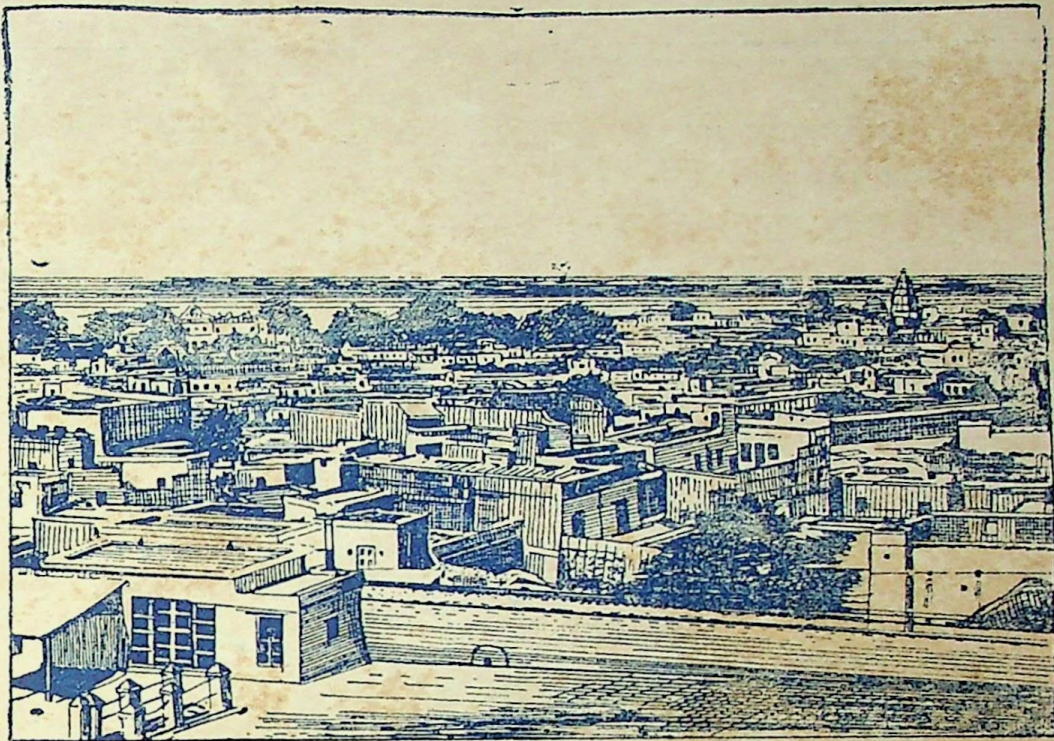
श्रीवृन्दावन का एक दृश्य ।
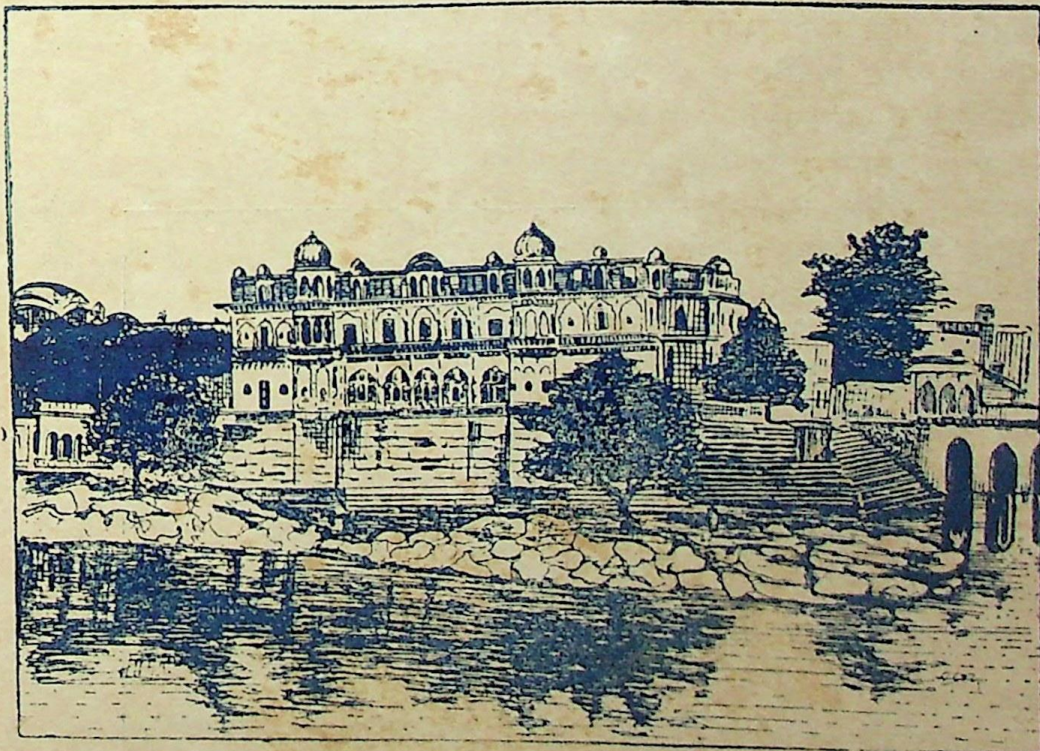
श्रीगोवर्द्धन (जि० मथुरा)

भगवान वेदव्यास की गादी (नैम्यशारण्य)।

चक्रतीर्थ, नैम्यशारण्य।
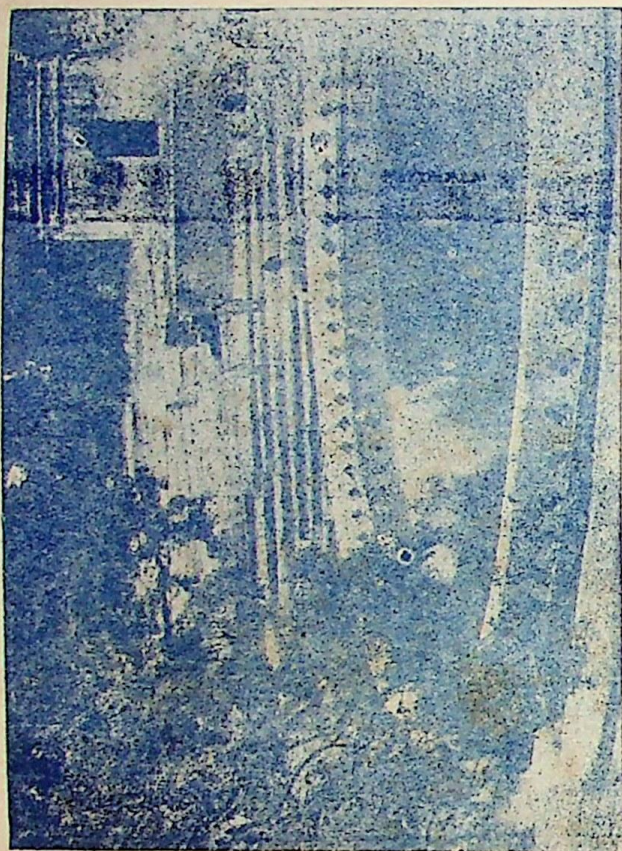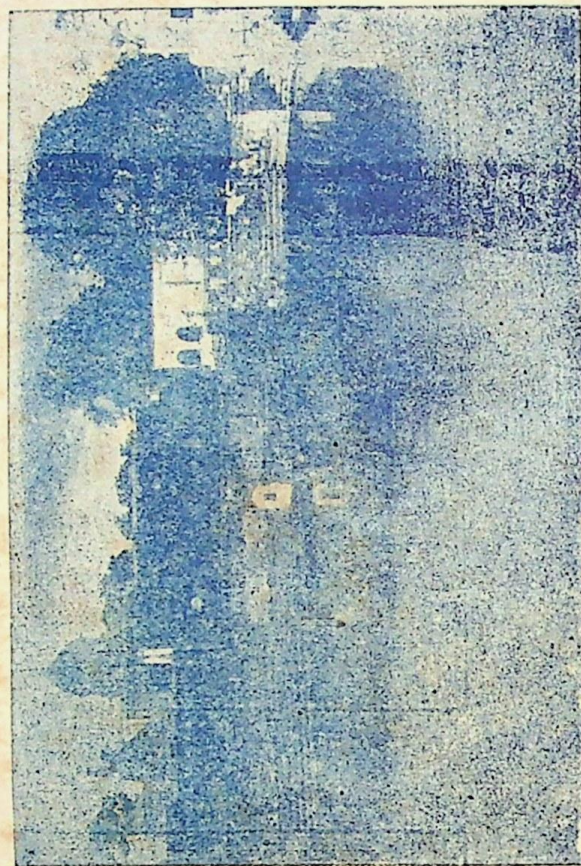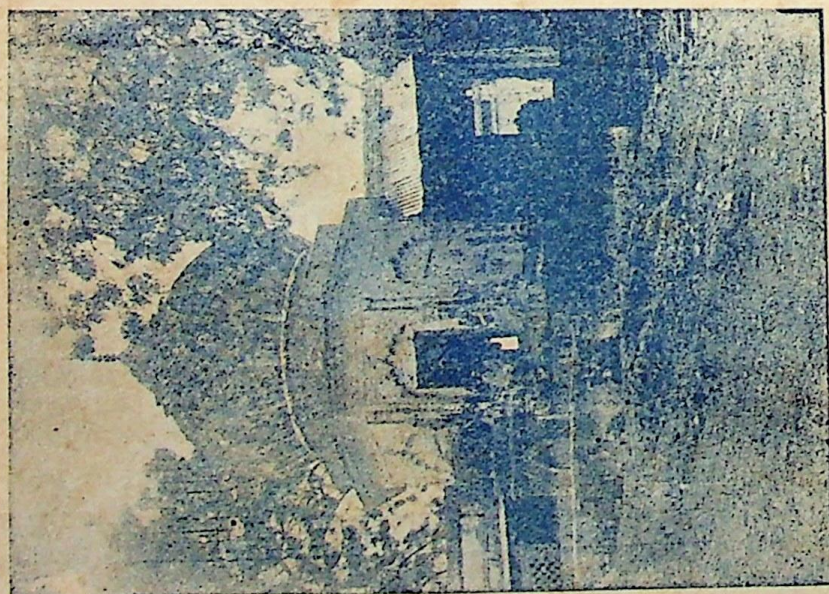
दधीचि ऋषि का आश्रम (नैम्यशारण्य)।

राजमन्दिर घाट, पञ्च गङ्गाघाट, रामघाट, गङ्गा-महत्वघाट, चिताघाट, राजराजेश्वरीघाट, मीरघाट, मान मन्दिर घाट, दशाश्वमेध घाट, अहिल्या बाई घाट, केदारघाट, शिवला घाट, जानकी घाट, तुलसी घाट, अस्सी संगम घाट आदि प्रसिद्ध हैं।

काशी के मन्दिर—

श्रीविश्वनाथजी का मन्दिर—काशी के विख्यात मन्दिरों में से है। काशी के ये ही प्रधान देवता हैं, यह मन्दिर पत्थर का सुन्दर शिखरदार बना हुआ है। मन्दिर रम्य और सुदृढ़ बना हुआ है। मन्दिर के आँगन में भी अनेकों मूर्त्तियाँ हैं। मन्दिर के आँगन का दरवाज़ा दक्षिण की ओर है। द्वार के घुसते ही सामने की ओर मण्डप और दाहिने ओर देवालय देख पड़ते हैं। ज़मीन में सङ्गमरमर का फ़र्श है। फ़र्श के ऊपर किसी भक्त ने रुपये जड़वा दिये हैं। मामूली तौर से दर्शनार्थियों का यहाँ एक मेला सा लगा ही रहता है। मन्दिर के एक ओर पास ही में ज्ञानवापी कूप है। सत्रहवीं सदी में बादशाह औरङ्गज़ेब ने जब विश्वनाथजी के मन्दिर को तोड़ दिया, तब विश्वनाथजी इसी कूए में चले गये थे। लोगों का विश्वास है कि इस कूप के आचमन से ज्ञान का उदय है। विश्वनाथजी के प्राचीन मन्दिर के स्थान पर मसजिद बनी हुई है। मन्दिर का भग्नावशेष खण्ड अब भी दिखाई देता है।

अक्षयवट—विश्वनाथ के मन्दिर से पश्चिम को एक गली ढुंडिराज तक गई है, यहीं पर एक अक्षयवट है।

अन्नपूर्णा—अक्षयवट से पश्चिम गली में बाँई ओर अन्नपूर्णा का मन्दिर है। दर्शन सुन्दर मनोहर है। मन्दिर भी दर्शनीय है।

ढुंडिराज गणेश और दण्डपाणि—अन्नपूर्णा के समीप ही में ये प्रसिद्ध देवता स्थित है। इनके शरीर पर चाँदी लगी हुई है। इसी के पास एक कोठरी में दण्डपाणि की दर्शनीय मूर्त्ति है।

आदि विश्वेश्वर—ज्ञानवापी के समीप औरङ्गज़ेब वाली मसजिद है, उसके पश्चिम ओर कारमाइकिल लाइब्रेरी से पश्चिम-उत्तर की ओर सड़क के पास आदि विशेश्वर का बड़ा मन्दिर है।

काशी करवट—यहाँ पर अँधेरे कुए में एक शिवलिङ्ग है, उसके पास जाने का मार्ग है, जो किसी खास समय पर ही खुलता है।

गोपाल मन्दिर—चौखम्भा मुहल्ले में वल्लभ सम्प्रदाय का यह प्रसिद्ध मन्दिर है।

कालभैरव—लोग इन्हें भैरवनाथ भी कहते हैं।

नैपाली मन्दिर—ललिता घाट के ऊपरी भाग में यह मन्दिर स्थित है। इसकी प्राकृति चीन के मन्दिरों के ढंग की है। इस ढंग का मन्दिर काशी में दूसरा नहीं है।

मान मन्दिर—यह मन्दिर आमेर (जयपुर) के राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है, गङ्गातट पर बने हुए विशाल भवनों में से यह एक दर्शनीय स्थान है। मान मन्दिर की छत के ऊपर 'वेधशाला' एक दर्शनीय वस्तु है। यह अवश्य देखना चाहिये।

राम मन्दिर—काशी के दर्शनीय मन्दिरों में से यह भी एक है।

गोरखनाथ का मन्दिर—मन्दाकिनी मुहल्ले में ऊँची भूमि पर जिसको गोरखटीला कहते हैं। यह मन्दिर स्थित है। यहाँ गोरख सम्प्रदाय के साधु रहते हैं। काशी के कुछ प्रसिद्ध कुण्डों के नाम ये हैं—लोलार्ककुण्ड, दुर्गाकुण्ड, नागकुण्ड, कपाल मोचन। काशी के कुछ प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान—कबीर चौरा—यह कबीर पन्थियों का प्रसिद्ध मन्दिर है।

माधवराम का धरहरा—माधवराम घाट के ऊपर ऊँची भूमि पर औरङ्गज़ेब की बनाई एक मसजिद है। आगे उसके इधर-उधर उसकी नींव से १४२ फुट ऊँचे तिखण्डे दो बुर्ज अर्थात् धरहरे हैं। इनका व्यास नीचे सवा आठ फीट और ऊपर

साढ़े सात फ़ीट है। ऊपर जाने के लिये इनके भीतर चक्करदार सीढ़ियाँ हैं। कहा जाता है कि इन धरहरों को माधवराम नामक कारीगर ने बनाया था। इसी से इनको 'माधवराम का धरहरा' कहते हैं। इनके ऊपर चढ़ कर देखने से काशी की शोभा का मनोरम दर्शन होता है।

श्रीशिवप्रसाद गुप्त की कोठी—काशी के नगवे मुहल्ले में गङ्गा किनारे गुप्तजी की यह कोठी है। इसमें एक भारतवर्ष का विशाल नक़शा सङ्गमरमर के पत्थर पर तैयार किया गया है। यह चीज़ देखने योग्य है।

रामनगर—यह गङ्गा नदी के दाहिने तट पर अस्सी-संगम से १ मील दक्षिण-पूर्व की ओर बसा हुआ है। नगवाघाट से और भी नज़दीक है। रामनगर वर्त्तमान काशी नरेश की राजधानी है। इस नगर को राजा बलवन्तसिंह ने सन् १७५० में बसाया था। यहाँ भी दर्शनीय मन्दिर है। हिन्दुओं की कला-कौशल का नमूना यहाँ देखने योग्य है। आश्विन मास में एक मास तक यहाँ रामलीला का मेला होता है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय—नगवा के समीप विशाल क्षेत्र में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का स्थान है। विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९१६ ई० में भारतकी धर्म-प्राण विभूति महामना पं० श्री मदन-मोहनजी मालवीय ने की थी। इसमें समस्त विषयों की शिक्षा दी जाती है। हर प्रकार की शिक्षा का केन्द्र यह भारतवर्ष में पहले नम्बर का है। विश्वविद्यालय का विस्तार ३ मील के घेरे में है।

क्वीन्सकालेज—काशी के शिक्षा केन्द्रों में से यह प्रसिद्ध कालेज है। कालेज देखने योग्य है। यह सन् १८५२ में तैयार हुआ था। अंग्रेजी में यहाँ इन्टरमीडियेट तक की पढ़ाई होती है। इस कालेज में संस्कृत की प्रधानता है, संस्कृत कालेज इसी के आधीन है। प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य के नाना विषयों के प्रमाणपत्र यहीं से दिये जाते हैं।

काशी विद्यापीठ—महात्मा गान्धी ने अपने हाथों से इसकी स्थापना की है। काशी के सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्ता बा० शिवप्रसादजी गुप्त के लाखों के दान से संस्था का संचालन होरहा है। दर्शन, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, राजनीति, संस्कृत और हिन्दी अंग्रेजी आदि सभी विषयों की शिक्षा दी जाती है।

काशी की प्रसिद्ध संस्थायें—(१) नागरी प्रचा-रिणी सभा, (२) श्री भारत धर्म्म महामण्डल, (३) कारमाईकेल लाइब्रेरी। काशी मुख्यतया संस्कृत साहित्य का प्रधान केन्द्र है। यहाँ अति प्राचीन काल से बड़े-बड़े विद्वान् होते आये हैं। संस्कृत की भाँति हिन्दी में भी काशी का स्थान ऊँचा है। काशी की पञ्चकोशी परिक्रमा होती है। यह परिक्रमा ४७ मील की है। पाँच दिन में समाप्त होती है। परिक्रमा में अनेकों देव मन्दिरों के दर्शन मिलते हैं। काशी का महत्व शास्त्रों में तो भली भाँति वर्णित है ही-ऐतिहासिक दृष्टि से भी काशी का स्थान बहुत ऊँचा है।

सारनाथ—सारनाथ बनारस से उत्तर की ओर चार मील की दूरी पर है। सारनाथ जाने के लिये बनारस शहर से एक सीधा रास्ता है, जो पञ्च गङ्गा घाट के पास होते हुए जाता है। वी० एन० डबल्यू० आर० पर सारनाथ नाम का स्टेशन भी है। महात्मा बुद्ध ने यहाँ बहुत निवास किया था। बुद्ध भगवान् ने इसी स्थान पर धर्म-चक्र-परि-वर्त्तन सूल द्वारा अपने पाँच शिष्यों को बौद्धधर्म का उपदेश दिया था। सारनाथ कुछ दिनों तक तो बड़ा ही वैभव युक्त रहा। पीछे बारहवीं शताब्दी में मुहम्मदगोरी ने सारनाथ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वह सोने चाँदी को तो उठा लेगया और बौद्ध भगवान् की मूर्ति को टुकड़े-टुकड़े कर फैंक दिया। सन् १९०५ से अब फिर लोगों का ध्यान इस ओर गया है। अब यह स्थान रमणीक हो चला है। यहाँ की दर्शनीय वस्तुयें हैं। अशोक का चतुर्भुज सिंह स्तम्भ, बुद्धजी का मन्दिर, धमेखस्तूप, चौखण्डीस्तूप, सारनाथ का अजायबघर, जैन मन्दिर, मूलगन्धकुटी और नवीन विहार।

दक्षिण भारत के तीर्थ

अमरावती—

वरधा जंकशन से ५६ मील पश्चिम बडनेरा रेल का स्टेशन है। यहां से उत्तर ६ मील की एक रेलवे की शाखा अमरावती तक जाती है। इस नगर में ८ प्रसिद्ध मन्दिर हैं, जिनमें एक हज़ार वर्ष पुराना अम्बा का एक मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी के नाम से क़स्बे का नाम अमरावती पड़ा। यहाँ पर रुई का व्यापार बहुत होता है।

अजंता के गुफ़ा-मन्दिर—

भुसावल जङ्कशन से ४४ मील पश्चिम दक्षिण रेलवे का एक स्टेशन पचौरा है। यहाँ से ३४ मील दक्षिण निज़ाम राज्य में अजंता नामक बस्ती है। नगर से ४ मील पश्चिमोत्तर अजन्ता की प्रसिद्ध बौद्ध गुफ़ा हैं। मार्ग जंगल का है। अनेक गुफ़ाएं पहाड़ काटकर बनी हुई हैं। बहुत ही प्राचीन, प्रायः दो हज़ार वर्ष पुरानी हैं। एक सात कुण्डों का झरना है। स्थान बड़ा पवित्र, रमणीक एवं बौद्धों का प्रसिद्ध तीर्थ है। कुल २७ गुफ़ा-मन्दिर हैं, जिनमें २२ विहार अर्थात् बौद्ध मठ और धर्मशाला व मन्दिर और ५ चैत्य अर्थात् हिन्दू मंदिर हैं। ये गुफ़ा-मन्दिर बहुत बड़े हैं और इनके भीतर सुन्दर खम्बों की पंक्तियाँ हैं। सभी गुफ़ा-मन्दिर सुन्दर रूप से रंग-बिरंगे चित्रों से विभूषित हैं।

घुश्मेश्वर—

हैदराबाद राज्यान्तर्गत पैठन से लगभग ३० मील उत्तर और बैलगाड़ी के मार्ग से बेरुल नामक एक स्थान है। बेरुल से आधी मील दूर एक छोटी नदी के तट पर घुश्मेश्वर का एक छोटा शिखिरदार मन्दिर बना हुआ है। मंदिर के आगे अठपहले जगमोहन में नन्दी है। नदी पर पक्का घाट बना है। स्थान निर्जन है, रात्रि को मंदिर के निकट कोई नहीं रहता। बेरुल बस्ती और घुश्मेश्वर मंदिर के बीच एक तालाब के मध्य में एक बड़ा मंदिर और उसके चारों कोनों पर चार छोटे मंदिर बने हुए हैं। घुश्मेश्वर-शिवलिंग श्रीमहादेवजी के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है। यह लिंग आधा हाथ ऊँचा है। मंदिर में अष्ट-प्रहर दीपक जलता है। शिवपुराण (ज्ञान संहिता ३८ वें अध्याय) में लिखा है कि घुश्मेश्वर-शिवलिंग के नैवेद्य भोजन करने से सब पापों का नाश होता है। इस लिंग की प्राचीन कथा इस प्रकार है, कि दक्षिण दिशा में देवगिरि पर्वत के निकट सुधर्मा नामक ब्राह्मण के जब कोई पुत्र न हुआ, तब उसने अपनी स्त्री सुदेहा के हठ से घुश्मा नामक एक दूसरी स्त्री से विवाह किया। घुश्मा नित्य १०८ पार्थिव का पूजन करके एक तालाब में डालती जाती थी। जब उसने १ लाख लिंगों का पूजन कर लिया तो उसके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। सौतिया-डाह वश सुदेहा ने घुश्मा के पुत्र को मारकर उसी तालाब में फेंक दिया जिसमें घुश्मा पार्थिवों को पूजकर फेंकती थी। पुत्र की मृत्यु से गाँव वालों को दुःख हुआ, किन्तु घुश्मा अपने नित्य नियम में ही रत रहकर जब शिवलिंग को तालाब में विसर्जन करके सन्तोष के साथ घर चली, तब तालाब के किनारे ही उसका पुत्र उसे मिल गया और भगवान् शिवजी ने साक्षात् प्रकट होकर घुश्मा से वर माँगने को कहा। घुश्मा ने प्रार्थना की कि 'हे नाथ! आप लोक की रक्षा के हित यहीं पर कृपा कर स्थित हो जांय। शिवजी ने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहते हुए कहा कि तेरे ही नाम से मैं यहां घुश्मेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होऊंगा। तभी से वहां उस शिवलिंग का नाम घुश्मेश्वर हुआ और उस तालाब का नाम शिवालय हुआ। इस शिवलिङ्ग के दर्शन से मनुष्य समस्त पापों से छूट कर सुख-समृद्धि पाता है।

परणी-वैद्यनाथ—

हैदराबाद राज्य में गोदावरी तट पर गङ्गाखेड़ नामक बस्ती है, वहाँ से १६ मील दूर और घुश्मेश्वर से प्रायः ८० मील दूर परणी नामक ग्राम है। गाँव के निकट ही पहाड़ी के ऊपर वैद्यनाथ शिवजी का शिखिरदार विशाल मन्दिर है, पास ही धर्मशाला भी है। शिवलिंग आधा हाथ ऊँचा है। मन्दिर में रात दिन दीपक जलता है। पहाड़ी के दोनों ओर पक्की सीढ़ी है बनी हैं। मन्दिर के एक ओर परणी की बस्ती है, दूसरी ओर एक छोटी नदी और कुण्ड है। स्थान रमणीक है।

नागेश्वर—

उपरोक्त गङ्गाखेड़ नामक बस्ती से लगभग ३० मील दूर अवढा नामक बस्ती है, जिसके पास ही अवढानाथ अर्थात् नागेश्वर का बड़ा शिखिरदार मन्दिर है। नागेश्वर का मन्दिर शिवजी के १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक है। मन्दिर के आगे पश्चिम की ओर जगमोहन बना हुआ है। मन्दिर और जगमोहन दोनों ही ख़ाली हैं। मन्दिर के भीतर बग़ल में ४ सीढ़ियों के नीचे एक कोठरी में एक हाथ ऊँचा नागेश शिवलिंग है। यात्रीगढ़ सीढ़ियों से दर्शन करते हैं। कोठरी में रात दिन दीपक जलता है। मन्दिर के समीप एक टूटी-फूटी धर्मशाला और एक कुण्ड है। सुना जाता है कि हैदराबाद के निज़ाम साहब की तरफ से इस मन्दिर को तीस रुपये मासिक भोग के लिये मिलते हैं। यहाँ की प्राचीन कथा इस प्रकार है कि इस बन में दारुका नामक एक राक्षसी रहती थी, उसे पार्वतीजी का वर था कि दारुका जहाँ जाती, वहीं उसका समस्त ऐश्वर्य साथ जाता। राक्षसों के उपद्रव से भक्त लोग 'ओर्व' ऋषि की शरण में गये—उन्होंने राक्षसों को शाप दिया कि स्थल में जो राक्षस हों, उनका नाश हो जायगा। इस पर दारुका अपने वर के प्रभाव से समुद्र में रहने लगी, वहाँ उसके साथ ही बन, महल, आदि सभी ऐश्वर्य था, फलतः राक्षस वहाँ आराम से रहने लगे। एकबार बहुत से मनुष्य नाव द्वारा जा रहे थे, उन्हें राक्षसों ने पकड़ लिया और बन्दी कर लिया—उनमें एक वैश्य बड़ा शिव-भक्त था। उसने शिवजी की स्तुति की, तब शिवजी ने प्रकट होकर राक्षसों का नाश किया, और इसी बन में नागेश नाम से पार्वती सहित स्थित हो गये। इस मूर्त्ति के जो दर्शन करता है, वह समस्त पापों से छूट जाता है।

पंढरपुर—

बम्बई प्रान्त के शोलापुर ज़िले में भीमा नदी के दाहिने किनारे पर पंढरपुर नामक क़स्बा है। यहाँ श्रीविट्ठलनाथजी का प्रसिद्ध मन्दिर है, जो पाँढरी-क्षेत्र करके प्रसिद्ध है। यात्री लोग भीमा नदी में स्नान करके श्रीविट्ठलनाथजी के पवित्र दर्शन करते हैं। यहाँ पर चन्द्रभागा तीर्थ, सोम-तीर्थ आदि अनेक पवित्र एवं दर्शनीय स्थान हैं। बहुतेरे देवमन्दिर और ११ पक्के घाट हैं। विष्णुपद और नारद की रेती पर अनेक मन्दिर बने हुये हैं। पंढरपुर में वैसे तो नित्य ही सहस्त्रों यात्रियों का यातायत लगा रहता है, किन्तु यहाँ वर्ष में ३ प्रसिद्ध मेले होते हैं—आषाढ़, कार्तिक और चैत्र में। श्रीविट्ठलनाथजी विष्णु के अवतार समझे जाते हैं। पंढरपुर में श्रीविष्णु स्वामी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त श्रीनामदेवजी हुये हैं। वहाँ पर राँकाजी आदि और भी अनेक प्रसिद्ध भक्त हुये हैं।

पंढरपुर के श्रीविट्ठलनाथजी की यह कथा प्रसिद्ध है कि वहाँ के पुण्डलीक नामक एक ब्राह्मण जो अपने माता पिता की सेवा में सदैव रत रहता था, एक दिन अनायास ही, रुक्मिणीजी को ढूँढ़ने आने पर, भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हुये। भगवान् को देखकर भी उस ब्राह्मण ने अपने माता-पिता की सेवा नहीं छोड़ी, इस पर भगवान् उस पर प्रसन्न हुए और उससे वर मांगने को कहा

इस पर उस ब्राह्मण ने प्रार्थना की कि मेरे पास यह एक पाषाण का टुकड़ा है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो कृपा कर जैसे आप हो, उसी तरह इसमें सर्वदा स्थित रहिये। भगवान् 'तथास्तु' कह कर उसी पाषाढ़ में स्थित हो गये, जो विठ्ठल और विठोबा नाम से विख्यात हो गये।

यह एक अति पवित्र तीर्थ है और यहाँ पर श्रीविठ्ठलनाथजी के दर्शन से मनुष्य के सभी पाप दूर हो जाते हैं।

मल्लिकार्जुन—

गंटूर रेलवे स्टेशन से ५१ मील दक्षिण-पश्चिम विनुकुण्डा नामक एक रेलवे स्टेशन है। यहाँ से ३ मंज़िल उत्तर कुछ पश्चिम मल्लिकार्जुन नामक तीर्थ है। मार्ग पहाड़ी और जंगली है। मार्ग में बन-जन्तुओं का भय रहता है। इसीसे यात्री इकट्ठे होकर वहाँ जाते हैं। पर्व के समय, विशेष कर महा शिवरात्रि के अवसर पर फाल्गुन मास में यहाँ यात्रियों की बड़ी भीड़ रहती है। मद्रास प्रान्त के कृष्णा ज़िले में कृष्णा नदी के किनारे श्रीशैल नामक पर्वत पर महादेवजी का मन्दिर श्रीमल्लिकार्जुन नाम का प्रसिद्ध तीर्थ है। यह महादेवजी के द्वादश ज्योर्तिलिंगों में से शिवजी का एक विशाल मन्दिर है। मन्दिर के चारों ओर सुन्दर गोपुर बने हुए हैं। श्रीपार्वतीजी का मन्दिर अलग पास में बना हुआ है। यहाँ पर कई धर्मशाला और कई छोटे-बड़े देव मंदिर हैं। मन्दिर के निटक कृष्णा नदी का करारा बहुत ऊँचा है। कृष्णा नदी की धारा बहुत नीचे बहती है, इसी कारण इसको लोग पाताल गङ्गा भी कहते हैं। पर्वत पर पहाड़ी लोगों की झोंपड़ियाँ हैं। स्थान बड़ा रमणीक और पवित्र है। यहाँ पर भगवान् शिव और माता पार्वती के दर्शन करने से मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं।

पनानृसिंह—

मद्रास प्रान्त में बेजवाड़े से ७ मील दक्षिण-पश्चिम में मङ्गलगिरि नाम का स्टेशन है। कृष्णा ज़िले में यह एक छोटा-सा कस्बा है। यहाँ ११ खन के विशाल गोपुर से सुशोभित लक्ष्मीनृसिंहजी का मन्दिर है, जिसके सामने सुन्दर चित्रों से भूषित श्रीनृसिंहजी का काष्ठमय रथ रक्खा हुआ है। मङ्गलगिरि पहाड़ी पर एक मन्दिर में पनानृसिंहजी की मूर्ति विराजमान है, सामने ही पास में लक्ष्मीजी की मूर्ति है। मन्दिर में सर्वदा दीपक जलता रहता है। शिखर के ऊपरी भाग में लक्ष्मीजी का स्थान है, जिसके पास में बालाजी, रङ्गनाथ आदि की देव मूर्तियाँ हैं। उसी पहाड़ी पर एक हनुमानजी की मूर्ति है। श्रीनृसिंहजी के मुख में पना अर्थात् गुड़ या शक्कर का शर्बत पिलाया जाता है, इसी से उनका नाम पनानृसिंह प्रसिद्ध हुआ। यहाँ के पुजारी श्रीरामानुज सम्प्रदाय के हैं। नृसिंह पुराण (४४ वाँ अध्याय) में लिखा है कि नृसिंह भगवान् जन साधारण के हित के लिये श्रीशैल के शिखर पर देवताओं से पूजित होकर विख्यात हुए और अपने भक्तों के कल्याण के लिये वहीं पर स्थित होगये। यह बड़ा ही पवित्र तीर्थ माना जाता है।

कुमार स्वामी--

गुंटकल जङ्कशन से ५५ मील दूर गादिगनूर रेल का स्टेशन है। इस स्टेशन से १६ मील दूर एक पहाड़ी के ऊपर कुमार स्वामी का मन्दिर है। ५ गोपुरों के बाद स्वामिकार्तिक का निज मन्दिर का बड़ा गोपुर आता है, वहीं पर स्वामिकार्तिकजी का मन्दिर है। पास में एरम्बू सुब्रह्मण्य आदि देवताओं के ४ मन्दिर हैं। प्रति-वर्ष कार्तिकी पूर्णिमा पर यहाँ यात्रियों की बड़ी भीड़ होती है। कुमार स्वामी का नाम स्वामि-कार्तिक, कार्तिकेय, स्कंद, षड्मुख आदि हैं।

कुमार स्वामी श्रीमहादेवजी के पुत्र हैं। यहाँ की कथा इस प्रकार सुनी जाती है कि महादेवजी के दोनों पुत्रों श्रीकार्तिकेयजी तथा श्रीगणेशजी

ने अपने पिता से अपना विवाह पहिले कराने का हठ किया । इस पर महादेवजी ने दोनों से कहा कि तुममें से जो पहिले समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर आवेगा, उसी का पहिले विवाह होगा। यह सुन कर कार्तिकेय तो परिक्रमा को चल दिये और गणेशजी ने अपने माता-पिता की ही सात बार परिक्रमा करके पिता से कहा कि पृथ्वी-परिक्रमा से भी अधिक माता-पिता की मैंने सात बार परिक्रमा करली हैं, इस पर मुग्ध होकर महादेवजी ने उनका विवाह कर दिया। कार्तिकेय जब पृथ्वी-परिक्रमा करके लौट रहे थे तब नारदजी ने मार्ग में गणेशजी के विवाह का समाचार इन्हें दिया। इस पर ये माता-पिता से क्रुद्ध होकर यहाँ निवास करने लगे। कहते हैं कि मल्लिकार्जुन के रूप में भगवान् शिवजी प्रति अमावस्या को तथा श्रीपार्वतीजी प्रत्येक पूर्णिमा को स्वामिकार्तिक से मिलने यहाँ आया करते हैं। कार्तिक-पूर्णिमा के दिन जो कोई इनका दर्शन करेगा, वह निश्चय ही समस्त पापों से छूट जायगा और उसे मनोवांञ्छित फल प्राप्त होगा। उस देश में इस तीर्थ की बड़ी मानता है।

विरूपाक्ष--

मद्रास प्रान्तान्तर्गत होसपेट से ७ मील पूर्व और हाँपी गाँव के पास रेलवे सड़क लांघने पर अञ्जनी नामक पहाड़ी के ऊपर विरूपाक्ष शिव मन्दिर है। मन्दिर के पुजारी पण्डों की भाँति यात्रियों को वहाँ के दर्शन कराते हैं। मन्दिर का विशाल गोपुर बाहर से ११ मंज़िल का दीखता है और भीतर से तीन-चार मंज़िल का लगता है । उसके बीच के मंज़िल में कई छोटी देव-मूर्तियाँ देखने में आती हैं। गोपुर के पश्चिम में एक बड़ा चौगान है। इस चौगान में दक्षिण ओर श्रीगणेशजी और उत्तर में देवीजी हैं और उत्तर की ओर एक कूप है। चौगान के पश्चिम ओर विरूपाक्ष शिव का मन्दिर है। ख़ास मन्दिर में सुनहरा कलश लगा हुआ है। मन्दिर में रात दिन दीपक जलता रहता है। मण्डप के पूर्व सोने का मुलम्मा किया हुआ एक ऊँचा स्तम्भ है।

मन्दिर से उत्तर में पुरइन से भरा हुआ एक तालाब है और पास में दक्षिण हेमकूट नामक पहाड़ी है । इस पहाड़ी पर १२ देव मन्दिर बने हैं।

चक्रतीर्थ--

विरूपाक्ष के मन्दिर से प्रायः आधी मील दूर कुछ उत्तर में ऋष्यमूक पहाड़ी को चक्कर लगा कर पहाड़ियों के बीच में तुङ्गभद्रा नदी बहती है। उसको ही चक्रतीर्थ कहते हैं। उसके उत्तर में ऋष्यमूक पर्वत और दक्षिण बगल पर रामचन्द्रजी का एक छोटा मन्दिर है । मन्दिर के पास सूर्य्य, सुग्रीव, रङ्गजी आदि कई देवता हैं। यात्री चक्रतीर्थ में स्नान करके इस मन्दिर के दर्शन करते हैं। वहाँ ऋष्यमूक पहाड़ी के तीन बगल से तुङ्गभद्रा नदी बहती है, जो मैसूर राज्य के पर्वत से निकल कर क़रीब ४०० मील पूर्वोत्तर से बहने पर करनूल के नीचे कृष्णा नदी में मिल जाती है।

चक्रतीर्थ के उत्तर ऋष्यमूक के पूर्व सीता सरोवर नामक एक पवित्र कुण्ड है। इसके पास ही एक छोटी-सी स्वाभाविक गुफ़ा है। दक्षिण काशी, सीता अभरण, राम-लक्ष्मण के चरण-चिन्ह, इत्यादि पवित्र स्थान हैं।

स्फटिक शिला-

विरूपाक्ष के मन्दिर से प्रायः ४ मील पूर्वोत्तर माल्यवान पहाड़ी है, जिसके एक भाग का नाम प्रवर्षण-गिरि है। उसी पर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ने बनवास के समय का वर्षा काल बिताया था। उसी के पास ही चक्रतीर्थ से पूर्व ओर स्फटिक शिला एक स्थान है, जहाँ गुहा में श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, सुग्रीव और हनुमानजी की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उसके पास

अनेक मन्दिर और मण्डप बने हुए हैं । एक बड़ा और एक छोटा गोपुर है । सदावर्त लगा है ।

कृष्ण का मन्दिर--

विरूपाक्ष मन्दिर के दक्षिण पहाड़ी के बाद कृष्ण का बड़ा मन्दिर है । रास्ता घुमाव का है। पहिले शिवजी का एक पुराना मन्दिर मिलता है, जहाँ केवल नन्दी है। उसके बाद पश्चिम में एक घेरे के भीतर श्रीनृसिंहजी की बहुत बड़ी मूर्ति बैठी है, उसके ऊपर शेषजी का छत्र है। शेषजी के मस्तक तक मूर्ति की ऊँचाई २२।। फ़ीट है । फाटक के बाहर एक बड़े पत्थर के दोनों बगलों पर कनड़ी अक्षरों का शिला लेख है। घेरे से कुछ दूर एक छोटे मन्दिर में बड़े अरघे पर बड़ा शिवलिंग है, जिसके पास ही पत्थर का बना हुआ कृष्णजी का बड़ा मन्दिर है ।

पम्पासर--

तुङ्गभद्रा से उत्तर में विरूपाक्ष के मन्दिर से क़रीब ३ मील पर पम्पासर नाम का तालाब है। यह पूर्व से पश्चिम तक २२५ फ़ीट लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक २०० फ़ीट चौड़ा है। इसके उत्तर में इस तालाब से छोटा मानसरोवर नाम का एक त्रिभुजाकार तालाब है। दोनों तालाबों के तीन ओर पहाड़ियाँ हैं। तालाबों के पश्चिम पहाड़ी के बगल पर कई पुराने मन्दिर और मण्डप हैं, जिनमें से एक में श्रीलक्ष्मीजी और श्रीनिवासजी की मूर्ति हैं। पम्पासर से प्रायः ३० कोस पश्चिम में शबरी का जन्मस्थान सुरोवनम् नामक बस्ती है ।

इस पहाड़ी प्रदेश को ही किष्किन्धा कहते हैं। यहाँ का राजा प्राचीन काल में बाली था, जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी द्वारा मारा गया । यह प्रदेश अत्यन्त पवित्र है, यहाँ पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी ने निवास कर बानर सेना का सुसञ्चालन करके लंकेश पर विजय प्राप्त की थी । बाली के बाद सुग्रीव यहाँ का राजा हुआ था ।

लकुण्डी—

बम्बई प्रान्त में गदग जङ्कशन से प्रायः ८ मील दक्षिण पूर्व को लकुण्डी एक बस्ती है । यहाँ बहुत से प्राचीन मन्दिर हैं। बस्ती के पश्चिम द्वार के पास एक अच्छा मन्दिर है। इसके पास ही एक दूसरा मन्दिर है। काशी-विश्वनाथ के मन्दिर में सङ्गतराशी का काम देखने योग्य है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है और अब कुछ जर्जर होगया है। पश्चिम ओर सड़क के बगल पर एक तालाब के उत्तर नन्दीश्वर शिवजी का मन्दिर है। बस्ती के भीतर मल्लिकार्जुन शिवजी का मन्दिर है। टावर के पश्चिम बगल पर मणिकेशव (श्रीकृष्ण) का मन्दिर है। इस मन्दिर के पास सुन्दर पत्थर का छोटा-सा तालाब है।

यह स्थान बड़ा पवित्र, प्राचीन तीर्थ एवं दर्शनीय है।

बादामी—

गदग जंक्शन से ४२ मील उत्तर बादामी स्टेशन है। इसकी दक्षिण वाली पहाड़ी के, जिसके ऊपर एक किला भी है, पश्चिम बग़ल में छठी सदी के बने हुए हिन्दुओं के ३ गुफ़ा-मन्दिर और जैनियों का एक गुफ़ा मन्दिर है। इन्हीं गुफ़ा मन्दिरों के कारण बादामी बहुत प्रसिद्ध है। इन्हें देखने सहस्रों यात्री यहाँ पहुँचते हैं।

बादामी से क़रीब २ मील दूर मलपर्वा नदी और बादामी के बीच रास्ते के वन शंकर गाँव में पार्वतीजी का मन्दिर है। मन्दिर के पास एक सुन्दर तालाब है। इस तालाब में मछलियाँ बहुत हैं और यहाँ बन्दर भी हैं। निकट में एक स्वच्छ पानी का नाला भी बहता है, जो बड़े-बड़े पेड़ों, जङ्गलों और झाड़ियों में होकर बहता है। स्थान रमणीक एवं देखने योग्य है।

बादामी से ५ मील दूर मलपर्वा नदी के बाँये किनारे पर सातवीं या आठवीं सदी के बने हुए द्राविड़ियन कारीगरी के नमूने के हिन्दुओं और जैनियों के कई सुन्दर मन्दिर हैं।

बादामी से ५ मील दूर एवल्ली के पास एक हिन्दू गुफ़ा और एक जैन गुफ़ा और भी देखने योग्य है।

कालहस्ती--

मद्रास प्रान्त में उत्तरी अर्काट ज़िले में सुवर्ण मुखी नदी के दाहिने किनारे पर कालहस्ती एक प्रसिद्ध तीर्थ है। द्रविड़ के बहुत लोग इसे काला श्री भी कहते हैं। फाल्गुण की शिवरात्रि पर यहां पर बहुत बड़ा मेला लगता है। यह मेला १० दिन तक रहता है।

द्रविड़ देश में ५ तत्त्वों से ५ लिंग प्रसिद्ध हैं—(१) शिव काञ्ची में एकाम्रेश्वर पृथ्वी लिङ्ग, (२) त्रिचनापल्ली ज़िले के श्रीरङ्गम के निकट का जम्बुकेश्वर जल लिङ्ग, (३) दक्षिणी अर्काट ज़िले के तिरुवन्नामलई क़स्बे के पास के अरुणाचल पर अग्निलिङ्ग, (४) कालहस्ती में कालहस्तीश्वर वायु-लिङ्ग और (५) चिदम्बर में नरेश आकाश लिङ्ग ऐसा प्रसिद्ध है कि काल अर्थात् सर्प और हस्ती ने यहाँ तप करके महादेवजी से वर माँगा था कि तुम हम लोगों के नाम से प्रसिद्ध होओ। उन्हीं दोनों के नाम से शिवजी का नाम काल हस्तीश्वर हुआ। बड़े शिवलिङ्ग पर सर्प के फण और हस्ती के दो दाँत के चिन्ह हैं। लिङ्ग के नीचे भूमि पर लिङ्ग की पूजा होती है। दक्षिण की पहाड़ी के यादमूल के निकट कालहस्तीश्वर का विशाल मन्दिर पत्थर का बना हुआ है। बड़े आँगन में उसके पूर्वोत्तर पार्वतीजी का मन्दिर है।

वेंकट गिरि--

कालहस्ती से १६ मील पूर्वोत्तर वेंकटगिरि का रेलवे स्टेशन है। यहां पर विशेष दर्शनीय स्थान काशी पेठ में काशी विश्वेश्वर का मन्दिर है। वहां के राजा के पूर्वज काशी से इस शिवलिंग को लाये और काशी विशालाक्षी, अन्नपूर्णा, काल भैरव, सिद्धि विनायक, आदि देवताओं सहित काशी विश्वनाथ की स्थापना की। इनकी पूजा-अर्चा बड़ी तय्यारी के साथ होती है। विश्वनाथ लिङ्ग के स्थापित होने पर वहाँ काशी पेठ बसी। मन्दिर के पास केवल्य नदी नाम का एक बड़ा नाला है। इनके अतिरिक्त वहाँ श्रीरामचन्द्रजी, हनुमानजी, चङ्गलराज स्वामी, वरदराज आदि के भी मन्दिर हैं।

बालाजी—

तिरुपला पहाड़ी की ७ चोटियाँ प्रधान हैं। सातवीं चोटी पर, जिसको बेंकटाचल और बेंकट-रमनाचलम् भी कहते हैं, दक्षिण भारत के उत्तम मन्दिरों में से एक, प्रख्यात बालाजी का पुराना मन्दिर है। बेंकटाचल की चोटी समुद्र तह से २५०० फीट ऊंची है। मद्रास प्रान्त के रेणुगुण्टा जंकशन से १२ मील श्रीबालाजी का मन्दिर है। क़स्बे से प्रायः १ मील दूर पर चढ़ाई के बाहर का फाटक मिल जाता है। रास्ता पहाड़ी है। चढ़ाई कड़ी है। जूता पहिन कर इस पहाड़ के ऊपर कोई नहीं जाता। चढ़ाइ में कई स्थान ठहरने के भी बने हैं जहां केला, नीबू, चना आदि सामिग्री मिल जाती है। गोपुर के पास से सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं। बालाजी का मन्दिर तीन दीवारों से घिरा हुआ है। जिनके बगलों में सुन्दर गोपुर बने हैं। मध्य में गुम्बजदार मंदिर है। मंदिर में प्रायः ७फीट ऊँची शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए श्रीबालाजी की पाषाण मूर्ति चतुर्भुज रूप में है। इनकी झांकी अति मनोहर है। आस-पास बाराहजी आदि देव-ताओं के भी अनेक मंदिर बने हुए हैं। यहाँ चौखट किवाड़ों में सोना चाँदी जड़ा हुआ है। प्रति वर्ष दशहरे पर बड़ी धूमधाम से रथयात्रा होती है। मंदिर के पास ही स्वामिपुष्करणी नामक एक सरोवर है, जिसके चारों तरफ़ पत्थर काट कर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, यात्री लोग उसी में स्नान करके
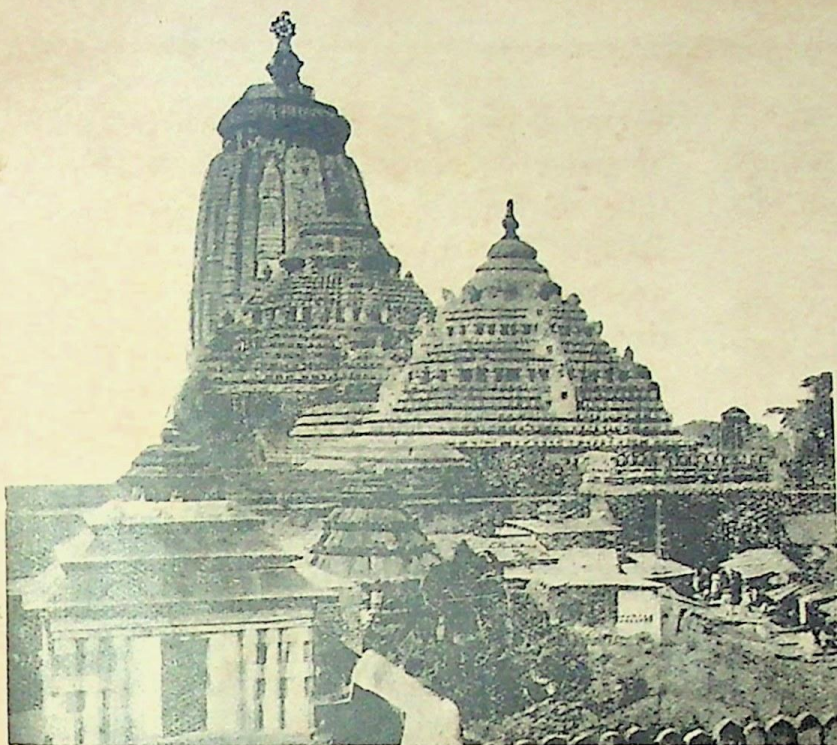
जगन्नाथजीका मन्दिर (पुरी)
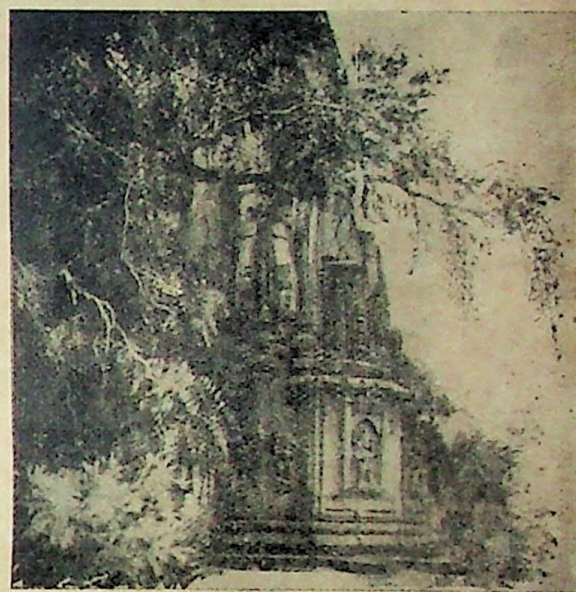
कालीखोह, विन्ध्याचल (मिर्जापुर)
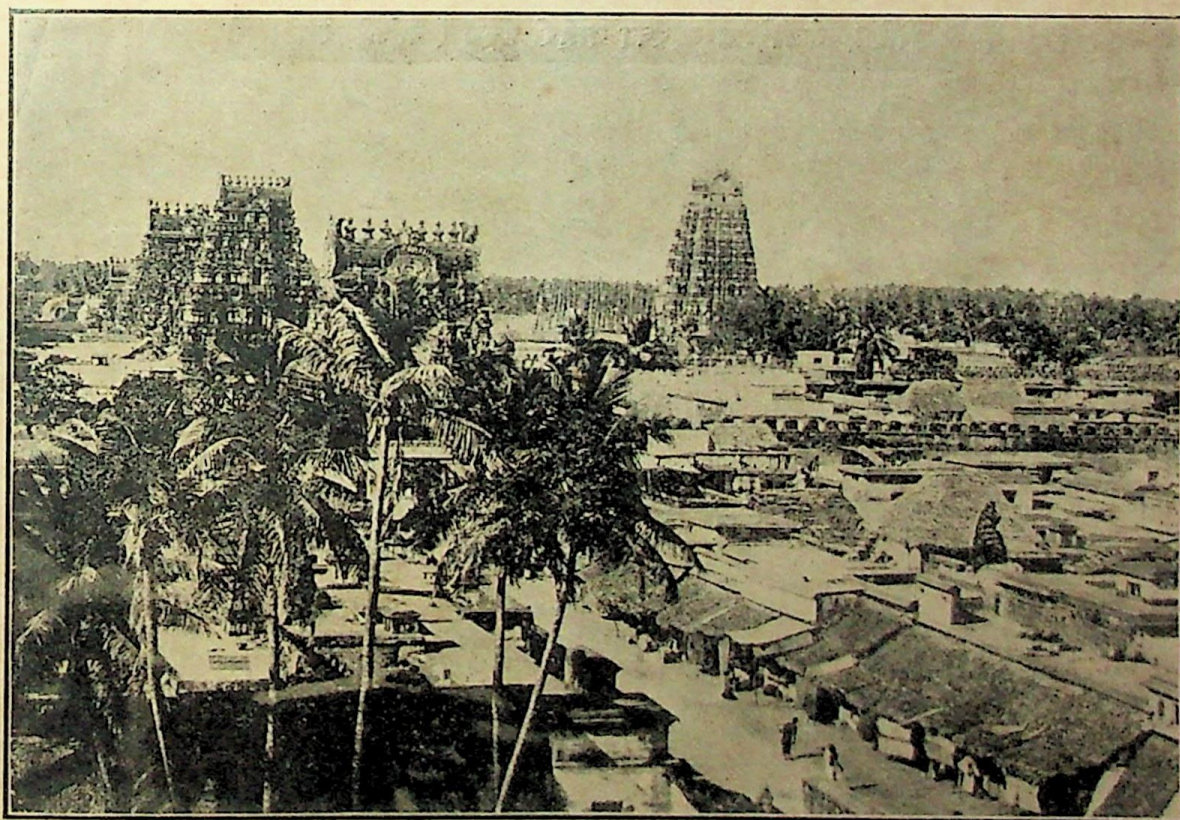
श्रीरङ्गम्-मन्दिरका एक सुन्दर दृश्य (श्रीरङ्गक्षेत्र, त्रिचनापली)
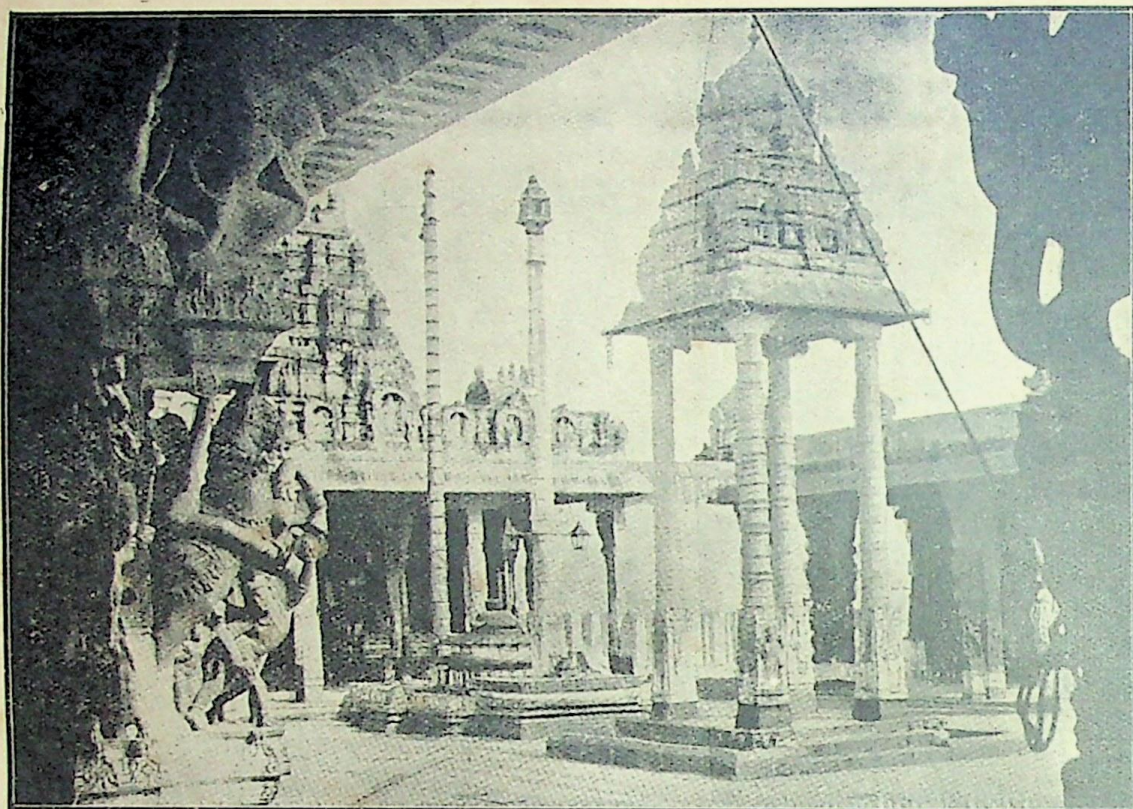
श्रीशिवकांचीके मन्दिरका बाहरी दृश्य (कांजीवरम्)
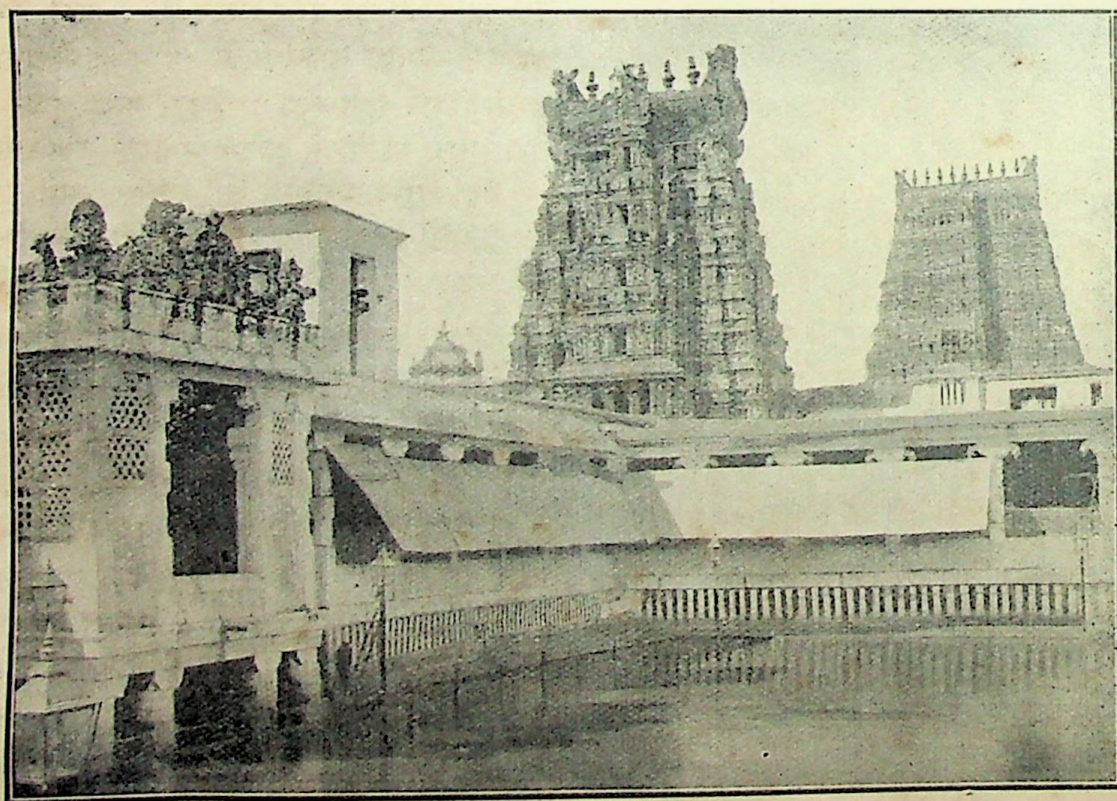
श्रीमीनाक्षी और श्रीसुन्दरेश्वरके मन्दिर—मदुरा

श्रीबालाजी के दर्शन करते हैं। सरोवर के पास ही 'सहस्र स्तम्भ' मण्डप है और श्रीवाराह स्वामी पूर्व मुख से विराजमान हैं।

बहुत स्त्रियाँ पुत्रादि होने के लिये श्रीबालाजी की मानता मानती हैं। यहाँ बहुत लोग अपने पुत्रों का मुण्डन कराते हैं। यहाँ टिकने के लिये धर्म-शालायें भी हैं, बाज़ार अच्छा है, खाने-पीने की सभी वस्तुएं मिलती हैं। श्रीरामानुज सम्प्रदाय की यहाँ एक गद्दी भी है। स्थान-स्थान पर पहाड़ी के ऊपर १६ झरने हैं।

बालाजी से ३ मील दूर पहाड़ की ऊँची-नीची चढ़ाई-उतराई के बाद पापनाशिनी गङ्गा मिलती है। दो पहाड़ियों के बीच में बहती हुई धारा दूर से आई है और वहाँ पहाड़ी पर ऊपर से नीचे गिरती है। बहुत यात्री यहां स्नान करते हैं। बालाजी की ओर लौटते हुए मार्ग में आकाश गङ्गा की धारा मिलती है।

बेलूर—

रेणुगुंटा स्टेशन से ७७ मील और कटपद्दी जङ्कशन से ६ मील दक्षिण बेलूर का रेलवे स्टेशन है। मद्रास प्रान्त में पलार नदी के किनारे उत्तरी आरकाट ज़िले में प्रधान क़स्बा बेलूर है। यहां पर एक बहुत बड़ा मंदिर है। जिसका नाम श्रीजलंध-रेश्वर शिव का मन्दिर है। बेलूर में सुगन्धित फूलों के बाग़ बहुत हैं। मन्दिर का सात मञ्जिला गोपुर प्रायः १०० फ़ीट ऊँचा है। द्वार बहुत ही सुन्दर है, जिसके पास नील रङ्ग के पत्थर के दो द्वारपाल खड़े हैं। गोपुर से मन्दिर के घेरे में जाने पर बांईं ओर पत्थर का कल्याण मंडपम् मिलता है, जिसमें बढ़िया कारीगरी का सुन्दर काम बना हुआ है। मण्डपम् के सामने एक कूप भी है। घेरे के चारों बगल में दीवार के पास दालान है, जिनमें ६१ खम्भे लगे हैं और घेरे के चारों कोनों पर चार मण्डपम् हैं। यह बड़ा प्रसिद्ध मन्दिर है।

तिरुवलूर—

मद्रास शहर से २६ मील दूर तिरुवलूर का रेलवे स्टेशन है। इस प्रान्त के चेंगलपट्ट ज़िले में यह एक छोटा-सा क़स्बा है, जिसमें मद्रास प्रान्त के सब से बड़े मन्दिरों में से एक मन्दिर है। इस मन्दिर का नाम वरदराज का मन्दिर है। पहिले घेरे के चारों बगलों में दालान और मध्य में वरद-राज का, जिनको श्रीवीरराघवा स्वामी भी लोग कहते हैं, मन्दिर है। कई द्वारों को पार करने पर भीतर वरदराज की विशाल मूर्ति भुजङ्ग पर शयन करती हैं। मन्दिर के बगल में शिवजी का मन्दिर है। प्रति अमावस्या को तिरुवलूर के आस-पास के यात्री वहाँ देव दर्शन को जाते हैं और उत्सवादि पर तो बहुत भीड़ होजाया करती है।

भूतपुरी—

तिरुवलूर रेलवे स्टेशन से १२ मील दक्षिण भूतपुरी नामक एक बस्ती है। यह स्थान श्रीरामा-नुज स्वामीजी का जन्म स्थान है। यहाँ अनन्त सरोवर नामक तालाब के पास श्रीरामानुज स्वामीजी का बहुत बड़ा मन्दिर बना हुआ है। श्रीरामानुज स्वामीजी दक्षिण मुख से विराजमान हैं। यहाँ केशव भगवान् का मन्दिर बना हुआ है। उत्सवों पर बहुत यात्रियों की भीड़ लगती है। यहाँ अनेक बड़े स्तम्भ लगे हुये कई मण्डपम् हैं।

भूतपुरी की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार सुनी जाती है, कि सृष्टि के आरम्भ में जब रुद्र भगवान अपने सर्वांग में भस्म लगाये और जटा फटकारते हुए नृत्य करने लगे, तब उनके साथ के भूतगण परस्पर हँसने लगे। रुद्र भगवान् ने उनकी ऐसी ढिठाई देखकर उनको शाप दिया कि तुम लोग अब हम से अलग रहोगे। भूतगणों ने सब वृत्तान्त ब्रह्माजी के पास जाकर निवेदन किया। तब ब्रह्माजी ने कहा कि भारतवर्ष देश में बेंकट-गिरि से दक्षिण सत्यव्रत तीर्थ है, तुम लोग वहाँ जाकर केशव भगवान् की आराधना करो। जब

भूतों ने वहाँ रह कर एक हजार वर्ष तक श्रीकेशव भगवान् की आराधना की, तब बिमान पर सवार होकर भगवान् ने दर्शन दिये। उनके साथ अनन्त अर्थात् शेषादि बहुत से देवता भी थे। भूतगणों ने भगवान् से प्रार्थना की कि हे नाथ! हमें ऐसा वर दीजिये कि हम लोग फिर से रुद्र भगवान् के गण बनें। तब विष्णु भगवान् ने श्रीमहादेवजी का ध्यान करके रुद्र भगवान् से कहा कि हे शङ्कर! इस तीर्थ में निवास करने से इन भूतगणों के समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, अतः अब आप इन्हें अपना गण बना लीजिये। महादेवजी ने विष्णु भगवान् का वचन स्वीकार कर लिया। फिर विष्णु की आज्ञा से अनन्त ने उस स्थान पर एक सरोवर बनाया। भूतगणों ने उस सरोवर में स्नान करके शिवजी की प्रदक्षिणा की। शिवजी ने फिर से उन्हें अपना गण बना लिया। तत्पश्चात् महादेवजी ने विष्णु से कहा कि वर्त्तमान काल के स्वारोचिष मन्वन्तर तक इस स्थान में निवास करो। उस समय भूतगणों ने केशव अर्थात् विष्णु भगवान् का उत्सव करने के लिये उस स्थान में ३ योजन लम्बी-चौड़ी एक पुरी बनाई, जिसमें देवताओं, राजाओं और मनुष्यों के रहने योग्य भाँति-भाँति के बड़े गृह और प्राकार बनाये। भूतगणों ने देवताओं के चले जाने पर ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को वहाँ बसाया। विष्णु ने कहा कि जो मनुष्य इस तिथि में इस सरोवर में स्नान करेगा, उसे मनवाँछित फल प्राप्त होगा। महादेवजी भी अपने भूतगणों सहित वहाँ से अन्यत्र चले गये। भूतों द्वारा इस पुरी का निर्माण होने से इसका नाम भूतपुरी पड़ा। इसी स्थान पर शेषावतार श्रीरामानुज स्वामी ने जन्म लिया था, अतः यह स्थान अति पवित्र और दक्षिण का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। वैसाख सुदी १२ और चतुर्थीक मृगसिरा नक्षत्र में तथा चैत्र सुदी सप्तमी और पूर्णिमा को अनन्त सरोवर में स्नान करने से अनेक फल लाभ होते हैं।

महावलीपुर के गुफ़ा मन्दिर—

मद्रास नगर से प्रायः ३५ मील दक्षिण चेंगलपट्ट जिले में महावलीपुर के गुफ़ा-मन्दिर हैं। वहाँ नहर से पूर्व, नहर और समुद्र के बीच बहुत से चट्टानी गुफ़ा-मन्दिर और चट्टान काटकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिनके होने के कारण महावलीपुर प्रसिद्ध हुआ। वहाँ के सम्पूर्ण मन्दिर और उनकी मूर्तियाँ उन्हीं जगहोंके पत्थरों को काट-छाँटकर बनाई गई थीं। ये मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं। सलुवन कुमन गाँव से एक मील दक्षिण से उसके ४ मील दक्षिण तक महावलीपुर के गुफ़ा-मन्दिर फैले हुये हैं।

इन गुफ़ा-मन्दिरों में श्रीगोवर्धनधारी कृष्ण, विष्णु, दुर्गा, द्रोपदी, अर्जुन, भीम, धर्मराज, वाराहजी, शिवजी आदि के अनेक सुन्दर और प्राचीन मन्दिर हैं। समुद्र तट पर पहाड़ियों में बने हुये, पुरानी कारीगरी के यह गुफ़ा-मन्दिर देखने ही योग्य हैं।

पक्षीतीर्थ—

चेंगलपट्ट रेलवे स्टेशन से ६ मील दूर एक रमणीक पहाड़ी के ऊपर पक्षीतीर्थ है। चेंगलपट्ट होकर दक्षिण जाने वाले बहुत यात्री इस तीर्थ में जाते हैं। पहाड़ी के नीचे धर्मशालायें बनी हुई हैं। यहाँ पण्डे लोग पक्षियों के खाने के लिये भोजन (एक को खीर और दूसरे को घी) तैयार करते हैं। निश्चित समय, यानी मध्यान्ह में, दो पाली हुई सफेद चील्ह वहाँ आकर भोजन करके चली जाती हैं। यात्री उनका दर्शन करते हैं। दोनों चील्हों को लक्ष्मीनारायण कहा करते हैं। इनका दर्शन मङ्गल-सूचक है। यहाँ पर एक कुण्ड भी है, जिसमें यात्री स्नान करते हैं। कुण्ड से थोड़ी दूर पर ब्रह्मेश्वर महादेव का मन्दिर है।

काञ्ची—

चेंगलपट्ट जंकशन से २२ मील पश्चिमोत्तर और आरकोनम् जंकशन से १८ मील दक्षिण पूर्व

काञ्जीवरम् अर्थात् काँची का रेलवे स्टेशन है। मद्रास प्रान्त के चेंगलपट्ट ज़िले में कांजीवरम् क़सवा है। यह दक्षिण का एक अति प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। सप्तपुरियों में से एक पुरी है। रेलवे लाइन से पश्चिम कांजीवरम् का क़स्वा है। रेलवे स्टेशन से प्रायः १॥ मील दूर बड़ी कांची अथवा शिवकांची है और शिवकांची से प्रायः ३ मील दक्षिण-पूर्व तथा रेलवे स्टेशन से लगभग २ मील दूर छोटी कांची अर्थात् विष्णुकांची है। दोनों कांची के बीच में सड़क के बगलों में प्रायः लगातार मकान हैं। यहाँ पर तामिल और कुछ तैलङ्गी भाषा प्रचलित है। शिवकांची में शैव लोग और विष्णुकाँची में श्रीरामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव लोग रहते हैं।

शिवकांची—

यह शैवों का प्रधान धर्मक्षेत्र है। यहाँ पर श्रीएकाम्रेश्वर महादेवजी का बड़ा विशाल मन्दिर है। द्राविड़ के पाँच प्रसिद्ध लिङ्गों में से यह पृथ्वी लिङ्ग है। मन्दिर गुम्बजदार है। तीन ड्योढ़ी पार करने पर शिवलिङ्ग के दर्शन होते हैं। यहाँ पर इस लिङ्ग पर जल नहीं चढ़ाया जाता। केवल पुष्प और बेल-पत्र से ही पूजन होता है। मूर्ति का शृङ्गार दर्शनीय होता है। मन्दिर के पीछे आमका पुराना वृक्ष है। इस पेड़ के नीचे एक पत्थर की सुन्दर वेदी बनी हुई है, जिस पर 'कामाक्षी' नाम की देवी की मूर्ति अङ्कित है। उसीके पास एक मन्दिर में कुछ ही दूर पर 'कामाक्षी' की ताम्रमयी मूर्ति है। आम के पेड़ के नीचे बैठकर 'कामाक्षी' देवी ने शिव का आराधन किया था। देवी की कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर 'कामाक्षी' को शिवलिङ्ग का दर्शन हुआ। भगवान् शिव ने उसी पेड़ के नीचे अपनी ज्योति का दर्शन दिया था। तभी से एकाम्रेश्वर शिवलिङ्ग के नाम से प्रसिद्ध हुये। एकाम्रेश्वर के निज मन्दिर के पास 'सहस्र-स्तम्भ' नामक विशाल मण्डप है। इसमें हज़ार तो नहीं, किन्तु ५४० खम्भे हैं। यह मण्डप बहुत प्राचीन है। ख़ास मन्दिर से पश्चिम-दक्षिण की ओर घेरे के पास एक छोटा मन्दिर है, जिसमें शिवजी की धातु-मूर्ति उत्सवादि के लिये है। उत्सव पर यही मूर्ति रथ में पधराई जाती है। शिवजी का सिंहासन, छत्र, मुकुट आदि सब सामान सुवर्ण का बना हुआ अति सुन्दर है। पार्वतीजी की मूर्ति इस मन्दिर के पास थोड़ी दूर पर दूसरे मन्दिर में है। मूर्ति सुन्दर है, बहुमूल्य वस्त्र, आभूषणों से विभूषित है। श्रीपार्वतीजी ने तपस्या करके भगवान् शिव को पति रूप में यहीं पाया था।

जगमोहन में चौंसठ योगिनियों की मूर्तियाँ हैं। उनके देखने से प्राचीन कला का सुन्दर प्रमाण मिलता है। पश्चिम वाले गोपुर के पास एक सीध में १०८ शिवलिंग हैं। एक स्थान पर एक ही लिंग-मूर्ति में १००० लिङ्ग खुदे हुये हैं। पश्चिम वाले घेरे के पूर्व वाले गोपुर के पास चिदाम्बरम् शिव और नन्दी की सुनहरी बड़ी मूर्ति हैं। इनके अतिरिक्त उस घेरे में नवग्रह आदि के बहुतेरे मन्दिर हैं और दीवार के नीचे बहुत से शिवलिङ्ग हैं। दीवार की ऊपरी पंक्ति में नन्दी हैं।

दूसरे घेरे में तेप्पकुलम् नामक सरोवर है, जिसमें सुन्दर नाव रहती है। जेठ मास में शिव और पार्वतीजी की उत्सव मूर्तियाँ यहाँ जल-क्रीड़ा करती हैं। उस समय सहस्रों यात्रियों की भीड़ इकट्ठी होजाती है। बड़ा भारी मेला होता है। घेरे के दक्षिण ओर दस मंजिल का एक बड़ा गोपुर है, इसके ऊपर शिखर पर ११ कलश हैं। गोपुर की चौखट ३५ फ़ीट ऊँची पत्थर की बनी है। गोपुर में ऊपर से नीचे तक तमाम मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

शिवकांची में 'सर्वतीर्थ' नामक एक बड़ा सरोवर है, इसके चारों ओर पत्थर की पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सरोवर के बीच में एक छोटा मन्दिर बना हुआ है और चारों ओर स्थान-स्थान पर

शिवलिङ्ग तथा छोटे-छोटे शिवालय हैं। यात्री लोग सर्वतीर्थ में स्नान कर फिर श्रीएकाम्रेश्वर महादेवजी के दर्शन करते हैं। कुछ यात्री इस सरोवर के तट पर श्राद्ध भी करते हैं। श्रीएकाम्रेश्वर मन्दिर से थोड़ी दूर पर कामाक्षा देवी का विशाल मन्दिर है। यहाँ पर पद्मासन पर बैठी हुई देवीजी की सुन्दर मूर्ति है। मन्दिर के अन्दर एक तालाब भी है। इसी मन्दिर में आदि शङ्कराचार्यजी की मूर्ति भी है। इसी स्थान पर जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यजी ने निवास किया था।

श्रीकामाक्षा के मन्दिर के पास ही वामन भगवान् का मन्दिर है। श्रीवामनजी की मूर्ति इतनी बड़ी है, कि उनके मुख का दर्शन करने के लिये लम्बे बाँस पर मशाल जलानी पड़ती है।

शिवकांची एक सुन्दर और रमणीक स्थान है, यहाँ की शोभा भी अपार है। यहाँ पर यात्रियों को पूरी सुविधायें हैं। जगह-जगह धर्मशालायें बनी हैं, जिनमें यात्री आराम से ठहर सकते हैं। साधु-ब्राह्मण और भिक्षुकों के लिये कई जगह सदावर्त्त भी है।

विष्णु-कांची----

शिवकांची से प्रायः ३ मील और रेलवे स्टेशन से २ मील की दूरी पर विष्णुकांची है। यहाँ पर बरदराज भगवान् विष्णु का बहुत बड़ा मन्दिर है। मन्दिर के परकोटे की ऊँचाई १० फ़ीट है। परकोटे के पूर्व की ओर ग्यारह खण्ड का और पश्चिम की ओर ६ खण्ड का गोपुर है। गोपुर कुल पत्थर के बने हैं और उन पर जगह-जगह मूर्तियां बनी हैं। परकोटे की दीवार पर कुछ शिलालेख हैं। ये शिलालेख तामिल भाषा में हैं और मन्दिर बनाने वालों के संस्मरण बतलाये जाते हैं। पश्चिम के गोपुर से बाहर एक बहुत विशाल और सुन्दर रथ रक्खा हुआ है, जिस पर वैशाख के उत्सव के समय भगवान् की चल मूर्ति विराजती है। मन्दिर का प्रवेश पश्चिमी गोपुर के फाटक से करना होता है। फाटक से मन्दिर में घुसने पर बांई ओर एक विशाल मण्डप है। इस मण्डप में वैसाख के उत्सव पर भगवान् की चल मूर्तियाँ विराजती हैं। इस मण्डप में पत्थर की बनी हुई साँकलें देखने योग्य हैं। इस मण्डप के उत्तर में एक छोटा मण्डप और है। उसी के समीप 'कोटि-तीर्थ' नामक सरोवर है। यात्रीगण सरोवर में स्नान करते हैं। भीतर के दूसरे घेरे में पश्चिम की दीवार में एक छोटा गोपुर है, जिसके सामने बाहर एक बुर्ज है, इस पर उत्सवों के अवसर पर सैकड़ों दीप जलाये जाते हैं। यहाँ सुनहरा गरुड़ स्तम्भ है। दक्षिण-पश्चिम कोने के पास लक्ष्मीजी का मन्दिर है और पश्चिम-उत्तर के कोने के पास ही बरदराज भगवान् के वाहनों के रखने के लिये मकान हैं। वृष संक्रांति में भगवान् बरदराज का ब्रतोत्सव बारह दिन तक होता है। तीसरे घेरे के पश्चिम दीवार में फाटक है, जिसके पूर्व बरदराजजी के निज मन्दिर के चबूतरा से लगा हुआ श्रीनृसिंहजी का मंदिर है। सौ फीट लम्बे चौड़े गिरि नायक चबूतरे पर भगवान् बरदराज का मंदिर है। भगवान् की मूर्ति काली और चतुर्भुज रूप की है। नाना भाँति के बहुमूल्य वस्त्राभूषणों द्वारा सदैव सुसज्जित रहती है। भगवान् के गले में सदैव सुवर्ण ग्रन्थित शालग्रामों की माला रहती है। यह माला बहुत ही मूल्यवान् है।

श्रीवैष्णव धर्म के श्रीरामानुजाचार्यजी की आठ गद्दियों में से प्रधान गद्दी-प्रतिवाद भयङ्कर की इसी कांची में ही है। श्रीरामानुजाचार्यजी ने कई वर्षों तक यहाँ निवास किया था, दक्षिण में श्रीवैष्णवों का यह एक प्रधान और प्रसिद्ध एवं दर्शनीय तीर्थ है।

चिदम्बरम्----

मद्रास प्रान्त के दक्षिणी अरकाट जिले में समुद्र के पूर्वी किनारे से सात मील पश्चिम में एक अति पवित्र स्थान चिदम्बरम् है। साउथ

इण्डियन रेलवे पर चिदम्बरम् नामक स्टेशन है। स्टेशन से पास ही कस्बा है। नगर के दक्षिण में थोड़ी दूर पर कोलेरून नदी बहती है। मद्रास से रामेश्वरजी तक जो रेलवे लाइन गई है, उसी पर यह एक प्रसिद्ध स्टेशन है।

दक्षिण के प्रसिद्ध पाँच लिङ्गों में से आकाश लिङ्ग के रूप में भगवान् रुद्र का यहाँ अति प्रसिद्ध मन्दिर श्रीनटेश शिव के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर की बाहरी दीवार में चारों दिशाओं में एक-एक छोटे गोपुर हैं। भीतर वाली दीवार के चारों बगल एक-एक नव-मंज़िले गोपुर हैं। ये चारों गोपुर प्रतिमाओं से पूर्ण और चित्रों से चित्रित हैं। दीवार के भीतर चारों ओर दो मंज़िले मकान तथा दालान हैं और मध्य में श्रीनटेश के निज मन्दिर का घेरा और शिवगङ्गा सरोवर तथा बहुत से मन्दिर, मण्डप हैं। दक्षिण-पश्चिम के कोने में पार्वती का एक मन्दिर है। नटेश शिवजी के निज मन्दिर की दीवार पर चांदी का और गुम्बज पर सोने का मुलम्मा है। दो देहरी के भीतर नृत्य करते हुये नटेश-शिव भगवान् खड़े हैं। इस मूर्ति के पीछे भगवान् शिव का आकाश लिङ्ग अदृश्य रूप से है। यहाँ शिवजी के स्फटिक लिङ्ग और मणिलिंग भी हैं, इनकी पूजा प्रति दिन होती है। मणिलिङ्ग में विशेषता यह है कि उसके सामने कपूर जलाने पर लिंग के भीतर एक तरफ़ से देखने पर भगवान् शङ्कर की मूर्ति दिखाई देती है और दूसरी ओर देखने पर उसी मूर्ति का रूप बदल जाता है।

नटेश के मन्दिर के साथ एक मन्दिर है, जिसका गुम्बज बिना मुलम्मे के तांबे के पत्तरों से छाया हुआ है। मन्दिर में तीन देहरी के भीतर सुनहरे भूषण और कौस्तुभ की मणिमाला पहिने हुए श्यामल-स्वरूप की विष्णु भगवान् की मूर्ति है। भगवान् शेष नाग पर शयन कर रहे हैं। भगवान् के पास पैरों की ओर श्रीलक्ष्मीजी बैठी हैं। इस मन्दिर के आगे भारी सोने का मण्डप है जो 'कनक-सभा' कहलाता है।

प्रधान मन्दिर से उत्तर की ओर कोने में पार्वतीजी का सुन्दर मन्दिर है। पार्वतीजी के मन्दिर से लगा हुआ उसके दक्षिण षणमुख सुब्रह्मण्य कार्तिकेय का मन्दिर है। मन्दिर के आंगन के बाहर एक मोर और दो हाथी की प्रतिमायें हैं।

मन्दिर में शिव गङ्गा का तालाब अति पवित्र माना जाता है। चिदम्बरम् का तीर्थ अति पवित्र माना जाता है। स्कन्द-पुराण और शिव-भक्त-विलास नामक ग्रन्थों में इसका माहात्म्य विशेष रूप से वर्णित है। यहाँ पर अनेक धर्मशालायें हैं, जिनमें मारवाड़ियों की धर्मशाला बहुत प्रसिद्ध और बड़ी है। यहाँ यात्रियों के ठहरने की बड़ी सुविधायें हैं।

मायावरम्----

मद्रास प्रान्त में तञ्जोर जिले में मायावरम् स्टेशन से ३ मील की दूरी पर मायावरम् का कस्बा है। यहाँ पर एक अति प्रसिद्ध शिव-मन्दिर है। मन्दिर में एक बड़ा और एक छोटा गोपुर है। बड़ा गोपुर दसमंज़िला है, जो मन्दिर के बाहर के अहाते के दक्षिण बगल में बना है। उसके पश्चिम में एक सरोवर है। उत्तर में ६ मंज़िल का छोटा गोपुर है। यहाँ कार्तिक में यात्रा का मेला होता है।

नाग पट्टनम् ---

मद्रास प्रान्त के तञ्जोर जिले में तिरूवालूर एक कस्बा है। यहाँ से १५ मील पूर्व को नागपट्टनम् का रेलवे स्टेशन है। यह एक प्रसिद्ध कस्बा और बन्दरगाह है। बहुत से यात्री स्टीमरों द्वारा यहाँ से रामेश्वर जाते हैं। यहाँ शहर के बाहर एक शिव-मन्दिर है। इस मन्दिर के पूर्वोत्तर पार्वतीजी का मन्दिर है। नाग पट्टनम् में दूसरा मन्दिर सुन्दरराज भगवान् का है। यह स्थान बड़ा रमणीक है।

कुम्भकोणम्—

मायावरम् जंकशन से १६ मील दक्षिण-पश्चिम कुम्भकोणम् का रेलवे स्टेशन है। स्टेशन से प्रायः एक मील नगर के भीतर मन्दिर है। विष्णु के मन्दिर का ११ खनवाला गोपुर प्रायः १६० फ़ीट ऊँचा है। यहाँ कुम्भेश्वर शिवजी का भी मन्दिर है। इन मन्दिरों से चौथाई मील दक्षिण-पूर्व महा-मोहन तालाब है। इसके किनारों पर जगह-जगह १६ मन्दिर बने हुए हैं। प्रधान मन्दिर तालाब के उत्तर बगल पर है। इस स्थान पर १२ वर्ष पीछे महामाघम् का प्रसिद्ध मेला होता है। उस समय एक दिन उस सरोवर में गंगाजी आती हैं। उसमें स्नान करने को बहुत दूर-दूर से यात्री आते हैं। इसके अतिरिक्त भी इस नगर में और समयों पर अनेक मेले हुआ करते हैं। कुम्भकोणम् मद्रास प्रान्त का प्राचीन और पवित्र नगर है। यहाँ विद्या का बड़ा प्रचार है। यहाँ के पण्डित प्रसिद्ध हैं।

तञ्जौर—

कुम्भकोणम् से २५ मील रेलवे का स्टेशन है। मद्रास प्रान्त में कावेरी नदी तट पर यह एक प्रसिद्ध सदर स्थान है। यहाँ दो किले हैं। छोटे किले में बड़े मन्दिर से उत्तर शिव गंगा नामक एक सरोवर है। यहाँ पर सरस्वती भवन नामक एक बहुत बृहद् पुस्तकालय है जिसमें १८००० संस्कृत के ग्रन्थ हैं, जिनमें प्रायः ८००० पुस्तकें तार के पत्रों पर लिखी हुई हैं। संस्कृत का इतना विशाल पुस्तकालय बहुत कम स्थानों पर होगा।

राजा के महल से आधा मील पश्चिम-दक्षिण छोटे किले में तञ्जोर का बड़ा शिव मंदिर है। पूर्व बगल में एक बड़ा ६० फ़ीट ऊँचा गोपुर और पश्चिम में ६० फ़ीट ऊँचा गोपुर है। शिव मन्दिर और छोटे गोपुर के मध्य भाग में चौखूंटा मण्डपम् है, जिसमें नन्दी की एक विशाल मूर्ति है जो ४०० मील दूर से लाई गई है। इस पर सर्वदा तेल लगाया जाता है। नन्दी से उत्तर पार्वतीजी का मन्दिर है। शिव मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम भाग में श्रीगणेशजी का मन्दिर है। मन्दिर के पश्चिमोत्तर भाग में कार्तिकेय का उत्तम बनावट का मंदिर है। मंदिर में ६ मुख वाले कार्तिकेय हैं। मंदिर के पूर्वोत्तर चण्डी का मंदिर है। इसके पास पूर्व तरफ़ नारियल का सुन्दर बाग़ लगा हुआ है।

तञ्जोर बड़ा रमणीक स्थान है। ज़िला और घनी आबादी का प्रसिद्ध नगर है।

त्रिचनापल्ली—

तञ्जोर शहर से ३१ मील पश्चिम त्रिचनापल्ली का रेलवे जंकशन है। स्टेशन पर पहुँचने से ६ मील पहिले से त्रिचनापल्ली शहर के टीले पर श्रीगणेशजी का मन्दिर दिखाई देता है। यह बहुत बड़ा नगर है। यहाँ कई स्टेशन हैं। शहर की बस्ती के पास ही एक २५० फ़ीट ऊँचा पत्थर का टीला है, जिसके ऊपर सब जगह मंदिर बने हुए हैं। दक्षिण ओर ऊपर से नीचे तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यहाँ पर शिवजी का प्रसिद्ध मंदिर है। गणेश, पार्वती, कार्तिकेय आदि और भी अनेक मंदिर बने हुए हैं। चाँदी के पत्तरों से मढ़ा हुआ एक नन्दी भी है। गणेशजी के मंदिर के चारों ओर का दृश्य बड़ा मनोरम है। भादों में यहाँ बड़ा मेला लगता है। इस ज़िले की प्रसिद्ध नदी कावेरी है। ज़िले की उत्तरी सीमा पर कुछ दूर तक वेलार नदी बहती है। त्रिचनापल्ली और कोयम्बटूर ज़िलों के बीच अमरावती नदी बहती है।

श्रीरङ्गम्—

मद्रास प्रान्त के त्रिचनापल्ली ज़िले में कावेरी नदी के श्रीरङ्गम् टापू के भीतर श्रीरङ्गम् क़स्बा तथा श्रीरङ्गम् का प्रसिद्ध मन्दिर है। कावेरी नदी पर ३२ मेहराबों का पुल बँधा है। इससे उत्तर—मंदिर के निकट कावेरी की छोटी धारा पर छोटा

पुल है। लगभग १७ मील लम्बा और सवा मील चौड़ा श्रीरङ्गम टापू है। टापू पर ही नगर बसा है। यहां बाज़ार अच्छा है, कई धर्मशालायें एवं पण्डाओं के मकान हैं। यहां श्रीरामानुज सम्प्रदाय के वैष्णवों की ही अधिकता है। इस सम्प्रदाय की मूल गद्दी तो तोताद्रि में है, किन्तु यह स्थान भी इनका मुख्य स्थान है। यहां मन्दिर के एक भाग में श्रीरामानुज स्वामीजी का भी मन्दिर है। पौष सुदी १ से ११ तक यहाँ पर श्रीवैकुण्ठ एकादशी का बड़ा भारी मेला होता है। यहाँ पर श्रीरङ्गजी का सब से बड़ा और भारत प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसके भीतर श्रीरङ्गम का बहुत बड़ा भाग है। यह मंदिर प्राय: २७५ बीघे ज़मीन पर फैला हुआ है। इसका विस्तार दिल्ली के किले से ड्योढ़ा है। दक्षिण में सब से बड़ा मन्दिर यही है। सात परकोटाओं के भीतर श्रीरङ्गजी का निज मन्दिर है। स्थान-स्थान पर चारों ओर की दीवारों में छोटे बड़े १८ गोपुर बने हुए हैं, जिनमें दो बहुत बड़े हैं। इसके अतिरिक्त अनेक दरवाजे भी हैं। मन्दिर के सात परकोटों का विवरण इस प्रकार है।

१—बाहर वाली चारों ओर की दीवारों के मध्य भाग में एक ही समान एक-एक बड़ा फाटक है। जो गोपुरों की नेव जान पड़ते हैं। फाटक में बड़े-बड़े पत्थर खड़े हैं। जिनमें से कुछ पत्थर ४० फीट से भी अधिक ऊँचे हैं। दक्षिण के फाटक से यात्रीगण मन्दिर के सातवें कोट में प्रवेश करते हैं। जहाँ एक अस्पताल है और नित्य बाज़ार लगता है। कोट के अन्दर पक्की सड़क बनी हुई है। जिसके बगलों में सर्व साधारण लोगों की बस्ती है। कावेरी नदी की दो शाखायें दक्षिण और उत्तर फाटकों के पास होकर बहती हैं। दक्षिण फाटक वाली शाखा में यात्रीगण स्नान करते हैं।

२—छठवें कोट में तीन ओर छोटे-छोटे और दक्षिण ओर सात खनवाला बड़ा गोपुर है। कोट के भीतर चारों ओर सड़क के बगलों में ब्राह्मण और पण्डों की बस्ती तथा दक्षिण ओर दूकानें हैं। चारों बगलों की दीवार लगभग २० फीट ऊंची है।

३—पाँचवें कोट में चारों तरफ एक-एक छोटे गोपुर और कोट के भीतर चारों ओर सड़क व बगलों में ब्राह्मण और पण्डों के मकान हैं।

४—चौथे कोट में दक्षिण और उत्तर एक-एक छोटा गोपुर और पूर्व और १५२ फीट ऊँचा एक बड़ा गोपुर है। इस कोट में कई एक बड़े-बड़े मण्डप बने हुए हैं। जिनमें से लगभग ४५० फीट लम्बा और १३० फीट चौड़ा "सहस्त्र स्तम्भ मण्डपम्" है। इसके अन्दर ९६० स्तम्भ लगे हुए हैं। कोट के पूर्व वाले बड़े गोपुर के पश्चिम अपूर्व चित्रकारी एक सुन्दर मण्डप है। कोट के पश्चिम भाग में एक बावली और केला, नारियल का छोटा बाग़ है।

५—तीसरे कोट में दक्षिण और उत्तर एक-एक गोपुर और पूर्व एक खिड़की है। दक्षिण के गोपुर के सामने उत्तर गरुड़ मण्डप में नवीन रङ्ग से रञ्जित बहुत बड़ी गरुड़ की मूर्त्ति है। जिससे उत्तर एक चबूतरे के पास सोने के मुलम्मे का एक गरुड़ स्तम्भ है। कोट के ईशान कोण में चन्द्र प्रस्वकर्णी नामक एक सरोवर है। जिसमें यात्री लोग स्नान करते हैं, पास ही में महालक्ष्मी का विशाल मन्दिर, कल्पवृक्ष श्रीरामचन्द्रजी की मूर्त्ति और वैकुण्ठनाथ भगवान् का प्राचीन स्थान है।

दूसरा कोट १६० कीट लम्बा और इतना ही चौड़ा भी है। जिसके पश्चिम बगल में एक दरवाज़ा और दक्षिण हिस्से में दालान और मण्डप है।

७—पहले कोट का दरवाजा दक्षिण है। कोट के उत्तर हिस्से में साधारण कदका श्रीरङ्गजी का निज मन्दिर है। जिसके नीचे का भाग पीछे की ओर अर्थात् उत्तर गोलाकार है और ऊपर के शिखर पर सोने का मुलम्मा किया हुआ है।

मन्दिर की पीछे की छत में देवताओं की चित्र मूर्त्ति हैं। निज मन्दिर के पीछे एक कूप और एक मन्दिर है। जिसके पीछे पीतल का एक पत्तर भूमि में गड़ा है। वहाँ से रङ्गजी के निज मन्दिर

के शिखर का दर्शन होता है। शिखर पर चारों वेदों के स्थान पर चार सुवर्ण कलश हैं। थोड़ी दूर आगे एक ऊँचे दालान में भी वैसा ही पत्तर है। जहाँ से मन्दिर के शिखर पर पीतलमयी श्रीवासुदेव भगवान् की मूर्ति देख पड़ती है।

श्रीरङ्गजी की कृष्ण पाषाणमय ६ फीट से अधिक लम्बी चतुर्भुज मूर्ति शेष पर शयन करती है। उनका किरीट, चरण, हाथ सब सुनहरे हैं। वह बहुमूल्य भूषण पहिने हुए हैं। उनके निकट ही श्रीलक्ष्मीजी और विभीषण बैठे हैं और श्रीदेवी, भूदेवी, लीलादेवी की ताम्रमयी तीन उत्सव मूर्तियाँ खड़ी हैं। मन्दिर में दर्शकों की भीड़ लगी रहती है। ख़ास मन्दिर एक कोठरी के समान छोटा है। कोई-कोई यात्री वहाँ अटका चढ़ाते हैं। मन्दिर के ख़जाने में सोना, चाँदी, पन्ना, हीरा, लाल इत्यादि रत्नों से बने हुए लाखों रुपयों के देव-भूषण और पात्र हैं। मत्स्यपुराण, पद्मपुराण और बाल्मीकि रामायण आदि ग्रंथों में श्रीरङ्गम और कावेरी नदी का माहात्म्य वर्णित है। श्रीरङ्ग माहात्म्य में इस पवित्र तीर्थ की बड़ी रोचक कथा है। संक्षेप में यह है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण को श्रीरङ्गधाम दे दिया था। विभीषण ने राक्षसों के सहित श्रीरङ्गधाम को लेकर अयोध्या से प्रस्थान किया और दक्षिण देश में पहुँच कर चन्द्रपुष्करणी के तट के अनन्त पीठ पर उस (धाम) को रक्खा। वहाँ के तत्कालीन धर्मात्मा राजा धर्मवर्म्मा ने विभीषण का अतिथि-सत्कार किया। विभीषण वहाँ से चलने के समय जब श्रीरङ्ग के विमान अर्थात् मन्दिर को उठाने लगा, तब किसी प्रकार से वह नहीं उठ सका, उस समय वह दुखी होकर श्रीरङ्गजी के चरणों पर गिर पड़ा। रङ्गजी बोले—हे विभीषण! कावेरी नदी और चन्द्रपुष्करणी के समीप यह मनोहर तथा पवित्र देश है। यहाँ का राजा धर्मवर्म्मा हमारा परम भक्त है और मैंने पूर्वकाल में कावेरी को वर दिया था कि तुम्हारे मध्य में हमारा रङ्गधाम बसेगा—इसलिये तुम लङ्का में चले जाओ। हम तुम्हारी ओर मुख करके शयन करेंगे। तब विभीषण लङ्का को चले गये।

जम्बुकेश्वर—

श्रीरङ्गम् के मन्दिर से १ मील पूर्व श्रीरङ्गम् के टापू के भीतर मद्रास हाते के त्रिचनापल्ली ज़िले में जम्बुकेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह मन्दिर शिल्पकारी और मनोज्ञता में श्रीरङ्गजी के बड़े मन्दिर का मुकाबिला कर रहा है। मन्दिर का विस्तार १०० बीघे से अधिक का होगा। मन्दिर के ३ चौगान हैं। पहिले घेरे को फाटक का रास्ता, जिससे मन्दिर के पहिले आँगन में प्रवेश करना होता है, ४०० स्तम्भ वाले मण्डप को सीधा चला गया है। फाटक के दाहिने ४ फ़ीट ऊँचे पत्थर पर तामिल अक्षरों का एक लम्बा लेख है। आँगन में दाहिनी ओर अर्थात् दक्षिण में एक तेप्याकुलम नामक प्रसिद्ध सरोवर है। जिसमें झरने का पानी गिरता है। सरोवर के मध्य में एक मण्डप और दक्षिण पूर्व तथा उत्तर बगल में दो मंज़िला दालान बना हुआ है। मन्दिर के दूसरे आँगन में ७६६ स्तम्भों का मण्डप और एक छोटा-सा सरोवर है। जिसके बगलों में स्तम्भ लगे हैं। आँगन के दो तरफ़ दो गोपुर हैं। मन्दिर के पाँच घेरे हैं।

चौथे घेरे में एक छोटा-सा सरोवर और मन्दिर है, वहाँ पर प्रतिवर्ष श्रीरङ्गजी के मन्दिर से उत्सव मूर्तियों की सवारी जाती है। पाँचवें घेरे में जिसके पश्चिम बगल पर एक छोटा-सा गोपुर है। मकानों की ४ सड़कें हैं। जम्बुकेश्वर शिवलिङ्ग के पास हमेशा एक हाथ से अधिक जल रहता है। शिवलिंग के ऊपर का भाग पानी के ऊपर देख पड़ता है। मन्दिर का पानी मोरी द्वारा बाहर निकला करता है। जम्बुकेश्वर के पीछे चबूतरे पर जम्बु का वृक्ष है। जम्बुकेश्वर शिवलिंग दक्षिण के ५ प्रसिद्ध शिवलिंगों में से एक है।

वे पाँच ये हैं—१–शिवकाञ्ची में एकामेश्वर पृथ्वी-लिङ्ग, २–जम्बुकेश्वर जललिङ्ग, ३–दक्षिणी आरकाट ज़िले में तिरूवन्नामलई क़स्बे के पास की पहाड़ी पर अग्नि लिङ्ग, ४–कालहस्ती में कालहस्तीश्वर वायुलिङ्ग और ५–चिदम्बर में नटेश आकाशलिङ्ग। जम्बुकेश्वर का मन्दिर सत्रहवीं सदी के आरम्भ का बना हुआ है। इसके खर्च के लिये लगभग १०००० रुपया वार्षिक आय है।

मदुरा—

तिरूचनापल्ली जंकशन से ६६ मील और मद्रास से ३४५ मील दक्षिण-पश्चिम मदुरा का रेलवे स्टेशन है। वेगा नदी के दक्षिण किनारे पर ज़िले का सदर स्थान और ज़िले का प्रधान कस्बा मदुरा है। संस्कृत साहित्य में इस का नाम मधुरा भी आता है। वेगा नदी के पास लाला छत्रम् नामक धर्मशाला है, जिसमें रामेश्वर के यात्री टिकते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी धर्मशालायें हैं। मदुरा शहर में सुन्दर पगड़ियाँ जिनके किनारों पर सुनहला काम बनता है और एक अजीव प्रकार के लाल कपड़े तैयार होते हैं। एक अच्छी सुन्दर सड़क मदुरा क़स्बे से पूर्वोत्तर त्रिचनापल्ली और विलीपुरम होकर मद्रास शहर को और दक्षिण-पश्चिम मनिपार्ची होकर कन्याकुमारी के पास तक गई है। मीनाक्षी देवी और सुन्दरेश्वर शिव का मन्दिर, रेलवे स्टेशन से क़रीब एक मील पश्चिम ८४५ फ़ीट लम्बा और ७२५ फ़ीट चौड़ा अर्थात् लगभग २२ बीघे में यह मन्दिर है। यह मन्दिर अत्यन्त विशालकाय और देखने योग्य है। मन्दिर के दो भाग हैं, दक्षिण के भाग में मीनाक्षी देवी का और उत्तर के भाग में सुन्दरेश्वर शिव का मन्दिर पत्थर का है। जिसमें संगतराशी का उत्तम काम बना हुआ है।

मीनाक्षी के मन्दिर के फाटक से अष्टलक्ष्मी मण्डपम् होकर रास्ता गया है। दोनों तरफ़ छत को थामती हुई लक्ष्मी की ८ प्रतिमा हैं। इसी कारण उसी का नाम 'अष्टमण्डपम्' है। मन्दिर के अन्दर आंगन में स्वर्ण पुष्करणी नामक सुन्दर तालाब है। जिसमें उत्सव मूर्त्तियाँ बेड़े में बैठ कर घुमाई जाती हैं। तालाब के चारों ओर मेहराबदार मण्डपम् और पश्चिमोत्तर बगल पर घण्टा घर है। छत के नीचे रास्ते के दोनों बगलों में दिलेर सूरतों के साथ १२ स्तम्भ हैं। जिनमें से ६ दक्षिणी सिंह हैं। उनके बीच-बीच में पांचों पाण्डवों की प्रतिमा हैं। घेरे के पश्चिम भाग में दक्षिण वाले बड़े गोपुर से पश्चिमोत्तर मीनाक्षी का निज मन्दिर है। कई देवड़ी के भीतर मीनाक्षी की श्याम वर्ण सुन्दर मूर्त्ति पूर्व मुख होकर खड़ी है। मन्दिर में कई देव मूर्त्तियाँ हैं, प्रकाश के लिये सर्वदा दीपक जलते रहते हैं। मन्दिर के आगे सोने के मुलम्मे का एक बड़ा स्तम्भ है। सुनहले स्तम्भ से उत्तर सुन्दरेश्वर शिव के मन्दिर के घेरे का छोटा गोपुर है। मन्दिर के बगल वाले मन्दिर में बहुत से देवताओं और ऋषियों की देव मूर्त्तियाँ हैं। उस मन्दिर के पास ही कमरों में मीनाक्षी और सुन्दरेश्वर शिव के बेश-क़ीमती बाहन रक्खे हुए हैं। पश्चिम वाले गोपुर के पूर्व सुन्दरेश्वर शिव का निज मन्दिर है। कई ड्योढ़ी के भीतर उस मन्दिर के पश्चिम भाग में बड़े अर्घे के ऊपर सुन्दरेश्वर महादेव का शिवलिङ्ग है। लिङ्ग के पास दिन रात बहुत से दीपक जलते रहते हैं। मन्दिर में कई अन्य देवता भी हैं। मन्दिर के द्वार पर एक बड़ा सुनहला स्तम्भ है। बड़े मन्दिर के पूर्व तिरूमलई नायक का बनवाया हुआ एक विशाल दर्शनीय मण्डप है। कहा जाता है कि इसके बनाने में १०००००० इष्टर्लिङ्ग खर्च पड़ा था। तिरूमलई नायक महल भी देखने योग्य है।

तेप्पकुलम्—

तेप्पकुलम् का अर्थ तामिल भाषा में बेड़ा का तालाब है, मदुरा के रेलवे स्टेशन से ३ मील पूर्व रामेश्वर के मार्ग में वेगा नदी के उत्तर १२०० गज लम्बा और इतना ही चौड़ा यह तालाब है, तालाब

के चारों ओर पत्थर के घाट, तथा सड़क, मध्य में मोरव्वा टापू पर एक शिखरदार बड़ा मन्दिर और प्रत्येक कौने पर एक छोटा मंदिर है। टापू पर सुन्दर वाटिका लगी है। तालाब में सर्वदा पानी रहता है। प्रतिवर्ष उत्सव के समय उस तालाब के किनारे एक लाख दीप जलाये जाते हैं। उसी समय मदुरा के बड़े मन्दिर की उत्सव मूर्त्तियों को मन्दिर से लेजाकर तालाब में बेड़े पर घुमाते हैं। महाभारत, वाल्मीकि रामायण और आदि पुराण आदि में मदुरा का इतिहास और माहात्म्य वर्णित है।

रामनाद—

मदुरा से रामेश्वर को जाने वाले यात्रियों को रामनाद रास्ते में मिलता है। मदुरा से रामनाद तक ६७ मील अच्छी सड़क है। आगे का मार्ग साफ़ नहीं है। वेगा नदी के दाहिने से तुपति राजाओं की राजधानी रामनाद एक क़स्बा है। यह स्थान कोई तीर्थ विशेष नहीं है। यहाँ पर रामेश्वर को जाने वाले यात्री विश्राम करते हैं। रामनाद क़स्बे में राजा का महल, एक मिशन और कई एक धर्मशालायें हैं। यात्रियों के ठहरने के लिये यहाँ अच्छी सुविधा है।

रामेश्वर—

रामनाद क़स्बे से २३ मील और मदुरा से ६० मील दक्षिण पूर्व समुद्र के पास हरवोला की खाड़ी है। जिसको 'बेताल मण्डपम्' भी कहते हैं। उससे पूर्व मद्रास हाते के मदुपा ज़िले के रामनाद की ज़मींदारी के अन्तर्गत मनार की खाड़ी में रामेश्वर नामक टापू है। जिसका नाम सेतुबन्ध खण्ड में गन्धमादन पर्वत लिखा हुआ है। टापू उत्तर से दक्षिण को लगभग ११ मील लम्बा और पूर्व से पश्चिम को ७ मील चौड़ा है। उस बालूदार टापू में बबूल, ताड़ और नारियल के अनेक बाग़ तथा बहुत से वृक्ष लगे हुए हैं। टापू के निवासी जिनमें खास कर ब्राह्मण तथा उनके नौकर लोग हैं। ये लोग रामेश्वर के मन्दिर की आमदनी से अपना निर्वाह करते हैं। टापू के उत्तरीय भाग के पश्चिम किनारे पर पाँवन सब डिवीजन और पूर्व के किनारे की ऊँची भूमि पर श्रीरामेश्वर पुरी है। जिसके बड़े मन्दिर से दक्षिण ओर ३ मील घेरे की मीठे पानी की झील है। हरवोला की खाड़ी से ३ मील पूर्वोत्तर रामेश्वर के टापू में पाँवन बस्ती है। यहाँ के निवासी ख़ास कर मांझी डुबुधा, तथा अन्य सामुद्रिक पेशे वाले भी हैं। यात्री लोग खाड़ी में नावों में बैठ कर पांवन उतरते हैं। पांवन में लगभग १०० फ़ीट ऊँचा लाईटहाउस, कचहरी, धर्मशाला और एक भैरवीजी का मन्दिर है। वहाँ पर समुद्र के तीर पर भाँति--भाँति की सामुद्रिक वस्तुएँ देखने में आती हैं। पांवन के आमने-सामने मनार की खाड़ी के पश्चिम किनारे पर हनुमानजी का मन्दिर है। पांवन के पास से हनुमानजी के मन्दिर तक खाड़ी के आर--पार जल के ऊपर बांध के समान पत्थर की एक लकीर है। पानी में थोड़ी दूर तक लकीर नहीं है। उसी के रास्ते समुद्र की नाव आदि आते जाते हैं। सीलोन [लङ्का] जाने आने वाले अग्निवोट पांवन में मुसाफ़िरों को चढ़ाते उतारते हैं। रामेश्वर के यात्रियों में से कोई--कोई तो पांवन के पास अग्निवोट में चढ़ कर उससे पूर्वोत्तर भाग पट्टनम में उतर कर रेलगाड़ी को चढ़ते हैं। अग्निवोट के चढ़ने तथा उतरने में यात्रियों को कुछ क्लेश होता है। इस लिए रामेश्वर के यात्री प्रायः मदुरा होकर ही पांवन जाते हैं। कोई--कोई यात्री रामेश्वर से लौटने पर पांवन से लगभग ८० मील दक्षिण--पश्चिम नाव द्वारा तुतिकुडी में जाकर रेल में चढ़ते हैं।

पांवन से ७ मील पूर्व रामेश्वर टापू के पूर्व किनारे पर भारतवर्ष के प्रसिद्ध चार धामों में से दक्षिण का धाम श्रीरामेश्वर की बस्ती है। पांवन से वहाँ तक तांगे और बैलगाड़ी की सड़क बनी हुई है। यहाँ का बाज़ार अच्छा है, सभी आवश्यकीय वस्तुयें मिलती हैं, किन्तु मँहगी। यहाँ के ६ पैसे का एक आना होता है, यहां पर रामनाद के

राजा का मकान तथा कई धर्मशालायें और सदावर्त भी लगा है। यहाँ पर नारियल को पत्तल और जल भरने के लिये ताड़ के डोल दर्शनीय हैं। जो बीनकर अथवा सींकर बनाये जाते हैं। नारियल और ताड़ के पत्तों से मकान भी छाये जाते हैं। वहां राजा शिवबक्स बागला की धर्मशाला बड़ी है। उसमें यात्रियों को ठहरने में सुविधा रहती है।

लक्ष्मण तीर्थ—रामेश्वर मन्दिर से पौन मील पश्चिम पावन की सड़क के दक्षिण बगल लक्ष्मण तीर्थ में लक्ष्मण कुण्ड नामक एक उत्तम सरोवर है। सरोवर रमणीक है। ईशान कोण के पास एक मन्दिर में लक्ष्मणेश्वर शिवजी हैं। रामेश्वर के यात्री प्रथम लक्ष्मण कुण्ड में स्नान करके लक्ष्मणेश्वर को तीर्थ भेंट करते हैं। जिसका पिता मर गया है, वह वहाँ मुंडन कराकर पिण्डदान करता है। पितरजीवि पुरुष मुण्डन करवाकर स्नान दर्शन करते हैं।

रामतीर्थ—

लक्ष्मणकुण्ड से पूर्व उसी सड़क के दक्षिण रामतीर्थ में रामकुण्ड नाम का पक्का सरोवर है। यात्रीगण इसमें स्नान मार्जनादि करते हैं।

राम-झरोखा—

रामेश्वर के मन्दिर से १ मील उत्तर रामझरोखा नामक स्थान है। यात्रीगण बालू के रास्ते से पैदल ही वहाँ जाते हैं। वहाँ एक टीले पर दो मञ्जिला छोटा दालान है। जिसमें श्रीरामचन्द्रजी के चरण-चिन्हों की पूजा होती है। वहां से धनुषतीर्थ और तीन ओर समुद्र देख पड़ता है। टीले के उत्तर एक छोटे कुण्ड में थोड़ा जल रहता है।

सुग्रीव-तीर्थ—

रामेश्वर के मन्दिर और राम-झरोखे के बीच में सुग्रीव नामक सरोवर है। जिसके किनारे पर एक छोटे से मन्दिर में सुग्रीव की मूर्त्ति है। सरोवर में थोड़ा पानी है। मन्दिर में कोई पुजारी नहीं रहता है।

ब्रह्म कुंड—रामेश्वरपुरी की परिक्रमा ५ मील की है। उस परिक्रमा में हनुमान कुण्ड और उसके पश्चात समुद्र की रेती में ब्रह्मकुण्ड मिलता है। वहाँ पर स्वाभाविक विभूति (भस्म) होती है। यात्री लोग उस भस्मी को अपने घर ले जाते हैं। ब्रह्मकुण्ड के पास महिष-मर्दिनी देवी का मन्दिर है। विजयादशमी के दिन गणेश, रामेश्वर और स्कन्द की धातुमयी उत्सव मूर्त्तियाँ रामेश्वर के मन्दिर से विमानों में बैठाकर ब्रह्मकुण्ड पर लाई जाती हैं। यहाँ पर शमी वृक्ष की पूजा भी होती है।

सीता कोटि—रामेश्वर पुरी से चार-पाँच मील दूर समुद्र के किनारे पर सीता कोटि नामक तीर्थ है। यहाँ के कूप का जल बहुत मीठा है।

धनुषकोटि—रामेश्वर पुरी से करीब १२ मील दक्षिण धनुष तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। रामेश्वर पुरी से खुश्की का, पैदल का, या बैलगाड़ी का रास्ता दूसरा रास्ता समुद्र की नाव द्वारा भी जाया जाता है। खुश्की के रास्ते से रामेश्वरपुरी से ७ मील दक्षिण जाने पर एक छोटी धर्मशाला मिलती है। जिससे २ मील आगे एक सेठ की धर्मशाला है, जहाँ सदावर्त लगा है और दूकानें भी हैं। इससे ३ मील आगे धनुष तीर्थ है। धनुष तीर्थमें जमीन की नोंक पानी के भीतर चली गयी है। उसके एक बगल के समुद्र को महोदधि और दूसरी ओर के समुद्र को रत्नाकर कहते हैं। बीच में बालू का मैदान है। यात्रीगण समुद्र में स्नान करके अपने पण्डे के सुनहरे छोटे धनुष को जो वह अपने साथ ले जाते हैं, पूजन करके सेतु की प्रार्थना करते हैं। ग्रहण आदि पर्वों में यहाँ स्नान का मेला लगता है।

श्रीरामेश्वर के मन्दिर का नक़शा ।
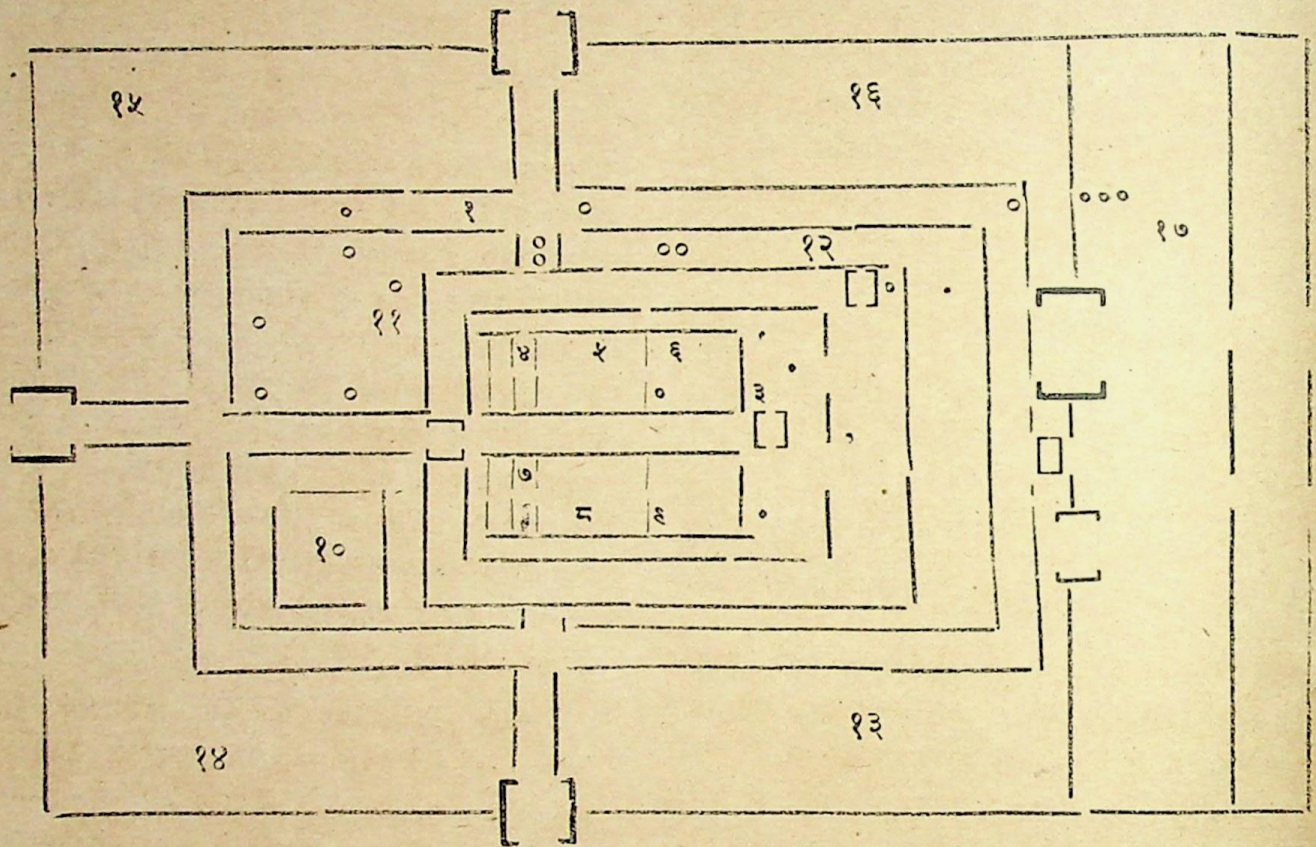
श्रीरामेश्वर का मन्दिर —

रामेश्वर वस्ती के पूर्व समुद्र के किनारे पर लगभग ६०० फीट लम्बा और ६०० फीट चौड़ी अर्थात् २० बीघे भूमि पर रामेश्वर का पत्थर का मन्दिर है। मन्दिर के चारों ओर २२ फीट ऊँची दीवार है, जिसमें तीन ओर एक-एक और पूर्व ओर दो गोपुर हैं। जिसमें से केवल पश्चिम वाला सात मञ्जिला गोपुर (जो लगभग १०० फीट ऊंचा है) तैयार हुआ है। उत्तर और दक्षिण वाला गोपुर जो तैयार नहीं है, दीवार से थोड़े ही ऊंचा है। गोपुरों और भीतर की दीवारों में नकाशी का विचित्र काम और बहुत-सी मूर्तियाँ बनी हुई है। पश्चिम वाले गोपुर के फाटक के भीतर रामेश्वरजी के चित्रपट और रुद्राक्ष की माला बिकती हैं। मन्दिर के भीतर की पाटी हुई सड़कें (जो लगभग ४००० फीट लम्बी और २० फीट से ३० फीट तक चौड़ी हैं) दर्शकों के मनको चकित कर देती हैं और मन्दिर के वैभव को भी जनाती हैं। ज़मीन से ३० फीट ऊपर सड़कों की छत हैं। दरवाज़े के रास्ते और छतों में ४० फीट लम्बे पत्थर लगे हैं। रात्रि में सड़कों की छतों में सैकड़ों लालटेन जलती हैं। नीचे लिखे हुए नम्बरों के अनुसार मन्दिर का नक़शा(जो ऊपर दिया है) देखने पर मन्दिर का परिचय भली-भाँति ज्ञात होजाता है—

नम्बर १—यह मन्दिर के घेरे के भीतर प्रधान स्थानों और नम्बर २ की सड़कों को घेरती हुई मन्दिर की प्रधान सड़क है! पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के गोपुरों से एक-एक सड़क उस प्रधान सड़क को काटती हुई भीतर को गई। नम्बर १ की

सड़क के दोनों तरफ ४ फीट की ऊंचाई पर दोहरा दालान है। जिनमें बड़े-बड़े खम्भे लगे हुए हैं। द्वार से भीतर एक जगह दाहिने खम्भों पर राजा सेतुपति और उनके परिवार के कई आदमियों के चित्र खुदे हुए हैं। उत्सव के समय जब रामेश्वरजी की प्रतिनिधि मूर्त्ति मन्दिर की परिक्रमा करती है। तब वह इस स्थान पर ठहरती है। उस समय वहां राजा की ओर से भगवान् की आरती आदि होती है। पश्चात् राजा के चित्र को प्रसाद मिलता है। उत्तर की सड़क में पश्चिम ओर ब्रह्महत्या विमोचन नामक कूप, मध्य में गङ्गा तीर्थ और यमुना तीर्थ नामक दो कूप और इनसे पूर्व गयातीर्थएक कूप है। सड़क पूर्व छोर पर दक्षिण मुख के मन्दिर में स्कन्द आदि की धातुमयी उत्सव मूर्त्तियाँ रहती हैं। इस सड़क से रामेश्वर और पार्वती के निज मन्दिरों की तीसरी परिक्रमा होती है।

नम्बर २—यह सड़क रामेश्वर और पार्वती के मन्दिरों की दूसरी परिक्रमा की जगह है। सड़क के दोनों बगलों में खम्भों की कतार और ऊपर छत है। पश्चिम के गोपुर की सड़क से प्रवेश करने पर सामने छोटे मन्दिर में गणेशजी की विशाल मूर्त्ति का दर्शन होता है। ईशान कोण में छोटे मन्दिर में शिव और पार्वती की धातुमयी उत्सव मूर्त्तियाँ हैं। जिसके पूर्व शंखतीर्थ एक कूप है। पूर्व की सड़क पर चक्रतीर्थ नामक कूप है।

नम्बर ३—यह रामेश्वर और पार्वती के मंदिर की पहली परिक्रमा है। पूर्व ओर रामेश्वरजी के निज मन्दिर के सामने सोने का मुलम्मा किया हुआ बड़ा स्तम्भ है। जिसके पास १३ फीट ऊंचा ८ फीट लम्बा और ६ फीट चौड़ा बड़ा नन्दी (बैल) बैठा है। यह नन्दी भारत के समस्त नन्दियों से बड़ा है। नन्दी के सामने रत्नाकर और महोदधि दोनों समुद्रों की और हरबोला की खाड़ी को प्रतिमा हैं। नन्दी के वाम पार्श्व के मण्डप में बाल हनुमान की मूर्त्ति है। नन्दी से उत्तर कोटि तीर्थ नामक कूप और दक्षिण शिवतीर्थ नामक छोटा तालाब है। जिसके दक्षिण अमृततीर्थ नामक कूप है।

नम्बर ४—श्रीरामेश्वरजी का निज मन्दिर १२० फीट ऊंचा है। तीन ड्योढ़ी के भीतर शिव के प्रख्यात द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक श्रीरामेश्वर शिवलिंग है। उनके ऊपर शेषजी अपनी फणी से छाया करते हैं। मन्दिर में सर्व साधारण यात्री नहीं जा सकते, फिर भी जगमोहन से अरघा समेत श्रीरामेश्वरजी का अत्युत्तम रीति से दर्शन होता है। रात्रि में पचासों दीप जलते हैं और आरती होती रहती हैं। जिसके प्रकाश से श्रीरामेश्वरजी का भली-भाँति दर्शन होता है। यहाँ पर कुछ भेंट देने पर गङ्गाजल चढ़ाने का टिकिट मिलता है। गङ्गाजल मन्दिर के अत्रेक द्वारा ही चढ़ाया जाता है। जिनके पास गङ्गाजल नहीं रहता वे अपने पण्डा से खरीद लेते हैं।

नम्बर ५—रामेश्वर का बड़ा जगमोहन है, जिसमें खड़े होकर यात्रीगण श्रीरामेश्वरजी का दर्शन करते हैं। जगमोहन में कई देव मूर्त्तियों के दर्शन हैं। जगमोहन से उत्तर काशी विश्वेश्वर का मन्दिर है। यहाँ अन्नपूर्णाजी की भी मूर्त्ति है और भोग-राग का अच्छा प्रबन्ध है। काशी विश्वेश्वर शिव-लिङ्ग को हनुमानजी ने स्थापित किया था (पूरा चरित्र स्कन्द पुराण के सेतुबन्ध खण्ड के ४४-४६ वें अध्याय में देखो) भगवान् राम की आज्ञा है, कि हनुमान के लाये हुए लिङ्ग (काशी विश्वेश्वर) का दर्शन करके तब श्रीरामेश्वर का दर्शन करना चाहिये। यात्रीगण ऐसा ही करते हैं।

नम्बर ६—जगमोहन के पूर्व नीची भूमि पर एक आँगन है, जिसके नैर्ऋत्य कोण के पास सर्व तीर्थ नामक कूप है।

नम्बर ७—पार्वतीजी का मन्दिर है। तीन ड्योढ़ी के भीतर बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों से सुशोभित पार्वतीजी की सुन्दर मूर्त्ति है। मन्दिर

का पुजारी यात्री की ओर से दक्षिणा पाने पर पार्वतीजी की आरती कर देता है। यहाँ भी बहुत से दीपक जलते रहते हैं।

नम्बर ८—पार्वतीजी के मन्दिर का बड़ा जगमोहन है, जिसमें खड़े होकर यात्रीगण पार्वतीजी का दर्शन करते हैं। जगमोहन के उत्तर भाग में एक घेरे के भीतर सुनहले झूले पर पार्वतीजी की सोने की छोटी सी मूर्त्ति है। झूलन के चारों चोब चाँदी के बने हैं। जगमोहन के दूसरे हिस्से में कई देव मूर्त्तियाँ हैं।

नम्बर ९—जगमोहन के पूर्व के आँगन में एक मण्डप और एक ऊँचा स्तम्भ है, स्तम्भ पर सोने का मुलम्मा होरहा है।

नम्बर १०—माधव तीर्थ नामक सरोवर है। चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। माधव तीर्थ के पास सेतु माधवजी की दर्शनीय मूर्ति है।

नम्बर ११—में गवपतीर्थ, गवाक्षतीर्थ, नलतीर्थ, नीलतीर्थ और गन्धमादन तीर्थ नामक ५ कूप क्रम से मिलते हैं और पाँच छः देव मन्दिर भी हैं।

नम्बर १२—के उत्तर के भाग में छोटे दरवाज़े के पास सूर्य्य तीर्थ और चन्द्रतीर्थ दो कूप हैं।

नम्बर १३—में कोई प्रसिद्ध वस्तु नहीं है।

नम्बर १४—में नारियल आदि के बहुत से वृक्ष हैं और उसके पश्चिम भाग में एक शिखरदार मन्दिर भी है।

नम्बर १५—में नारियल आदि के बहुत वृक्ष हैं, पश्चिम भाग में एक शिखरदार शिव मन्दिर है।

नम्बर १६—में मकान और अनेक वृक्ष हैं।

नम्बर १७—के उत्तर हिस्से में सरस्वती तीर्थ, सावित्री तीर्थ और गायत्री तीर्थ नाम के ३ कूप और दूसरी जगहों में कई मण्डप हैं, दोनों गोपुरों के मध्य में लक्ष्मी तीर्थ नामक एक बावली है।

नं० १८—में दोनों गोपुरों के सामने दो दरवाज़े हैं, उसका दक्षिण भाग उजाड़ है। श्रीरामेश्वरजी के वृहद् मन्दिर में उपर्युक्त देव स्थानों के अतिरिक्त स्थान-स्थान में श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, साक्षी-गोपाल, जनार्दन, वेङ्कटेश, कोटि देवता, कोटेश्वर महादेव, गणेश, कार्त्तवीर्य, महावीर, नवग्रह आदि देव मूर्त्तियाँ, रामेश्वरजी का भण्डार, महसूल का दफ्तर और मन्दिर के अधिकारियों के बहुत से स्थान बने हैं।

अग्नि तीर्थ—

श्रीरामेश्वरजी के मन्दिर के पूर्व के समुद्र के एक घाट को अग्नितीर्थ कहते हैं। यात्री यहाँ स्नान करते हैं।

अगस्त्य तीर्थ—

मन्दिर के ईशान दिशा में चार-पाँच सौ गज दूर अगस्त्य तीर्थ नाम की एक बावली है। स्कन्द पुराण के सेतुबन्ध खण्ड में रामेश्वर से देवी पत्तन तक जो २४ तीर्थ लिखे हैं। ऊपर उन्हीं चौबीस तीर्थों का वर्णन हुआ है। भगवान् रामेश्वर की सेवा पूजा के लिये मन्दिर से ५७ गांव लगे हुए हैं, जिनकी वार्षिक आय ४५००० रुपया है। ये रामनाद के राजा ने लगाये हैं। आज कल मन्दिर का प्रबन्ध गवर्नमेन्ट ने मदुरा के जंगम बाबा के अधीन किया है। रामेश्वर का पूर्ण इतिहास और माहात्म्य प्रायः सभी पुराणों में वर्णित है। विशेष कर वाल्मीकि रामायण और शिव पुराण आदि में वर्णित है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

"जो रामेश्वर दर्शन करहीं।
बिनु प्रयास भवसागर तरहीं॥"

देवी पत्तन—

रामेश्वर टापू से पश्चिम के हरवोला की खाड़ी से लगभग २० मील पश्चिम समुद्र के तीर सेतुमूल के पास देवी पत्तन एक तीर्थ है। कोई-कोई यात्री पांवन से समुद्र की नाव द्वारा देवी पत्तन और दर्भशयन तीर्थ होकर तुतिकुड़ी में जाकर रेलगाड़ी में चढ़ जाते हैं। कुछ लोग मदुरा क़स्बे और हरवोला की खाड़ी के बीच के परमगुड़ी के चट्टी से देवी पत्तन जाते हैं। वहाँ से लगभग २० मील

दक्षिण कुछ पूर्व देवी पत्तन है। देवी पत्तन सेतुबन्ध रामेश्वर का क्षेत्र माना जाता है। वहाँ पर सुन्दरी देवी और तिलकेश्वर महादेव का मन्दिर है। देवीपत्तन के पूर्वोत्तर समुद्र की खाड़ी में नव पाषाण अर्थात् नवग्रह हैं, इनको श्रीरामचन्द्रजी ने सेतु बाँधने के समय स्थापन किया था। उन्हीं के पास समुद्र के जल में रामचन्द्रजी की चरण पादुका, किनारे पर चक्रतीर्थ और वैङ्कटेश की चतुर्भुजी मूर्त्ति हैं। यात्रीगण चक्रतीर्थ में स्नान करके वहाँ के देवताओं का दर्शन करते हैं। भगवान् राम ने शिवजी की आज्ञा से देवी पत्तन के समीप में ही सेतुबन्ध का शिला न्यास किया था, देवी पत्तन से लङ्का तक १०० योजन लम्बा और १० योजन चौड़ा सेतु पाँच दिन में तैयार हुआ था। देवी पत्तन से सेतु का आरम्भ हुआ—इस कारण देवी पत्तन को सेतु मूल भी कहा जाता है। स्कन्द पुराण में इसका माहात्म्य वर्णित है।

दर्भशयन-- देवी पत्तन से लगभग २५ मील पश्चिम कुछ दक्षिण समुद्र के किनारे से ३ मील दूर दर्भशयन तीर्थ है। यहाँ के प्रधान देवता शेषशायी चतुर्भुज भगवान् हैं। इनकी मूर्त्ति मनुष्य के समान बड़ी है। मन्दिर के भीतर अनेक देव-मूर्त्तियाँ हैं। कहा जाता है कि भगवान् राम ने इसी स्थान पर कुशा के आशन पर बैठकर समुद्र से पार जाने के लिये मार्ग मांगा था। इसी कारण इसका नाम दर्भशयन हुआ।

तिरुनलवेली— तुतिकुड़ी के रेलवे स्टेशन से १८ मील पश्चिमोत्तर (मदुरा से ८१ मील दक्षिण) ताम्रपर्णी नदी के बाँये किनारे से १॥ मील पर यह क़सबा है। जिसको आजकल तीन्नेवेली कहते हैं। यहाँ पर एक बहुत बड़ा प्राचीन शिव मन्दिर है। मन्दिर १६ बीघे ज़मीन में बना है। यह मन्दिर मदुरा के बड़े मन्दिर के समान है। मन्दिर दर्शनीय है।

पाप-नाशन तीर्थ--पालम कोटा क़सबे से २६ मील मद्रास हाते के तिरुनलवेली ज़िले के अम्बासमुद्रम् नामक तालुक में अम्बासमुद्रम् गाँव से ६ मील पश्चिम ताम्रपर्णी नदी के अन्त वाले जलप्रपात के पास पाप-नाशन एक ग्राम है। यहाँ ताम्रपर्णी नदी पहाड़ी के ऊपर से नीचे गिरती है। जल प्रपात के समीप एक पूज्य मन्दिर है। यात्रीगण यहाँ स्नान करके मन्दिर के दर्शन और सेवा पूजा करते हैं। ताम्रपर्णी के स्नान का माहात्म्य पुराणों में वर्णित है।

तोताद्रि—

तिरुनलवेली के रेलवे स्टेशन से लगभग ४० मील दूर श्रीरामानुज सम्प्रदाय की मूल गद्दी का स्थान तोताद्रि है। यहाँ तोताद्रिनाथ भगवान् का बड़ा मन्दिर, क्षीराब्धि पुष्करिणी और रामानुज सम्प्रदाय की गद्दी के दर्शन हैं। रामानुज संप्रदाय की प्रधान आठ-गद्दियों में से यह मूल गद्दी है। उनमें से तोताद्रि, मैलकोटा और बेंकटाचल गद्दियाँ विरक्तों की हैं। शेष पाँचों पर गृहस्थ आचार्य रहते हैं।

कुमारी तीर्थ—

तिरुनलवेली (तिन्नेवेली) के स्टेशन से साठ सत्तर मील दक्षिण हिन्दुस्तान के अन्त में उसके दक्षिण या नोंक के भीतर कुमारी अन्तरीप में समुद्र के निकट कुमारी नामक बस्ती है। कुमारी गांव में कुमारी देवी का बड़ा मन्दिर बना हुआ है। देवी के भोगराग में बड़ा ख़र्च होता है। देवी के भूषण भी बहुमूल्य हैं। यहाँ बहुत से यात्री गण दर्शन के लिये जाते हैं। इसी देवी के नाम पर इस अन्तरीप का नाम कुमारी अन्तरीप है। मत्स्य पुराण में लिखा है कि कुमारी तीर्थ के सङ्गम पर स्नान करने से पार्वतीजी का स्थान प्राप्त होता है।

तिरुवन्द्रम्—

तिरुमलवेली (तिन्नेवेली) के स्टेशन से साठ सत्तर मील पश्चिम कुछ दक्षिण पश्चिमी घाट के

समुद्र से २ मील दूर तिरुवन्दम् क़स्बा है, जिसको द्राविड़ लोग तिरुवन्दन पुरम् कहते हैं। यहाँ का रमणीक दृश्य देखने योग्य है, ऊँची दीवारों से घिरा हुआ तिरुवन्दम् का क़िला है। क़िले के भीतर अनेक दर्शनीय महल बने हुए हैं। पद्मनाभ नारायण का मन्दिर विशालकाय है। मन्दिर के बगलों में अनेक गोपुर बने हुए हैं। मन्दिर के भीतर भगवान् की विशाल मूर्त्ति सिंहासन पर शयन करती है। यात्री लोग मन्दिर के एक द्वार से भगवान् के मुख मण्डल का दूसरे द्वार से नाभि का और तीसरे द्वार से चरण का दर्शन करते हैं। भगवान् के भोगराग के लिये ७५ हजार रु० की आमदनी है। सेवा पूजा की तैयारी रही आती है। यहाँ के महाराज की ओर से मन्दिर की मरम्मत पर बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। पद्मनाभ से दस बारह मील पूर्व केशव भगवान् का एक विशाल मन्दिर है। पद्मनाभ की भाँति ये मूर्त्ति भी शयन करती है। इनके दर्शन भी पद्मनाभ की भाँति होते हैं।

सोमनाथपुर—

बङ्गलोर शहर के रेलवे स्टेशन से ४६ मील दक्षिण-पश्चिम मयूर का स्टेशन है। मयूर के पास शिवसा नदी पर, जिसको कदम्ब नदी भी कहते हैं, ७ मेहराबियों का एक पुल है और योग नृसिंह स्वामी तथा वरदपाज के दो बड़े मन्दिर हैं। मयूर से १२ मील दूर रामगिरि नामक पहाड़ के ऊपर कोदण्डराम स्वामी अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी का मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर सुग्रीव का मधुवन था। मयूर के स्टेशन से १७ मील दक्षिण बङ्गलोर से श्रीरङ्गपट्टनम् होकर कननूर जाने वाली सड़क के पास मैसूर राज्य में तालुक का सदर स्थान मड़वल्ली १२ मील दक्षिण पश्चिम मैसूर के राज्य में सोमनाथपुर गांव प्रसन्न चन्द केशव के मन्दिर होने के कारण प्रसिद्ध है। सोमनाथपुर में एक ही स्थान पर शिखरदार ३ बड़े मन्दिर हैं। मध्य में प्रसन्न चन्द केशव का, दक्षिण में गोपालजी का, और उत्तर में जनार्दन भगवान् का। मन्दिरों में नीचे से ऊपर तक शिल्पकारी का सुन्दर काम बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर बहुत सी टूटी-फूटी प्रतिमायें पड़ी हैं। दरवाज़े के पास के शिलालेख से ज्ञात होता है, कि हौसला वल्लाल वंश के सोमनाथ ने जो राज्य का बड़ा अफ़सर भी था, सन् १२७० ई० में इन मन्दिरों को बनवाया था। सोमनाथपुर में उजड़ा-पुजड़ा एक पुराना बड़ा शिव मन्दिर भी है।

शिव समुद्रम्—

मयूर रेलवे स्टेशन से १७ मील दक्षिण पडवल्ली गाँव और गाँव से १२ मील दक्षिण शिव समुद्रम् के जल प्रपात हैं। वहाँ कावेरी नदी की दो धारा होकर उत्तर को बहती हैं। दोनों धाराओं दक्षिण से उत्तर तक प्रायः ३ मील लम्बा और पौन मील चौड़ा शिव समुद्रम् नामक टापू बन गया है। यह टापू कोयम्बटूर ज़िले में है। दोनों धारायें टापू के उत्तरी छोर के पास ऊपर से लगभग २०० फ़ीट नीचे गिर कर एक में मिल जाती हैं। इन्हीं को जल प्रपात कहते हैं। धाराओं के अलग होने के स्थान से उनके मिल जाने का स्थान प्रायः ३०० फ़ीट नीचा है।

श्रीरङ्गनाथ का मन्दिर—

कावेरी नदी में श्रीरङ्गम के तीन टापू हैं—(१) मैसूर शहर के पास श्रीरङ्गपट्टनम् के टापू में आदि रङ्गम्। (२) शिव समुद्रम् के टापू में मध्य रङ्गम्। (३) त्रिचनापल्ली के पास श्रीरङ्गम टापू को अन्तरङ्गम् कहते हैं। शिव समुद्रम् के टापू में श्रीरङ्गनाथ भगवान् का मन्दिर है। विमान अर्थात् ख़ास मन्दिर में भगवान् पूर्व मुख करके भुजंग पर शयन करते हैं।

शिव समुद्रम् से दक्षिण विड़िगिरि रङ्ग नामक पर्वत पर चम्पकारण्य नामक क्षेत्र में श्रीनिवास भगवान् का मन्दिर और भार्गव नदी तीर्थ है। ऐसा प्रसिद्ध है कि श्रीपरशुरामजी ने अपनी मातृ-हत्या

की निवृत्ति के लिये यहां पर तप किया था। यहाँ चम्पक का पुराना वृक्ष है, जिस पर सर्वदा फूल फूलते हैं।

कावेरी के जल प्रपात—

शिव समुद्रम् टापू के उत्तर में, जैसा ऊपर लिखा है, दो जल प्रपात हैं। एक का नाम गगन-च्युत तीर्थ है, दूसरे का सप्तधारा तीर्थ है।

श्रीरङ्गपट्टनम् —

मैसूर शहर से ६ मील पूर्वोत्तर श्रीरङ्गपट्टनम् का रेलवे स्टेशन है। मैसूर राज्य में कावेरी के श्रीरङ्गपट्टनम् टापू पर श्रीरङ्गपट्टनम् नामक पवित्र क़स्बा है। श्रीरङ्गम नामक विष्णु की मूर्ति के नाम से उस टापू और क़स्बे का नाम ऐसा पड़ा है। इस स्थान में कावेरी के पश्चिम किनारे पर क़िला—और पूर्व किनारे के पास शहरतली के निकट लाल बाग़ है। इसमें टीपू सुलतान का बनवाया हुआ हैदरअली का मकबरा है। किवाड़ हाथी दांत के बने हुए हैं। क़िले में श्रीरङ्गनाथ स्वामी का पुराना मन्दिर है। इसमें श्रीरङ्गनाथ स्वामी की विशाल चतुर्भुज मूर्ति शेष नाग पर शयन करती हैं। श्रीरङ्ग पट्टनम् के पूर्व करिगट्ट नामक पहाड़ी के ऊपर श्रीनिवास भगवान् का मन्दिर है। श्रीरङ्गपट्टनम् से २४ मील पूर्व-दक्षिण कावेरी और कपिला के संगम के निकट तिरुमकूल नरसीपुर में गुञ्जार नरसिंह का मन्दिर है।

ऐसी कहावत है कि गौतम ऋषि ने कावेरी के टापू में रङ्गनाथ स्वामी का पूजन किया और उस स्थान का नाम श्रीरङ्गपट्टनम् रक्खा।

नंजन गुड़ी—

मैसूर रेलवे स्टेशन से १५ मील दक्षिण नंजन गुड़ी का स्टेशन है। मैसूर राज्य के चामुण्डा पहाड़ी से २ मील दूर कव्वानी और गुण्डल नदी के किनारे पर नंजन गुड़ी क़स्बा है। कनड़ी भाषा में नंजन का अर्थ विष पीने वाला अर्थात् शिवजी और गुड़ी का अर्थ नगर है। यहाँ पर ३८५ फ़ीट लम्बा और १६० फ़ीट चौड़ा जिसमें १४७ खम्भे लगे हैं, नजुड़ेश्वर शिव का बड़ा मन्दिर है। नजुड़े-श्वर को लोग नीलकण्ठ भी कहते हैं। मैसूर राज्य से इस मन्दिर को हज़ारों रुपये साल की जीविका बँधी है। मैसूर राज्य में यह बड़ा पवित्र स्थान है। यहाँ प्रति मास की पूर्णिमा को रथ यात्रा का उत्सव होता है। चैत्र और अगहन की रथ यात्रा के समय हज़ारों यात्रियों की भीड़ होती है।

हलेबीड़ के मन्दिर—

मैसूर राज्य के बेलूर ताल्लुके में, बानावार स्टेशन से २० मील दूर हलेबीड़ एक प्राचीन स्थान है, जिसमें पुराने मन्दिरों के चिन्ह तथा हौसलेश्वर तथा केदारेश्वर नामक दो मन्दिर हैं। मन्दिर में एक ओर हौसलेश्वर नामक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग और दूसरी ओर पार्वतीजी की सुन्दर प्रतिमा है। जगमोहन के आगे मण्डपम् में १६ फ़ीट लम्बा, ७ फ़ीट चौड़ा और १० फ़ीट चौड़ा एक नन्दी है। केदारेश्वर का मन्दिर पहिले से छोटा है, किन्तु इसकी कारीगरी बहुत बारीक और दर्शनीय है।

शृंगेरी मठ—

बिरूर के रेलवे स्टेशन से ६० मील पश्चिम, मैसूर राज्य के कदूर जिले में, तुंग नदी के बांये किनारे पर शृंगेरी एक अति पवित्र गाँव है। शृंगेरी से ६ मील पश्चिम शृंगगिरि, (जिसको लोग ऋषि शृंग भी कहते हैं) पहाड़ी है। इसी के नाम से गाँव का नाम शृंगेरी पड़ा। यहीं पर शृंगी ऋषि का जन्म हुआ था। यहाँ पर मल्लिका-र्जुन का शिव मन्दिर है। गाँव के पास एक टीले पर शारदा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। शृंगेरी के आस-पास चन्दन के बहुत वृक्ष हैं। छोटी इलायची, काली मिर्च और सुपाड़ी भी बहुत उत्पन्न होती हैं। यहाँ नृसिंहजी का एक मन्दिर है। मैसूर राज्य से यहाँ जीविका बँधी हुई है। शृंगेरी मठ में

श्रीशङ्कराचार्यजी की स्थापित की हुई गद्दी है। वर्ष में नवरात्रि आदि पर्वों पर यात्रियों की बड़ी भीड़ होती है।

शृंगेरी मठ की ४ शाखायें हैं—

(१) मैसूर राज्य में तुंगभद्रा नदी के तट पर कूड़ली गाँव में, (२) मैसूर राज्य के बंगलोर जिले के शिवगंगा गाँव में, (३) मद्रास हाते में बल्लारी जिले के किष्किन्धा विरूपाक्ष मन्दिर के पास, (४) बम्बई हाते के पूना शहर के पास संकेश्वर में।

हरिहर—

हुबली जंकशन से ८१ मील दक्षिण-पूर्व हरिहर का रेलवे स्टेशन है। मैसूर राज्य में, मैसूर राज्य और बम्बई हाते के अंग्रेजी जिले की सीमा के पास, तुंगभद्रा नदी के दाहिने किनारे पर हरिहर नामक बस्ती है। हरिहर के निकट तुंगभद्रा नदी पर सन् १८६८ का बना हुआ १४ मेहराबियों का एक सुन्दर पुल है। हरिहर पुराना क़स्बा है, यहाँ का वर्त्तमान मन्दिर सन् १२२३ का बना हुआ है। यह यह स्थान दक्षिण में बड़ा प्रसिद्ध है।

गोकर्ण-तीर्थ—

बम्बई हाते के कुमटा बन्दरगाह से १० मील उत्तर, समुद्र के किनारे बम्बई प्रान्त के किनारा जिले में गोकर्ण नाम का एक स्थान है जो एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ पर महाबलेश्वर नाम का शिवजी का द्राविडियन ढाँचे का बड़ा मन्दिर बना हुआ है। बड़े घेरे के भीतर महाबलेश्वर शिवजी का निज मन्दिर है। इसके आस-पास अनेक मन्दिर और गोपुर बने हुए हैं। मन्दिर में सर्वदा १०० से अधिक दीपक जलाये जाते हैं। भारत के सभी प्रान्तों के यात्री इस तीर्थ में आते हैं। प्रति वर्ष फाल्गुन की शिव रात्रि पर यहाँ बड़ा भारी मेला होता है। महाभारत, अध्यात्म रामायण, लिङ्गपुराण, पद्मपुराण, गरुड़पुराड़, वाराहपुराण आदि ग्रन्थों में इस तीर्थ की महिमा भली प्रकार वर्णन की है। स्कन्दपुराण में लिखा है, कि शिवजी कैलाश और मन्दराचल के समान गोकर्ण-क्षेत्र में भी सर्वदा निवास करते हैं। वहाँ महाबल नामक शिवलिङ्ग है, जिसको रावण ने बड़ा तप करके पाया था और गोकर्ण-क्षेत्र में स्थापित किया था। उस क्षेत्र में अगस्त्य, सनत्कुमार, अग्नि कामदेव, भद्रकाली, गरुड़, रावण, विभीषण आदि ने तप करके अपने अपने नाम से शिवलिङ्ग स्थापित किये हैं। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, स्कन्द, गणपति, दुर्गा आदि देवताओं के स्थान हैं। वहाँ के सब तीर्थों में कोटि तीर्थ मुख्य है। सब लिङ्गों में महाबल नामक लिंग अति प्रसिद्ध और सर्व श्रेष्ठ है। इस क्षेत्र में फाल्गुन की शिवरात्रि पर बेलपत्र से शिवजी का पूजन करने से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं। समुद्र किनारे ब्रह्महत्या आदि पापों को नाश करने वाला अति पवित्र गोकर्ण-तीर्थ है।

रत्नागिरि—

बम्बई हाते के दक्षिणी विभाग में रत्नागिरि का प्रसिद्ध बन्दरगाह और कस्बा है। यह बम्बई प्रान्त का जिला भी है। रत्नासुर दैत्य के नाम से क़स्बे का नाम रत्नागिरि पड़ा। वहां ऐसा प्रसिद्ध है कि शिवजी के अवतार ज्योतिबा ने रत्नासुर को मारा था। कोल्हापुर के पास एक प्रसिद्ध मन्दिर में ज्योतिबा की पूजा होती है।

गोकाक का जल प्रपात—

बेलगाँव रेलवे स्टेशन से ३६ मील गोकाक रोड रेल का स्टेशन है। बेल गाँव जिले में गोकाक एक बस्ती है। स्टेशन से ४ मील दूर का जल प्रपात है। यहाँ पर नदी की धारा १७५ फ़ीट ऊपर से चादर की तरह पर गिरती है। नीचे का कुण्ड बहुत बड़ा और गहरा है। वहाँ से गोकाक नहर निकाली गई है। कुण्ड के पास महादेव आदि देवताओं के कई एक पुराने मन्दिर हैं। वर्षाकाल में जल-प्रपात का दृश्य बड़ा मनोरम रहता है, उस समय जल की चादर की चौड़ाई प्रायः २०० फ़ीट तक होजाती है। बम्बई प्रान्त में यह देखने योग्य स्थान है।

सतारा—

बम्बई प्रान्त में कृष्णा और येन नदी केसंगम के निकट, ज़िले का यह प्रधान क़स्बा है। सतारा के पूर्व पश्चिम पहाड़ियाँ हैं। एक छोटी खड़ी पहाड़ी के शिर पर सतारे का क़िला है। सतारा से ३ मील पूर्व कृष्णा और येन नदी के संगम के पास महुली नामक गाँव है, यहाँ चारों तरफ़ के मुर्दे लाकर जलाये जाते हैं। नदी के तीर पर सन् १७०० का बना हुआ रामेश्वर का मन्दिर, सन् १७४२ का बना हुआ भोलेश्वर का मन्दिर और सन् १८२५ का बना हुआ राधाशंकर का मन्दिर तथा संगम के निकट १७३५ का बना हुआ वहाँ के सब मन्दिरों से बड़ा विश्वेश्वर महादेव का मन्दिर है। सन् १६७६ का बना हुआ सङ्गमेश्वर महादेव का मन्दिर है। यहाँ अन्य बहुतेरे मन्दिर व सतियों के स्थान हैं। सतारा ज़िले में सतारा क़स्बे से ४६ मील पूर्वोत्तर सिंहनपुर में गाँव की पहाड़ी के पास महादेवजी का मन्दिर है, यहाँ पर फाल्गुन में बहुत बड़ा मेला होता है। सतारा ज़िले में पहाड़ियाँ बहुत हैं, स्थान दर्शनीय है।

बाई—

सतारा रोड रेलवे स्टेशन से ६ मील उत्तर वाथर का स्टेशन है। वाथर से महावलेश्वर की सड़क पर, सतारा से क़रीब २० मील, सतारा ज़िले में कृष्ण नदी के वांये किनारे पर बाई नाम का एक क़स्बा है। बाई क़स्बा कृष्ण नदी के किनारे के स्थानों में अति पवित्र स्थान है। इसमें लगभग २० मन्दिर हैं, जिनमें माधवजी, लक्ष्मीजी, गणेश जी और महादेवजी के मन्दिर प्रधान हैं। बाई के निकट एक पहाड़ी पर पांडुगढ़ नामक क़िला है। बाई से प्रायः ५ मील पर कृष्णा नदी के पास डोम गाँव में एक बहुत सुन्दर मन्दिर है। उसके आँगन में श्वेत संगमरमर का फ़र्श लगा है। वहाँ ५ फ़ीट ऊँचे संगमरमर के स्तम्भ पर पञ्चमुखी महादेव की प्रतिमा और अनेक सर्पों के आकार बने हुए हैं।

महाबलेश्वर—

सतारा ज़िले में पश्चिमी घाट के महावलेश्वर नामक सिलसिले के ऊपर (जिसकी साधारण ऊँचाई समुद्र जल से प्रायः ४५०० फ़ीट है) बम्बई प्रान्त का प्रधान स्वास्थकर स्थान महाबलेश्वर है। महाबलेश्वर पहाड़ी के ऊपर लगभग ७ मील लम्बी व ३ मील चौड़ी समतल भूमि पर है। यहाँ पर गर्मी में बम्बई के गवर्नर महोदय का दफ़्तर रहता है। बस्ती बहुत रमणीक और अच्छी बनी है। वर्षा काल में यह जगह बड़ी सुहावनी लगती है। महाबलेश्वर क़स्बे के निकट, जहाँ से कृष्णा नदी निकली है, एक खड़ी पहाड़ी के पादमूल के निकट मन्दिर के भीतर एक कुण्ड बना हुआ है। इसमें गोमुखी से होकर पानी की धारा गिरती है। महाबलेश्वर में महाबलेश्वर शिव का मन्दिर है जो बहुत प्राचीन है। ग्वाली राजा का बनवाया हुआ काले पत्थर का एक बहुत पुराना मन्दिर और उसी का बनवाया हुआ गोटेश्वर का मन्दिर है। वहाँ के सब मन्दिरों में महाबलेश्वर शिव कामन्दिर प्रधान है। कृष्णा के निकास का स्थान होने से महाबलेश्वर अति पवित्र स्थान माना जाता है। वहाँ बहुत यात्री आते हैं। यह नदी इस स्थान से निकल कर बम्बई हाते, हैदराबाद के राज्य और मद्रास हाते में दक्षिण-पूर्व और पूर्व को लगभग ८०० मील बहने के उपरान्त मछली बन्दर के नीचे समुद्र में गिरती है। मालपर्व, गतपर्व, भीमा, तुङ्गभद्रा आदि नदियाँ उसमें मिली हैं।

महाबलेश्वर बम्बई प्रान्त का प्रमुख तीर्थ स्थान है, जो देखने ही योग्य है।

भीमशङ्कर—

पूना रेलवे स्टेशन से २१ मील पश्चिमोत्तर तलेगाँव का स्टेशन है। स्टेशन से प्रायः २४ मील दूर भीमशङ्कर महादेव का मन्दिर है। यह शिव के द्वादश ज्योर्तिलिंगों में कहा जाता है। इसकी कथा शिवपुराण में इस प्रकार कही गई है—लङ्का के कुंभकरण का पुत्र भीम नामक राक्षस अपनी माता कर्कटी सहित सह्याचल पर रहता

था। उसने १० हज़ार वर्ष तप करके ब्रह्माजी से अप्रमेय वर प्राप्त किया। तत्पश्चात वह काम रूप के राजा को परास्त कर उसे बन्दीखाने में डाल कामदेश का स्वामी बन कर देवगणों और ऋषियों को सताने लगा। काम रूप का राजा बन्दीखाने में ही पर्थेव बनाकर शिवजी की आराधना करने लगा। उधर देवताओं ने शिवजी को प्रसन्न कर उनसे भीम के विनाश की प्रार्थना की। भीम ने जब सुना कि राजा बन्दीगृह में भी शिवोपासना में लीन है, तब वह तलवार लेकर राजा का बध करने दौड़ा। शिवजी ने तत्क्षण पार्थेव में से प्रकट होकर भीम की तलवार के अपने पिनाक से सौ टुकड़े कर डाले। तब शिवजी व भीम का भयङ्कर युद्ध होने लगा। उस समय पृथ्वी डोलने लगी, समुद्र उछलने लगा और देवगण भय से त्रसित हुए। जब नारदजी आकर दैत्य के बध की प्रार्थना की, तब भगवान् शिव ने हुँकार रूपी अस्त्र से सम्पूर्ण राक्षसों सहित भीम को भस्म कर दिया। उस समय देवताओं ने शिवजी से प्रार्थना की कि हे भगवन! आप लोक के हित के लिये इस स्थान में स्थित हो कर इस दुष्ट देश को पावन कीजिये। शिवजी देवताओं का वचन स्वीकार करके उसी स्थान में रह गये और भीमशङ्कर नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके दर्शन करने से समस्त पापों का नाश होता है।

कारली के गुफ़ा-मन्दिर—

तलेगाँव स्टेशन से १३ मील पश्चिमोत्तर कारली का स्टेशन है। कारली से ५ मील पश्चिमोत्तर लोनवली का स्टेशन है। दोनों स्टेशनों से ६ मील पर आस-पास के मैदान से प्रायः ६०० फ़ीट ऊंची पहाड़ी के बग़ल में कारली के प्रसिद्ध गुफ़ा मन्दिर हैं। बम्बई प्रान्त के पूना ज़िले में ये गुफ़ा मन्दिर हैं। यहाँ अनेक विहार गुफ़ाओं के सहित एक वृहत चैत्य गुफ़ा अर्थात् बौद्ध मन्दिर निशन पहाड़ी चट्टान में पत्थर खोद कर बनाया है। इतनी बड़ी और सुन्दर चैत्यगुफ़ा भारत में और कहीं नहीं है। यह गुफ़ा १२५ फीट लंबी, ४५ चौड़ी और ४६ फीट ऊंची है। इसके आगे के सिंहस्तम्भ पर पुराने लेख हैं। गुफ़ा के भीतर पहाड़ काट कर बने हुए पन्द्रह-पन्द्रह अठपहलू स्तम्भों की दो क़तार हैं। यह गुफ़ा अब शिव का मन्दिर समझी जाती है। सामने शिवलिंग के समान दधोब है। दधोब छोटे स्तूप के समान होता है। पर इसमें बुद्धदेव अथवा उनके शिष्य की अस्थि रहती है।

कारली के पास बहुत सी विहार-गुफ़ायें हैं। प्रधान विहार नीचे ऊपर ३ पंक्तियों में हैं। इनके मध्य में नीचे बड़ा कमरा है। ऊपर वाले में एक बराण्डा है जिसके पास भवानी का छोटा मन्दिर है। कारली गाँव से ३ मील दक्षिण-पूर्व सन् ई० से २०० वर्ष पहिले की बनी हुई १२ जगह १८ गुफ़ायें हैं। यह स्थान भारत में बड़ा मनोरम है और देखने योग्य है।

बाड़गाँव रेलवे स्टेशन से ६ मील दक्षिण-पश्चिम बेदसा एक गाँव है। यहाँ भी अनेक गुफ़ायें हैं, किन्तु ये कारली की गुफ़ाओं से पीछे की हैं। यहाँ की प्रधान गुफ़ा में एक दधोब है। छत के नीचे २७ सादे स्तम्भ हैं। स्थान के दोनों बगलों पर पत्थर काट कर दो मंजिली गुफ़ायें बनी हुई हैं। वहाँ १६ दधोवों में अजीब संगत-राशी का काम है। गुफ़ा के आगे हाथी, बैल और घोड़े बने हुये हैं। यह भी देखने योग्य स्थान है।

अमरनाथ—

कल्याण जंकशन से ५ मील दक्षिण अमरनाथ का स्टेशन है। बम्बई प्रान्त के थाना ज़िले में अमरनाथ नाम की एक बस्ती है। यह पहाड़ी स्थान है। बस्ती से प्रायः पौन मील पर एक सुन्दर घाटी में अमरनाथ शिवजी का विचित्र मन्दिर है। मन्दिर के द्वार के पास एक शिलालेख

है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर सन् १०६० में बना है। निज मन्दिर में खण्डित तथा चिपटा शिवलिंग है। उत्तर बगल के ताक में एक पुरुष की तीन सिर वाली प्रतिमा हैं। उसकी जङ्घा पर एक स्त्री बैठी है। अनुमान से ज्ञात होता है कि यह शिव-पार्वती की प्रतिमा है। मन्दिर के दक्षिण-पूर्व बगल पर कालीजी की प्रतिमा है। मन्दिर के द्वारों के आगे एक ओसारा है। इन ओसारों में से प्रत्येक में ४ स्तम्भ लगे हैं। मन्दिर के द्वार पर विचित्र शिल्पकारी का काम हो रहा है। बम्बई प्रान्त के किसी मन्दिर में ऐसा कारीगरी का काम नहीं है। दरवाजे का फाटक, जिससे अमरनाथ के निज मन्दिर में जाना होता है, अनेक हाथी और सिंहों से, जिनके बीच महादेवजी की प्रतिमा है, भूषित है। यह स्थान वास्तव में बड़ा प्रसिद्ध, पवित्र, एवं दर्शनीय है।

नासिक--

कल्याण जंकशन से ८३ मील बम्बई हाते में नासिक का स्टेशन है। बम्बई प्रान्त के मध्य भाग में गोदावरी नदी के तट पर समुद्रजल से १६०० फीट ऊंचाई पर ज़िले का सदर स्थान तथा दक्षिण का अति प्रसिद्ध तीर्थ नासिक कस्बा है। पीतल और ताँबे के बर्तनों की दस्तकारी के लिये नासिक प्रसिद्ध है। यहाँ पर अनेक विद्वान् ब्राह्मण हैं। उस देश के लोग नासिक को दक्षिणी प्रान्त की काशी कहते हैं। १२ वर्ष पर जब सिंहराशि के वृहस्पति होते हैं, तब नासिक में कुम्भ नामक बहुत बड़ा मेला होता है। गोदावरी के बाँये किनारे के कस्बे को लोग पंचवटी कहते हैं। इस भाग में बहुत मन्दिर हैं।

नासिक से १८ मील पश्चिम गोदावरी का निकास-स्थान त्र्यंबक है। वहाँ से ६ मील पर चक्रतीर्थ में गोदावरी प्रकट हुई है। वहाँ से नासिक, पैठन, गङ्गाखेड़, नादेड़, धवलेश्वरम्, होती हुई करीब ६०० मील पूर्व-दक्षिण बहने के उपरान्त राजमहेन्द्री के पास समुद्र में मिल गई है। यह निज़ाम राज्य में ओर से छोर तक बहती है। नासिक के पास नदी की धारा सूखे मौसिम में बहुत छोटी रहती है। नदी के मध्य में १२ पक्के कुण्ड हैं, जिनमें से एक का नाम रामकुण्ड और रामगया है। गोदावरी का जल क्रम से एक कुण्ड से दूसरे कुण्ड में गिर कर बाहर निकलता है। बनवास के समय श्रीरामचन्द्रजी ने जिस स्थान पर गोदावरी में दशरथजी को पिंड दिया, वह स्थान राम गया है। वहाँ पिण्डदान का बड़ा माहात्म्य है। बाँये किनारे से एक छोटे झरने का जल आकर पत्थर के गोमुखी से रामकुण्ड में गिरता है। उस स्थान को अरुण-संगम कहते हैं।

गोदावरी के किनारों पर तथा उसके भीतर बहुत से मन्दिर और स्थान हैं। सुन्दर नारायण का मन्दिर राम के मन्दिर से छोटा है, लेकिन उसमें कारीगरी का काम अच्छा है। इसके नीचे बालाजी का मन्दिर और एक दूसरा मन्दिर है। नदी के बाँये किनारे पर रामकुण्ड के पास ५० सीढ़ियों के ऊपर ६०० वर्ष का पुराना कपालेश्वर शिव का मन्दिर है। नदी के बाँयें तट पर ६३ फीट लम्बा, ६५ फीट चौड़ा, तथा ६० फ़ीट ऊंचा श्रीरामचन्द्र जी का मन्दिर है, जो बहुत अच्छा है। यह मंदिर करीब १५० वर्ष का बना हुआ है। गोदावरी के बाँये किनारे से करीब आध मील पर कई आंठियों का एक बट वृक्ष है, इसीको लोग पंचवटी कहते हैं। वटवृक्ष के पास सीता गुफ़ा है। गुफा के भीतर और एक गुफ़ा है। पहिली गुफ़ा में ६ सीढ़ियां के नीचे राम, लक्ष्मण, जानकी की छोटी मूर्तियाँ हैं और दूसरी गुफ़ा में ७ सीढ़ियों के नीचे पञ्चरत्नेश्वर महादेव हैं।

नासिक कस्बे से २ मील दूर पर गोदावरी किनारे गौतम ऋषि का तपोवन है। पंचवटी से आगे लक्ष्मणजी का स्थान है। जिससे आगे हनुमानजी की मूर्ति है। उससे आगे पहाड़ से

मालावार पहाड़ी—जैसे बम्बई का दक्षिणी भाग दोनों तरफ से घटता हुआ समुद्र में चला गया है, जिसके दक्षिण के नोंक का कुलावा पाइण्ट कहते हैं, उसी तरह मालावार पहाड़ी बम्बई के पश्चिम प्रान्त से समुद्र में दक्षिण-पश्चिम गई है। जो समुद्र के जल से १८० फ़ीट ऊँची है। पहाड़ी पर पारसियों का समाधि स्थान वालकेश्वर का मन्दिर और गवर्नमेण्ट हौस आदि उत्तम इमारतें हैं। पारसियों का दोखमा अर्थात् मुर्दे रखने का स्थान देखने योग्य है। वहाँ पर एक ही स्थान पर गोलाकार ५ मीनार हैं। उनमें से एक मीनार (जो १७६ फ़ीट ऊँची है) के बनाने में ३००००० रुपये और शेष चार में से प्रत्येक में २००००० रु० खर्च पड़े हैं। ये देखने योग्य हैं।

जलकल के हौज—दोखमा से थोड़ी दूर पर बम्बई की जलकल के हौज हैं। सालसर टापू के विहार झील और तुलसी झील से पानी आकर वहाँ के हौजों में भरा जाता है और वहां से नल द्वारा सम्पूर्ण शहर में जाता है।

बालकेश्वर का मन्दिर—बम्बई के सम्पूर्ण मन्दिरों में शिव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ एक वाण गङ्गा नामक सुन्दर छोटा-सा सरोवर है।

इनके अतिरिक्त बम्बई नगर में एक से एक आलीशान चीज़ देखने योग्य है। प्रस्तुत विषय से वे अलग हैं।

एलिफेन्टा के गुफ़ा मन्दिर—

बम्बई शहर के क़िले के स्थान से ६ मील दूर थाना ज़िले में एलिफेन्टा नामक टापू है, जिसको देशी लोग धारापुरी तथा गारापुरी का टापू कहते हैं। टापू में एक तङ्ग घाटी के दोनों ओर एक-एक लम्बी पहाड़ी है। पहाड़ी का सब से ऊँचा शृङ्ग समुद्र के जल से ५६७ फ़ीट ऊँचा है। प्रतिवर्ष हज़ारों आदमी बम्बई के अपोलो बन्दर से नाव में अथवा स्टीम यन्त्र में सवार होकर एलिफेन्टा की गुफाओं को देखने के लिये टापू में जाते हैं। शिवरात्रि को वहाँ एक मेला होता है। यहाँ पर हिन्दुओं के पाँच गुफ़ा मन्दिर हैं, एक बड़ा गुफ़ा मन्दिर पत्थरों से भर गया है। इन गुफ़ा मन्दिरों में एक आश्चर्य की बात यह है कि इनकी देव मूर्त्तियों में पत्थर अथवा ईंटों के जोड़ नहीं हैं, उसी पहाड़ी के भीतर से पत्थर खनकर, उसी जगह मन्दिर, स्तम्भ और प्रतिमा सब कुछ बनाई गई थी। जो कि अब तक विद्यमान हैं। उनमें टापू के पश्चिम वाली बड़ी पहाड़ी के बगल में समुद्र के ज्वार के पानी से २५० फ़ीट ऊपर त्रिमूर्त्ति की गुफ़ा अधिक मनोरम है। इसे देखने के लिये बहुत यात्री जाते हैं। गुफ़ा मन्दिर के भीतर उसकी पिछली दीवार के पास एक ही साथ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की मूर्त्ति बनी हुई है। जिनको त्रिमूर्त्ति कहते हैं। तीनों मूर्त्तियों के केवल गले और मुख-मण्डल मात्र ही हैं। इस मूर्त्ति की ऊँचाई १८ फ़ीट और आँख के सामने के सिर का घेरा २३ है। त्रिमूर्त्ति के पास अङ्ग-भङ्ग किये हुए तेरह-तेरह फ़ीट ऊँचे दो द्वारपाल हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी मूर्त्तियाँ हैं। जिनमें से पूर्व वाले कमरेमें १७ फ़ीट ऊँची अर्धनारीश्वर शिव की मूर्त्ति है। इसी तरह पश्चिम वाले कमरे में भी १६ फ़ीट ऊँची मूर्त्तियाँ हैं। गुफ़ा के भीतर एक तरफ रावण कैलाश पर्वत को उठा रहा है, जिसके ऊपर शिव,पार्वती की मूर्त्तियाँ हैं।

व्याघ्र मन्दिर लगभग ५० फ़ीट लम्बा और १८ फ़ीट ऊँचा है, उसके आगे ६ स्तम्भ बने हैं। सीढ़ी के दोनों ओर बाघ की प्रतिमा खड़ी है। भीतर शिवलिङ्ग तथा अन्य बहुत सी देव मूर्त्तियाँ हैं। गुफ़ाओं की बहुत सी मूर्त्तियों के अङ्ग-भङ्ग होगये हैं।

टापू के दक्षिण बगल में १३ फ़ीट लम्बा और ७। फ़ीट ऊँचा पत्थर का एक हाथी था। इसी कारण पोर्चुगाल वालों ने उस टापू का नाम एलिफेन्टा रक्खा, क्योंकि अँगरेजी में एलिफेन्ट हाथी को

है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर सन् १०६० में बना है। निज मन्दिर में खण्डित तथा चिपटा शिवलिंग है। उत्तर बगल के ताक में एक पुरुष की तीन सिर वाली प्रतिमा हैं। उसकी जङ्घा पर एक स्त्री बैठी है। अनुमान से ज्ञात होता है कि यह शिव-पार्वती की प्रतिमा है। मन्दिर के दक्षिण-पूर्व बगल पर कालीजी की प्रतिमा है। मन्दिर के द्वारों के आगे एक ओसारा है। इन ओसारों में से प्रत्येक में ४ स्तम्भ लगे हैं। मन्दिर के द्वार पर विचित्र शिल्पकारी का काम हो रहा है। बम्बई प्रान्त के किसी मन्दिर में ऐसा कारीगरी का काम नहीं है। दरवाज़े का फाटक, जिससें अमरनाथ के निज मन्दिर में जाना होता है, अनेक हाथी और सिंहों से, जिनके बीच महादेवजी की प्रतिमा है, भूषित है। यह स्थान वास्तव में बड़ा प्रसिद्ध, पवित्र, एवं दर्शनीय है।

नासिक--

कल्याण जंकशन से ८३ मील बम्बई हाते में नासिक का स्टेशन है। बम्बई प्रान्त के मध्य भाग में गोदावरी नदी के तट पर समुद्रजल से १६०० फीट ऊंचाई पर ज़िले का सदर स्थान तथा दक्षिण का अति प्रसिद्ध तीर्थ नासिक कस्बा है। पीतल और ताँबे के बर्तनों की दस्तकारी के लिये नासिक प्रसिद्ध है। यहाँ पर अनेक विद्वान् ब्राह्मण हैं। उस देश के लोग नासिक को दक्षिणी प्रान्त की काशी कहते हैं। १२ वर्ष पर जब सिंहराशि के बृहस्पति होते हैं, तब नासिक में कुम्भ नामक बहुत बड़ा मेला होता है। गोदावरी के बाँये किनारे के कस्बे को लोग पंचवटी कहते हैं। इस भाग में बहुत मन्दिर हैं।

नासिक से १८ मील पश्चिम गोदावरी का निकास-स्थान त्र्यंबक है। वहाँ से ६ मील पर चक्रतीर्थ में गोदावरी प्रकट हुई है। वहाँ से नासिक, पैठन, गङ्गाखेड़, नादेड़, धवलेश्वरम्, होती हुई करीब ६०० मील पूर्व-दक्षिण बहने के उपरान्त राजमहेंन्द्री के पास समुद्र में मिल गई है। यह निज़ाम राज्य में ओर से छोर तक बहती है। नासिक के पास नदी की धारा सूखे मौसिम में बहुत छोटी रहती है। नदी के मध्य में १२ पक्के कुण्ड हैं, जिनमें से एक का नाम रामकुण्ड और रामगया है। गोदावरी का जल क्रम से एक कुण्ड से दूसरे कुण्ड में गिर कर बाहर निकलता है। वनवास के समय श्रीरामचन्द्रजी ने जिस स्थान पर गोदावरी में दशरथजी को पिंड दिया, वह स्थान राम गया है। वहाँ पिण्डदान का बड़ा माहात्म्य है। बाँये किनारे से एक छोटे झरने का जल आकर पत्थर के गोमुखी से रामकुण्ड में गिरता है। उस स्थान को अरुण-संगम कहते हैं।

गोदावरी के किनारों पर तथा उसके भीतर बहुत से मन्दिर और स्थान हैं। सुन्दर नारायण का मन्दिर राम के मन्दिर से छोटा है, लेकिन उसमें कारीगरी का काम अच्छा है। इसके नीचे बालाजी का मन्दिर और एक दूसरा मन्दिर है। नदी के बाँये किनारे पर रामकुण्ड के पास ५० सीढ़ियों के ऊपर ६०० वर्ष का पुराना कपालेश्वर शिव का मन्दिर है। नदी के बाँयें तट पर ६३ फीट लम्बा, ६५ फीट चौड़ा, तथा ६० फ़ीट ऊंचा श्रीरामचन्द्र जी का मन्दिर है, जो बहुत अच्छा है। यह मंदिर करीब १५० वर्ष का बना हुआ है। गोदावरी के बाँये किनारे से करीब आध मील पर कई आंठियों का एक वट वृक्ष है, इसीको लोग पंचवटी कहते हैं। वटवृक्ष के पास सीता गुफ़ा है। गुफ़ा के भीतर और एक गुफ़ा है। पहिली गुफ़ा में ६ सीढ़ियों के नीचे राम, लक्ष्मण, जानकी की छोटी मूर्तियाँ है और दूसरी गुफ़ा में ७ सीढ़ियों के नीचे पञ्चरत्नेश्वर महादेव है।

नासिक कस्बे से २ मील दूर पर गोदावरी किनारे गौतम ऋषि का तपोवन है। पंचवटी से आगे लक्ष्मणजी का स्थान है। जिससे आगे हनुमानजी की मूर्ति है। उससे आगे पहाड़ से

मालाबार पहाड़ी—जैसे बम्बई का दक्षिणी भाग दोनों तरफ़ से घटता हुआ समुद्र में चला गया है, जिसके दक्षिण के नोंक का कुलावा पाइण्ट कहते हैं, उसी तरह मालाबार पहाड़ी बम्बई के पश्चिम प्रान्त से समुद्र में दक्षिण-पश्चिम गई है। जो समुद्र के जल से १८० फ़ीट ऊँची है। पहाड़ी पर पारसियों का समाधि स्थान बालकेश्वर का मन्दिर और गवर्नमेण्ट हौस आदि उत्तम इमारतें हैं। पारसियों का दोखमा अर्थात् मुर्दे रखने का स्थान देखने योग्य है। वहाँ पर एक ही स्थान पर गोलाकार ५ मीनार हैं। उनमें से एक मीनार (जो १७६ फ़ीट ऊँची है) के बनाने में ३००००० रुपये और शेष चार में से प्रत्येक में २००००० रु० खर्च पड़े हैं। ये देखने योग्य हैं।

जलकल के हौज—दोखमा से थोड़ी दूर पर बम्बई की जलकल के हौज हैं। सालसट टापू के विहार झील और तुलसी झील से पानी आकर वहाँ के हौजों में भरा जाता है और वहां से नल द्वारा सम्पूर्ण शहर में जाता है।

बालकेश्वर का मन्दिर—बम्बई के सम्पूर्ण मन्दिरों में शिव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ एक बाण गङ्गा नामक सुन्दर छोटा-सा सरोवर है।

इनके अतिरिक्त बम्बई नगर में एक से एक आलीशान चीज़ देखने योग्य है। प्रस्तुत विषय से वे अलग हैं।

एलिफेन्टा के गुफ़ा मन्दिर—

बम्बई शहर के क़िले के स्थान से ६ मील दूर थाना जिले में एलिफेन्टा नामक टापू है, जिसको देशी लोग धारापुरी तथा गारापुरी का टापू कहते हैं। टापू में एक तङ्ग घाटी के दोनों ओर एक-एक लम्बी पहाड़ी है। पहाड़ी का सब से ऊँचा शृङ्ग समुद्र के जल से ५६७ फ़ीट ऊँचा है। प्रतिवर्ष हज़ारों आदमी बम्बई के अपोलो बन्दर से नाव में अथवा स्टीम यन्त्र में सवार होकर एलिफेन्टा की गुफ़ाओं को देखने के लिये टापू में जाते हैं। शिवरात्रि को वहाँ एक मेला होता है। यहाँ पर हिन्दुओं के पाँच गुफ़ा मन्दिर हैं, एक बड़ा गुफ़ा मन्दिर पत्थरों से भर गया है। इन गुफ़ा मन्दिरों में एक आश्चर्य की बात यह है कि इनकी देव मूर्त्तियों में पत्थर अथवा ईंटों के जोड़ नहीं हैं, उसी पहाड़ी के भीतर से पत्थर खनकर, उसी जगह मन्दिर, स्तम्भ और प्रतिमा सब कुछ बनाई गई थीं। जो कि अब तक विद्यमान हैं। उनमें टापू के पश्चिम वाली बड़ी पहाड़ी के बगल में समुद्र के ज्वार के पानी से २५० फ़ीट ऊपर त्रिमूर्त्ति की गुफ़ा अधिक मनोरम है। इसे देखने के लिये बहुत यात्री जाते हैं। गुफ़ा मन्दिर के भीतर उसकी पिछली दीवार के पास एक ही साथ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की मूर्त्ति बनी हुई है। जिनको त्रिमूर्त्ति कहते हैं। तीनों मूर्त्तियों के केवल गले और मुख-मण्डल मात्र ही हैं। इस मूर्त्ति की ऊँचाई १८ फ़ीट और आँख के सामने के सिर का घेरा २३ है। त्रिमूर्त्ति के पास अङ्ग-भङ्ग किये हुए तेरह-तेरह फ़ीट ऊँचे दो द्वारपाल हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी मूर्त्तियाँ हैं। जिनमें से पूर्व वाले कमरेमें १७ फ़ीट ऊँची अर्ध-नारीश्वर शिव की मूर्त्ति है। इसी तरह पश्चिम वाले कमरे में भी १६ फ़ीट ऊँची मूर्त्तियाँ हैं। गुफ़ा के भीतर एक तरफ रावण कैलाश पर्वत को उठा रहा है, जिसके ऊपर शिव,पार्वती की मूर्त्तियाँ हैं।

व्याघ्र मन्दिर लगभग ५० फ़ीट लम्बा और १८ फ़ीट ऊँचा है, उसके आगे ६ स्तम्भ बने हैं। सीढ़ी के दोनों ओर बाघ की प्रतिमा खड़ी है। भीतर शिवलिङ्ग तथा अन्य बहुत सी देव मूर्त्तियाँ हैं। गुफ़ाओं की बहुत सी मूर्त्तियों के अङ्ग-भङ्ग होगये हैं।

टापू के दक्षिण बगल में १३ फ़ीट लम्बा और ७। फ़ीट ऊँचा पत्थर का एक हाथी था। इसी कारण पोर्चुगाल वालों ने उस टापू का नाम एलिफेन्टा रक्खा, क्योंकि अँगरेजी में एलिफेन्ट हाथी को

कहते हैं। सन् १८१४ में उस हाथी का गला और सिर गया, सन् १८६४ में उसका धड़ बम्बई के विक्टोरिया गार्डन में रक्खा गया।

अनुमान किया जाता है कि तीसरी सदी से दसवीं तक उस टापू पर एक सुन्दर नगर और प्रसिद्ध तीर्थ स्थान था। जहाँ बहुत से यात्री जाते थे। वहाँ धान के खेतों में अब भी बहुत सी भग्न प्रतिमायें मिलती हैं। पुराने नगर भी के कई चिन्ह मिलते हैं।

एलिफेन्टाओं की गुफाओं के बनने का ठीक समय जान नहीं पड़ता, कोई तो इन्हें पाण्डवों की गुफा बतलाते हैं, कोई किनारा के बाणासुर राजा की बनवाई हुई बतलाते हैं। गुफाओं पर कोई शिला लेख नहीं है। अँग्रेज़ वैज्ञानिक लोग त्रिमूर्त्ति की बड़ी गुफा को ६ वीं अथवा १० वीं सदी की बनी हुई कहते हैं।

योगेश्वर का गुफा मन्दिर—

बम्बई के विक्टोरिया स्टेशन से ६ मील पूर्वोत्तर और कुलाबा के रेलवे स्टेशन से ८ मील उत्तर दादरा का रेलवे स्टेशन है। दादरा के रेलवे स्टेशन से २ मील उत्तर माहिम के स्टेशन के पास बम्बई टापू और सालसर के टापू के बीच वाले पहाड़ी पुल को रेलगाड़ी पार करती है। माहिम के स्टेशन से १ मील उत्तर बान्दरा का स्टेशन है। बान्दरा थाना जिला का सब से बड़ा स्टेशन है। बान्दरा स्टेशन से ७ मील उत्तर गुरगाँव का स्टेशन है। गुरुगाँव स्टेशन से २॥ मील दक्षिण और योगेश्वर गाँवसे २मील पूर्वोत्तर थाना जिले के सालसर टापू में अम्बोली नामक गाँव के पास योगेश्वर का गुफा मन्दिर है।

कहा जाता है कि इलोरा के कैलाश को छोड़ कर भारतवर्ष के सब गुफा मन्दिरों से यह बड़ा है। इसकी लम्बाई २४० फ़ीट और चौड़ाई २०० फ़ीट है। मन्दिर में बहुत सी प्रतिमायें हैं। मन्दिर के पूर्व दरवाजे के ऊपर एक आश्चर्य जनक प्रतिमा है—किन्तु अपूर्ण है। योगेश्वर गुफा से ६ मील उत्तर मगथाना की गुफा है।

मण्डपेश्वर के गुफा मन्दिर—

गुरुगाँव के स्टेशन से ४ मील उत्तर बोरवली का रेलवे स्टेशन है। बोरवली से १ मील दूर और कनारी की पहाड़ी से (जिसमें कनारी के गुफा मन्दिर हैं) ४ मील पश्चिम मण्डपेश्वर की गुफायें हैं। वहाँ पहाड़ी में काटकर बनाये हुए ३ गुफा मन्दिर हैं। लोगों का अनुमान है कि ये ६ वीं सदी में बने हैं। दूसरे गुफा मन्दिर की पश्चिम वाली दीवार में २५ प्रतिमाओं के साथ एक चतुर्भुज मूर्त्ति है। जिसको लोग भीम कहते हैं, कदाचित् अपने गणों के साथ वह शिव होवें। बहुत सी प्रतिमाओं के अङ्ग-भङ्ग हैं। तीनों गुफाएँ दर्शनीय हैं।

कनारी के गुफा मन्दिर—

बोरवली के रेलवे स्टेशन से ५ मील दूर और तुलसी झील के बाँध से २ मील उत्तर तथा थाना के डाक बँगले से ६ मील दूर सालसर टापू के मध्य भाग की एक पहाड़ी के बगल में नीचे ऊपर छोटे बड़े १०६ गुफा मन्दिर हैं। सम्पूर्ण गुफा मन्दिर पहाड़ी से पत्थर खोद कर बनाये गये हैं। इनमें कोई जोड़ नहीं है, यहाँ के मन्दिर अन्य गुफा मन्दिरों की भाँति मनोरम तो नहीं हैं, किन्तु दर्शनीय अवश्य हैं। पहाड़ी के नीचे से सब गुफाओं के पास पत्थर में काटकर पगडन्डी राह बनाई गई हैं। गुफा मन्दिरों में स्थान-स्थान पर बुद्धदेव तथा अन्य बहुत सी बौद्ध मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। कहा जाता है कि ये स्थान ६ वीं सदी के पीछे तक बने है। वहाँ बुद्धदेव का एक दांत था। इस लिये यह स्थान पवित्र समझा गया। कनारी के गुफा मन्दिर में बड़ा चैत्य गुफा अर्थात् बौद्ध मन्दिर प्रधान है।

तुलसी झील—कनारी के गुफा मन्दिरों से २ मील दक्षिण सालसट टापूमें तुलसी झील का बाँध है।

यह झील ४ लाख रुपये से सन् १८७२ में तैयार हुई थी।

विहार झील—तुलसी झील से २ मील दक्षिण सालसर टापू में २ मील लम्बी और १॥ मील चौड़ी यह झील है। एक अँगरेज़ ने ३८००००० रुपये के खर्च से इसे तैयार कराया था।

उपरोक्त दोनों झीलों से बम्बई शहर के लिये उसके पास वाली पहाड़ी मालाबार पर पानी पहुंचाया जाता है।

सूरत—

नौसारी के रेलवे स्टेशन से १८ मील (बम्बई के कुलाबा स्टेशन से १६७ मील) उत्तर और भड़ौंच के स्टेशन से ३७ मील दक्षिण सूरत का रेलवे स्टेशन से है। बम्बई हाते के गुजरात प्रदेश में तापती नदी के बांये किनारे पर समुद्र से १० मील पूर्व जिले का सदर स्थान और जिले का प्रधान क़स्बा है। सूरत शहर तापती नदी के झुकाव पर है, सूरत शहर बम्बई हाते के अँगरेजी राज्य में चौथा शहर है। तापती नदी के किनारे पर सन् १५४० का बना हुआ एक क़िला भी है। क़िले के फाटक पर एक शिला लेख है।

सूरत में हिन्दुओं के अनेक मन्दिर हैं। जिनमें से स्वामी नारायण का मन्दिर और हनुमानजी के २ मन्दिर प्रधान हैं, स्वामी नारायण के विशाल मन्दिर में तीन गुंबज हैं। वह शहर के सब स्थानों से देख पड़ते हैं, सूरत में मुसलमानों की बहुत मसजिद हैं। भविष्य पुराण में तापती नदी का माहात्म्य वर्णित है। सूरत में यात्रियों के ठहरने योग्य धर्मशालायें भी हैं। वल्लभकुल सम्प्रदाय की एक प्रधान गद्दी जिसे मोटा मन्दिर कहते हैं—सूरत शहर में है। दक्षिण भारत में वल्लभकुल' संप्रदाय का यह प्रधान केन्द्र है।

पूर्व-भारत के तीर्थ

हरिहर क्षेत्र—

विहार प्रान्तान्तर्गत छपरा से २६ मील पूर्व सोनपुर बी० एन० डब्ल्यू० आर० का रेलवे स्टेशन है। सारन जिले में गंडकी नदी के दाहिने तट पर और गङ्गा तथा गंडकी के संगम के निकट सोनपुर एक छोटी-सी बस्ती है। यहाँ मही नामक एक छोटी नदी के निकट श्री हरिहरनाथ महादेवजी का मन्दिर है। यहाँ पर कार्तिकी पूर्णिमा को हरिहर क्षेत्र का प्रख्यात मेला होता है। उस दिन मन्दिर में जल चढ़ाने वाले भक्तों की बहुत भीड़ होती है। लोग मन्दिर के एक द्वार से प्रवेश करते हैं और दूसरे से बाहर निकलते हैं।

हरिहर क्षेत्र का मेला दो सप्ताह तक होता है, परन्तु इसकी बढ़ती पूर्णिमा के दो दिन पहिले से दो दिन पीछे तक रहती है। यह मेला भारतवर्ष के पुराने और सब से बड़े मेलों में से एक है। मेले का पड़ाव एक बहुत बड़े बाग़ में पड़ता है। सौदागरी की प्रधान वस्तुएँ-हाथी, घोड़े और अनेक वस्तुएँ हैं। आसाम और बंगाल से बहुत से हाथी आते हैं और पञ्जाब तक ख़रीद होकर जाते हैं। घोड़े भी दूर-दूर के प्रदेशों से यहाँ बिक्री के लिये आते हैं।

यहाँ पर ऐसा प्रसिद्ध है कि श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी, ऋषि विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से जनकपुर जाने के समय विश्वामित्र - आदि ऋषियों के साथ सोन नदी पार होने के उपरान्त इस स्थान में होते हुए जनकपुर गये थे। बाराह पुराण की

कथा के अनुसार, हिमालय पर्वत पर, जहाँ गंडकी नदी से शालिग्राम निकलते हैं और विष्णु भगवान् ने ग्राह से गज का उद्धार किया था, उस स्थान का नाम 'हरिहर-क्षेत्र' है। गंडक नदी के सम्बन्ध से पीछे यही स्थान हरिहर-क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध होगया। गंडकी नदी प्रायः ४०० मील बहने के उपरान्त यहाँ गङ्गाजी में मिल गई।

यह स्थान इस प्रदेश का बड़ा ही पवित्र तीर्थ है। वामन पुराण, पद्मपुराण, बाराह पुराण आदि ग्रन्थों में इसका बड़ा माहात्म्य वर्णन है।

देवी पाटन—

बलरामपुर से १४ मील उत्तर गोंडा जिले के देवी पाटन बस्ती में पटेश्वरी देवी का प्रसिद्ध मंदिर है। यहाँ चैत्र की नवरात्रि में देवी का दर्शन-पूजन का बड़ा मेला होता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि जब द्रोणाचार्य ने कुन्ती पुत्र कर्ण को ब्रह्मास्त्र चलाने की विद्या सिखलानी अस्वीकार की, तब कर्ण ने महेन्द्र पर्वत पर जाकर परशुरामजी की सेवा कर उनसे ब्रह्मास्त्र चलाने की विद्या सीखी और राजा दुर्योधन से मिल कर कुछ राज्य पाया। उसके उपरान्त जरासिंध ने कर्ण को मालिनी नगरी दी, जिस पर उसने दुर्योधन के आधीन राज्य किया। इसी स्थान पर यह मालिनी नगरी थी। एक समय पाटेश्वरी के वर्त्तमान मन्दिर के स्थान पर पुराने क़िले की तबाहियाँ थीं। सन् ईस्वी के दूसरी शताब्दी के मध्य भाग में बौद्ध लोगों की घटती के समय विक्रमादित्य नामक राजा अयोध्या में आया और पुराने क़िले के स्थान पर उसने एक मन्दिर बनवाया। १४ वीं शताब्दी के अन्त या १५ वीं के आरम्भ में रतननाथ ने उस जीर्ण मन्दिर को फिर से बनवाया। कई सौ वर्ष तक बहुत से यात्री गोरखपुर और नैपाल से आते रहे। १७ वीं शताब्दी में औरङ्गज़ेब के अफ़सर ने मन्दिर का विनाश कर दिया, किन्तु पीछे शीघ्र ही यह वर्त्तमान छोटा मन्दिर बन गया।

देवी भक्तों के लिये यह अति प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ की पाटेश्वरी देवीजी की बहुत मानता मानी जाती है।

गया—

बाँकीपुर से ८ मील दक्षिण पुनपुन गाँव का रेलवे स्टेशन है। स्टेशन से प्रायः आध मील दूर उत्तर की ओर पुनपुन नदी बहती है। यहाँ पर बालू की वेदी बना कर पिण्डदान करके यात्री लोग गया जाते हैं। पुनपुन स्टेशन से ४६ मील पर पटना जिले में गया नाम की बस्ती है।

गया दो भागों में विभक्त है। साहबगञ्ज और पुरानी गया। दोनों ही फल्गु नदी के बाँये किनारे पर हैं। साहबगञ्ज में कोठियाँ, दफ्तर, अस्पताल, जेल आदि हैं। रेलवे स्टेशन से प्रायः १॥ मील पूर्वोत्तर पुरानी गया है। फल्गू के निकट बाँये विष्णुपद का मन्दिर है। पुरानी गया के चारों दिशाओं में चार फाटक हैं। ऊँची-नीची भूमि पर नगर बसा है। फल्गू के किनारे पर ब्रह्मनी घाट, गायत्री घाट, बकुआ घाट, सोमर घाट, गदाधरघाट आदि हैं। नगर के रामसागर मुहल्ले में क़रीब १८५ गज़ लम्बा और इससे आधे से अधिक चौड़ा एक 'रामसागर' नामक तालाब है। गया से पूर्व फल्गू के दाहिने किनारे पर नगकूट पहाड़ी, दक्षिण-पश्चिम भस्मकूट और ब्रह्मयोनि की पहाड़ी, उत्तर साहिबगञ्ज के बाद रामशिला और पश्चिमोत्तर प्रेतशिला पहाड़ी देख पड़ती है।

श्राद्ध के लिये गया भारतवर्ष में प्रधान है। प्रति दिन यहाँ श्राद्ध करने यात्री पहुँचते हैं। किन्तु आश्विन मास का कृष्ण पक्ष तो गया के श्राद्ध के लिये सर्व-प्रधान माना गया है। उस समय देश भर के लाखों यात्री यहाँ आते हैं। आश्विन के बाद पौष और चैत्र के कृष्ण पक्ष में भी बहुत यात्री यहाँ पर पिण्ड दान करते हैं। अलग-अलग तिथियों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर पिण्ड-दान के

माहात्म्य का उल्लेख है। फल्गू नदी गया के पूर्व बहती हुई दक्षिण से उत्तर को गई है। फल्गू का विशेष माहात्म्य नगकूट और भस्म कूट से उत्तर और उत्तर-मानस से दक्षिण है। नगकूट से दक्षिण फल्गू का नाम महाना है। गया से ३ मील दक्षिण नीलांजन नदी दहिने से आकर महाना नदी में मिली है। संगम से प्रायः १ मील दक्षिण सरस्वती के मन्दिर तक इस नदी का नाम सरस्वती है। मधुश्रवा नामक एक छोटी नदी दक्षिण-पश्चिम से आकर गया के दक्षिण महाना (फल्गू) नदी में मिली है। वर्षा काल के अतिरिक्त फल्गू नदी में पानी की कमी रहती है। विष्णुपद के पूर्व फल्गू के दाहिने किनारे पर नगकूट पहाड़ी, बांये किनारे पर भस्मकूट पहाड़ी और विष्णुपद से प्रायः १ मील उत्तर उत्तरमानस सरोवर है।

रामशिला को लोग कहते हैं, पहिले प्रेतशिला बोली जाता था किन्तु जब से भगवान श्रीराम-चन्द्रजी आये तब से इसका नाम रामशिला ही है। रामशिला से ४ मील पश्चिम प्रेतशिला नामक पहाड़ी है। प्रेतशिला के पास ही ब्रह्मकुण्ड नामक तालाब है। विष्णुपद से प्रायः १ मील उत्तर में उत्तर मानस नामक सरोवर के पास एक धर्मशाला और एक मन्दिर है, जिसमें उत्तरार्क नामक सूर्य और शीतला आदि की देव-मूर्तियाँ हैं। इस मंदिर के निकट एक पीपल के वृक्ष की जड़ के पास ही पिता महेश्वर महादेवजी का बहुत छोटा-सा मंदिर है। लोग कहते हैं कि ब्रह्मा उत्तर मानस में श्राद्ध करके इस स्थान से मौनव्रत धारण कर सूर्यकुण्ड तक गये थे। विष्णु पद मन्दिर से क़रीब १७५ गज उत्तर में एक तालाब सूर्यकुण्ड नाम का है। इस कुण्ड के उत्तर का भाग उदीची, मध्य भाग कनखल, और दक्षिण हिस्सा दक्षिण मानस तीर्थ कहा जाता है। सूर्यकुण्ड से क़रीब ८० गज दक्षिण फल्गू के किनारे पर जिह्वा लोल नामक तीर्थ है, वहाँ मैदान में पीपल का वृक्ष और एक ओसारा है, जहाँ पिण्ड-दान होता है। विष्णुपद से ३० गज पूर्वोत्तर फल्गू के किनारे पर एक शिखरदार मन्दिर श्रीगदाधरजी का है। इस मन्दिर के पास गदाधर घाट है और मन्दिर से उत्तर ओर गया श्रीदेवी की अष्टभुजी मूर्त्ति है।

मतङ्गवापी, धर्मारण्य और बोध गया नामक तीर्थ भी गया के निकट ही प्रसिद्ध है। गया का सब से विशाल और प्रसिद्ध मन्दिर विष्णुपद का है। इस मन्दिर की बड़ी महिमा है। इसमें एक कोठरी में कनकेश्वर शिवलिङ्ग हैं। इस मन्दिर के सामने फल्गू के पार सीताकुण्ड है।

गया के मुख्य देव स्थान यह हैं—फल्गु नदी, विष्णुपद, गदाधर, गयासिर और गया कूप, मुण्ड-पृष्ठा, आदि गया, धौतपद, सूर्यकुण्ड, जिह्वालोल, सीताकुण्ड, रामगया, रामशिला और रामकुण्ड, प्रेतशिला और ब्रह्मकुण्ड, उत्तरमानस, ब्रह्मसरोवर, अक्षयवट, गदालोल, मङ्गलागौरी, आकाश गङ्गा, वैतरणी, भीम-गया, गोप्रचार, गायत्रीदेवी, संकठा-देवी, प्रतिपा महेश्वर, ब्रह्मयोनि पर्वत, सरस्वती-सावित्री कुण्ड, सरस्वती नदी, पातंगवापी धर्मारण्य, वकरौर और बौद्ध-गया।

गया का माहात्म्य अग्निपुराण, याज्ञवलक्य-स्मृति आदि अनेक ग्रन्थों में वर्णन किया गया है। हिन्दुओं का यह एक प्रधान तीर्थ है।

बोध-गया—

यह स्थान गया नगर से प्रायः ७ मील दूर दक्षिण को है। भगवान् बुद्ध की यह तपस्या-भूमि है। उन्होंने अपने अन्तिम जीवन का अधिकांश भाग यहाँ रह कर बिताया था। इस मन्दिर को भगवान् बुद्ध के निर्वाण के बाद सम्राट अशोक ने २३६ वर्ष बाद उसी स्थान पर बनवाया, जो अब तक वर्त्तमान है। बौद्ध-गया-मन्दिर प्राचीन कला का एक सुन्दर नमूना है। भारत के ऊपरी भाग में यह अपने ढंग का एक ही मन्दिर है। इसकी ऊँचाई

१७० फीट है। मन्दिर में पूर्वाभिमुख बुद्ध भगवान् की विशाल मूर्ति है, जो ध्यानावस्था के समय की है–

मंदिर के पीछे पत्थर का प्रायः ५ फीट ऊँचा बौद्ध–सिंहासन है। यहीं पर बुद्धदेव ने तपस्या की थी, यहीं पर बोधि–वृक्ष है। मंदिर के दक्षिण मैदान में बहुत–सी बौद्ध मूर्त्तियाँ हैं, जो भूमि खोदकर निकाली गई हैं। यहाँ एक संग्रहालय भी है और बौद्धों के लिये एक धर्मशाला है। बुद्ध–मंदिर से प्रायः ५० गज पूर्व छोटा बाज़ार और लगभग १०० गज पूर्वोत्तर बोध–गया के महन्तजी का भव्य–मकान व फुलवाड़ी है। नैपाल, ब्रह्मा, लंका, जापान, चीन आदि देशों से बौद्ध यात्री यहाँ आकर पूजा चढ़ाते हैं। बुद्ध–मंदिर के अहाते के पूर्वोत्तर कोने पास तारादेवी का शिखरदार पुराना मंदिर जीर्ण दशा में है। हाते के पूर्व एक घेरे में ५ शिखरदार बड़े मंदिरों में बोध–गया के महन्तों की समाधि हैं। हाते के उत्तर मूर्ति गोदाम में बहुत बौद्ध–मूर्तियाँ रक्खी हैं। मूर्ति गोदाम के उत्तर जगन्नाथ का दो मंजिला पुराना मंदिर है, जिससे लगे हुए उत्तर अहिल्याबाई के बनवाये हुए दो मञ्जिले राम, लक्ष्मण, जानकी हनुमान की मूर्ति प्रतिष्ठित हैं। इनके उत्तर एक अंधियारे मंदिर में लोकनाथ और ऋण मोचन शिव लिंग हैं। जगन्नाथ मन्दिर के पास ही दो शिखरदार मन्दिर हैं जिनमें नागेश्वर और खगेश्वर शिव के दर्शन होते हैं।

क़स्बे से प्रायः १६ मील उत्तर फल्गू नदी के पास सात पुरानी बौद्ध-गुफ़ा हैं। यह तीर्थ बहुत प्रसिद्ध है और बौद्धों का एक प्रतिष्ठित स्थान है।

राजगृह —

विहार नगर से १४ मील दक्षिण और बख्तियारपुर रेलवे स्टेशन से ३२ मील दक्षिण, पटना जिलान्तर्गत राजगृह है, जिसको लोग राजगिरि भी कहते हैं। मगध देश के पूर्वकालीन राजा जरासिन्धु की राजधानी राजगृह से ८ मील पर बड़गाँवाँ है। राजगृह में सरस्वती नामक नदी दक्षिण–पश्चिम से वैभार पर्वत के पूर्वोत्तर ब्रह्मकुंड के पूर्व आई है और वहाँ से उत्तर की ओर गई है। सरस्वती कुंड से पश्चिम वैभारपर्वत के पूर्वोत्तर गाँव के पास मार्कण्डेय क्षेत्र है। सरस्वती कुण्ड से क्षेत्र तक पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। वहाँ पर नीचे लिखे ७ कुण्ड हैं—(१) मार्कण्डेयकुंड (२) व्यासकुंड (३) गंगायमुना कुंड (४) अनन्तनारायण कुंड (५) सप्तर्षिधारा (६) काशीधारा और (७) ब्रह्मकुंड। गंगा-यमुना कुंड में एकमें ठंडा और दूसरा गर्म झरना है। दूसर सब कुंडों में झरने गरम हैं। इन कुंडों के किनारे अनेक देवताओं के मंदिर हैं। दक्षिण पहाड़ी के ढ़ाल पर सन्ध्यादेवी का छोटा मंदिर है. पास ही केदार कुंड है। पश्चिम एक छोटे मंदिर में विष्णु के चरण चिन्ह हैं। सरस्वती कुंड से २०० गज पूर्व पाँच कुंड हैं। (१) सीताकुंड—इसके उत्तर हाटकेश्वर महादेव का छोटा पुराना मंदिर है। लोग कहते हैं, कि तीर्थ निर्माण के समय का यह मंदिर है। हाटकेश्वर के उत्तर (२) सूर्य्य कुंड (३) चन्द्र कुंड (४) गणेश कुंड और (५) रामकुंड हैं। सब कुंडों में गरम झरने का पानी गिरता है। सरस्वती कुंड से आध मील उत्तर, उसी सरस्वती को लोग बैतरणी कहते हैं। सरस्वती कुंड से दक्षिण और सरस्वती नदी के बाँये वानरी कुंड नामक एक छोटा कुंड है। इस स्थान को वानरी–तरण क्षेत्र कहते हैं। वानरी कुंड से कुछ दूर दक्षिण गोदावरी नामक एक छोटी धारा दक्षिण से आकर सरस्वती में मिलती है। संगम के पास पहाड़ी पर ज्वालादेवी का छोटा मंदिर है। संगम से १ मील पर सोनभण्डार नामक प्रसिद्ध गुफ़ा है। राजगृह की पहाड़ियाँ प्रायः १००० फीट ऊँची हैं। इनमें शिलाजीत निकलता है। गयाजी के पर्वत तथा पहाड़ियों का तांता लगा है। राजगृह से गया तीर्थ की दूरी ३२ मील है।

सरस्वती कुण्ड से ६ मील पूर्व गिरियेक बस्ती के पास वैकुण्ठ नामक नदी है और वैकुण्ठ तीर्थ

है। इसके उत्तर ओर कण्ठेश्वर का मंदिर है। सरस्वती कुंड से १२ मील पश्चिम तपोवन और गिरिव्रज नामक दो स्थान हैं, जिनको लोग जरासिन्ध का भजनागार और बैठक कहते हैं। तपोवन में चारों भाई सनकादिकों के नाम से गरम झरने के चार कुण्ड हैं। पर्वत लाँघ कर वहाँ जाना होता है। राजगृह का मेला मलमास में एक महीना रहता है, किन्तु कृष्णपक्ष में भीड़ अधिक रहती है।

बाढ़--

बांकीपुर जंकशन से ३६ मील पर बाढ़ का रेलवे स्टेशन है। गंगा के दाहिने किनारे पर यह एक पवित्र क़स्बा है। गंगा किनारे कई एक देव-मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें उषानाथ महादेव का मंदिर प्रधान है। विहार प्रान्त का यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है और दर्शनीय है।

नैपाल--

यह एक स्वतंत्र रियासत है। इसकी राजधानी काठमंडू में पशुपतिनाथ महादेव के दर्शन होते हैं। यह नगर हिमालय पहाड़ी की घाटी में, समुद्र तह से प्रायः ४५०० फ़ीट ऊपर, विष्णुमती और वागमती नदी के संगम के निकट, विष्णुमती नदी के पूर्व किनारे पर सुन्दरता से बसा है। शहर के पूर्वोत्तर फाटक से दक्षिण राजा प्रतापमाली व उनकी रानी का बनवाया हुआ रानीपोखरी नामक तालाब है, जिसके मध्य में एक मंदिर है। राजमहल के पास उत्तर ओर तालीजू का विशाल मंदिर है। केवल राज परिवार के लोग इसमें पूजा करते हैं। वागमती नदी के पास मुकंदरनाथ का सुन्दर मन्दिर है। मुकंदरनाथ नैपाल के प्रसिद्ध देवता हैं। लोग इनको नैपाल का रक्षक समझते हैं। मेष की संक्रान्ति के दिन धूमधाम से मुकंदरनाथजी की रथयात्रा का उत्सव होता है।

पशुपतिनाथ का मन्दिर—महाराज के महल से १ कोस उत्तर एक चौगान के भीतर पशुपतिनाथ का मन्दिर है, इसके चारों ओर दरवाजे व दालान बने हुए हैं। मन्दिर के मध्यम में प्रायः ३ हाथ ऊँची पाषाड़मयी पञ्चमुखी पशुपतिनाथजी की दिव्य मूर्त्ति है। मूर्ति के चारों ओर जंगला है। दालान से बाहर एक ओर सुनहला नन्दी है। मंदिर के पूर्व तरफ़ विष्णुमती नदी बहती है। मंदिर के समीप अनेक धर्मशाला हैं। फाल्गुन में पशुपतिनाथ के दर्शन का मेला होता है। कृष्णपक्ष की शिव-रात्रि के दिन भारी भीड़ होती है। मंदिर के आस-पास कई मीलों के बीच अनेक देव-देवियों के मंदिर हैं, जिनमें गुह्येश्वरी, वागीश्वरी और गणेशजी प्रसिद्ध हैं।

पशुपतिनाथ का माहात्म्य शिवपुराण, लिंग-पुराण, बाराहपुराण, आदि अनेक ग्रन्थों में लिखा है। नैपाल की राजधानी काठमंडू पहुँचने का मार्ग यह है, कि मोतीहारी और बेतिया के बीच सुगौली रेलवे स्टेशन है। सुगौली से १७ मील रकसौल, ३० मील सिमरावासा, ४० मील विचकी, ४६ मील चूड़िया घाटी, ५२ मील हिटाई, ६६ मील भीमपदी, ६८ मील सीसागढ़ी, ७१ मील ताम्बा-खानि, ७६ मील चिटङ्ग, ८१ मील थानकोट और ९० मील काठमण्डू है। इन सभी स्थानों में रहने के मकान और खाने-पीने का सब सामान मिलता है। बहुत से लोग गोरखपुर से जाते हैं। इस देश का काठमंडू का एक प्रसिद्ध तीर्थ है।

मुक्तिनाथ--

काठमंडू से उत्तर गण्डकी नदी के बाँये किनारे पर मुक्तिनाथ एक तीर्थ है। यहाँ पर शालिग्राम निकलने के कारण गण्डकी को नारायणी नदी भी कहते हैं। बहुत यात्री वहाँ से शालिग्राम लाते हैं। नदी के आस-पास छोटे-बड़े पन्द्रह-बीस देव मन्दिर बने हुए हैं और ७ गर्म सोतों से पानी निकल कर नारायणी नदी में गिरता है। उनमें से अग्नि कुण्ड का सोता एक मंदिर के भीतर पहाड़ से निकलता है।

काठमंडू से ८ मंज़िल उत्तर वर्किस्तान में नीलकण्ठ महादेव हैं। वहाँ भी गर्म पानी का कुंड है। मुक्तिनाथ को शालिग्राम क्षेत्र भी कहते हैं। इस क्षेत्र में शिवजी ने विष्णु को वरदान देकर निवास किया, अतः यहाँ स्नान तर्पण करने का बड़ा माहात्म्य है। यहाँ विष्णु भगवान् शालिग्राम रूप से सदाँ निवास करते हैं। यह क्षेत्र हरिहरात्मक अर्थात् शिव और विष्णु का रूप है। इस स्थान पर मृत्यु होने से साक्षात् विष्णु के दर्शन होते हैं। यह बड़ा ही पवित्र तीर्थ है। गरुड़पुराण, पद्मपुराण, कूर्मपुराण, बाराहपुराण आदि में इसका बड़ा माहात्म्य वर्णन किया गया है।

गौतम कुण्ड--

दरभङ्गा जङ्कशन से १४ मील पश्चिमोत्तर सीतामढ़ी ब्राञ्च पर कमतौल का स्टेशन है। इस जगह से २ मील पर एक छोटी नदी के पास एक छोटे मन्दिरमें अहिल्या की मूर्ति है। यहाँ चैत्र नौमी को मेला होता है। स्टेशन से प्रायः १० मील पश्चिम ओर मैदान में गौतमकुंड नामक सरोवर है। पानी में छोटे-छोटे पांच कुण्ड बने हैं। पास में एक छोटी नदी है। इस कुण्ड के पास एक कोठरी में श्रीनृसिंहजी की मूर्ति है।

गौतम कुण्ड से ३ मील पूर्व अहिल्या कुण्ड नामक तीर्थ है। वटवृक्ष के नीचे अहिल्या का चौरा है। पास ही दरभङ्गा नरेश का बनवाया हुआ राम लक्ष्मण का एक सुन्दर मन्दिर है। गौतम के प्यारे वन में जाकर अहिल्या कुण्ड में स्नान करने से मुक्ति मिलती है। वहाँ तीनों लोकों में विख्यात एक तड़ाग है। उसमें स्नान करने से अश्वमेध का फल होता है। उससे आगे राजर्षि जनक का कुँआ है, जिसमें स्नान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। यहीं पर भगवान् श्रीरामचन्द्र ने अहिल्या का उद्धार किया था।

जनकपुर--

दरभङ्गा जङ्कशन से २६ मील पश्चिमोत्तर जनकपुर रोड का, जिसको पुपुड़ी भी कहते हैं, स्टेशन है। स्टेशन से २४ मील पूर्वोत्तर तिरहुत में जनकपुर एक अच्छी बस्ती है। यहाँ पर रामचन्द्रजी का भ्राताओं सहित एक मन्दिर है। उसके पास कोठरी में महावीर की मूर्ति है। राम मन्दिर से पूर्व गङ्गासागर और धनुष सागर नामक सरोवर हैं। इनके निकट शिवजी, जानकीजी, रामचन्द्रजी व जनकजी के एक-एक मन्दिर बने हुए हैं। जानकी, शिव, रामचन्द्र के मन्दिर से दक्षिण राम सागर दूसरा तालाब है। यहां पर रतनसागर, दशरथ तालाब और अग्निकुंड नामक सरोवर और हैं। लोग कहते हैं यहाँ ७२ तालाब व ५२ कुटिया हैं।

चैत्र सुदी नौमीं को जनकपुर का प्रधान मेला होता है। नैपाल, भारत व दूसरे स्थानों से बहुत यात्री पहुँचते हैं। अगहन सुदी ५ को श्रीसीताराम का विवाहोत्सव होता है। हाथी घोड़े आदि से सुसज्जित राम मन्दिर से बरात निकलती है और जानकी मन्दिर तक जाती है। वहाँ सब को भोजन मिलता है।

जनकपुर से प्रायः ६ मील दक्षिण-पूर्व एक तालाब के पास विश्वामित्र मन्दिर है। जनकपुर से १४ मील दूर जङ्गल में धनुषा बस्ती के पास एक सरोवर के निकट पत्थर का बहुत बड़ा धनुष पड़ा है। यात्री इस धनुष के दर्शन करते हैं।

सीतामढ़ी—

जनकपुर रोड अर्थात् पुपुड़ी स्टेशन से १६ मील दूर सीतामढ़ी का रेलवे स्टेशन है। स्टेशन से १ मील पर लषनदेई नदी के पश्चिम किनारे पर सीतामढ़ी बस्ती है। यहाँ एक घेरे में सीताजी मन्दिर और चार-पांच दूसरे मन्दिर और घेरे के आसपास तीन-चार और देव मन्दिर हैं। इनमें सीता, रामचन्द्र, लक्ष्मण, शिव, हनुमान, गणेश आदिदेवताओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं। सीतामढ़ी

बस्ती से १ मील पुनउड़ा बस्ती के पास एक पक्का सरोवर है। लोग कहते हैं कि इसी स्थान पर अयोनिजा सीताजी उत्पन्न हुई थीं। सरोवर के पूर्व एक ठाकुर बाड़ी है। यात्री सरोवर में स्नान करते हैं। यह बड़ा पवित्र स्थान है।

सींगेश्वरनाथ—

भागलपुर ज़िले में राघवपुर स्टेशन से प्रायः २५ मील दक्षिण एक छोटी नदी के किनारे सींगश्वर नामक बस्ती है। वहां नदी के किनारे पर एक घेरे के भीतर सींगेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है। मूर्ति का शुद्ध नाम शृंगेश्वरनाथ है। फाल्गुन की शिवरात्रि के समय वहां पर बहुत बड़ा मेला होता है, जो दो सप्ताह तक रहता है। मेले में बिकने को हाथी बहुत आते हैं और घोड़े, जूता, नैपाली, छुरी, बर्त्तन आदि व्यवसायिक वस्तुएं भी बिकती हैं। वैशाख की शिवरात्रि को कुछ हल्का मेला लगता है। बाराह पुराण में यहाँ की कथा इस प्रकार है—एकबार शिवजी मन्दराचल से उत्तर बन में चले गये—देवतागणशिवजी को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये, तो नन्दी से उनका पता पूछा—नन्दी ने भी बताने से मनै करदी। देवगण उनको ढूंढ़ते हुए श्लेष्मातक बन में पहुँचे। वहाँ शिवजी ने मृग का रूप धारण कर लिया। देवगण उन्हें पहिचान गये और पकड़ लिया। इन्द्र ने मृग के शृङ्ग का अग्रभाग जा पकड़ा, ब्रह्मा ने विचला भाग पकड़ लिया और शृङ्ग का मूल भाग विष्णु के हाथ आया। तब शृङ्ग ३ टुकड़े होकर मृग-अन्तर्ध्यान होगया। इन्द्र ने अपने खण्ड को स्वर्ग में स्थापित किया, दोनों खण्ड गोकर्ण नाम से प्रसिद्ध हुए। विष्णु ने लोक हित के लिये अपना खण्ड स्थापित किया जो शृंगेश्वरनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। दोनों गोकर्णों में से एक दक्षिण में और एक उत्तर में स्थापित हुए।

यह बड़ा प्रसिद्ध और पवित्र तीर्थ है। यहां के दर्शन से साक्षात् शिव लोक की प्राप्ति होती है।

बाराह क्षेत्र—

कोशी नदी के किनारे, नैपाल राज्य में धवला-गिरिशिखर पर बाराह क्षेत्र है। इसको कोकामुख भी कहते हैं। एक साधारण मन्दिर में चतुर्भुज बाराह भगवान् की मूर्ति है। उत्तर ओर कोबरा नदी बहती है, जिसमें स्नान करके यात्री बाराहजी पर जल चढ़ाते हैं। कार्तिकी पूर्णिमा पर बड़ी भीड़ होती है। यहां पर बाराह क्षेत्र का मेला कार्तिकी पूर्णिमा से ४ दिन पहिले और ४ दिन पीछे तक रहता है। मन्दिर से दो तीन मील दूर सूर्यकुण्ड नामक तालाब है। कोशी नदी हिमालय से निकल कर क़रीब २२५ मील बहने के बाद भागलपुर के नीचे गङ्गा में मिल गई है। यह बड़ी पवित्र नदी है।

धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि गया की ओर कौशिकी नदी है। विश्वामित्र वहां ब्राह्मण बने थे। कौशिकी नदी में वायुभक्षी होकर त्रिरात्रि उपवास करने से गन्धर्व नगर में वास होता है। बाराह-तीर्थ में बाराह रूप धारी भगवान् विष्णु ने निवास किया था। वहाँ पर स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। बाराह क्षेत्र के बारे में मत्स्य पुराण में लिखा है कि विशेष कर द्वादशी को जाकर वहाँ स्नान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है।

इस तीर्थ का माहात्म्य गरुड़ पुराण, कूर्मपुराण, नरसिंह पुराण, पद्मपुराण आदि अनेक ग्रन्थों में है। यह बड़ा पवित्र स्थान है।

मुंगेर—

मुंगेर का स्वयं रेलवे स्टेशन है। यह विहार प्रान्त का एक जिला है। गङ्गा किनारे यह प्राचीन बस्ती है। गङ्गा किनारे, किले के पास, कष्टहरनी घाट है। घाट पर कई देवताओं के मन्दिर हैं। माघी पूर्णिमा के दिन इस घाट पर स्नान का मेला होता है। घाट से पश्चिम ओर गङ्गाजी की बीच
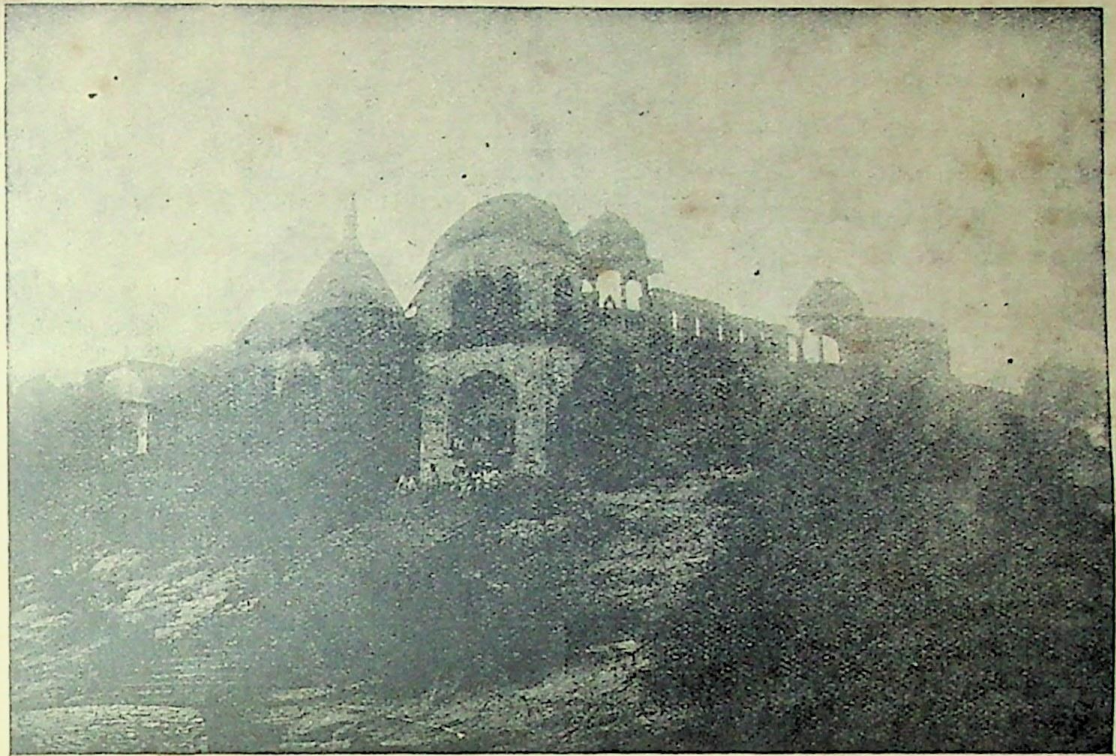
श्रीलाडिलीजीका मन्दिर—बरसाना (मथुरा)
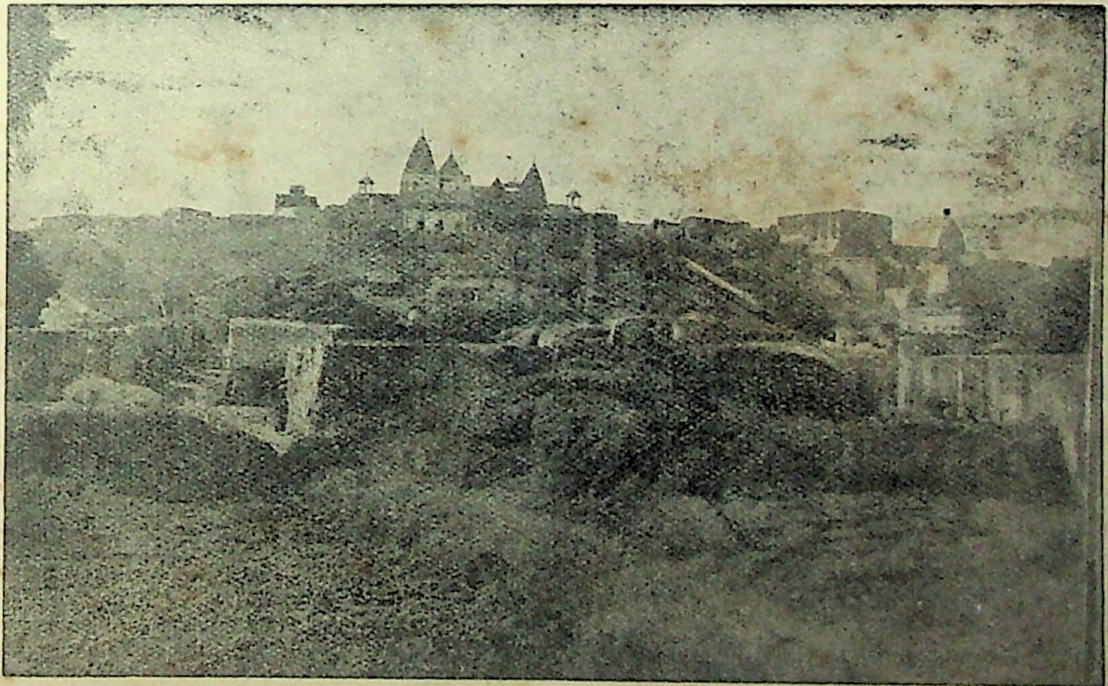
नन्दगाँव (मथुरा)
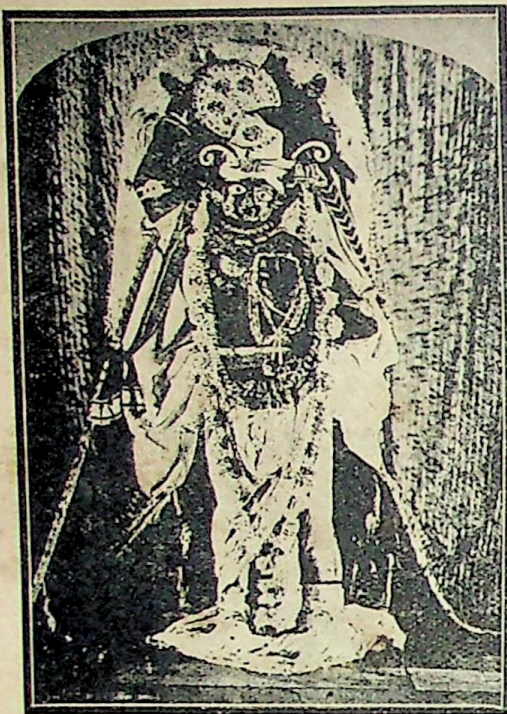
श्रीबलदेवजीकी झाँकी (जि० मथुरा)
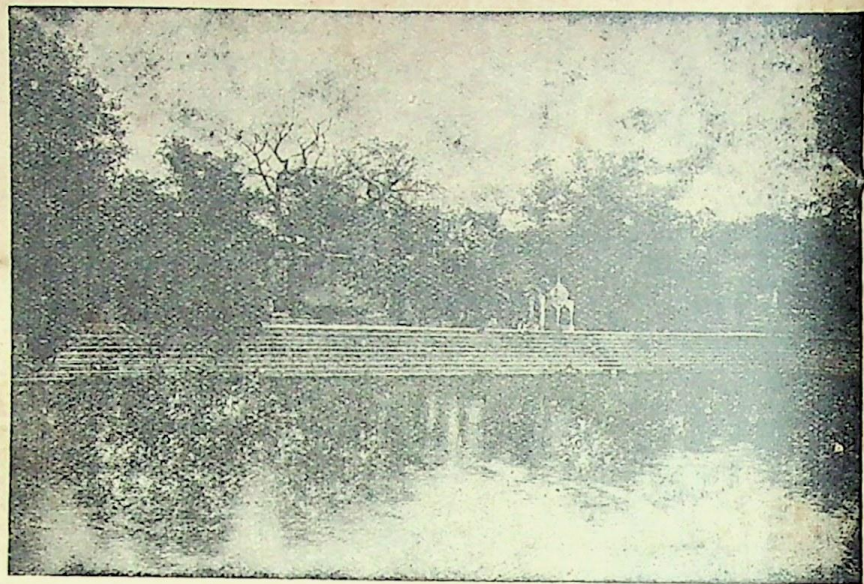
राधाकुण्ड (जि० मथुरा)

रामेश्वर-मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार
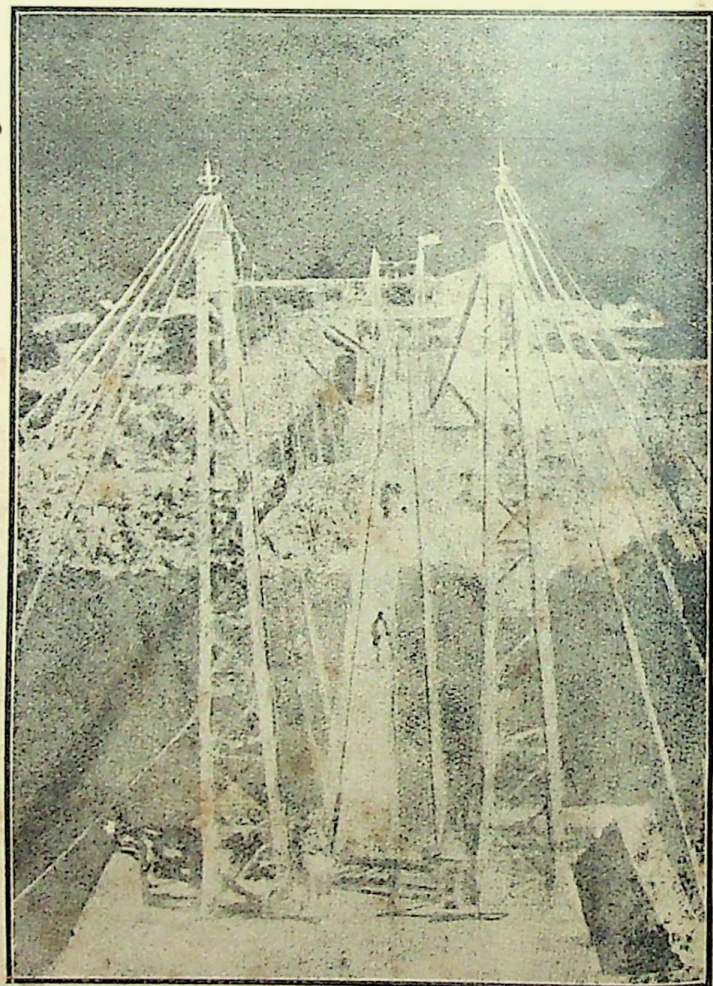
लक्ष्मणझूला

धारा में एक पत्थर की चट्टान दिखाई देती है।

नगर से ५ मील दूर सीताकुंड है। वहाँ एक घेरा है, उसमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाइयों के नाम से अलग-अलग ४ कुंड बहुत छोटे हैं। इनका जल ठण्डा है। सीताकुंड का जल गर्म है, इसमें कोई स्नान नहीं करता। यहाँ माघ पूर्णिमा को मेला लगता है।

सीताकुंड से ५ मील और गङ्गा से १ मील दूर चण्डी का स्थान है। वहां एक ही पत्थर का अर्ध-गोलाकार गुम्बज के समान चण्डी का मन्दिर है। एक तरफ छोटा द्वार है। दीवार में चण्डी का आकार है। लोग कहते हैं कि यह मन्दिर चण्डी का उल्टा हुआ कड़ाह है। राजा कर्ण इसी कड़ाह में कूद कर नित्य चण्डी से सवा मन सोना पाकर कष्टहरनी घाट पर दान देते थे।

ऐसा प्रसिद्ध है कि मुंगेर कस्बा पूर्व काल में मुद्‌गर मुनि के नाम से मुद्‌गरपुर नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पर मुद्‌गर मुनि निवास करते थे। मुद्‌गर का अपभ्रंश मुंगेर है। यह विहार प्रान्त का प्रसिद्ध एवं दर्शनीय स्थान है।

अजगयबीनानाथ—

भागलपुर ज़िले में सुलतान गञ्ज रेलवे स्टेशन से थोड़ी दूर उत्तर जहाँ गीरा गाँव के पास गङ्गा क बीच धारा में एक चट्टान पर अजगयबीथनाथ महादेव का मन्दिर है। यात्रीगण नाव में सवार होकर दर्शनों को जाते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि वहाँ जन्हुमुनि का आश्रम था और बैजू नामक ग्वाला उसी स्थान से गङ्गाजल ले जाकर वैद्यनाथजी पर चढ़ाता था। बहुत लोग वहाँ से जल ले जाकर वैद्यनाथजी पर चढ़ाते हैं। अजगयबीथनाथ लिंग स्वरूप हैं। उनके पास जन्हु मुनि का स्थान और उनके मन्दिर के पास कई जीर्ण मन्दिर हैं। चट्टान के बगल में चट्टान काटकर गणेश, सूर्य, विष्णु, भगवती, महावीर आदि देवताओं की मूर्तियाँ बनी हैं। माघ पूर्णिमा से फाल्गुन की शिव रात्रि तक चट्टान पर बड़ा मेला होता है। स्थान रम्य एवं दर्शनीय है। और बड़ा पवित्र है।

ब्रह्मपुत्र तीर्थ----

रङ्गपुर से ११ मील कुछ पूर्व कुछ उत्तर तिष्टा नदी के किनारे कौनिया स्थान है। कौनिया से ६ मील तिष्टा के पूर्व किनारे तिष्टा नामक गाँव है। तिष्टा से १६ मील कुरीग्राम और १६ मील ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पर यात्रापुर है। कुरीग्राम से १३ मील दक्षिण-पश्चिम ब्रह्मपुत्र नदी का चिलमारी घाट है। इसीको ब्रह्मपुत्र तीर्थ कहते हैं। चिलमारी घाट पर चैत्र सुदी ८ को ब्रह्मपुत्र स्नान का मेला होता है। यात्रीगण केवल एक रात्रि चिलमारी घाट पर निवास करके चले जाते हैं। वे लोग वहाँ के नियमानुसार लौटने के समय पीछे को फिर कर नहीं देखते। ऐसा प्रसिद्ध है कि महर्षि जम-दग्नि के पुत्र परशुरामजी यहाँ आने पर मातृ-हत्या के दोष से विमुक्त हो गये।

यह स्थान पूर्व में बड़ा पवित्र और दर्शनीय है।

कामाक्षा----

गौहाटी से प्रायः २ मील पश्चिम कामाक्षा नामक पहाड़ी है। उसके सिर पर एक सरोवर के निकट कामाक्षा देवी का सुन्दर मन्दिर है। मंदिर में दिन में भी दीपक जलता है। मन्दिर के पास मोदियों की दूकानें हैं। भारत के सब विभागों से यात्री यहाँ आते हैं। माघ, भादों, और आश्विन में उत्सव के समय बड़ी भीड़ होती है। इस देश का नाम काम-रूप भी है। यह देवी का महाक्षेत्र है। ऐसा प्रसिद्ध है कि साक्षात् देवी यहाँ प्रति मास रजस्वाला होती हैं। भूमण्डल में इससे श्रेष्ठ देवी का स्थान नहीं है।

यहाँ का माहात्म्य देवी भागवत, पद्मपुराण, शिवपुराण आदि में वर्णित है।

शिवसागर--

आसाम प्रान्त के ज़िले का सदर स्थान है। ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण किनारे से ६ मील दूर एक

छोटी नदी के किनारे यह शिवसागर की बस्ती है। यहाँ पर बहुत बड़ा तालाब है, इसके किनारे बहुत से मन्दिर हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा रुद्रसिंह के बड़े पुत्र शिवसिंह ने लगभग १७२२ में इस ११४ एकड़ के शिवसागर तालाब को बनवाया था। यह बड़ा रम्य स्थान है।

परशुराम कुण्ड—

भारत की पूर्वोत्तर सीमा पर, जहाँ ब्रह्मपुत्र नदी हिमालय पर्वत श्रेणी से निकल कर आसाम के मैदान में प्रवेश करती है, उस स्थान पर यह परशुराम कुण्ड है। यह पूर्वकाल में ब्रह्मकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध था, कुण्ड के चारों ओर पहाड़ियाँ हैं। ब्रह्मपुत्र की खास धारा पूर्वोत्तर से कुण्ड के समीप आई है। ऐसा प्रसिद्ध है कि ब्रह्मपुत्र नदी पर्वत से आकर इस कुण्ड में गुप्त होगई और फिर आसाम के मैदान में प्रकट हुई। इसी कारण से—अर्थात् ब्रह्मकुण्ड में गुप्त होनेसे इस नदी का नाम ब्रह्मपुत्र पड़ा। कुण्ड से कुछ दूर पहाड़ी पर बस्ती है। कुंड के समीप गुफा के भीतर एक झरना और बाहर दो झरना हैं। कुंड का जल बड़ा ठण्डा है। ऐसा प्रसिद्ध है कि विष्णु के अवतार परशुरामजी ने २१ बार क्षत्रियों का विनाश करके अन्त में ब्रह्मकुण्ड पर परशु का त्याग किया और यहाँ तपस्या करके वह पाप से विमुक्त हुए, तभी से उस कुण्ड का नाम परशुराम कुण्ड पड़ा। यह बड़ा पवित्र स्थान है।

सीता कुण्ड—

बङ्गाल के चटगाँव ज़िले में फैनी रेलवे स्टेशन से ३२ मील दक्षिण पूर्व सीता कुण्ड का स्टेशन है। समुद्र जल से ११५५ फीट ऊपर पहाड़ी सिलसिले पर यह पवित्र स्थान है। इस पहाड़ी की सब से ऊँची चोटी पर सीताकुण्ड है। इस कुण्ड का जल हमेशा गर्म रहता है। उसके जल के निकट जलती हुई बत्ती ले जाने से उसकी भाप बारूद के समान भभक उठती है। भारत के सभी विभागों से यहाँ यात्री आते हैं। सीताकुण्ड से प्रायः ३ मील उत्तर एक पवित्र झरना है। यह स्थान बड़ा रमणीक और देखने योग्य है।

बलवाकुण्ड—

सीताकुण्ड स्टेशन से ४ मील दक्षिण बलवाकुंड का रेलवे स्टेशन है। उसके निकट चटगाँव ज़िले में बलवाकुण्ड एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस स्थान के कुण्ड में पानी के ऊपर ज्वालामुखी की भाँति सदा आग बलती रहती है। सीताकुण्ड के समान यहाँ भी बहुत यात्री आते हैं।

नदिया (नवद्वीप)—

बङ्गाल प्रान्त में यह गंगा किनारे ज़िले की सदर बस्ती है। क़स्बे के निकट खड़ुआ नदी भागीरथी में मिलती है। पूर्वकाल में नदिया संस्कृत पाठशालाओं के कारण बहुत प्रसिद्ध थी। वहाँ पर न्याय–शास्त्र के प्रकाण्ड–विद्वान होते थे। अब भी नवद्वीप में संस्कृत की बहुत पाठशालायें हैं। नदिया से प्रायः २ मील दूर विद्यानगर नामक एक गाँव है, उसी जगह चैतन्य महाप्रभु ने विद्या पढ़ी थी, वहाँ एक मन्दिर में उनकी मूर्ति भी है।

नदिया में ही, बङ्गाल के ही नहीं, अपितु भारत भर के प्रख्यात देव पतितपावनावतार भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु (जिनको श्रीकृष्ण चैतन्य या श्रीगौराङ्ग महाप्रभु भी कहते हैं) ने श्रीजगन्नाथ मिश्र नामक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया था। महाप्रभु की जन्म–स्थली होने के कारण नदिया बहुत ही पवित्र तीर्थ समझा जाता है। महाप्रभु ने भगवत्कीर्त्तन की सुमधुर ध्वनि को घर–घर पहुँचाया था। अनेक विधर्मी और पापियों को नामोपदेश द्वारा भगवत्–पथ पर अग्रसर किया था। नवद्वीप में श्रीचैतन्य देव का मन्दिर है। यात्री गण प्रथम पुड़ामाव और बूढ़ा शिव के दर्शन करके तब श्रीगौराङ्गमहाप्रभु के दर्शन करते हैं। प्रति वर्ष माघ में यहाँ पर मेला होता है, जिसमें सहस्रों

यात्रियों की भीड़ होती है। नवद्वीप में बागान बाड़ी एक स्थान है, जिसमें एक श्रीराधाकृष्ण का बहुत विशाल मन्दिर है। यह मन्दिर गृहस्थों का है। लाखों की सम्पत्ति है। इसमें साधु-सेवा अच्छे ढंग पर होती है। मन्दिर दर्शनीय है। श्रीवास प्राङ्गण नामक एक मन्दिर है। यह वह स्थान है जहाँ प्रथमबार श्रीगौराङ्ग महाप्रभु श्रीवास के यहाँ कीर्त्तन को पधारे थे। इस स्थान को कीर्त्तन का आदि-स्थान होने का गौरव है। मिलन-मन्दिर में श्रीमहाप्रभु और श्रीनित्यानन्दजी का प्रथम मिलन यहीं हुआ था। यह मन्दिर अति महत्वपूर्ण है। नवद्वीप में और बहुत से मन्दिर हैं। गङ्गातट और नगर का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम एवं दर्शनीय है। यह स्थान बड़ा पवित्र है।

मायापुर--

यह स्थान नवद्वीप के पास भागीरथी और खड़ुआ नदी के संगम के मध्य में है। यहाँ पर श्रीगौड़ीय मठ का बहुत विशाल मन्दिर है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का भी एक मन्दिर है। वहाँ के लोग इसी स्थान को श्रीगौराङ्गदेव की जन्म-भूमि मानते हैं, इसी से वहाँ श्रीमहाप्रभु का एक जन्म-मन्दिर भी है। यह स्थान भी देखने योग्य है।

शान्तिपुर—

यह भागीरथी के किनारे, नदिया ज़िले में, बहुत बड़ा क़स्बा है। यह कपड़े की दस्तकारी के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ गङ्गा स्नान का एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ कार्तिकी पूर्णिमा पर भगवान श्रीकृष्ण की रास-यात्रा का मेला बड़ी धूमधाम से होता है, जो ३ दिन रहता है। अन्तिम दिन प्रधान सड़क पर श्रीकृष्ण की सवारी बड़े ठाटबाट से निकलती है। मेले में अपार भीड़ होती है। यहाँ दो-तीन और भी मन्दिर हैं। यह स्थान देखने योग्य है।

कलकत्ता--

गङ्गा की पश्चिमी शाखा, जिसको हुगली नदी भी कहते हैं, के बाँये किनारे पर हवड़ा के सामने बङ्गाल की राजधानी और भारत का श्रेष्ठ एवं प्रधान नगर कलकत्ता है। पहिले यही भारत की राजधानी था। कलकत्ता भागीरथी के किनारे क़रीब ८ वर्ग मील के क्षेत्रफल में बसा है। हवड़ा स्टेशन के पास आरमेनियन घाट के सामने भागीरथी की चौड़ाई ६०० गज़ है। राजमहल के आगे गङ्गा की दो धारा होगई हैं। उनमें से प्रधान धारा का नाम पद्मा या पद्दा है। दूसरी धारा का नाम हुगली है। पहिले समय में भागीरथी कालीजी के मन्दिर के निकट होकर बहती थी। उसका भाग र अर्थात् नाला, जिसमें यात्री लोग स्नान करके काली पूजन करते हैं, अब भी मौजूद है।

कलकत्ते के पास भागीरथी में कोसों तक सैकड़ों जहाज़ और आगबोट सर्वदा देखने में आते हैं। इनका दृश्य बड़ा ही अच्छा लगता है। कलकत्ता का मौसम अच्छा रहता है, हवा सर्द है। नगर के आस-पास काग़ज़ आदि के अनेक कारखाने हैं। यहाँ से देश-विदेशों को जहाज़ जाते हैं। भारत का यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ पर गङ्गाजी में प्रायः ज्वार भाटे बहुत आते रहते हैं।

नगर में एक पारसियों का अग्नि मन्दिर है। यह प्रसिद्ध पारसी सौदागर मि० रुस्तमजी कवासजी ने बनवाया था। यहाँ का अजायब घर भी देखने योग्य है। यहाँ पर एक जैन मन्दिर है। मानिक तल्ले के बाग़ में राय बद्रीदास मुकीम बहादुर का बनवाया हुआ है। मन्दिर एक सुन्दर बाग़ में बना है। यह कलकत्ते के सभी मन्दिरों में सुन्दर है। बाग़ में तालाब, सड़क आदि हैं। जैनियों की सालाना यात्रा बड़ी धूमधाम से निकलती है। यह मन्दिर देखने योग्य है।

बाग़ बाज़ार में प्रसिद्ध मन्दिर श्रीमदनमोहन जी का है। हज़ारों यात्री यहाँ दर्शन को आते हैं। जन्माष्टमी और रथ यात्रा के दिनों में यहाँ बड़ी भीड़ होती है। बड़े बाज़ार की तूलापट्टी से

श्रीसत्यनारायणजी का विशाल मन्दिर है, जिसमें नगर से सहस्रों आदमी रोज़ दर्शनों को आते हैं।

नगर में चिड़ियाख़ाना, कम्पनी बाग़, हाईकोर्ट, विश्व-विद्यालय, सरकारी बड़े दफ्तर, बहुत प्रसिद्ध अँग्रेजों की प्रतिमायें टकसाल आदि अनेक वस्तुएँ देखने योग्य हैं।

कालीजी के नाम पर इस नगर का नाम कलकत्ता हुआ है। यहाँ पर श्रीकालीजी का बहुत विशाल मन्दिर है। कहा जाता है कि वर्त्तमान मन्दिर को सन् १८०६ में बेहाला के चौधरियों ने बनवाया था। कुछ लोगों का कहना है कि जब शिवजी सती के मृत शरीर को लेकर फिरते थे—उसी समय से यह स्थान हुआ है। कलकत्ते की इस देवी का नित्य दर्शन करने से जन्म जन्मान्तरों के पाप समूल नष्ट हो जाते हैं।

गङ्गासागर—

यहां मकर की संक्रान्ति को जो पौष या माघ में होती है, स्नान का बहुत बड़ा मेला होता है। मेले के समय कलकत्ते में साधुओं की बहुत बड़ी-बड़ी जमातें आती हैं, जिनको वहाँ के रईस लोग अग्निबोट और नावों में बिठाकर गङ्गासागर भेजते हैं। और खाने-पीने की सामग्री उनके साथ कर देते हैं। दुकानदार लोग भी प्रायः नावों पर ही जाते हैं। कलकत्ते से ३८ मील दक्षिण 'डायमण्ड हारबर' तक रेल जाती है, परन्तु उसके आगे बिना नाव के काम नहीं चलता है। इसी कारण प्रायः सभी लोग कलकत्ते से नाव और अग्निबोटों पर चढ़कर ही गङ्गा सागर जाते हैं। नाव समुद्र के भाठा होने पर दक्षिण जाती है और ज्वार होने पर दक्षिण से उत्तर को चलती हैं। हावड़ा से खुलकर स्टीमर या नाव कम्पनी बाग, चण्डिपलहाट और बावड़ी गांव के सामने होती हुई उलवड़िया पहुँचती है। स्टीमर हर रोज़ कलकत्ते के आरमेनियन घाट से खुलकर उलवड़िया से नहर द्वारा मोदिनीपुर जाता है। कलकत्ते से २० मील गङ्गा के दाहिने मोदिनीपुर ज़िले में तमलूक बस्ती है। पूर्व समय में यह बहुत प्रसिद्ध शहर और बौद्धों का बन्दरगाह था। तमलूक में एक मन्दिर भी है, जिसको वहाँ के लोग 'दरगाह भामा' या भोना कहते हैं। यह स्थान एक अजीब तिहरी दीवार से घिरा हुआ है। शुरू में यह बौद्ध मन्दिर था।

तमलूक से १५ मील से अधिक दक्षिण चलने पर गङ्गा का जल छितरा जाता है। गङ्गासागर के यात्री बाँये किनारे से जाते हैं। इसके आगे 'डायमण्डहारबर' पहुँचते हैं। डायमण्डहारबर से २० मील आगे गङ्गा के मुहाने पर से समुद्र में होते हुए चौपहला बुर्ज, माहिला बुर्ज, लकड़ी का खम्भा और टेंगहराहाट होकर यात्रीगण गङ्गासागर पहुँचते हैं।

गङ्गासागर में एक खाड़ी उत्तर से आकर समुद्र में मिली है। मकर की संक्रान्ति के समय उस सङ्गम से उत्तर खाड़ी के पश्चिम किनारे पर क़रीब १ मील जङ्गल काट कर मेला बसाया जाता है, मेले में सड़कें निकाली जाती हैं। कलकत्ते की बहुत-सी दूकानें पहुँचती हैं। मेले में लाखों यात्री एकत्रित होते हैं। यहाँ के जङ्गल में बनैले जन्तु बहुत हैं। यहाँ कपिल मुनि का मन्दिर है। राजा-सगर के ६० हजार इसी स्थान पर मुनि के क्रोध से भस्म होगये थे, भागीरथ ने उनको गङ्गा स्नान कराकर स्वर्ग में पहुँचाया। महाभारत वन पर्व के ११४ वें अध्याय में लिखा है कि पाण्डवों ने गङ्गा और समुद्र के पवित्र सङ्गम पर स्नान किया। श्रीमद्भागवत में (स्कन्ध ३ अ० ३३) लिखा है कि भगवान् कपिल अपने पिता के आश्रम (सिद्ध-पुर) से माता की आज्ञा लेकर ईशानकोण की ओर (गङ्गासागर) में गये। वहाँ समुद्र ने उनका पूजन कर उनके रहने का स्थान दिया, अब तक कपिलदेवजी उसी स्थान पर विराजमान हैं।

कहा जाता है कि गङ्गासागर में कपिलजी का स्थान लुप्त होगया था, उसको परम वैष्णव

स्वामी श्रीरामानन्दजी महाराज ने पुनः प्रकट किया सङ्गम के पास एक टट्टी के आसारे में घिसी हुई बहुत पुरानी कपिलजी की मूर्त्ति थी—जिनके दाहिने राजा भागीरथ और बाँये श्रीस्वामी रामानन्दजी की मूर्त्ति थीं। यात्री लोग संगम पर स्नान करके समुद्र को नारियल फल या फूल और कोई-कोई पञ्चरत्न, (मोती, हीरा, जमूरद, पोखराज, मूंगा चढ़ाते हैं और कपिलजी का दर्शन और पूजन करते हैं।

गंगासागर में कोई पण्डा नहीं रहता। मकर की संक्रान्ति के अतिरिक्त कार्त्तिकी पूर्णिमा को भी थोड़ा मेला लगता है। इस समय यहाँ गंगा और सागर के संगम का चिह्न नहीं है। इस जगह समुद्र की खाड़ी है।

तप्तकुण्ड—

कटक शहर से २५ मील पश्चिम पुरी जिले का एक सबडिवीजन का सदर स्थान खुरदा एक बड़ी बस्ती है। जिसमें जगन्नाथपुरी के राजा के पूर्वज लोग रहते थे।

खुरदा से ६ मील पश्चिम बाघमारी गाँव के समीप तप्तकुण्ड नामक एक कूप है। जिसका उष्ण जल सर्वदा खौलता रहता है। कूप से थोड़ी दूर पर एक पोखर के निकट हाटकेश्वर महादेव का मन्दिर है। वहाँ मकर की संक्रान्ति के समय एक मेला होता है। मेला एक मास रहता है। मेले में कपड़े, वर्त्तन आदि की दूकानें जाती हैं।

भुवनेश्वर—

कटक से दक्षिण जगन्नाथपुरी तक ५३ मील लम्बी सड़क पर है। कटक से १६ मील दक्षिण भुवनेश्वर बस्ती है। कटक से चलने पर २ मील आगे एक चट्टी (उससे आगे १ मील तक नदी का बालू) मिलती है। नदी के बालू के मैदान से से दक्षिण ओर भुवनेश्वर को मार्ग जाता है। उड़ीसा सूबा के पुरी में भुवनेश्वर, रामेश्वर, कपिलेश्वर और भास्करेश्वर के मन्दिरों के मध्य में भुवनेश्वर नामक बस्ती है। भुवनेश्वर क्षेत्र का नाम पुराणों में एकाम्र क्षेत्र लिखा है। इसके आस-पास दूर-दूर तक पथरीली भूमि और जङ्गल है, जिसमें पहले ७००० शिव मन्दिर थे। जिनमें से पांच-छः सौ तो अब तक भी विद्यमान हैं। इन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कभी नहीं हुआ। सभी मन्दिर प्रायः एक ही ढंग के हैं। सब में एक ही ढंग का पत्थर भी लगा है। इनमें से अनेक मन्दिर बड़े-बड़े और सुन्दर हैं। किन्तु भुवनेश्वर का मन्दिर सबसे विशाल है। ये मन्दिर अत्यन्त शोभायुक्त और दर्शनीय हैं। भुवनेश्वर का मन्दिर कारीगरी और बनावट में पुरी के मन्दिर से भी अच्छा है। मन्दिर की ऊँचाई १६० फीट है। भीतर ८ फीट व्यास के अर्घे पर भुवनेश्वर शिवलिङ्ग हैं, जिनको वहाँ के पण्डे लोग हरीहरात्मक कहते हैं। मन्दिर में अँधियारा रहता है। इस कारण दीपक जलते रहते हैं। बड़े मन्दिर के दक्षिण २० एकड़ का जङ्गल है, लोगों का कहना है, ललित इन्द्रकेशरी का महल इसी जगह था। प्रत्येक जगह निशानियां देख पड़ती हैं।

बड़े मन्दिर के उत्तर विन्दु सरोवर नामक बड़ा तालाब है, तालाब पर बहुत से छोटे-छोटे मन्दिर देख पड़ते हैं। वासुदेव के मन्दिर से चौथाई मील पूर्वोत्तर ४० फीट ऊँचा कोटितीर्थेश्वर का मन्दिर है। पास में एक टीले पर ब्रह्मेश्वर शिव का मन्दिर है।

बड़े मन्दिर के पूर्वोत्तर छठवीं सदी के आरम्भ का बना हुआ हीन दशा में भास्करेश्वर शिव का मन्दिर है। भास्करेश्वर से पश्चिम राजरानी का मन्दिर है—जो एक समय खूबसूरती के लिये प्रसिद्ध है। राजरानी के मन्दिर के पास बहुत से मन्दिर हैं—जिनमें मुक्तेश्वर, केदारेश्वर, सिद्धेश्वर और परशुरामेश्वर प्रसिद्ध हैं

भुवनेश्वर का इतिहास और माहात्म्य स्कन्द-पुराण, आदि ब्रह्मपुराण, कूर्मपुराण और शिव-पुराण में वर्णित है।

उदयगिरि और खण्डगिरि के गुफ़ा मन्दिर—

भुवनेश्वर से ५ मील पश्चिम पुरी ज़िले में उदयगिरि और खण्डगिरि दो पहाड़ी हैं, छोटे वृक्षों के जंगल होकर भुवनेश्वर से मार्ग गया है। दोनों पहाड़ियों के बीच में एक तङ्ग घाटी है। दोनों पर पत्थर काटकर अनेक भाँति की बहुत-सी बौद्ध गुफ़ा और मन्दिर बनाये गये हैं। जो ईसा से लगभग ५० वर्ष पूर्व बने हैं। वैशाख में खण्डगिरि का मेला होता है। उदयगिरि—यह पहाड़ी ११० फ़ीट ऊँची है। इसके कटि स्थान में भीतर से पत्थर निकाल कर जगह-जगह गुफ़ा मन्दिर बने हैं।

रानीनूर—

(रानी महल) सब गुफ़ाओं से नीचे एक दूसरे के ऊपर छोटी कोठरियों के २ कतार हैं, जिनके आगे पायेदार बरण्डे और ४६ फ़ीट लम्बी तथा ४३ फ़ीट चौड़ी पहाड़ी काटकर बनी हुई अँगनाई हैं,इसके अतिरिक्त इस गुफ़ा पर और भी देखने योग्य वस्तुएँ हैं।

गणेश गुफ़ा—

रानीनूर गुफ़ा के प्रायः सीधे उत्तर उससे बहुत ऊँचाई पर २ कमरे हैं, जिनके आगे ५। फ़ीट ऊँचा १ बरण्डा है। सीढ़ी पर दोलथी है। रानी-नूर से ५० गज पश्चिम 'स्वर्गद्वारी गुफ़ा' है। इसके पास ही जय विजय या हंसपुर की गुफ़ा है।

गोपालपुरा—पूर्वोत्तर में गोपालपुरा और मञ्चपुरा नामक गुफ़ाओं के २ झुण्ड हैं। कमरे के पायों पर खोदकर बने हुए लुलाट अक्षरों में २ लेख हैं। ये लेख अब पढ़ने में नहीं आते हैं। इसके पास ही 'वैकुण्ठ' है।

हाथी गुफ़ा—

७५ गज पश्चिमोत्तर यह गुफ़ा है। इसके दरवाजे के ऊपर लाट अक्षरों में १ लम्बा लेख है-जो शिला में खुदा है। जिसमें कलङ्गा के एक राजा के यश का वर्णन किया गया है। यह राजा ईसवी सन् से ४०० ९९ पहले हुआ है। इसके अतिरिक्त उस गुफ़ा में गुप्त अक्षर और कुटिला अक्षरों में कई छोटे शिला लेख हैं। हाथी गुफ़ा के पास ही पवन गुफ़ा है।

सर्प गुफ़ा—

पवन गुफ़ा से ७५ फ़ीट दक्षिण-पश्चिम है। दरवाजे के शिर पर मोटी नक्काशी का ३ सिर वाला एक साँप है। जिसके नीचे बैठकर भीतर जाने योग्य द्वार है। यहाँ भी एक शिलालेख है—जिसका हिन्दी अनुवाद—"चूला कर्म की कोठरी और कर्म ऋषि का मन्दिर" होता है। 'व्याघ्रगुफ़ा' भी देखने योग्य है, इसके दरवाजे पर भी लाट अक्षरों में 'ससेविन का गुफ़ा' लिखा है। इसके पास ही 'खण्डगिरि' और 'अनन्ता गुफ़ा' है, अनन्ता गुफ़ा पर भी एक शिला लेख है।

बायें की गुफ़ायें—

अनन्ता गुफ़ा में दो मुहानी रास्ते के पास लौटकर बाँये के रास्ते से जाना चाहिये। आगे की गुफ़ाओं के पास १२ वीं सदी का एक संस्कृत लेख है, जिसमें लिखा है कि—"आचार्य कलाचन्द्र और उसके विद्यार्थी बालाचन्द्र की यह गुफ़ा है"। इसके आगे की गुफ़ाओं में बौद्ध और जैन मूर्त्तियाँ हैं।

यहाँ से पहाड़ी के सिरे तक कड़ा चढ़ाव है। शिरोभाग पर १८ वीं सदी का बना हुआ पारस-नाथ का एक मन्दिर है। मन्दिर के पास ही 'देवसभा' नाम का एक स्थान है, इसके पास पत्थर में खुदा हुआ एक तालाब है। तालाब के नीचे एक गुफ़ा है। कहा जाता है, कि इस गुफ़ा

में उड़ीसा के राजा ललित इन्द्र केशरी का रिमेन्स रक्खा है ।

श्रीजगन्नाथ (धाम) पुरी—

भारत के चार प्रधान तीर्थों में श्रीजगन्नाथपुरी का मुख्य स्थान है। जगन्नाथपुरी भारत के पूर्वीय तट पर उड़ीसा प्रान्त के अन्तर्गत है। भारत के विभिन्न भागों से प्रतिवर्ष लाखों यात्री यहाँ पहुँचते हैं। इस पुरी का एक विशेष महत्व है। हृदय की ऊँच-नीच भावनायें यहाँ लय हो जाती हैं। यहाँ तो केवल भक्ति, प्रेम और ज्ञान की धारायें बहती हैं। यहाँ का पारस्परिक प्रेम अद्भुत है।

श्रीजगन्नाथपुरी का प्राचीन नाम पुरुषोत्तम क्षेत्र भी है, कहीं-कहीं इसका नाम श्रीक्षेत्र भी मिलता है । भगवान् श्रीजगन्नाथ और उनकी

श्रीजगन्नाथजी के मन्दिर का नक़शा ।
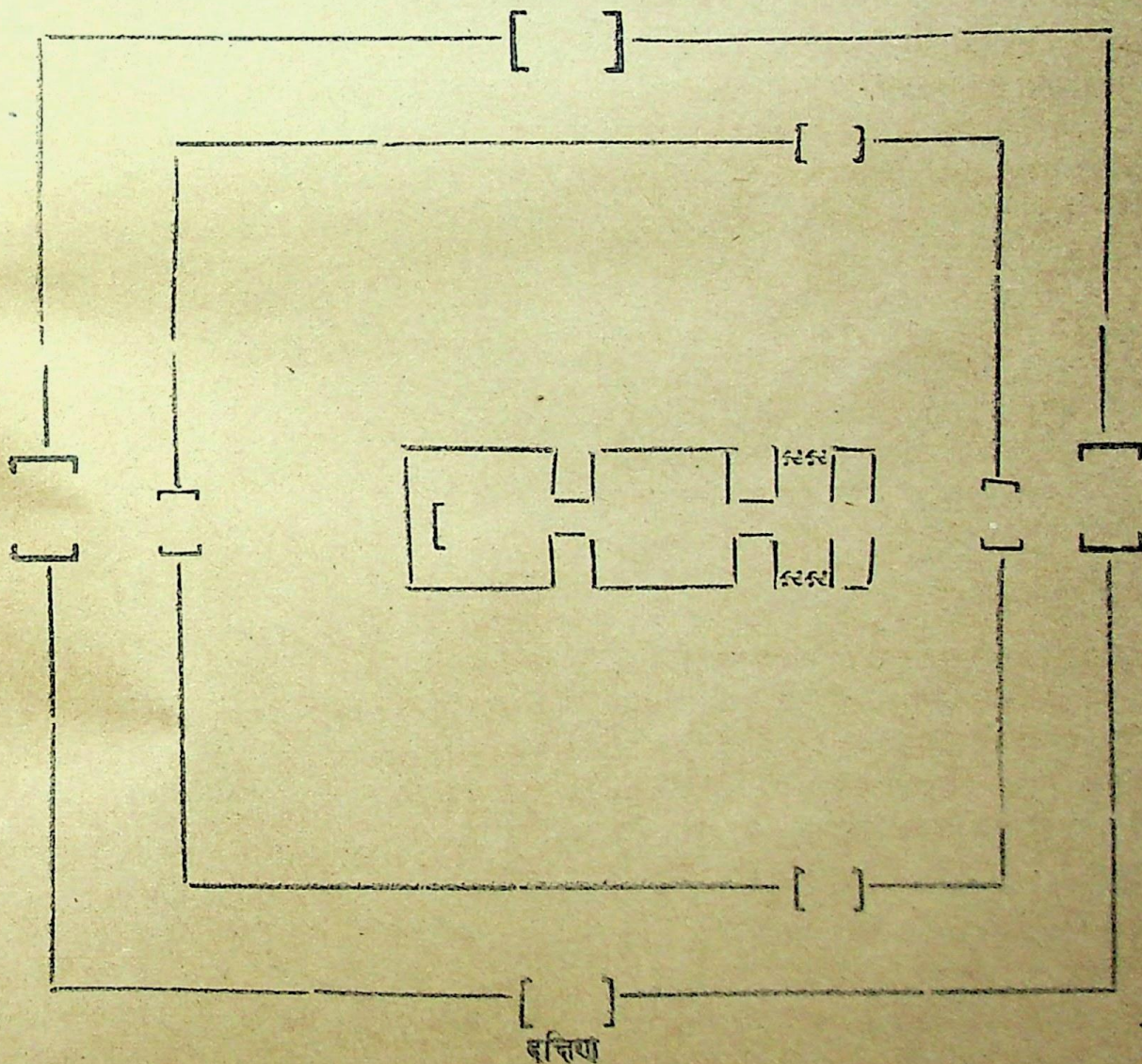
पुरी का वर्णन वेद में भी आता है। वर्त्तमान मन्दिर बहुत पुराना है, आधुनिक शिल्पकला विज्ञों का कहना है, कि यह मन्दिर आठसौ वर्ष से भी पुराना है। इस मन्दिर को उड़ीसा के गंगा वंश प्रथम राजा श्रीगंगेश्वर ने बनवाया था। इसका दूसरा नाम चोल गङ्गा भी था। जगन्नाथपुरी की प्राकृतिक शोभा और सौन्दर्य देखते ही बनता है। वर्त्तमान पुरी समुद्र तट से १ मील की दूरी पर है। शहर के मध्य भाग में करीब २० फीट ऊंचा एक टीला है इसको लोग नीलगिरि कहते हैं। जगन्नाथजी का मन्दिर इसी टीले पर है। मन्दिर बड़ा विशाल है। पुरी के अधिकाँश भाग में मन्दिर ही का विस्तार है। यहाँ अन्य तीर्थों की भाँति बहुत से मन्दिर नहीं हैं—न कोई व्यापार ही है। पुरी के सर्वस्व श्रीजगन्नाथजी है। पुरी में खूब चौड़ी सड़कें हैं। जिनके दोनों तरफ पण्डा महान्त और मठाधीशों के मकान हैं। जो मकान बस्ती से बाहर समुद्र तट पर बने हैं वे सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद हैं। यहाँ के निवासी अधिकतर वैष्णव है। यहाँ ताड़ के पेड़ अधिक होते हैं। ताड़पत्रों पर लिखने की रिवाज़ अभी तक कहीं कहीं देखने में आती है। पुरी में विशेष कर उड़ीसा के ही लोग रहते हैं जो बंगालियों से मिलते जुलते हैं।

पुरी जाने के लिये पर्याप्त सुविधायें हैं। पुरी कलकत्ते से ३११ मील है। कलकत्ता (हावड़ा) तक तो ई० आई० आर० रेलवे है। हावड़ा से पुरी जाने के लिये बंगाल नागपुर रेल पर चढ़ना होता है। पुरी बी० एन० आर० का स्टेशन है। उत्तर भारत के जो यात्री कलकत्ता होकर नहीं जाना चाहते हैं वे काशी (बनारस) से गया, वैद्यनाथ धाम और आसनसाल होते हुए खड़गपुर पहुँच जाते हैं—वहाँ से सीधे पुरी जाते हैं। बम्बई की ओर से आने वाले यात्रियों को पूनां (जी० आई० पी० आर०) और बाड़ी से वेजवाड़ा (एन० जी० आर०) बालटे पर (एम० एण्ड० एस० एम०) होते हुए पुरी जाते हैं। दूसरा मार्ग बम्बई से भुसावल और नागपुर होकर जाता है।

पुरी में ठहरने के लिये पण्डे प्रायः यात्रियों को मकानों में ही ठहराते हैं। पुरी में श्रीयुत धनजी मूल की धर्मशाला और आशाराम मोतीराम की धर्मशाला ठहरने योग्य है। किराये को भी मकान बहुत मिल जाते हैं। रथयात्रा के समय यात्रियों को ठहरने में प्रायः कष्ट होता है, क्योंकि स्थान सभी घिर जाते हैं। रथयात्रा के समय कभी-कभी यात्रियों की संख्या ४ लाख से भी ऊपर पहुँच जाती है।

पुरी में जो यात्री पैदल आना चाहते हैं, उनके लिये दूसरा मार्ग है। पैदल चलने वालों के लिये पक्की सड़क है। कुछ लोग कटक से पुरी को पैदल जाते हैं जो कि ५३ मील है। कटक से पुरी तक सुन्दर पक्की सड़क है। यात्रियों के पैदल यात्रा करने के दो कारण हैं। एक तो श्रीक्षेत्र में सवारी द्वारा चलना धार्मिक दृष्टि से अच्छा नहीं। दूसरा कारण यह है कि कटक से पुरी को जाते हुए मध्य में भुवनेश्वरजी का प्रसिद्ध मन्दिर मिलता है—इस स्थान का दर्शन करते हुए यात्रीगण जाते हैं पुरी का मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर की शिल्पकारी देख कर यात्री चकित हो जाते हैं। मन्दिर की विशालता का परिचय ऊपर दिये गये के नक़शे द्वारा प्राप्त किया जा सकता है—

मन्दिर का बाहिरी परकोटा ६६५ फीट लम्बा और ६४० फ़ीट चौड़ा है। परकोटे की दीवार की ऊँचाई २० फीट से २४ फीट तक है। दीवार पर चारों तरफ़ सुन्दर कंगूरे लगे हैं। परकोटे के चारों दिशाओं में चार बड़े द्वार हैं। जिसमें पूर्व का द्वार सब द्वारों से सुन्दर और विशाल है। यही द्वार मुख्य है। द्वार की चौखट काले पत्थर

की नक्काशीदार बनी हुई है। किवाड़ साल की लकड़ी के सुन्दर मजबूत बने हुए हैं। दीवारों में बहुत सी प्रतिमायें बनी हैं। द्वार के दोनों तरफ दो सिंह की मूर्त्तियाँ बनी हैं—इसी कारण इस द्वार को सिंहद्वार भी कहते हैं। इसी तरह उत्तर, पश्चिम और दक्षिण परकोटे में भी विशाल दरवाजे हैं। दक्षिण का फाटक १५ फ़ीट ऊँचा है, मन्दिर के घेरे के चारों तरफ ४५ फ़ीट चौड़ी सड़क है। सिंह दरवाजे के सामने काले रङ्ग के एक ही पत्थर का ३५ फ़ीट ऊँचा और १६ कोण का सुन्दर 'अरुण स्तम्भ' है, स्तम्भ के ऊपरी भाग में सूर्य के सारथी अरुण की मूर्त्ति है। स्तम्भ के विषय में लोगों का कहना है कि यह स्तम्भ महाराष्ट्र लोग कनारका के सूर्य मन्दिर से उठवा कर लाया गया है। यह स्थान पुरी से क़रीब २० मील की दूरी पर है। यह घटना १८ वीं सदी के प्रारम्भ की बताई जाती है। सिंह दरवाजे के पूर्व मैदान में बाज़ार है, जहाँ भगवान् का प्रसाद बिकता है। यात्री लोग पुरी की स्मृति रूप यहाँ से तालपत्र के छाता, बेंत और चन्दन आदि वस्तुयें ख़रीदते हैं। सिंहद्वार से घुसने पर मंदिर के भीतर का दूसरा परकोटा मिलता है। दूसरे परकोटे की लम्बाई ४२०फ़ीट और चौड़ाई ३१५फ़ीट है। दूसरे परकोटे में भी चारों दिशाओं में चार दरवाजे हैं। इसके भीतर के परकोटे को पन्द्रहवीं शताब्दी में राजा पुरुषोत्तम दास ने बनवाया था। भीतरी परकोटे में कई छोटे-छोटे मन्दिर हैं। जिनमें पातालेश्वर का मन्दिर प्रधान है।

श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर मुख्यतया चार भागों में विभक्त है। विमान, जगमोहन, नटमंदिर (नृत्यमन्दिर) और मण्डप।

विमान—भगवान् श्रीजगन्नाथजी के रहने का मुख्य स्थान है, अर्थात् मन्दिर की प्रधान मूर्ति यहीं पर है। इसकी ऊंचाई २१४ फ़ीट,लम्बाई ८० फ़ीट और चौड़ाई भी इतनी ही है। इसके ऊपर नीलचक्र है। उसके ऊपर ध्वजा है। चक्र का व्यास बारह हाथ का बतलाया जाता है। ये चक्र और ध्वजा यात्रियों को ४-५ मील से ही दिखाई देने लगते हैं। मन्दिर के विमान पर चारों तरफ़ बहुत से देवताओं की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं, मन्दिर की प्रधान मूर्तियाँ चार फ़ीट ऊंची और सोलह फ़ीट लम्बी एक पत्थर की वेदी पर स्थित है। इस वेदी को 'रत्नवेदी' कहते हैं। रत्नवेदी के चारों ओर एक चार फ़ीट चौड़ी गली है, जिसमें होकर यात्रीगण 'रत्नवेदी' की परिक्रमा करते हैं। रत्नवेदी के ऊपर उत्तर तरफ़ ६ फ़ीट लम्बा सुदर्शन चक्र है। चक्र के दक्षिण भी श्रीजगन्नाथजी, सुभद्रा और बलभद्रजी हैं। जगन्नाथजी के एक ओर लक्ष्मीजी, दूसरी ओर सत्यभामा और आगे राजा इन्द्रद्युम्न की धातु प्रतिमा है। बलभद्रजी की प्रतिमा ६ फ़ीट ऊंची श्वेतवर्ण है। जगन्नाथजी की प्रतिमा ५ फ़ीट ऊंची श्यामवर्ण है। सुभद्रा की प्रतिमा ४ फ़ीट ऊंची पीले रङ्ग की सुन्दर मूर्ति है। तीनों मूर्तियाँ चन्दन काष्ठ से निर्मित हैं। अत्यन्त सुहावनी हैं। मूर्तियाँ देखने में तो बड़ी सुन्दर हैं किन्तु सुडौल नहीं हैं। इनका शृङ्गार बड़ा अच्छा होता है। सुन्दर रेशमी आदि वस्त्रों से सुसज्जित हैं। तीनों मूर्तियों के मस्तक पर एक-एक करके हीरा जड़ा हुआ है। मूर्तियों का शृङ्गार तरह-तरह से किया जाता है। मूर्तियों के समय-समय पर जो शृङ्गार होते हैं उनके नाम अलग-अलग हैं—जैसे अवकाश वेष, प्रहरवेष, चन्दनवेष आदि। सबसे प्रसिद्ध वेष, जो कि बड़े शृङ्गार के नाम से बोला जाता है— सायंकाल को बनता है। यहाँ रामेश्वर की तरह भगवान के समीप जाने की कोई रोक टोक नहीं है, और न द्वारिका तथा रामेश्वर की तरह किसी दर्शनार्थी को किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता। भगवान् पर जो भेंट आती है, वह सब ख़ज़ाने में जमा होती है।

जगमोहन—विमान के आगे जगमोहन है, जगमोहन १२० फ़ीट ऊंचा है और ८० फ़ीट लम्बा है और इतना ही चौड़ा भी है। जगमोहन में तीन तरफ़ बड़े दरवाज़े हैं। जगमोहन के उत्तर की ओर जगन्नाथजी का सामान रहता है। यात्रीगण जगमोहन से ही देवताओं के दर्शन करते हैं।

नृत्य मन्दिर—जगमोहन से पूर्व भाग में लगा हुआ यह स्थान है, भीतर से ६६ फ़ीट लम्बा और ६७ फ़ीट चौड़ा है। इसके उत्तर और दक्षिण बग़ल में चार-चार चौखूंटे पाये हैं। पायों में देवताओं के चित्र बने हुए हैं। पूर्व की ओर एक स्तम्भ है, जिस पर गरुड़जी की मूर्त्ति है। इस मन्दिर में नृत्य होता है और बाजा बजता है। इस लिये इसको नृत्य-मन्दिर कहते हैं।

भोग मन्दिर—नृत्य मन्दिर के पूर्व १२० फ़ीट ऊँचा और ६० फ़ीट लम्बा और इतना ही चौड़ा भोग मन्दिर है। जिसमें नीचे से ऊपर तक पत्थर की हज़ारों मूर्त्तियाँ हैं। इस भोग मण्डप को राजा पुरुषोत्तम देव ने प्न्द्रहवीं शताब्दी में बनवाया था। इसके समीप में ही पाकशाला (रसोई घर) है। पाकशाला में सैकड़ों चूल्हे बने हुए हैं। एक-एक चूल्हे पर कई एक वर्त्तन चढ़ते हैं।

श्री जगन्नाथजी के मंदिर से दक्षिण भीतरी वाले परकोटे में एक पीपल का वृक्ष है। उसके समीप ३८ फ़ीट लम्बा और इतना ही चौड़ा एक मण्डप है। जिसे मुक्ति मण्डप कहते हैं, जहाँ पण्डित लोग बैठ कर प्रायः पूजा पाठ और धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ और वाद-विवाद किया करते हैं। इसके बाद अक्षयवट है। जिसके साथ यात्री गण भेटते हैं। वट के समीप ही प्रलय काल के विष्णु भगवान् की बाल मूर्त्ति है। जिसको बाल-मुकुन्द कहते हैं। पास ही में छोटा-सा रोहिणी-कुण्ड है। कुण्ड के समीप विमला देवी का मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन बतलाया जाता है। यहाँ पर तीस-चालीस छोटे-छोटे मन्दिर हैं। उनमें से कुछ मुख्य ये हैं—श्रीगणेशजी, श्रीदेवराजमाधव, श्रीमंगलादेवी, श्रीलक्ष्मीजी, श्रीकर्माबाई, श्रीधर्मराजजी, श्रीपातालेश्वर आदि।

सिंह द्वार के समीप फाटक की महराबी के एक आले में श्रीजगन्नाथजी की एक छोटी-सी मूर्ति है, जिसको लोग 'पतितपावन' के नाम से पुकारते हैं। अछूत लोग जिन्हें मन्दिर के भीतर जाने की आज्ञा नहीं है, इसी मूर्ति का दर्शन करते हैं। रथयात्रा के समय अछूत लोगों को भगवद्दर्शन का मौक़ा मिलता है। सिंह द्वार के उत्तर स्नान वेदी है, जहाँ ज्येष्ठ मास में श्रीजगन्नाथजी स्नान के लिये जाते हैं। द्वार के पास वाले एक भवन में स्नानोत्सव का मेला होता है।

श्रीजगन्नाथजी में पूजा का अच्छा प्रबन्ध है। प्रातःकाल से लेकर शयन काल तक की सेवा-पूजा भाव पूर्वक होती है, दिन में बहुत से भोग भी लगते हैं। लगभग १० बजे राजभोग लगता है, भोग लग जाने के बाद यात्रियों को 'रत्नवेदी' के पास से दर्शन करने का मौक़ा मिलता है। यहाँ दर्शनों में भीड़ बहुत होती है, कभी-कभी तो दर्शन करने में बड़ा समय लग जाता है। किन्तु दर्शन करने का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। यात्रियों को कष्ट नहीं होता है। भगवान् के पूजन का वर्त्तमान क्रम बहुत दिन से चला आरहा है उसमें परिवर्त्तन नहीं होता। किसी उत्सव विशेष के समय थोड़ा हेर-फेर भले ही होजाता है। मन्दिर में पूजा के लिये मन्दिर की ओर से पुजारी नियत हैं। प्रति दिन ३६ पुजारी भगवान् की पूजा करते हैं। पुजारी लोग अपने-अपने नियत समय पर आते हैं और पूजा करके चले जाते हैं। इस तरह वर्ष में ग्यारह महीने यहाँ के पण्डे लोग ही बारी-बारी से भगवान् की पूजा का काम करते हैं। ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा से आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा तक एक महीना सावर वंश के शूद्र लोग भगवान् की पूजा करते हैं। सावर लोग ही

यहाँ के मूल निवासी हैं, ये लोग दैतापति कहलाते हैं, यह बहुत काल से चला आरहा है।

भगवान् का प्रसाद—पुरी में प्रसाद पाने का विशेष महत्व है, विशेष कर भात खाने का तो बड़ा ही महत्व है। भगवान् को तण्डुल (भात) विशेष प्रिय हैं। पुरी में प्रसाद के लिये जात-पांत का प्रायः भेद नहीं माना जाता है। मन्दिर में जो भोग लगता है वह प्रायः राजा, मठाधीश और ठेकेदारों की ओर से तैयार कराया जाता है। महान्त और मठाधीशों की ओर से तैयार कराया गया प्रसाद भोग लगने पर उनको दे दिया जाता है—जिसे वे अपने मठों में अपने शिष्य-सेवकों को बांटकर आपस में खाते हैं। राजा की तरफ़ से जो भोग लगता है। उसका अधिकांश भाग और ठेकेदारों की तरफ़ से जो भोग लगता है उसका पूरा भाग मन्दिर के अन्दर ही 'आनन्द बाज़ार' में बेचा जाता है। यह बाज़ार भीतरी और बाहरी परकोटे के बीच में है। पण्डे लोग इसी बाज़ार से भगवान् के प्रसाद को ख़रीद कर अपने यजमानों को खिलाते हैं। यहाँ पर हिन्दूमात्र भगवत् प्रसाद ख़रीद कर खा सकता है। शहर के बहुत से व्यक्ति इसी बाज़ार से अपने भोजन का प्रबन्ध रखते हैं। भगवान् के भोग का सामान सब अच्छी प्रकार से तैयार किया जाता है। रसोई घर में सब सामान जांच करके भेजा जाता है। फिर भी कभी कभी घटिया सामान भी पहुँच जाता है। प्रसाद का यहाँ इतना महत्व है कि पत्तलों पर शेष बचा हुआ प्रसाद भी इकट्ठा कर लिया जाता है और वह सिंह द्वार पर बेचा जाता है, उसको अछूत जाति वाले ख़रीदते हैं।

पुरी के उत्सव—श्रीजगन्नाथजी के मन्दिर में प्रति वर्ष कई उत्सव मनाये जाते हैं। ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को भगवान् की मूर्त्तियाँ स्नान मण्डप में लाई जाती हैं और भगवान् को १०८ घड़ों से स्नान कराया जाता है। इस अवसर पर यात्रियों को भगवान् के चरण छूने का अवसर मिलता है।

रथयात्रा—पुरी का सबसे अच्छा और मुख्य रथ का उत्सव होता है। यह उत्सव आषाढ़ शुक्ला द्वितीया से आरम्भ होता है। यह वर्ष का सबसे बड़ा उत्सव है। हरसाल तीन लकड़ी के बड़े-बड़े नये रथ बनवाये जाते हैं। रथ की ऊँचाई लगभग ४०—५० फ़ीट होती है। जगन्नाथजी के रथ में सोलह पहिये, श्रीबलदेवजी के रथ में १४ पहिये और श्रीसुभद्राजी के रथ में १२ पहिये होते हैं। रथ के पहिये का व्यास ६ फ़ीट होता है। रथ को बनाने में छः मास लगते हैं। रथयात्रा के बाद रथ तोड़-फोड़ दिया जाता है। आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन तीनों मूर्त्तियाँ रथ में बैठाई जाती है। बलदेवजी की मूर्त्ति इतनी भारी है कि ५०—६० आदमी उसे मिलकर उठाकर लाते हैं। इसके पश्चात् सुभद्रा और जगन्नाथजी की मूर्त्ति लाई जाती हैं। जगन्नाथजी की मूर्त्ति सबसे भारी है। इसे उठाने के लिये सौ-सवासौ मनुष्यों की आवश्यकता होती है। जगन्नाथजी के रथ में विराजमान होने के पहले पुरी का राजा प्रत्येक रथ में झाड़ू लगाकर चन्दन जल छिड़कता है। रथ बड़े-बड़े चार पाँच रस्सों से दर्शकों द्वारा खींचे जाते हैं। रथ खींचने के लिये ४२०० कुली भी नियत रहते हैं जो प्रतिवर्ष रथों को खींचते हैं। उनका रथ खींचना ही साल में एकबार काम है। उनको जगन्नाथजी की ओर से माफ़ी की भूमि मिली हुई है। तीन चार घण्टे में रथ अपने निर्दिष्ट स्थान (जनकपुर) में पहुँच जाता है। वहाँ भी एक मन्दिर है—जिसको गुड़ीचा मन्दिर भी कहाते हैं। यहाँ पर भी पूर्वोक्त नियमानुसार ही सेवा-पूजा होती है, आषाढ़ शुक्ला दशमी को मूर्त्तियाँ फिर रथ पर बैठाई जाती हैं। रथ सायङ्काल तक सिंह दर-

बाजे तक पहुँच जाते हैं। एकादशी को मूर्त्तियाँ रथ पर ही रहती हैं। द्वादशी के दिन मूर्त्तियाँ भीतर मन्दिर में पहुँचती हैं।

श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक झूलनोत्सव मनाया जाता है, झूले पर भगवान् की छोटी मूर्त्ति बैठाई जाती है।

इनके अतिरिक्त जगन्नाथजी के मन्दिर में सभी उत्सव मनाये जाते हैं।

पुरी के आस-पास दर्शनीय स्थान---

मार्कण्डेय तालाब—जगन्नाथजी के मन्दिर से आध मील उत्तर मार्कण्डेय तालाब है, पश्चिम के फाटक से तालाब तक पक्की सड़क गई है। मार्कण्डेय द्वारा स्थापित शिवजी का बड़ा मन्दिर है। चतुर्दशी को इस तालाब में स्नान करने का विशेष महत्व है। स्कन्दपुराण में इसकी कथा विस्तार से लिखी है।

चन्दन तालाब—मार्कण्डेय तालाब से पूर्व कटक की सड़क के पास २२५ गज चौड़ा और इससे भी अधिक लम्बा चन्दन तालाब नाम का एक बड़ा सरोवर है। वैशाख की अक्षयतृतीया को जगन्नाथजी की मूर्त्ति को नाव पर बैठाकर जल विहार कराया जाता है।

इन्द्रद्युमन तालाब जनकपुर के मन्दिर से थोड़ा पूर्व यह तालाब है। तालाब के समीप एक मन्दिर में नीलकण्ठ महादेव, इन्द्रद्युम्न और भगवान् पद्मनाभ की मूर्त्ति है। राजा इन्द्रद्युम्न ने यहाँ पर यज्ञ किया था। इसकी कथा बड़ी रोचक है।

लोकनाथमहादेव—जगन्नाथजी के मन्दिर से दो मील पश्चिम की ओर लोकनाथ का मन्दिर है। लोकनाथ के मन्दिर में जल का स्रोत है। मन्दिर स्रोत के कारण सदा जल से भरा रहता है। फाल्गुन बदी एकादशी को मन्दिर का जल निकाला जाता है। शिव रात्रि के दिन सम्पूर्ण जल निकल जाने पर लोकनाथजी के अच्छे दर्शन होते हैं।

श्वेत गंगा—लोकनाथ महादेव के समीप श्वेत गंगा नामक एक पक्का कुण्ड है। तालाब के पूर्व तट पर श्वेत केशव का सुन्दर मन्दिर है। केशवजी की प्रतिमा काष्ठमय है। जगन्नाथजी के कलेवर बदलने के समय इनका भी कलेवर बदला जाता है।

चक्रतीर्थ स्टेशन के समीप समुद्र किनारे पर है। यहाँ पर एक कुण्ड है। कहा जाता है, कि भगवान् का सुदर्शनचक्र इस कुण्ड में पड़ा हुआ है। कुण्ड का जल मीठा है। भगवान् की लीला है, कि कुण्डसे समुद्र २० या २५ कदम होगा, फिर भी कुण्ड का जल मीठा है—जब कि समुद्र का जल महा खारी रहता है।

स्वर्गद्वार—समुद्र के किनारे पर लगभग दो फरलांग लम्बा स्वर्गद्वार है। यहाँ यात्री लोग समुद्र की लहरों में स्नान करते हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है कि जो मनुष्य इस स्थान पर समुद्र में स्नान करता है, वह स्वर्ग को जाता है।

मलूकदास का आश्रम—समुद्र किनारे बहुत से मठ हैं—उनमें यह आश्रम प्रसिद्ध है। आश्रम स्वर्गद्वार के समीप है। बाबा मलूकदासजी भगवान् के अनन्य भक्त और श्रद्धालु सन्त थे। १०८ वर्ष की अवस्था में उनका शरीर छूटा था। पुरी में ये बहुत दिन रहे—इनका जन्म इलाहाबाद के जिले का था। पुरी में आज तक मलूकदासजी का टुकड़ा चलता है—इसकी प्रतिष्ठा भगवत् प्रसाद के समान होती है।

करमाबाई—समुद्र के किनारे पर करमाबाई का स्थान

है, इनका एक मन्दिर जगन्नाथजी के मन्दिर के भीतर भी है। करमाबाई भगवान् की अनन्य भक्ता थीं, इनको भगवान् का साक्षात्कार था, यह भगवान् श्रीजगन्नाथजी को प्रतिदिन प्रातः स्नान से पहले ही खिचड़ी का भोग लगाया करती थीं। उनके इह लोक से चले जाने पर उनकी तरफ का खिचड़ी का भोग राजा की ओर से लगाया जाता है। भक्तमाल में इनकी कथा प्रसिद्ध है। करमाबाई की खिचड़ी अब तक प्रसिद्ध है।

जनकपुर—

जगन्नाथ मन्दिर से १॥ मील दक्षिण पूर्व जनकपुर है। पुराणों में इसका नाम 'गुड़िचक्षेत्र' लिखा है। राजा इन्द्रद्युम्न ने इसी जगह पर विश्वकर्मा द्वारा भगवान् की प्रतिमाओं का निर्माण कराया था। एक चौड़ी सड़क मन्दिर से जनकपुर तक गई है। सड़क के दक्षिण बगल राजा का सुन्दर मकान है। रथयात्रा उत्सव के समय भगवान् की मूर्तियाँ सात-आठ दिन तक इसी मन्दिर में रहती हैं। यह मन्दिर जगन्नाथजी के मन्दिर की भाँति बना है, किन्तु छोटा है। जनकपुर जगन्नाथ मन्दिर से भी प्राचीन है।

साखीगोपाल—

जगन्नाथपुरी से ११ मील की दूरी पर साक्षीगोपाल का मन्दिर रेल किनारे पर है। मंदिर में प्रधानमूर्ति राधाकृष्ण की है। कई मंदिर हैं। प्राकृतिक दृश्य अच्छा है। कहा जाता है कि ये साक्षी गोपालजी श्री वृन्दावन धाम से किसी भक्त द्वारा यहाँ लाये गये हैं। भक्तमाल में इनकी कथा विस्तृत है—दो ब्राह्मण जो यात्रा करने आये थे, वृन्दावन में आकर ठहरे, उनमें से उच्च ब्राह्मण बीमार पड़ गया। छोटी जाति वाले ब्राह्मण ने उनकी बड़ी सेवा की—उन्होंने उसे लड़की देने का वचन दे दिया। गाँव में जाने पर लोगों ने एतराज़ किया कि भिन्न-भिन्न जातिवालों का परस्पर सम्बन्ध कैसे होगा? इस पर सभा में यह निर्णय हुआ कि किसी की साक्षी दी जाय, तो सम्बन्ध हो सकता है। इस पर यह छोटी जाति का भक्त वृन्दावन आया और भगवान् साक्षी गोपाल की आराधना करके उनको प्रसन्न कर यहाँ से ले गया। साक्षीगोपालजी चले गये और वहाँ जाकर सबके सामने गवाही दी कि उच्च ब्राह्मण ने मेरे सामने इस भक्त को लड़की देने का वचन दिया है। सब लोग प्रसन्न हुए और सम्बन्ध स्थापित हुआ।

जगन्नाथपुरी के समीप के तीर्थ प्रायः लिखे जा चुके हैं। थोड़ा-सा पुरी के सम्बन्ध में और लिख कर पुरी के विषय को समाप्त करते हैं—पुरी के मंदिर की वार्षिक आमदनी जायदाद से ५ लाख रुपये की है और यात्रियों की पूजा से साल में क़रीब ६ लाख रुपये प्राप्त हो जाते हैं। मंदिर का पूरा प्रबन्ध राजा के आधीन है। २० हज़ार से भी अधिक स्त्री, पुरुष जगन्नाथ जी के मंदिर से पोषित होते हैं। ६५० से ऊपर नौकर मन्दिर के काम के लिये नियुक्त हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यवन साम्राज्य में मंदिर पर बहुत बड़ी बड़ी आपत्तियाँ आई हैं। श्रीजगन्नाथजी का कलेवर, प्रति ३६ वें वर्ष जब दो आषाढ़ होते हैं, तब बदला जाता है। पुरानी मूर्तियाँ के अन्दर एक कोई वस्तु विशेष होती है, जो किसी प्रकार नष्ट नहीं होती। कलेवर बदलने पर उसी वस्तु को उन नई मूर्तियाँ में रख दिया जाता है, यह काम पुजारी को ही करना पड़ता है। उस समय उसकी आँखें बन्द कर दी जाती हैं, यह कोई नहीं बता सकता कि वह वस्तु विशेष क्या है?

काला पहाड़ ने जब सन् १५६० में इस मन्दिर को लूटा, उस समय मन्दिर के पुजारियों ने मूर्तियों को चिलका झील में छुपा दिया। काला पहाड़ ने इसका पता लगा लिया और वह मूर्तियों को अपनी राजधानी में ले गया। वहाँ उसने बहुत सी लकड़ी एकत्रित कर मूर्तियों को जलवा दिया। उस समय पुजारी लोग भी साथ में थे। जलाने

पर उन मूर्तियों में एक ऐसी वस्तु विशेष मिली जो अग्नि में भी नहीं जली, पुजारी लोग इसे अपने साथ ले आये और जगन्नाथजी की नवीन मूर्ति में उस वस्तु विशेष को रखवा दिया।

पुरी हिन्दुओं का खास तीर्थ स्थान है, साथ ही अत्यन्त रमणीक भी है। समुद्रतट की आबहवा बहुत अच्छी है। यहाँ आकर यात्रीगण पुण्य और आरोग्यता दोनों को ही प्राप्त करते हैं।

कोणार्क--

जगन्नाथ धाम (पुरी) से १८ मील पूर्वोत्तर पुरी ज़िले में समुद्र से दो मील सूर्य नारायण का तीर्थ कोणार्क है। सर्व साधारण की बोल चाल में इस स्थान को 'कनारक' कहा जाता है। कोणार्क जाने के लिये मोटर आदि सवारी मिलती है। मार्ग बड़ा सुहावना और मनोरम है। बीच-बीच में घास के हरे-भरे मैदान मिलते हैं। कोणार्क में माघ शुक्ला सप्तमी को बड़ा मेला होता है। यहाँ पर चन्द्रभागा नाम की एक नदी है। जिसमें यात्री-गण स्नान करते हैं।

कोणार्क में सूर्य भगवान् का विचित्र और प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। इसको राजा नरसिंह देव ने बारह वर्ष की उड़ीसे की आमदनी ख़र्च करके सन् १२३७ से १२८२ ई० के मध्य में बनवाया था। मन्दिर का शिखर इस समय गिर गया है, जो शेष है, वह बाहर से ६० फ़ीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है तथा १२४ फ़ीट ऊँचा है। मन्दिर की दीवार ६० फ़ीट ऊँची है और शिखर ६४ फ़ीट है। मन्दिर में बहुत से देवी देवताओं की प्रतिमा हैं। मन्दिर केवल पत्थर का ही बना है। मन्दिर अति प्राचीन होने के कारण जीर्ण--शीर्ण दशा में है। स्थान--स्थान पर खण्डहर पड़े हैं। यहाँ पर जो १६ कोण का 'अरुण स्तम्भ' था, उसे महाराष्ट्र लोग पुरी को ले गये हैं। वह पुरी में श्रीजगन्नाथजी के मन्दिर के सिंह दरवाज़े के सामने खड़ा है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, भविष्य पुराण, बाराह पुराण और पद्मपुराण में इस स्थान का पूरा इतिहास और माहात्म्य वर्णित है। संस्कृत भाषा में कोणार्क का अर्थ (उड़ीसे के) कौने का सूर्य है।

तारकेश्वर--

बङ्गाल सूबे में श्रीरामपुर से २ मील (हावड़ा से १४ मील) उत्तर सेवड़ाफूली का रेलवे स्टेशन है। वहाँ से २२ मील पश्चिम कुछ उत्तर एक रेलवे शाखा तारकेश्वर को गई है।

तारकेश्वर हुगली ज़िले में टट्टी और फूँस के मकानों की बस्ती है। यात्री लोग पण्डे या मोदियों के मकानों में ठहरते हैं। तारकेश्वर मन्दिर के निकट दूध गङ्गा नाम का एक पोखरा है। यात्री लोग प्रायः इसी का जल पीते हैं। वैसे भी यहाँ पोखराओं का ही जल पिया जाता है। दूध गङ्गा के पूर्व किनारे पर घेरे के भीतर तारकेश्वर शिव का मंदिर है। मन्दिर के जगमोहन से दक्षिण एक सुन्दर मण्डप बना है, जिसके दो ओर पाँच--पाँच और दो ओर तीन--तीन मेहराबियाँ बनी हुई हैं। दक्षिण भाग में नन्दीश्वर की सुन्दर मूर्त्ति है। मन्दिर और मण्डप से पूर्व महन्तों के आठ-दस समाधि मन्दिर, पूर्वोत्तर कालीजी का मन्दिर और पश्चिमोत्तर पाक-शाला है। बहुत से रोग ग्रस्त लोग जिनमें मुसल-मान भी होते हैं, अपना दुःख छुड़ाने के लिये तार-केश्वर मंदिर के आस-पास धरना बैठते हैं।

मन्दिर का प्रबन्ध तारकेश्वर के महन्त के आधीन है। ज़मीदारी की आमद से मन्दिर का ख़र्च चलता है। साल में दो मेले प्रधान होते हैं। शिवरात्रि के मेले का जमाव तीन दिन तक रहता है, उस समय लगभग २५ हज़ार यात्री एकत्रित होते हैं। मेष की संक्रान्ति का मेला जो चड़क पूजा का मेला कहलाता है, छः सात दिन रहता है।

पारसनाथ--

हजारी बाग़ क़स्बे से लगभग ७० मील पूर्व कुछ उत्तर गिरिडी का रेलवे स्टेशन है। ईष्टइण्डियन रेलवे के मधुपुर जंकशन से दक्षिण-पश्चिम २३ मील की रेलवे लाइन गिरिडी को गई है। आसनसोल जंकशन से ५१ मील पश्चिमोत्तर मधुकर जंकशन

है, गिरिडी से पश्चिम-दक्षिण पारसनाथ पहाड़ी के पादमूल के पास तक १८ मील की पक्की सड़क है।

हजारी बाग ज़िले के पूर्वविभाग में जैन लोगों का पवित्र तीर्थ स्थान पारसनाथ नामक पहाड़ी है, पहाड़ी के सिरोभाग तक एक अच्छी पगडण्डी गई है, पहाड़ी का जङ्गल हरा-भरा है, वहाँ का जल वायु ठण्डा और साफ़ है। स्लेट के चट्टानों पर बाँस के जङ्गल होकर मार्ग निकला है।

पारसनाथ पहाड़ी की ऊपर वाली चोटी, जिसको जैन लोग "असिमद शिखर" कहते हैं, समुद्र के जल से ४४८८ फ़ीट ऊँची है। उसके ऊपर छोटे-छोटे २० जैन मन्दिर हैं, जिसमें कई एक बहुत सुन्दर हैं, खास करके उजले मार्बुल का एक छोटा स्थान है, जिसके बनाने में ८००००) रुपया खर्च पड़ा था। जैन लोगों के २४ सन्त हैं, जिनमें से १० सन्तों ने इसी पहाड़ी पर निर्वाण पद पाया और १६ सन्तों की इसी पर समाधि दी गई। २३ वें सन्त पारसनाथ की भी समाधि इसी पर दी गई थी। उन्हीं के नाम से इस पहाड़ी का नाम पारसनाथ पड़ा। पारसनाथजी का जन्म काशी में हुआ था। वह १०० वर्ष तक रहे। प्रति-वर्ष लगभग १० हज़ार जैन यात्री पारसनाथ पहाड़ी पर जाते हैं।

भारतवर्ष में जैनियों की ५ पवित्र पहाड़ी हैं— काठियावाड़ में 'शत्रु जय' और 'गिरिनार' राज-पूताने में 'आबू' मध्यभारत में गवालियर और छोटा नागपुर के हज़ारी बाग़ में ज़िले में 'पारसनाथ' इन पाँचों में 'शत्रुञ्जय' पहाड़ी सबसे पवित्र समझी जाती है।

वैद्यनाथ (धाम)—

मधुपुर जङ्क्शन से १८ मील पश्चिमोत्तर और लक्खी सराय जङ्क्शन से ६१ मील (पटना से १३१ मील) पूर्व दक्षिण कार्ड लाइन पर वैद्यनाथ जङ्क्शन से ४ मील पूर्व कुछ दक्षिण एक रेलवे शाखा देवगढ़ को गई है। रेलवे स्टेशन से लग-भग १ मील दूर विहार सूबा के भागलपुर विभाग के संथाल परगना नामक ज़िले में सब डिवीज़न का सदर स्थान और पवित्र तीर्थ स्थान देवगढ़ क़स्बा है। जिसको देवघर और वैद्यनाथ भी कहते हैं। पण्डे लोग स्टेशन से यात्रियों को लेजाते हैं।

क़स्बे के पश्चिम ओर सड़क के निकट बैजू का मन्दिर, क़स्बे से बाहर डिवीज़न की कचहरियाँ और आस-पास छोटे-छोटे जङ्गल और पहाड़ियाँ हैं। क़स्बे के पास राजा मदनपाल शिविर के उजड़े पुजड़े अनेक मीनार और देव मूर्त्तियाँ देखने में आती हैं। वैद्यनाथ में कोढ़ियों का बड़ा जमाव रहता है—वे लोग रोग से मुक्ति पाने की आशा से वहाँ पड़े रहते हैं।

क़स्बे में एक बड़े घेरे के भीतर पत्थर से पाटा हुआ बड़ा आँगन है, लोग कहते है कि इसके पाटने में मिर्ज़ापुर के एक धनी महाजन का एक लाख रुपया ख़र्चा पड़ा था। आँगन के बीच में वैद्यनाथ शिव का शिखरदार पूर्वाभिमुख विशाल मन्दिर है। वैद्यनाथ शिवलिंग की १२ अँगुल ऊँची प्रतिमा है। यह भारतवर्ष के द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। अन्य ज्योतिर्लिङ्गों की अपेक्षा यह छोटा है। इसके छोटे होने के विषय में कहा जाता है कि भगवान् शङ्कर पृथ्वी में समा गये। ज्यों-ज्यों रावण अपना बल उठाने के लिये लगाता गया, त्यों-त्यों भगवान् शंकर का लिङ्ग पृथ्वी में धँसता चला गया। इसी कारण यह लिंग छोटा है। उत्तर की ओर ज़मीन में कुछ दबता हुआ प्रतीत होता है। लिङ्ग के चारों ओर चाँदी की शलाका लगी है। भगवान् शिव का नित्य समय-समय पर शृङ्गार और पूजन होता है। मन्दिर में यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। मन्दिर के शिखर पर कलश न होकर त्रिशूल है।

यहाँ पर गङ्गा जल चढ़ाने का बड़ा माहात्म्य है। बहुत से यात्रीगण गङ्गोत्री, हरिद्वार, प्रयाग और कशी आदि से गङ्गा जल लाकर वैद्यना-थजी पर चढ़ाते हैं। गङ्गा जल के चढ़ाने के के लिये यहाँ कुछ भेट देनी पड़ती है। वैद्यनाथजी

में कुछ लोग महादेव और पार्वती का जोड़ा बाँधते हैं, यह ध्वजा से बाँधा जाता है, अर्थात् वैद्यनाथजी के मंदिर से पार्वतीजी के मंदिर तक ध्वाजा बाँधी जाती है। जोड़ा बाँधने में सरकारी कर लगता है।

श्रीवैद्यनाथजी का मंदिर पुराना है। सन् १५९६ में इसका जीर्णोद्धार राजा पूरणमल ने कराया था और उसने मंदिर का कुछ भाग भी बनवाया था। सम्राट् अकबर के समय में राजा पूरणमल बिहार के बड़े जमींदार थे। वर्त्तमान गिद्धौर के महाराजा के वे पूर्व पुरुष थे।

इस मंदिर के एक पीपल का वृक्ष है। प्राचीन काल में वे यात्री जिनको द्रव्य की आवश्यकता रहती थी—इस वृक्ष के नीचे भगवान् शंकर का भजन करते हुए बिना अन्न-जल ग्रहण किये बैठ जाते थे। लोगों का कहना है, कि दो-तीन वार पीपल के वृक्ष से एक पत्ता गिरता था - जिस पर हिन्दी में किसी व्यक्ति का नाम और पता लिखा रहता था। इस पत्ते को पंडे को बतलाने पर पंडा उस पत्ते पर लिखे हुए पर हुण्डी लिख देता था—वह हुण्डी वैद्यनाथ की हुण्ड कहलाता था। माली उस हुण्डी को लेकर उस व्यक्ति के पास पहुँचता जिसके नाम हुण्डी लिखी जाती-वह तुरन्त हुण्डी के रुपये दे देता था। इस प्रकार की हुण्डी का वर्णन डाक्टर यदुनाथ सरकार की लिखी हुई "औरङ्गजेब के समय का भारत" नामक पुस्तक में मिलता है-किन्तु आज कल यह सब कुछ नहीं होता, पीपल का वृक्ष अब भी है—किन्तु नाम लिखा हुआ पत्ता अब नहीं गिरता। श्रीवैद्यनाथजी के मन्दिर के समीप कई एक मन्दिर हैं, जिनमें कुछ ये हैं—

(१) श्रीलक्ष्मीनारायण (इसे वामदेव ने सन् १६३०-४० में बनवाया था)। (२) सावित्री (तारा) (इसे क्षेमकरण ने सन् १५९२ में बनाया था)। (३) पार्वती (इसका जीर्णोद्धार श्रीरत्नपाणी ने सन् १७०१ में कराया)। (४) काली (इसे जयनारायण ने सन् १६१२ में बनवाया था)। (५) गणेश (इस मन्दिर की स्थापना सन् १७६२ में हुई थी)। (६) सूर्य, (७) सरस्वती, (८) बगुलादेवी, (९) अन्नपूर्णा (सन १७८२—९३ के बीच रामदत्त ने इन मंदिरों को बनवाया था) (१०) आनन्दभैरव (१८१० में बना था (११) दूधनाथ, (१२) मनसादेवी (ये मन्दिर पीछे बने हैं।) (१३) कार्त्तिककेय, (१४) सूर्य, (१५) कालभैरव (इन मन्दिरों में प्राचीन बौद्ध मूर्त्तियाँ हैं) इनके अतिरिक्त गायत्रीदेवी, कुबेर मंदिर, श्रीरामचन्द्रजी, हनुमानजी, मंगलादेवी, गंगा-यमुना, गौरीशंकर और नर्मदेश्वर आदि हैं। बैद्यनाथ मन्दिर से थोड़ी दूर पर चन्द्रकूप है, इसका जल बहुत पवित्र माना जाता है। रावण ने सब तीर्थों का जल इसमें डलवा दिया था। लोगों का विश्वास है और ठीक भी है, कि वैद्यनाथजी में धरना देने से मनोकामना पूर्ण होती है।

शिवगंगा सरोवर—मंदिर से उत्तर थोड़ी दूर पर एक बड़ा सरोवर है। इस सरोवर की लम्बाई ६०० फुट और चौड़ाई ६०० फुट है। यात्री इसमें स्नान करते हैं।

चिताभूमि—भगवान् शङ्कर ने सती का दाह संस्कार यहीं पर किया था। कथा विस्तृत है, शिवपुराण में लिखा है।

वैद्यनाथ की कथा इस प्रकार है—एक समय रावण भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर हिमालय से जब उन्हें लंका ले चलने लगा—तब भगवान् शङ्कर ने यह शर्त की कि यदि तुमने मार्ग में कहीं मुझको बैठा दिया, तो फिर मैं वहां से नहीं टलूंगा। रावण ने यह शर्त स्वीकार करली। इधर महादेव जी के लङ्का गमन को सुनकर देवताओं में बड़ी खलबली मची। उन्होंने विष्णु भगवान से प्रार्थना की। भगवत् इच्छा से मार्ग में रावण को बड़ी

ज़ोर से लघुशङ्का (पेशाब) लगी। रावण बड़े संकट में पड़ गया। यदि मूर्ति को ज़मीन में रखता है, तो शर्त से गिरता है और वैसे प्राण जा रहे हैं। इतने ही विष्णु भगवान् एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धर कर सामने आगये। रावण ने कहा विप्रवर! आधा दण्ड तक तुम मूर्ति को लिये रक्खो—मैं लघुशङ्का करलूँ। ब्राह्मण ने पहले तो आना कानी की—किन्तु फिर इस शर्त पर कि आधा दण्ड से मैं अधिक नहीं ठहर सकता हूँ। ब्राह्मण ने शिवजी को ले लिया। रावण पेशाब करने लगा। पेशाब करते-करते रावण को बहुत देर हो गई—ब्राह्मण घबड़ा गया, उसने कहा या तो मूर्ति को लो-नहीं मैं ज़मीन में रक्खे देता हूँ। रावण ने कहा विप्र! थोड़ी देर कृपा और करो। ब्राह्मण वृद्ध था, बोझा सहन न कर सका और उसने मूर्ति को वहीं पर स्थापित कर दिया। रावण लघुशंका से निवृत होकर वापिस आया और शिवजी को उठाने लगा, पर भगवान् भला कब उठने लगे। रावण ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। किन्तु शिवजी टस से मस भी न हुए। रावण को क्रोध आगया और शिवजी के ऊपर पैर का अँगूठा रख कर बोला—"अच्छा तुम अब यहीं रहो" इतना कह कर लंका को चला गया।

तब से कहते हैं शिवजी के मस्तक पर गड्ढा हो गया है जो अब तक भी विद्यमान है। जिस स्थान पर रावण ने लघुशंका की थी—वहाँ एक नाला सा बना है, जिसका नाम रावण खार है।

वैद्यनाथ में स्टेशन के समीप रायबहादुर हज़ारीमल सेठ दूधवाले कलकत्ते की धर्मशाला है, कलकत्ते के सर हरीराम गोयनका के० टी० सी० आई० ई० की भी धर्मशाला है। इनके अतिरिक्त और भी छोटी-छोटी धर्मशालायें हैं।

कुछ लोग हैदराबाद राज्य में परली नामक ग्राम में स्थापित वैजनाथ लिङ्ग को द्वादश ज्योत-लिङ्गों में से मानते हैं और इन वैद्यनाथजी को ऐसा नहीं मानते—यह उन लोगों का भ्रम कहा जा सकता है। प्रायः सभी पुराणों में और विशेष कर शिवपुराण में इस स्थान की उत्पत्ति और महात्म्य आदि विशेषरूप से वर्णित है।

पश्चिम-भारत के तीर्थ

भड़ौच—

बड़ौदा स्टेशन से ४४ मील दक्षिण-पश्चिम भड़ौच का रेलवे का स्टेशन है। गुजरात प्रदेश में नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर, उसके मुहाने से प्रायः ३० मील पूर्व भड़ौच ज़िले का सदर कस्बा है। भड़ौच पश्चिमी भारत के पुराने बन्दर-गाहों में से है। यहाँ से नर्मदा और समुद्र द्वारा दूसरे देशों को व्यवसायिक वस्तुओं का यातायात होता था।

भड़ौच ज़िले में क़स्बा से प्रायः ८ मील पर नर्मदा किनारे भादभूत गाँव में भादेश्वर महादेव जी का मन्दिर है। भादों के मलमास में यहाँ पर बड़ा मेला होता है। ऐसा कहा जाता है कि भड़ौच को भृगु ऋषि ने बसाया था, यह पूर्वकाल में भृगुपुर नाम से प्रख्यात था। शहर के आस-पास पहाड़ी और टीले हैं। यहाँ पर कई मन्दिर दर्शनीय हैं। स्थान पवित्र और देखने योग्य है।

शुक्लतीर्थ--

भड़ौच कस्बे से १० मील पूर्व नर्मदा तट पर प्रसिद्ध शुक्लतीर्थ है। वहाँ पर कवि, ओंकारेश्वर और शुक्ल नामक तीन पवित्र कुण्ड और देवमन्दिर हैं। ओंकारेश्वर के निकट एक मन्दिर में श्रीशुक्ल नारायण की मूर्ति है। वहाँ कार्तिक में मेला होता है, जिसमें बड़ी भीड़ होती है। चन्द्रगुप्त सम्राट ने अपने ८ भाइयों के मारने के पातक से छूटने के लिये यहीं शुक्लतीर्थ में जाकर स्नान किया था। ११ वीं सदी में अनहिलवाड़ा के राजा ने पश्चाताप करके शुक्लतीर्थ में निवास कर अपना जीवन बिताया था।

नर्मदा नदी में शुक्लतीर्थ के तुल्य अन्य तीर्थ नहीं है। उसके दर्शन, स्पर्श, स्नान से महान् लाभ होता है। इस तीर्थ के वृक्षों की शिखरों के दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या का पाप छूट जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है, कि कार्तिक बदी १४ को पार्वती सहित भगवान् शङ्कर शिवलोक से आकर वहाँ निवास करते हैं। जो मनुष्य उक्ततिथि को उपवास करके वहाँ परमेश्वर को घृत से स्नान कराता है वह आवागमन से छूट जाता है।

शुक्लतीर्थ से प्रायः १ मील पर मङ्गलेश्वर के सामने नर्मदा नदी के टापू पर कबीरवट नाम से एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध बटवृक्ष है। वहाँ पर किंवदन्ती है कि कबीरजी की दातुन से यह वृक्ष हुआ है। वृक्ष की प्रधान जड़ के पास एक दर्शनीय मन्दिर भी बना हुआ है।

डभोई—

बड़ौदा स्टेशन से १४ मील दक्षिण-पूर्व डभोई में रेलवे का जङ्कशन है। गुजरात देश के बड़ौदा राज्य में डभोई एक क़स्बा है। क़स्बे के चारों ओर शहरपनाह की दीवार है। फाटक के भीतर क़िले की दीवार में दालानों के स्तम्भों की सुन्दर पंक्तियाँ हैं। क़स्बे के पूर्व वाले हीरा फाटक के पास प्रख्यात महाकालीजी का मन्दिर है। यह मन्दिर नया होने पर भी बहुत सुन्दर है। क़स्बे में एक खिन्नी के वृक्ष का खोखला है, लोग कहते हैं कि पापी उससे होकर नहीं निकल सकता। डभोइ का पुराना नाम धर्मवती था। यह स्थान देखने योग्य है।

चन्द्रोदय—

डभोइ के रेलवे स्टेशन से १० मील दक्षिण-पूर्व चन्द्रोदय का रेलवे स्टेशन है। गुजरात देश के बड़ौदा राज्य में नर्मदा नदी के दाहिने तट पर नर्मदा और ऊर्ज नदी के संगम के पास चन्द्रोदय नामक कस्बा और तीर्थ है। चन्द्रोदय के निकट नर्मदा के किनारे करनाली नामक एक पवित्र गाँव है। चन्द्रोदय में बहुत से देवमन्दिर हैं तथा दो धर्मशालायें भी हैं।

चन्द्रोदय पश्चिम भारत में एक बहुत ही प्रसिद्ध पवित्र स्थान है। उस जगह के लोग कहते हैं कि नर्मदा किनारे पर चन्द्रोदय के समान कोई और पवित्र तीर्थ नहीं है। गङ्गा किनारे जैसे काशी है, वैसे ही नर्मदा किनारे चन्द्रोदय तीर्थ है। चन्द्रोदय यात्रा का प्रसिद्ध स्थान है। प्रति पूर्णिमा को सहस्रों लोग वहीं स्नान करते हैं। कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा को यहाँ बड़ा मेला होता है। हर मेले में बीसियों हजार यात्री पहुँचते हैं। यहाँ पर कई संस्कृत की पाठशालायें भी हैं। कस्बे में विद्वान् बहुत हैं। पश्चिम में यह स्थान विद्वता के लिये प्रसिद्ध है।

बड़ौदा----

बड़ौदा रेलवे का मुख्य स्टेशन है। विश्वामित्री नदी के पूर्व बड़ौदा राज्य के महाराज की राजधानी और इस राज्य का प्रधान नगर है। स्टेशन के पास ही दो धर्मशालायें हैं। छावनी और शहर के बीच में विश्वामित्री नदी बहती है, जिस पर पत्थर के ४ पुल बने हुये हैं।

बड़ौदा नगर में श्रीविट्ठलजी का मन्दिर है। इसके खर्च के लिये महाराज की ओर से बहुत-सी जागीर निकाली हुई है गायकवाड़ के वंश की रक्षक

खण्डोवा देवीजी का मन्दिर, स्वामी नारायण का मन्दिर, बल्देवजी का मन्दिर, काशी विश्वेश्वर का मन्दिर, गणपतिजी, वेचराजी, भीमनाथजी, आदि बहुत से देव मन्दिर यहाँ पर हैं। भीमनाथ के मन्दिर के पास महाराज गायकवाड़ की ओर से ब्राह्मण लोग पुरश्चरण करते हैं। एक स्थान में दो शिव मन्दिर और बड़ौदा के राजा गोविन्दराव जी, आनन्दरावजी तथा रानी गेनाबाई और मृत मल्हाराव की रानी इन चारों की ४ छतरियाँ हैं। छतरियों में उनकी प्रतिमायें हैं। देवताओं के तुल्य उनका मान किया जाता है। वहाँ उनकी प्रसन्नता के लिये नित्य ही अनेक ब्राह्मण और ब्राह्मणियों को खिचड़ी दी जाती है।

बड़ौदा एक सुसपन्न और विस्तृत राज्य है। यहाँ पर अनेक विद्वान् हैं और गायकवाड़ दरबार में विद्वानों का मान्य प्राचीन काल से होता आ रहा है। विद्या-प्रेम के लिये यहाँ के राजा देश भर में प्रसिद्ध हैं। बड़ौदा राज्य में अनेक पवित्र नदियाँ और तीर्थ स्थान हैं।

डाकोर---

गुजरात प्रदेश के खेड़ा ज़िले में डाकोर एक क़स्बा और प्रसिद्ध तीर्थ है। बड़ौदा स्टेशन से २२ मील उत्तर-पश्चिम आनन्द जङ्कशन है और आनन्द जंक्शन से १६ मील पर डाकोर का रेलवे स्टेशन है। डाकोर में एक तालाब हैं, जिसे गोमती तड़ाग कहते हैं। यहाँ पर रणछोर भगवान् का प्रसिद्ध मन्दिर है। एक त्रिविक्रमजी का भी मंदिर है। डाकोर भारत के पश्चिमी तीर्थों में अति पवित्र और प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ मन्दिरों में भोग राग का बड़ा अच्छा प्रबन्ध रहता है। कार्तिक पूर्णिमा को यहाँ पर बहुत बड़ा मेला होता है जिसमें लाखों यात्रियों की भीड़ होती है।

डाकोरजी की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है कि डाकोर बस्ती में बुढ़ानभक्त नामक एक ब्राह्मण रहता था, जिसे रामदास भी कहते थे। वह प्रतिवर्ष गोमती-द्वारिका में जाकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से श्रीरणछोरजी भगवान के दर्शन किया करता। संवत् १२७२ में श्रीरणछोरजी ने वृद्ध ब्राह्मण से कहा 'हे विप्र! तुम अब बहुत वृद्ध होगये हो, अतः आधीरात के समय एक गाड़ा ले आओ; मैं तुम्हारे साथ ही तुम्हारे नगर को चलूँगा। वहाँ तुम नित्य ही मेरा दर्शन कर सकोगे। भक्त गाड़ा ले आया और भगवान् उस पर आ विराजे। वह भगवान् को लेकर अपनी बस्ती में ले आया। भोर में गोमती-द्वारिका के पुजारियों ने भगवान् को मन्दिर में न पाया तो, वृद्ध बुढ़ान-भक्त पर सन्देह कर वे लोग डाकोरजी को दौड़े। भगवान ने वृद्ध भक्त से कहा कि मुझे ढूढ़ने गोमती द्वारिका के पुजारी आ रहे हैं, तुम मुझे तालाब में छुपा दो। उसने वैसा ही किया। पुजारियों ने जब भक्त के गृह में भगवान् को न पाया तो भाला लेकर तालाब में टटोलना प्रारम्भ किया। भाले की नोंक का चिन्ह मूर्ति के कटि स्थान में अब तक मौजूद है। बुढ़ानभक्त ने कहा है 'पुजारियो! तुम लोग मूर्ति के बराबर सोना मुझसे ले जाओ, और मूर्ति को यहीं छोड़ जाओ।' पुजारियों ने लोभ-वश यह बात स्वीकार की। ब्राह्मण बहुत-सा सोना लेकर मूर्ति को तौलने लगा, किन्तु मूर्ति का पड़ला न उठा। जब रणछोरजी के स्वप्न के अनुसार उसने सब सोने को पलरे से उतार कर अपनी स्त्री के कान की बारी उस पलड़े पर रक्खी तो वह उठ गया। तब रणछोर जी ने पुजारियों को स्वप्न दिया कि "तुम लोग जाओ। गोमती-द्वारिका में गोमती--गङ्गा का माहात्म्य रहेगा। लाडुआ गाँव के पास पृथ्वी के गर्भ में मेरी एक मूर्ति है, उसे ले जाकर बेट-द्वारिका में स्थापित करो। मैं नित्य ही ७ पहर डाकोर में और एक पहर बेट-द्वारिका में निवास करूंगा।' पुजारियों ने वैसा ही किया। गोमती-द्वारिका में एक दूसरी मूर्ति स्थापित कर दी गई।

इसीसे डाकोर बड़ा पवित्र और प्रमुख तीर्थ समझा जाता है।

अहमदाबाद—

यह पश्चिम भारत के गुजरात प्रान्त का प्रमुख नगर एवं बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे का बहुत बड़ा स्टेशन है। स्टेशन के पास ही धर्मशाला है। नगर के चारों ओर शहर पनाह की दीवार है, जिसमें १२ फाटक हैं। शहर में चौदह-पन्द्रह बहुत बड़े बाज़ार हैं। सड़कें बहुत चौड़ी हैं। नगर के पास ही साबरमती नदी है।

शहर में प्रायः १२५ जैन मन्दिर हैं और अनेक हिन्दू मन्दिर हैं। हिन्दू मन्दिरों में स्वामीनारायण का मन्दिर सब से बड़ा है। माता भवानी का पुराना कूप, दादा हरि का कूप, काकरिया भील, शान्तिदास का मंदिर आदि अनेक दर्शनीय स्थान हैं।

नगर के पास ही सारसपुर में चिन्तामणि का उत्तम जैन मन्दिर है। भद्र फाटक के पास एक कोठरी में कालीजी की मूर्त्ति है। शहर में प्रतिवर्ष अनेकों मेले होते हैं। लगभग ४०० वर्ष हुए यहाँ दादूपन्थ चलाने वाले दादूजी का जन्म हुआ था। शहर के उत्तर के दिल्ली फाटक से ६०० गज़ उत्तर सड़क से पूर्व हाथीसिंह का बड़ा जैन मन्दिर है। लगभग १३० फ़ीट लम्बे और १०० फ़ीट चौड़े आँगन में जैनों के १५ वें तीर्थंकर धर्मनाथजी का उत्तम मन्दिर है। आँगन के चारों ओर ५३ शिखर-दार मन्दिर हैं, जिनमें जैन मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। सब मन्दिरों में पीतल व लोहे के जालीदार किवाड़ लगे हैं। हाथीसिंह के मन्दिर से प्रायः १ मील पर दादाहरि का प्रसिद्ध कूँआ है और उससे पूर्वोत्तर असखाँ गाँव में माता भवानी का सुन्दर कूँआ है। शहर में एक प्रतिष्ठित नया जैन मन्दिर है। शहर के दक्षिण के राजपुर फाटक से पौन मील दक्षिण-पूर्व ७२ एकड़ भूमि पर काकरिया भील है। इसके चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं। भील के मध्य में ७५ गज़ लम्बा चौड़ा एक टापू है। इस टापू पर अनेक फुलवाड़ी लगीं हैं। अहमदाबाद शहर के पश्चिम साबरमती नदी बहती है। अहमदाबाद ज़िले में साबरमती के किनारे नीलकण्ठ महादेव, खङ्गधारेश्वर महादेव और भीमनाथ महादेव के ३ प्रसिद्ध शिवालय हैं। यह नदी अर्बली से निकल कर लगभग २०० मील बहकर कांबे की खाड़ी में गिरती तहै।—बहुसी छोटी नदियाँ उसमें गिरती हैं। इस नदी का शुद्ध नाम साभ्रमती है।

नारायणसर—

भुज राजधानी से प्रायः ६० मील पश्चिमोत्तर कच्छ के राज्य में सिन्ध नदी के पूर्वी मुहाने के पास नारायण सर नामक बस्ती और पवित्र तीर्थ स्थान है। वहाँ पर आदि नारायण का, गोबर्धन-नाथजी का और लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर है। यहाँ बहुतेरे यात्री अपनी छाती पर छाप लेते हैं। नारायणसर से १ मील दूर कोटेश्वर महादेव और नीलकंठ महादेव हैं। वहाँ बहुतेरे आदमी अपनी दाहिनी बाँह पर छाप लेते हैं।

यहाँ की कथा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार लिखी है कि जब दक्ष प्रजापति ने १० पुत्र उत्पन्न करके उनको सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी, तब वे सब पश्चिम दिशा के नारायणसर नामक पुण्य-तीर्थ में, जहाँ पर सिन्ध नदी समुद्र में मिली है, जाकर सृष्टि उत्पन्न की कामना से कठोर तप करने लगे। नारदजी ने आकर उनको उपदेश दिया, उन्होंने सृष्टि कामना की इच्छा छोड़ी। फिर दक्ष ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न करके सृष्टि पैदा करने को वहीं भेजे, उनको भी नारदजी ने उपदेश देकर उनके भाइयों के मार्ग में प्रवृत्त किया।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की स्त्री तारा को भादों सुदी चौथ को हरण किया और भादों बदी चौथ को छोड़ दिया। उस समय तारा ने चन्द्रमा को शाप दिया जो मनुष्य तुम्हारा दर्शन करेगा वह कलंकी और पापी होगा। तब चन्द्रमा ने नारायणसर में जाकर नारायण की आराधना की। नारायण ने वहाँ पर साक्षात् प्रकट होकर कहा कि 'हे चन्द्र! तुम सर्वदा कलंकी नहीं रहोगे। जो मनुष्य भादों सुदी चौथ को तुमको देखेगा वही कलंकी होगा।'

इस प्रकार इस तीर्थ की महिमा अपार है, कारण यहाँ नारायण साक्षात् रूप से प्रकट हुए थे। यहाँ पर स्नान और नारायण का पूजन करने से मनुष्य के जन्मजन्मान्तर के पाप दूर होते हैं।

पोर बन्दर-(सुदामापुरी)—

काठियावाड़ में जेतलसर जंकशन से ७८ मील पश्चिम समुद्र का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह पोरबन्दर है। इसे बहुत लोग सुदामापुरी भी कहते हैं। यह एक देशी राज्य की राजधानी है।

पोरबन्दर कस्बे के बगलों में पत्थर की दीवार हैं। यहाँ पर केदारनाथ शिव का मंदिर है। मंदिर में भोग--राग का सुन्दर प्रबन्ध है। यहाँ पर मुरारिजी कृष्ण की धर्मशाला, दो तीन अन्य धर्मशालायें, छोटे--बड़े छः सात सदावर्त और अनेक देव मंदिर हैं। यहाँ का पत्थर प्रसिद्ध है। यहाँ पर सभी मकान, मंदिर आदि पत्थर के बने हुए हैं। पत्थर लकड़ी की तरह चीरा--फाड़ा जाता है। पत्थर की बड़ी कारीगरी के काम हैं। पोरबन्दर द्वारा विलोचिस्तान, पारस, अरब और अफ्रीका के साथ तथा भारत के कोंकन, और मलावार के किनारे के साथ सौदागरी के जहाजों का यातायात होता है। आगबोट तो दिन रात चलते हैं। यहीं से यात्री आगबोट में बैठकर श्रीद्वारिकापुरी को जाते हैं।

पोरबन्दर के राणा साहिब की वाटिका में श्रीकृष्ण भगवान् के मित्र सुदामाजी का एक बहुत छोटा मंदिर है। मंदिर में सुदामाजी और उनकी पत्नी की मूर्ति खड़ी है। वाटिका के निकट जगन्नाथजी का एक छोटा मंदिर है। वाटिका से बाहर सुदामा मंदिर से पश्चिम भूमि पर चक्रव्यूह की लकीर की तरह आधे फ़ीट से अधिक ऊँची और इतनी ही चौड़ी गच की लकीर से भूल--भुलैय्या बनी है। इसको लोग चौरासी भी कहते हैं। वह ऐसे ढङ्ग से बनी है कि आदमी उसके एक मार्ग से प्रवेश करके लकीरों से बने हुए सब घेराओं में घूम कर दूसरे मार्ग से निकल जाता है। सुदामाजी द्वारिका से आने पर अपनी मढ़ी के स्थान पर सोने के महल देख कर भूल गये थे। उसी के स्मरणार्थ यह भूल--भुलैया बनी है।

दरोबन्दर का राज्य काठियावाड़ के सौराष्ट्र विभाग में अरब के समुद्र के किनारे के पास ६३६ वर्ग मील के क्षेत्रफल में है। यह राज्य समुद्र के किनारे दूर तक है। इसमें छोटी तीन--चार नदियाँ बहती हैं। समुद्र किनारे बड़े--बड़े दलदल में पोरबन्दर से ४० मील दक्षिण पूर्व समुद्र के पास माधवपुर नामक बन्दरगाह है। वहाँ मधुमती नदी समुद्र में मिली है। यहाँ पर ब्रह्मकुण्ड तीर्थ तथा कृष्ण भगवान् का प्रसिद्ध मंदिर है। कुछ लोग कहते हैं कि इसी स्थान पर रुक्मिणीजी के साथ श्रीकृष्णचन्द्र का विवाह हुआ था।।

पश्चिम भारत में सुदामापुरी नामक यह तीर्थ अति पवित्र है। इसकी महिमा अनेक पुराणों में वर्णित है।

मूल द्वारिका—

पोरबन्दर से १२ मील पश्चिमोत्तर द्वारिका जाने वाली सड़क के पास मूल द्वारिका है। यह बस्ती बहुत छोटी है। यहाँ पर बहुत से पुराने मंदिर हैं। वहाँ के लोगों का कहना है कि भगवान श्रीकृष्ण मथुरा से प्रथम इसी जगह आये थे। यहाँ से ६ मील पर मियानी का पुराना बन्दरगाह है। मियानी से २२ मील पश्चिमोत्तर गोलगढ़ नामक गाँव के पास पिण्डारक तीर्थ और दुर्वासा ऋषि का आश्रम हैं। जो देखने योग्य है।

द्वारिका—

काठियावाड़ प्रायद्वीप के पश्चिमोत्तर के कोने में, बड़ोदा राज्यान्तर्गत, पोरबन्दर से ५६ मील द्वारिका एक छोटा क़स्बा है। यह प्रसिद्ध तीर्थ है, इसे गोमती-द्वारिका भी कहते हैं। यह एक बन्दरगाह भी है। द्वारिका भारत के पश्चिम किनारे पर

श्रीद्वारिकाजी के मन्दिरों का नक़्शा ।
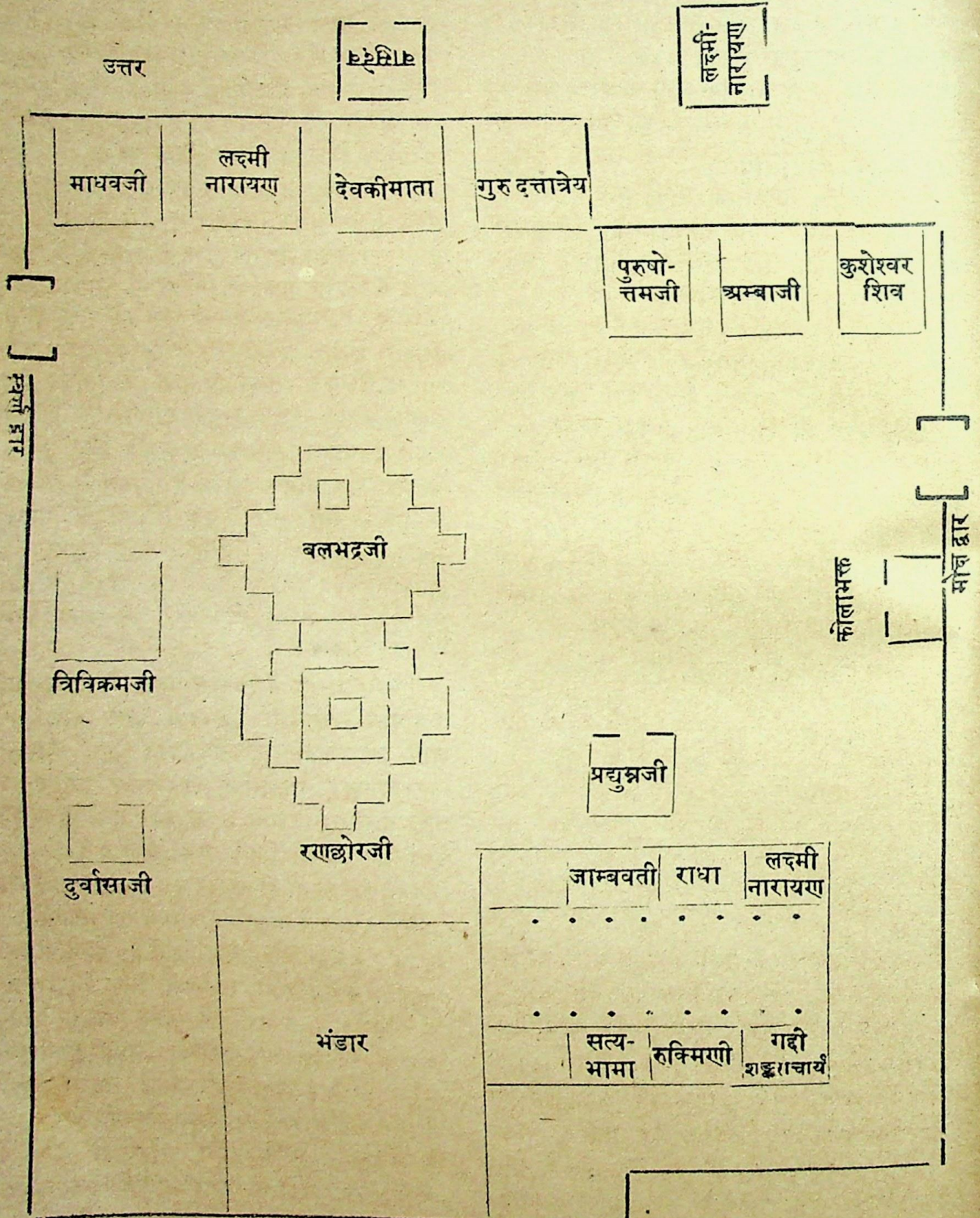
भारत के चार धामों में से एक धाम और सप्तपुरियों में से एक पुरी है।

द्वारिका क़स्बे के एक भाग के चारों ओर जो लगभग १७ बीघे भूमि पर है, पक्की दीवार बनी हुई है, जिसके चारों बगलों में फाटक बना है। दक्षिण की दीवार में रणछोरजी के मन्दिर के घेरे का ख़ास फाटक है। घेरे के भीतर बस्ती, धर्मशालायें और बहुत से मन्दिर और घेरे के बाहर अनेक मन्दिर हैं। द्वारिका में आठ दस धर्मशालायें हैं। यात्रियों के ठहरने की बड़ी सुविधा है।

यहाँ पर समुद्र किनारे नमक तैयार होता है, जो बहुत ही सस्ता रहता है। समुद्र का ज्वार भाठा दिन में कई बार आता है। भाठा रह जाने पर समुद्र द्वारा वहाँ पर गोमती चक्र, कौड़ी, दोहना आदि वस्तुएँ पड़ जाती हैं। यात्री लोग गोमती चक्र को पूजा करने के लिये अपने घर ले जाते हैं। यहाँ पर स्त्रियों में पर्दा नहीं है। पण्डे बहुत हैं। द्वारिका के पास किसी वस्तु की पैदावार नहीं होती। सब वस्तुऐं बाहर से आती हैं।

गोमती-द्वारिका के पश्चिम समुद्र और दक्षिण गोमती नामक लम्बा खाल है, जो समुद्र के ज्वार के पानी से भरा रहता है। गोमती के होने से उस नगर को लोग गोमती द्वारिका कहते हैं। गोमती के उत्तर के किनारे पर, द्वारिका की ओर पश्चिम से पूर्व तक इस क्रम से ९ पक्के घाट बने हुए हैं--(१) सङ्गम घाट (२) नारायण घाट (३) वासुदेव घाट (४) गऊघाट (५) पार्वती-घाट (६) पाण्डवघाट (७) ब्रह्माघाट (८)सुरधनघाट (९) सरकारीघाट। समुद्र और गोमती के पास संगमघाट पर संगमनारायण का मन्दिर, वासुदेवघाट के पास श्रीहनुमानजी का मन्दिर, और उससे पश्चिम नृसिंहजी स्थान है। सरकारी घाट से पूर्व निष्पाप कुण्ड नामक छोटा पोखरा है, उसके बगलों पर पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं, उसमें गोमती का पानी रहता है। वहाँ की रीति के अनुसार यात्री लोग प्रथम निष्पाप कुण्ड में तीर्थ भेंट कर स्नान करते हैं। जिसकी इच्छा होती है वह उस स्थान पर पिण्डदान करता है। उस कुण्ड के समीप एक और छोटा कुण्ड है। साँवलियाजी का मन्दिर, गोवर्धननाथ का मन्दिर, और महाप्रभु की बैठक है। गोमती के दक्षिण किनारे पर पञ्च-कुँआ नाम से प्रसिद्ध ५ पवित्र कूप है। यात्री इन कूपों में से आचमन करते हैं।

यात्री लोग निष्पाप कुण्ड में स्नान करके रणछोर आदि देवताओं के मन्दिर में जाकर दर्शन करते हैं। शहरपनाह के भीतर उसके पूर्व-दक्षिण के कोने के पास लगभग २४० फ़ीट लम्बे चौड़े घेरे में रणछोरजी आदि देवताओं के मन्दिर हैं। (ऊपर नक़्शे में कृपया देखिये) घेरे के दक्षिण बग़ल में स्वर्गद्वार नामक फाटक और उत्तर बग़ल में मोक्ष-द्वार नामक फाटक है। स्नान के मन्दिर में जाने के समय मार्ग में कृष्णजी, गोमती माता, महालक्ष्मीजी और सीढ़ियों पर हनुमानजी, नृसिंहजी और साक्षी गोपाल का दर्शन होता है। घेरे के भीतर जाकर देवताओं का पूजन करने का 'कर' नियत है।

कथा प्रसिद्ध है कि कालयवन के डर से रण (संग्राम) छोड़कर भगवान् कृष्ण द्वारिका में भाग गये। इसी कारण तो उनका नाम श्रीरण-छोरजी पड़ा। रणछोरजी का मन्दिर द्वारिका में सब मन्दिरों में प्रधान, सबसे बड़ा, तथा सुन्दर है। वह मंदिर जो सात मञ्जिला शिखरदार है, ४० फ़ीट लम्बा, और उतना ही चौड़ा तथा लगभग १४० फ़ीट ऊंचा है। ऊपर के मंज़िलों में जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर की दीवार दुहरी है। दोनों दीवारों के बीच में परिक्रमा करने की जगह है। मन्दिर के भीतर चाँदी के पत्तरों से भूषित किये हुए सिंहासन पर रणछोरजी, जिनको श्रीद्वारिकाधीशजी भी कहते हैं, ३ फ़ीट ऊँची श्यामल चतुर्भुज मूर्त्ति है। मूर्त्ति के अङ्ग में बहुमूल्य वस्त्र और जवाहरात के जड़ाऊ आभूषण हैं। मन्दिर के द्वार की चौखटों पर चाँदी के पत्तर लगे हैं और छत्त से

सुन्दर झाड़ लटकते हैं। यात्री लोग रणछोरजी के चरणों पर फूल और तुलसी पत्र चढ़ाते हैं और सिंहासन की परिक्रमा करते हैं। मन्दिर के ऊपर के एक मंजिल में अम्बादेवी की मूर्ति है। मन्दिर के आगे, मन्दिर से अधिक लम्बा-चौड़ा १०० फीट ऊँचा पञ्च मंजिला जगमोहन है। उसके भीतर पत्थर के ६० चौकोने स्तम्भ लगे हैं। ऊपर सुन्दर गुम्बज है। उस जगमोहन में पश्चिम-दक्षिण के कोने के पास एक छोटी कोठरी में शेष रूप बलदेवजी हैं। मन्दिर के समान जगमोहन भी पहलदार है। मन्दिर से दक्षिण पूर्व दुर्वासाजी का छोटा मन्दिर है।

रणछोरजी के मन्दिर से दक्षिण त्रिविक्रमजी का शिखरदार मन्दिर है। उसके किवाड़, चौखट और सिंहासन पर चाँदी के पत्तर जड़े हुए हैं। छत्त में झाड़ लगे हैं। मन्दिर में सिंहासन पर त्रिविक्रमजी की मनोरम मूर्ति है। रणछोरजी के वस्त्राभूषणों के समान इनके भी वस्त्र आभूषण हैं। त्रिविक्रमजी के पास राजा बलि और ब्रह्मा के ४ पुत्र–सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन की छोटी-छोटी मूर्त्ति और मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम के कोने में गरुड़ की मूर्ति है। त्रिविक्रमजी को बहुत लोग टीकमजी कहते हैं। वहाँ के लोगों का कथन है कि दुर्वासा ऋषि राजा बलि से त्रिविक्रम भगवान् को माँग लाये थे।

रणछोरजी के मन्दिर से उत्तर प्रद्युम्नजी का शिखरदार मन्दिर है। मन्दिर में चाँदी के सिंहासन पर श्याम रूप प्रद्युम्नजी विराजते हैं। भीतर झाड़ लगे हैं। इनका श्रृङ्गार भी प्रायः रणछोरजी की ही तरह है। उनके पास अनिरुद्धजी की छोटी प्रतिमा है।

घेरे के उत्तर वाले फाटक से पश्चिम कुशेश्वर महादेव का मन्दिर है। मन्दिर के नीचे तहखाने कुशेश्वर शिवलिङ्ग और पार्वतीजी की मूर्त्ति है। वहाँ बहुतेरे यात्री लड्डू तथा घी चढ़ाते हैं। वहाँ के लोग कहते हैं कि जब कुश नामक दैत्य श्रीद्वारिकापुरी में बड़ा उत्पात करके सभी को क्लेश देने लगा, तब दुर्वासा ऋषि राजा बलि से त्रिविक्रम भगवान् को माँग कर लाये। जब कुश दैत्य किसी भाँति नहीं मरा, तब त्रिविक्रमजी ने उसे भूमि में गाड़ दिया और उसके ऊपर शिवलिंग स्थापित कर दिया, जो कुशमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। उस समय कुश ने कहा कि "जो द्वारिका के यात्री कुशेश्वर की पूजा न करें, उनकी यात्रा का आधा फल मुझको मिलै, तभी मैं इसके भीतर स्थित रहूँगा। त्रिविक्रमजी ने कुश को यह वर दे दिया। कुश तभी से उसी भूमि में स्थित होगया।

घेरे के भीतर उसके पश्चिम की दीवार के पास क्रम से उत्तर से दक्षिण कुशेश्वर महादेव, अम्बाजी, पुरुषोत्तमजी, गुरु दत्तात्रेय, देवकीमाता, लक्ष्मीनारायण और माधव के मंदिर, उत्तर की दीवार के पास मोक्ष फाटक से पूर्व कोला भक्त का मन्दिर और पूर्व की दीवार के पास एक घेरे के पूर्व बगल में क्रम से दक्षिण से उत्तर खाली मन्दिर, सत्यभामा का मन्दिर, रुक्मिणीजी का मन्दिर, शङ्कराचार्यजी की गद्दी और पश्चिम बगल में क्रम से दक्षिण से उत्तर खाली मन्दिर, जाम्बवन्ती, राधा, और लक्ष्मीनारायण के ३ मन्दिर हैं। (नक्शे में देखिये)।

भीतर वाले घेरे में रणछोरजी का भण्डार है। भंडार से दक्षिण सुप्रसिद्ध शारदामठ है। मन्दिर के बड़े घेरे से बाहर उसके पश्चिम लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है। नारायण की श्यामवर्ण की चतुर्भुज मूर्त्ति प्रायः २ हाथ ऊँची है, जिसके वाम अङ्क में लक्ष्मीजी की छोटी प्रतिमा है। नारायण का श्रृङ्गार बहुमूल्य रत्न-सुवर्ण आदि का है। लक्ष्मीनारायण के मन्दिर से दक्षिण-पश्चिम वासुदेवजी का मंदिर है। इसके चौखट और सिंहासन में चाँदी के पत्तर जड़े हुए हैं। मूर्ति श्याम वर्ण चतुर्भुज रूप है। चारों भुजाओं में शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए है। वस्त्राभूषण बहुत ही बहुमूल्य हैं। श्रृङ्गार दर्शनीय है।

नगर की परिक्रमा—रणछोरजी के मंदिर से नगर की परिक्रमा की यात्रा आरम्भ होती है। मंदिर से पश्चिम गोमती के घाटों पर देवताओं के दर्शन करते हुए समुद्र के निकट सङ्गम घाट पर जाना चाहिये। सङ्गम से उत्तर के समुद्र के घाट को लोग चक्रतीर्थ कहते हैं। उससे उत्तर रत्नेश्वर महादेव का मंदिर है। उससे उत्तर द्वारिका नगर से बाहर सिद्धनाथ महादेव का मंदिर मिलता है। इसके आगे ज्ञानकुण्ड नामक बावली, उससे आगे जूनीरामवाड़ी नामक मन्दिर में राम, लक्ष्मण और जानकी। उससे आगे नई रामवाड़ी नामक मन्दिर और सौमित्री बावली नामक कूप, उससे आगे अक्षयवट वृक्ष, अघोर कुण्ड, भद्रकाली, और आशापुरी माता की मूर्त्ति, उससे आगे कैलाश-कुंड नामक बावली है। इसमें गुलाबी रङ्ग का पानी है। कैलाशकुण्ड से आगे सूर्यनारायण और उससे आगे शहरपनाह के पूर्व के दरवाज़े के पास जय और विजय का दर्शन होता है। उसके पश्चात् निष्पापकुण्ड और रणछोरजी के मन्दिर के बीच के देवताओं के दर्शन करते हुए दक्षिण दर-वाज़े से रणछोरजी के मन्दिर में जाकर परिक्रमा समाप्त होती है।

पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, महाभारत, गरुड़पुराण, श्रीमद्भागवत आदि अनेक धर्म ग्रन्थों में श्रीद्वारिका-पुरी की महिमा का वर्णन है। पश्चिम-भारत का यह सब से प्रधान तीर्थ है।

बेट द्वारिका—

द्वारिका से प्रायः २० मील पूर्वोत्तर कच्छ की खाड़ी में बड़ौदा राज्यान्तर्गत बेट द्वारिका नाम का छोटा-सा टापू है। द्वारिका से एक सड़क बड़वाला गाँव और रामड़ा होकर और दूसरी एक राह नागेश्वर गाँव और गोपी तालाब होकर बेट द्वारिका की खाड़ी के पास गई है। द्वारिका से १ मील पर रुक्मिणीजी का एक छोटा मन्दिर है। रामड़ा बेट-द्वारिका की खाड़ी के पास एक कस्बा है, जहाँ बहुत से यात्री शंख-चक्र की छाप लेते हैं। रामड़ा से प्रायः ६ मील पर समुद्र के एक टापू पर बेट द्वारिका बस्ती है।

बेट द्वारिका का टापू पश्चिम से पूर्वोत्तर तक लगभग ७ मील है। उसके दक्षिण पश्चिम का भाग प्रायः ६० फ़ीट ऊँचा पथरीला है। पूर्वोत्तर की नोक को लोग हनुमान अन्तरीप कहते हैं, क्योंकि वहाँ पर एक हनुमानजी का मन्दिर है। बेट द्वारिका में किसी वस्तु की पैदावार नहीं है। बेट द्वारिका श्रीकृष्ण की विहारस्थली मानी जाती है। यहाँ बस्ती में यात्रियों की सभी आवश्यक वस्तुएँ मिलती हैं। यहाँ कई धर्मशालायें और सदावर्त हैं। रणछोर-सागर, रत्न तालाब, कचौरी तालाब, शंख तालाब आदि जलाशय और अनेक देव मन्दिर बने हुए हैं। श्रीकृष्ण भगवान् के महल के मंदिरों के अतिरिक्त उस टापू में मुरलीमनोहर का मन्दिर, हनुमान-टेकरी, देवी का मन्दिर, नवग्रह का मन्दिर, नील-कण्ठ महादेव का मंदिर, विघ्नेश्वर और पद्मेश्वर मंदिर, कचौरी तालाब के पास श्रीरामचन्द्र का मंदिर और शङ्ख तालाब के पास शंख नारायण का मंदिर है। जलाशयों में रणछोर-सागर प्रधान है। उसमें जगह–जगह पर घाट बने हैं। यहाँ की छोटी परिक्रमा ६ मील की है।

श्रीकृष्ण के महल के मंदिर—बेट द्वारिका में एक बड़े घेरे के भीतर दो मंजिले व ३ मञ्जिले ५ महल बने हुए हैं। घेरे के पूर्व बग़ल में प्रद्युम्नजी का मन्दिर, उससे दक्षिण रणछोरजी का मंदिर और उससे दक्षिण त्रिविक्रमजी का मंदिर है। इन मंदिरों के आगे दुहरे दालान हैं। घेरे के पश्चिम बग़ल में उत्तर पुरुषोत्तमजी का मंदिर उससे दक्षिण देवकी माता का मन्दिर और उससे दक्षिण माधवजी का मन्दिर है। तीनों मन्दिरों के आगे दालान हैं। घेरे के दक्षिण बग़ल में पश्चिम ओर अम्बाजी और उससे पूर्व गरुड़ का मन्दिर और मध्य में छोटा आँगन है। प्रद्युम्नजी, रणछोरजी, त्रिविक्रमजी और देवकी माता के मन्दिरों के किवाड़ और सिंहासन चाँदी के पत्तरों से जड़े हैं। छत्तों में झाड़

लटक रहे हैं। द्वारिका के मन्दिरों के रणछोरजी, त्रिविक्रमजी, प्रद्युम्नजी, देवकी माता, माधवजी और पुरुषोत्तमजी की मूर्त्तियों के समान ही यहाँ की झाँकी भी मनोरम हैं। मन्दिर के भीतर से ऊपर दो मञ्जिल को सीढ़ियाँ गई हैं। वहाँ भगवान् का सेज महल है, झूला है, चौपड़ खेलने का स्थान बना है और कमरे के चारों बग़ल बड़े-बड़े आइने लगे हैं। यहाँ के मन्दिरों, कमरों और दालानों की सजावट देखने ही योग्य है।

रणछोरजी के महल के दक्षिण सत्यभामा और जाम्बवती का महल; पूर्व साक्षी गोपाल का मन्दिर और उत्तर रुक्मिणी तथा राधा का महल है। जाम्बवती के महल में जाम्बवती के मन्दिर के पूर्व लक्ष्मीनारायण का मन्दिर और रुक्मिणी के महल में रुक्मिणी के मंदिर से पूर्व गोवर्धननाथ का मंदिर है। सब मन्दिरों के किवाड़ों में चाँदी के पत्तर लगे हैं और झाड़ लटक रहे हैं। मूर्त्तियों की झांकी मनोरम हैं। सत्यभामा, जाम्बवती, रुक्मिणी और राधा इन चारों के भण्डार, कारखाने तथा भण्डार के मालिक अलग-अलग हैं। चारों भण्डारों से नाना भाँति की भोग सामिग्री तैयार होकर नियत समय पर रणछोरजी के मन्दिर को भेजी जाती है।

शंखोद्धार—

कृष्ण महल से प्रायः डेढ़ मील दूर टापू के भीतर शङ्खोद्धार नामक तीर्थ में शङ्ख तालाब नामक पोखरा और शङ्खनारायण का सुन्दर मन्दिर है। मार्ग में रणछोर सागर मिलता है। वहाँ के लोग कहते हैं कि कृष्ण भगवान् ने इस स्थान पर शङ्खासुर का उद्धार किया था, इसी से इस स्थान का नाम शङ्खोद्धार तीर्थ हुआ। यात्री लोग शङ्ख तालाब में स्नान करके शङ्खनारायण के दर्शन करते हैं।

गोपीतालाब—

खाड़ी से लगभग २ मील पश्चिम-दक्षिण द्वारिका से १३ मील पूर्वोत्तर गोपी तालाब नामक एक कच्चा सरोवर है। इसके आस-पास पीले से रङ्ग की मिट्टी है। गोपी तालाब से ही गोपीचन्दन निकलता है। बहुत यात्री वहाँ से गोपीचन्दन लाते हैं। गोपी तालाब के पास एक छोटी बस्ती, २ धर्मशाला, छोटी धर्मशाला के पास श्रीगोपीनाथजी का मन्दिर, वल्लभसम्प्रदाय वालों का एक मठ और दो सदावर्त्त हैं। वहाँ पर मोर बहुत हैं। गोपीचन्दन का बड़ा माहात्म्य है।

नागेश्वर—

गोपी तालाब से ३ मील, बेट द्वारिका की खाड़ी से ५ मील दक्षिण-पश्चिम और द्वारिका से १० मील पूर्वोत्तर नागेश्वर नामक बस्ती के पास नागेश्वर नामक शिवजी का छोटा मन्दिर है। मन्दिर के भीतर शिवलिङ्ग के पास पार्वतीजी की मूर्त्ति और बाहर नन्दी है। बहुत यात्री यहाँ दर्शन करते हैं। यहाँ भी मोर बहुत हैं। मन्दिर छोटा होने पर भी यहाँ की प्राकृतिक छटा दर्शनीय है।

सोमनाथ पट्टन—

विरावल बन्दर से २॥ मील दक्षिण-पूर्व काठियावाड़ प्रायद्वीप के दक्षिण किनारे पर खाड़ी के पूर्वी किनारे के पास, जूनागढ़ राज्य में सोमनाथ पट्टन एक क़स्बा है। इसको देवपट्टन, प्रभास पट्टन और पट्टन सोमनाथ भी कहते हैं। कस्बे के चारों ओर पत्थर की पुरानी दीवार है, जिसमें अनेक फाटक बने हुए हैं। पूर्व वाले नाना फाटक के बाहर एक बड़ी धर्मशाला है। सोमनाथ पट्टन में नित्य ही यात्री आते हैं। यहाँ पर सभी आवश्यकीय वस्तुएँ मिलती हैं। यहाँ पर बहुत देव मन्दिर हैं।

प्राचीत्रिवेणी—नाना फाटक के दक्षिण के समुद्र का नाम अग्निकुण्ड है। यात्री प्रथम अग्निकुण्ड में स्नान करके प्राचीत्रिवेणी में स्नान करते हैं। नाना फाटक से प्रायः पौन मील पर प्राचीत्रिवेणी है। अग्निकुण्ड और प्राचीत्रिवेणी के बीच एक जगह ब्रह्मकमण्डल नामक कूप और ब्रह्मेश्वर शिवलिङ्ग हैं। और दूसरी जगह आदि प्रभास और

जल प्रभास नामक दो कुण्ड हैं। कस्बे के पूर्व तीन नदियों के संगम को प्राचीत्रिवेणी कहते हैं। वहाँ पूर्वोत्तर से हिरण्या नदी पूर्व से सरस्वती नदी और दक्षिण-पूर्व से कपिला नदी आई हैं। कपिला सरस्वती में, सरस्वती हिरण्या में और हिरण्या दक्षिण जाकर समुद्र में मिल गई है। लोग कहते हैं कि इसी संगम के पास भगवान् श्रीकृष्ण का शरीर जलाया गया था। प्राचीत्रिवेणी के पास ही त्रिवेणी माता, महाकालेश्वर आदि देवता हैं।

प्राची त्रिवेणी के संगम से लगभग २०० गज उत्तर सूर्यनारायण का पुराना मन्दिर है। इसके आधे भाग को महमूद ने तोड़ दिया था। इससे थोड़ा आगे एक भूवेवरे में हिङ्गलाज माता की मूर्ति का दर्शन होता है। उससे आगे एक मन्दिर में सिद्धनाथ महादेव (खण्डित शिवलिङ्ग) हैं, इनके समीप बलदेवजी का मन्दिर और श्रीकृष्ण का मन्दिर है। उससे आगे हिरण्या के तट पर एक वटवृक्ष और दो छोटे मन्दिर हैं। लोग कहते हैं कि बलरामजी यहीं से परमधाम को गये थे। उस स्थान पर एक रामचन्द्रजी का तथा एक श्रीकृष्ण का मन्दिर है। कुछ आगे भीमेश्वर महादेव का मन्दिर और मन्दिर से आगे हिरण्या नदी के तट पर यादवस्थल स्थान मिलता है। वहाँ पर नदी के किनारे बड़े-बड़े पत्ते हैं, जिनको कहा जाता है कि यदुवंशियों के नाश के समय ये अमोघ शस्त्र होगये थे।

यादवस्थल से क़स्बे की ओर लौटने पर मार्ग में नृसिंहजी का मन्दिर और नाना फाटक के बाहर उत्तर ओर गौरीकुण्ड नामक सरोवर है; जिसके पास बहुत से शिवलिंग हैं। क़स्बे में शहरपनाह के भीतर गणेशजी, महाकालीजी भद्रकालीजी, दैत्यसूदन आदि देवताओं के बहुत से मन्दिर हैं। रामपुष्कर नामक एक तालाब है। स्थान दर्शनीय है।

सोमनाथ का नया मन्दिर—नाना फाटक से प्रायः २०० गज पश्चिमोत्तर क़स्बे के मध्य भाग में सोमनाथ का नया मन्दिर है। इसको इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई ने बनवाया था। यह मन्दिर साधारण कद का शिखरदार है। इसके आगे सुन्दर जगमोहन बना हुआ है। मंदिर में एक शिवलिंग और उसके नीचे १३ फ़ीट लम्बे और इतने ही चौड़े तहखाने में सोमनाथ शिवलिङ्ग हैं। मन्दिर के दक्षिण बगल में तहखाने में जाने के लिये २२ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। तहखाने में १६ स्तम्भ लगे हुए हैं। उसके मध्य में बड़े अर्घे पर बड़े आकार के सोमनाथ शिवलिङ्ग; पश्चिम बगल में पार्वतीजी, उत्तर बगल में लक्ष्मीजी, गङ्गाजी, सरस्वतीजी, और पूर्व बगल में नन्दी हैं। वहाँ दिन रात दीप जलते हैं। मन्दिर के आँगन के पूर्वोत्तर कोने के पास गणेशजी का छोटा मन्दिर और पूर्व तथा उत्तर में दरवाजा है। दरवाजे के बाहर अघोरेश्वर शिवलिङ्ग हैं। इस मन्दिर में नित्य ही यात्रियों का यातायात लगा रहता है।

सोमनाथ का पुराना मन्दिर—उत्तर के क़स्बे के पश्चिम समुद्र के तीर पर सोमनाथ का पुराना मन्दिर है, जिसको सन् १०२४ में महमूद गज़नी ने लूटा था। वह मन्दिर हीन दशा में है। तबाह हालत में भी मन्दिर देखने योग्य है। गिरिनार के नेमिनाथ के मन्दिर के समान यह हाते से घिरा हुआ था, अब केवल मन्दिर है। यह काले पत्थर का है। मन्दिर के जगमोहन में तीन ओर ३ दरवाजे हैं। उसके मध्य में अठपहले स्थान की आठों दिशाओं में ओसारे हैं। ऊपर मध्य में एक बड़ा और उसके पास ४ छोटे गुम्बज हैं। मध्य के गुम्बज के नीचे ८ स्तम्भ और ८ मेहराबी हैं। पेशगाह के पश्चिम सोमनाथ का निज मन्दिर है जिसमें बड़े आकार के शिवलिङ्ग थे। मन्दिर भीतर से चौकोना है। उसके बगल में बाहर की दीवार के भीतर विचित्र ढङ्ग से स्तम्भ लगे हैं। मन्दिर के आगे भाग में नन्दी के रहने का स्थान है। मन्दिर और उसके आगे का एक गुम्बज गिर गया है। ऊपर से मन्दिर का भीतरी भाग दिखाई देता है। पेशगाह

के तीनों दरवाजों में काठ के जङ्गले लगवा दिये हैं—ताला बन्द रहता है।

मन्दिर से पश्चिम, उसके घेरे की पश्चिम की सीमा के पास एक पुराना ओसारा है। इसको मुसलमानों ने निज़ामगाह बना लिया है। मंदिर से पूर्व, बस्ती के भीतर दो जगह हनुमानजी की दो बहुत पुरानी मूर्तियाँ हैं। वहाँ के लोगों का कहना है कि जब महमूद गजनवी मन्दिर को लूटा, उससे पहले की ये मूर्तियाँ हैं।

बाणतीर्थ—सोमनाथ पट्टन और विरावल कस्बे के मध्य में सोमनाथ पट्टन से लगभग १ मील पश्चिमोत्तर समुद्र के तीर पर बाणतीर्थ है। वहाँ के लोगों का कहना है कि जरा नामक व्याध ने इसी स्थान से श्रीकृष्ण को बाण मारा था, इसी कारण से इस स्थान का नाम बाण-तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। वैशाख की अक्षय-तृतीया को वहाँ स्नान का मेला होता है। बाण-तीर्थ से पश्चिम समुद्र के तीर पर चन्द्रभागा तीर्थ है। यहाँ पर बिना अर्घे के बालू में कपिलेश्वर शिवलिङ्ग हैं।

भालक-तीर्थ—बाण तीर्थ से डेढ़ मील उत्तर और भालपुर बस्ती से पश्चिम भालक तीर्थ है। वहाँ भालकुण्ड नाम का एक पक्का तालाब है। उसके पास पद्मकुण्ड नामक छोटा सरोवर और एक पीपल के वृक्ष के पास भालेश्वर शिवलिङ्ग हैं। वहाँ के लोग कहते हैं कि इसी स्थान पर श्रीकृष्ण को जरा नामक व्याध का बाण लगा था, उन्होंने पद्मकुड के जल से अपने रुधिर को धोया था। इस स्थान पर उनको बाण का भाल (अग्रभाग) लगा, इसीसे इस स्थान का नाम भाल-तीर्थ हुआ। यात्री लोग भालकुण्ड में और पद्मकुंड में मार्जन करते हैं।

ऐतिहासिक लोगों का कथन है कि सोमनाथ के मन्दिर में इतनी अधिक सम्पत्ति और रत्न राशि थी कि महमूद को लूटकर ले जाने में इस विशाल सम्पत्ति को ऊँटों पर लादकर ले जाना पड़ा था। यहाँ के शिवलिङ्ग को जब उस क्रूर ने तोड़ा तो उसके भीतर रत्नों की अपार राशि थी, जिसे वह सब ले गया और लिङ्ग के टूटे भाग को भी ले गया। यहाँ तक कि मन्दिर के चन्दन के बने हुए बढ़िया किवाड़ों को भी वह उखाड़ कर लेगया। कहा जाता है कि यहाँ इतनी अधिक सम्पत्ति थी कि किसी देश के सम्राट् के खजाने में उसका दसवाँ अंश भी न होगा।

सोमनाथ तथा प्रभास क्षेत्र का माहात्म्य महाभारत, देवीभागवत, लिंग पुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत आदि अनेक ग्रन्थों में वर्णित है। पश्चिम भारत में यह प्रसिद्ध तीर्थ है।

जूनागढ़—

पश्चिम में यह एक प्रसिद्ध रियासत है। यहीं पर देश-प्रसिद्ध भक्तवर श्रीनरसीजी का जन्म हुआ था और यहीं से उन्होंने द्वारिका के साँवल साह के नाम हुण्डी लिखकर भगवान् से रुपये लेकर साधु-सेवा में लगाये थे। उनको भगवान् का साक्षात्कार भी हुआ था—यह रियासत और स्थान देखने योग्य है।

गिरिनार-पर्वत—

जूनागढ़ शहर से पूर्व गिरिनार नामक पहाड़ियाँ हैं, जिनमें गिरिनार पहाड़ी ३६७५ फ़ीट, योगिनिया पहाड़ी २५२७ फ़ीट, बेसला पहाड़ी २२६० फ़ीट और दत्तर पहाड़ी २७८० फ़ीट समुद्र जल की सतह से ऊँची हैं। इनके अतिरिक्त लक्ष्मण टेकरी आदि अनेक छोटी पहाड़ियाँ हैं। गिरिनार पहाड़ी पर हिन्दुओं और जैनों के बहुत मन्दिर तथा स्थान बने हुए हैं। गिरिनार का हिन्दू, जैन और बौद्ध तीनों मतके लोग आदर करते हैं। जूनागढ़ शहर से केवल गिरिनार पर्वत की चोटी दिखाई देती है। जूनागढ़ नगर से गिरिनार का पवित्र-पर्वत १० मील पूर्व को है। नगर से १४ मील की दूरी पर गिरिनार-शिखिर पर दत्तात्रेयजी का स्थान है। अगहन की पूर्णिमा को दत्तात्रेयजी का जन्म-दिवस यहाँ समारोह से मनाया जाता है।
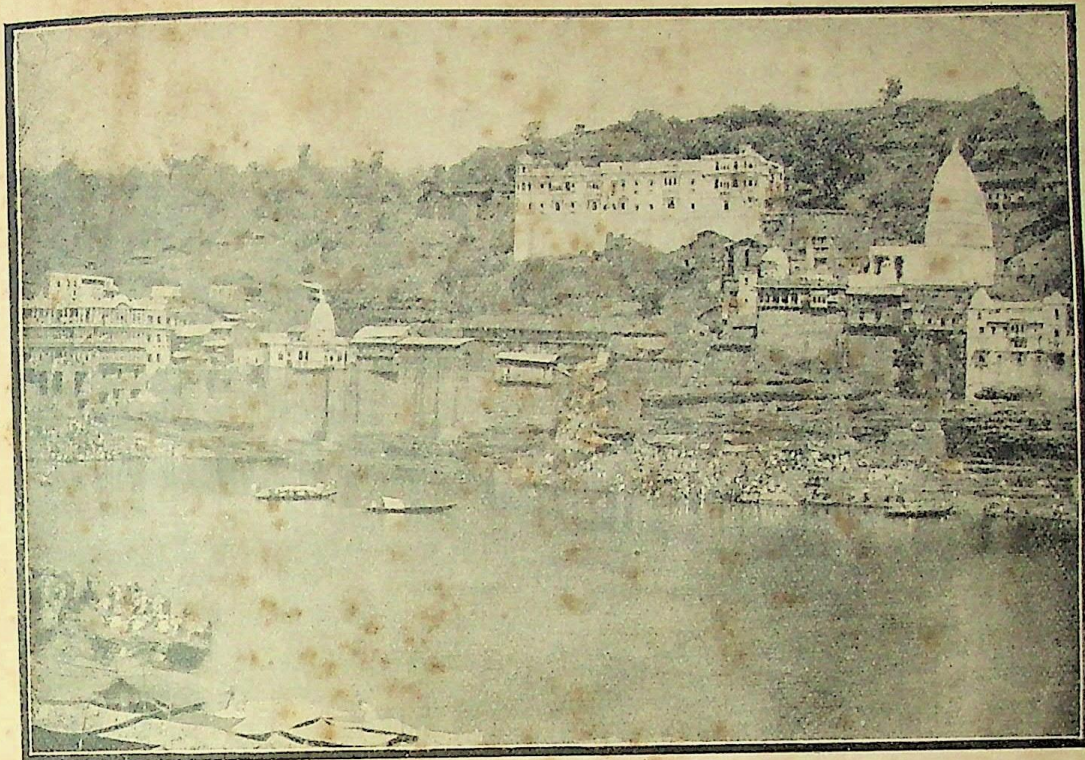
नर्मदाके तटपर श्रीओंकारेश्वर शिवपुरी (मालवा-प्रान्त)
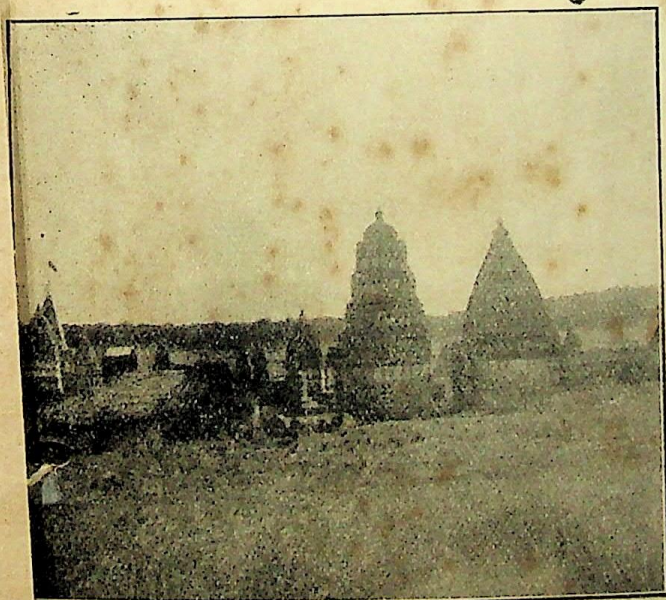
श्रीअमरकण्टक

श्रीनर्मदेश्वर (नर्मदातट)
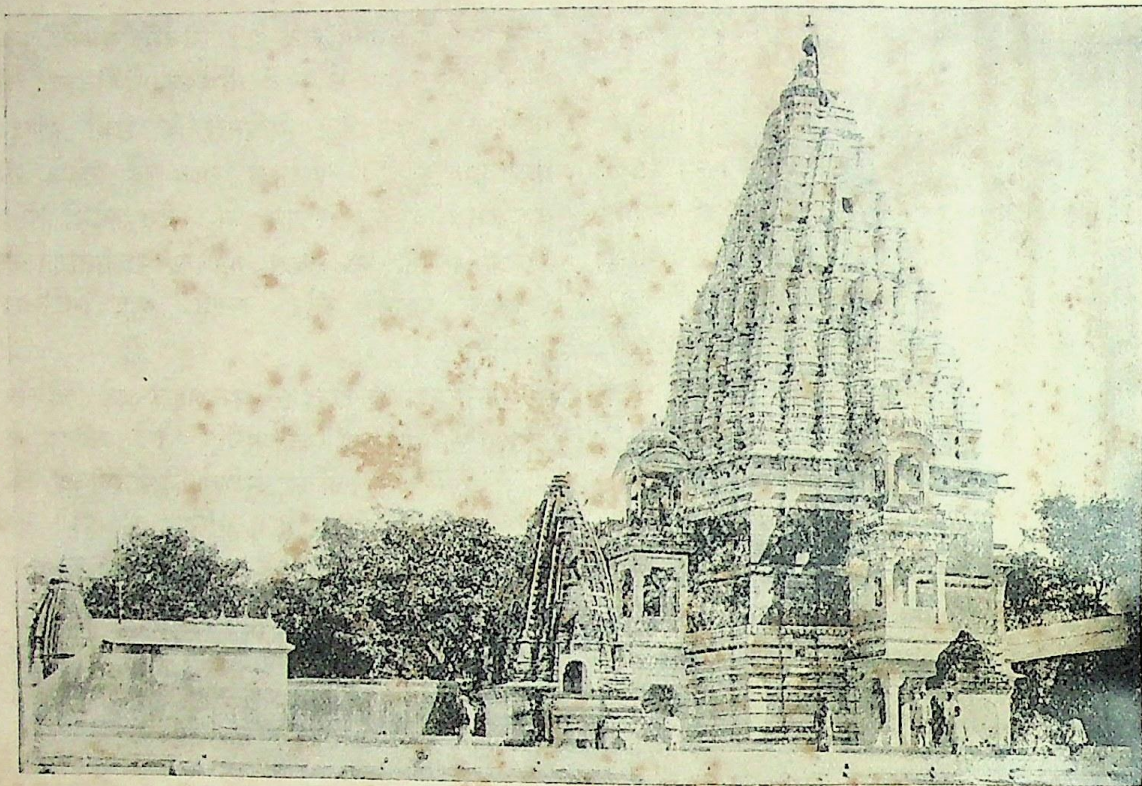
श्रीमहाकालेश्वर-मन्दिर (उज्जैन)
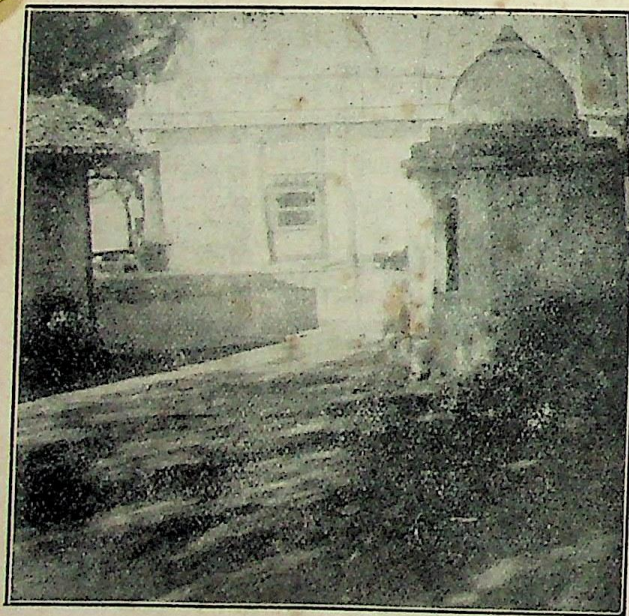
दशाश्वमेध तीर्थ (भड़ौच)
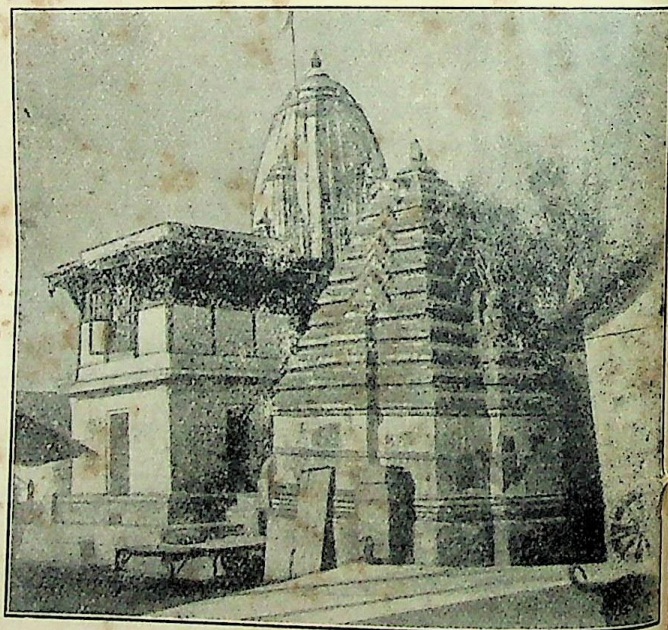
कुम्भेश्वर महादेव (नर्मदातट)

है। उस दिन उनके दर्शन करने का बहुत बड़ा माहात्म्य है।

जूनागढ़ नगर के पास जूनागढ़ की प्राचीन राजधानी अमरकोट नामक क़िला है। लोग उसके वागेश्वरी फाटक होकर गिरिनार पर्वत की यात्रा करते हैं। उस स्थान से प्रायः २०० गज आगे मार्ग में वागेश्वरीदेवी का मन्दिर है। उससे आगे नया तीन मंज़िल का एक मन्दिर है, इस मन्दिर से थोड़ा आगे पत्थर का पुल और पुल से आगे चट्टानों पर पुराने शिलालेख हैं। इन शिलालेखों से आगे सोना रोखा नदी का पुल है। नदी के दोनों किनारों पर अनेक देवमन्दिर बने हुए हैं, जिनमें श्रीदामोदरजी का मन्दिर बहुत बड़ा है। इस स्थान पर दामोदरकुण्ड और रेवतीकुण्ड हैं, जिनमें यात्री स्नान करते हैं। उससे आगे जङ्गली मार्ग है। बहुत बन्दर वहाँ रहते हैं। वहाँ पर भवनाथ शिवजी का मन्दिर है। उससे आगे एक स्थान पर एक कूप और कई देवमन्दिर हैं। नेमि-नाथ के मन्दिर तक जगह जगह ६ विश्राम करने के स्थान हैं। पहाड़ की चढ़ाई का मार्ग बड़ा ही कठिन है। कहीं-कहीं तो खड़ी चढ़ाई आ जाती है। तीसरे विश्राम स्थान से आगे दत्तर पहाड़ी दीख पड़ती है। प्रायः १५०० फ़ीट ऊपर एक पत्थर की धर्मशाला है, जहाँ से भैरवथेपा चट्टान अर्थात् भयङ्कर कुण्डके चट्टान का उत्तम दृश्य दिखाई देता है। इसी के पास पाँडव गुफ़ा है। एक जगह मुचुकुन्द गुफ़ा है। लोग कहते हैं कि इसी गुफ़ा में राजा मुचुकुन्द सोये हुये थे, जिनकी दृष्टि से कालयवन भस्म हो गया था। मार्ग में सेवानाथ मन्दिर, हाथीपगलाकुण्ड, सूर्यकुण्ड, मालीपर्वकुण्ड और अनेक कुण्ड तथा मन्दिर हैं।

जैनमन्दिर—जूनागढ़ के मैदान से २३०० फ़ीट ऊपर देवकोट के घेरे का फाटक है। फाटक से भीतर बांई ओर पहाड़ी के पश्चिम किनारे के पास जैन मन्दिरों का बड़ा घेरा और दाहिनी ओर कच्छ के राजा मानसिंह का पुराना मन्दिर मिलता है। वहाँ पर १६ जैन मन्दिर हैं। जिनमें सबसे बड़ा और पुराना जैनों के २२वें तीर्थंकर नेमीनाथ का विचित्र मन्दिर है। गिरिनार के सभी मन्दिर बहुत प्राचीन हैं। ईसा से २७० वर्ष पहिले भी वह जैन यात्रा का स्थान था। जैन लोगों के ५ पवित्र स्थानों में सबसे अधिक पालीटाणा की शत्रुञ्जय पहाड़ी और उसके बाद गिरिनार पर्वत है।

नेमीनाथ का मन्दिर—एक बहुत बड़े चौकोर आँगन में नेमीनाथ का मन्दिर है। मन्दिर के भीतर सोने और रत्नों से भूषित नेमीनाथजी की नीलरङ्ग की प्रतिमा है। मन्दिर के आगे दो कमरे और एक जगमोहन है। पश्चिम वाले कमरे में पीले रङ्ग के पत्थर के दो चबूतरे हैं, जिन पर दो-दो चरण चिन्ह हैं। मन्दिर के आँगन के चारों बग़ल ७० कोठरियाँ हैं। प्रति कोठरी में नेमीनाथ की एक एक प्रतिमा पाल्थी मार कर बैठी है।

नेमीनाथ के मन्दिर के बांई ओर ३ मन्दिर हैं। जिनमें दक्षिण वाले मन्दिर में प्रथम तीर्थंकर ऋषभजी की एक बड़ी मूर्ति और चौबीसों जैन तीर्थंकरों की प्रतिमायें हैं। उस मन्दिर के सामने पंच भाइयों का नया मन्दिर है। उसके पश्चिम पार्श्वनाथ का बड़ा मन्दिर है। इसके उत्तर में पार्श्वनाथ का दूसरा मन्दिर है। पास ही कुमार-पाल का मन्दिर है।

नेमीनाथ के मन्दिर के पीछे तेजपाल और वस्तुपाल दोनों भाइयों के बनवाये हुए एक ही साथ ३ विचित्र मन्दिर हैं, वहाँ १६ वें तीर्थंकर मालीनाथ की मूर्ति है। ये भी दर्शनीय है।

गौमुखी—ऊपर लिखे हुए जैन मन्दिरों के घेरे से उत्तर ७० फ़ीट लम्बा और ५० फ़ीट चौड़ा भीमकुण्ड नामक जलाशय है। जिसमें हिन्दू यात्री स्नान करते हैं। जैन मन्दिरों से दक्षिण उस स्थान से २०० फ़ीट की ऊँचाई पर जूनागढ़ कस्बे से प्रायः १० मील दूर गौमुखी स्थान है। वहाँ पर पत्थर की गौमुखी से जलधारा गिरती है, जिसे लोग

गङ्गा कहते हैं। वहाँ कई झरने और ब्रह्मेश्वर और नर्मदेश्वर दो मन्दिर हैं। गौमुखी से ऊपर दो राह दो तरफ गई है।

अम्बा का मन्दिर—गौमुखी से एक मील दूर पहाड़ी की पहिली चोटी के सिर पर, ३३३० फ़ीट की ऊँचाई पर अम्बादेवी का पुराना मन्दिर है। उस देश के बहुत ब्राह्मण विवाहोपरान्त दुलहिन के साथ आकर गंठजोड़े से अम्बा देवी को नारियल आदि से पूजते हैं।

गुरुदत्तात्रेय का मन्दिर—अम्बा के मन्दिर से पूर्व गोरखनाथ, दत्तासू और कालिका नामकी ३ चोटियों के शृङ्ग हैं। पहिले गोरखनाथ का स्थान मिलता है। उससे आगे गौमुखी से ४ मील पर गुरु दत्तात्रेय का छोटा मन्दिर है। जिसमें उनका चरण चिन्ह बना हुआ है। श्री मद्भागवत के लेखानुसार दत्तात्रेयजी विष्णु के २४ अवतारों में से एक है। यह स्थान भी दर्शनीय है।

शत्रुञ्जय पहाड़ी—

पालीटाणा के राज्य में पालीटाणा कस्बे से १॥ मील पर शत्रुञ्जय पहाड़ी है। जैन लोगों की ५ पवित्र पहाड़ियों में से यह सबसे अधिक पवित्र है। इसीलिये भारत के अनेक धनी जैन यहाँ की यात्रा को आते रहते हैं। शत्रुञ्जय-महात्म्य नामक पुस्तक १४ सर्ग की है। यात्री सवेरे उस पहाड़ी पर चढ़ते हैं। और दर्शन आदि करके सन्ध्या को उतर आते हैं। ऊपर रसोई बनाना और सोना जैन मत के विरुद्ध है।

शत्रुञ्जय पहाड़ी समुद्र जल से १६८० फ़ीट ऊँची है। पहाड़ी के चढ़ाई के मार्ग में, विशेषतया आदिनाथ के मन्दिर के पीछे बहुत-सी छोटी कोठरियों में मार्बुल के तख्ते पर चरणचिन्ह बने हैं। चढ़ाई का मार्ग कठिन है। ज़मीन से कुछ ऊपर हनुमानजी का मन्दिर है। पहाड़ी के ऊपर दो चिपटे शिखर हैं। दोनों शिखर दृढ़ दीवार से घिरे हुए हैं। घेरे के भीतर अलग-अलग के प्रधान मन्दिरों के घेरे के १६ फाटक हैं। उनमें एक-एक प्रधान मन्दिर के साथ अनेक छोटे मन्दिर हैं। सब फाटक रात में बन्द कर दिये जाते हैं। वह पहाड़ी जैन मन्दिरों का एक नगर है, क्योंकि कुछ तालाबों के अतिरिक्त वहाँ मंदिर ही मंदिर हैं। सैकड़ों से ऊपर जैन मन्दिर हैं। इनमें आदिनाथ, कुमारपाल, विमलशाह, संप्रतिराज, और चौमुख मन्दिर प्रधान हैं। इन सब में चौमुख मन्दिर सबों से ऊँचा है। यह एक घेरे के भीतर बना है। इस मन्दिर के पूर्व मण्डप है, जिसके पश्चिम ३१ फ़ीट लम्बा और इतना ही चौड़ा अन्तरालय, यानी एक कमरा है। इसके दोनों बगलों में चबूतरे पर एक एक द्वार बने हुये हैं। अन्तरायल में १२ स्तम्भ लगे हैं। उसकी छत गुम्बजदार है। अन्तरालय से होकर गर्भगृह में जाना होता है। उसमें मूर्ति के सिंहासन के कोने के पास ४ विचित्र खम्भे लगे हैं। गर्भगृह में २ फ़ीट ऊँचा और १२ फ़ीट लम्बा चौड़ा श्वेत संगमरमर का बना सिंहासन है, जिस पर १० फ़ीट ऊँची आदिनाथ की ४ मूर्तियाँ पालथी मार कर बैठी हैं। गर्भगृह के चारों ओर के द्वारों में से प्रति द्वार की ओर एक मूर्ति का मुँह है, इसीलिये चौमुख मन्दिर कहलाता है। इस मन्दिर में प्रायः १२५ मूर्तियाँ हैं।

एक स्थान में इतने मन्दिरों का जमाव हिन्दू लोगों के किसी तीर्थ में नहीं है। यद्यपि काशीआदि में सहस्रों मन्दिर हैं, किन्तु वे दूर-दूर हैं। यहाँ पर सब एक जगह झुण्ड के रूप में हैं। ये बड़े ही शोभायमान लगते हैं। स्थान सर्वथा पवित्र और दर्शनीय हैं।

लिम्बड़ी---

काठियावाड़ के धौला जङ्कशन से ५५ मील उत्तर लिम्बड़ी राज्य की राजधानी लिंबडी नाम का रेलवे स्टेशन और कस्बा है। यह एक छोटी देशी रियासत है। यहां अनेक मन्दिर व दर्शनीय स्थान है। श्रीसत्यनारायणजी का मन्दिर प्रसिद्ध है।

बीस नगर---,

बड़ौदा राज्य के कड़ी सब—डिवीज़न में

महसाना जङ्कशन से १३ मील पूर्वोत्तर बीसनगर का रेलवे स्टेशन है। यह एक अच्छा कस्बा है। इसको ११ वीं सदी में विसलदेव ने बसाया था। बीसनगर में ६ प्रकार के नागर ब्राह्मणों में से एक का प्रधान स्थान है। यहाँ पर स्वामी नारायण सम्प्रदाय के अनुयायी बहुत हैं। यहाँ पर स्वामीनारायण का एक दर्शनीय मन्दिर भी है।

सिद्धपुर—बड़ौदा राज्य के कड़ी सब-डिवीज़न में महसाना जंकशन से १३ मील उत्तर ऊँझा का रेलवे स्टेशन है। ऊँझा से ८ मील दक्षिण-पश्चिम सिद्धपुर का रेलवे स्टेशन है। सरस्वती नदी के किनारे सिद्धपुर एक पुराना कस्बा और प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ पर कपिलदेवजी का जन्म हुआ था। रेलवे स्टेशन के पास ही बड़ौदा महाराज की एक धर्मशाला है। स्टेशन से प्रायः आध मील पर सिद्धपुर कस्बा है। कस्बे के पास ही सरस्वती नदी बहती है। यह नदी आबू पहाड़ी से निकल कर प्रायः १०० मील बड़ौदा, काठियावाड़ में बह कर कच्छ के रन में गिरती है। सिद्धपुर के पास नदी का पक्का घाट बना है। सिद्धपुर के पास सरस्वती के किनारों पर और उसके जल में सैकड़ों डोंड़ सर्प रहते हैं। वे न किसी से डरते हैं और न किसी को काटते ही हैं। स्नान के समय यात्रियों के देह में भी लग जाया करते हैं।

कस्बे में रणछोरजी आदि के बहुत मन्दिर हैं। यहाँ पर सदावर्त और धर्मशालायें भी कई हैं। वहाँ पर सरस्वती नदी, रुद्रमहालय, गोविन्दराव, तथा माधवराव का मन्दिर और बिंदुसर ये ४ प्रधान-स्थान हैं। यहाँ पर पश्चिमी भारत के सुप्रसिद्ध प्राचीन मन्दिरों में से एक रुद्रेश्वर महादेव का मन्दिर था, जिसे सन् १३०० ई० में अल्लाउद्दीन ने तोड़ दिया। वहाँ के लोग कहते हैं कि उस समय सिरोही के राजा शिवलिङ्ग को अपने राज्य में ले गये, वहाँ उनका नाम शरणेश्वर पड़ गया। रुद्रमहालय में अब केवल उस मन्दिर का टूटा हुआ फाटक है। फाटक से बाहर उस समय का एक छोटा कुण्ड और कोठरी के समान दो छोटे खाली मन्दिर हैं। कस्बे के बाहर बिन्दुसर के मार्ग में एक मन्दिर में गोविन्दराव और दूसरे में माधवराव की सुन्दर मूर्त्तियाँ हैं।

सिद्धपुर कस्बे से १ मील दूर बिंदुसर है। वहाँ पहुँचने से पहिले ही एक स्थान पर एक ही पंक्ति में शिखरदार ३ मन्दिर मिलते हैं। इनमें से एक में शेषशायी भगवान्, दूसरे में लक्ष्मीनारायण और तीसरे में राम-लक्ष्मण और सीता हैं। दूसरे स्थान में वल्लभकुल वालों के मन्दिर के निकट एक कोठरी में कर्दम ऋषि और देवहूती की छोटी मूर्त्ति हैं। तीसरे स्थान में बिंदुसर के समीप ज्ञानवापी नामक छोटी बावली और छोटे मन्दिर में सिद्धेश्वर महादेव हैं। लगभग ४० फ़ीट लम्बा और इतना ही चौड़ा बिंदुसर नामक तालाब है। उसमें चारों बगल पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं और दक्षिण किनारे के पास ३ छोटे मन्दिर हैं, जिनमें से एक में महर्षि कर्दम और देवहूती, दूसरे में कपिलमुनि और तीसरे में गया गदाधर हैं। बिना माता के बहुत यात्री बिन्दुसर में पिण्डदान करते हैं। बिन्दुसर के पास ही अल्पा सरोवर नामक बहुत बड़ा तालाब है, इसके चारों ओर पक्के घाट बने हुए हैं।

इस तीर्थ का महात्म्य वामनपुराण, श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण आदि अनेक ग्रन्थों में वर्णित है। पश्चिम देश का यह बहुत ही प्रसिद्ध और पवित्र स्थान है, जो दर्शनीय है।

पालनपुर—सिद्धपुर से १६ मील उत्तर पालनपुर का स्टेशन है। यह एक देशी राज्य की राजधानी है। यहाँ पर पहाड़ियाँ बहुत हैं। यह राज्य नवाबी राज है। राज्य में दो प्रधान नदी हैं एक बनास और दूसरी सरस्वती। यहाँ पर बुखार की बीमारी अधिकतर होती है। यहाँ कई मन्दिर भी हैं। रियासत में खेती और फ़सल अच्छी होती है। सरस्वती किनारे कई छोटे-छोटे दर्शनीय स्थान हैं।

भारत के कुछ अन्य तीर्थ

बटेश्वर तीर्थ—आगरा कमिश्नरी की सीमा पर, ई० आई० आर० के जङ्कशन शिकोहाबाद से १६ मील की दूरी पर बटेश्वर नामक तीर्थ है। इसके पास ही में धौलपुर रियासत लगी है।

कृष्णावतार से भी पहले भगवान् कृष्ण के पितामह (बाबा) राजा शूरसैन की प्रधान गद्दी और ब्रजमण्डल की राजधानी इसी स्थान में थी। पश्चात् उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपने बाहुबल से समस्त राजाओं को पराजित कर ब्रजमण्डल की प्रधान नगरी मथुरापुरी (सप्तपुरियों में से एक) को राजधानी बनाया। ब्रजभाषा से पूर्व बोली जाने वाली शौरसेनी भाषा का जन्म इसी प्रान्त में हुआ था।

प्राचीन काल में बटेश्वर यमुना नदी के बाँये किनारे पर बसा हुआ था। तथा यमुनाजी का प्रवाह पश्चिम से पूर्व को था, जैसा कि प्रायः सभी स्थानों में देखा जाता है।

राजा शूरसेन की नगरी का नाम शूरीपुर था। जो वर्त्तमान बटेश्वर से १ मील की दूरी पर है। यहाँ एक स्थान कंस कगार भी है। कहा जाता है कि राजा कंस ने इस स्थान पर महात्माओं को बहुत कष्ट दिया था।

बटेश्वर तीर्थ में आश्चर्य जनक बात यह है, कि यमुनाजी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। इसका संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है—आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व महाराज बदनसिंहजी भदावर के राजा थे। बटेश्वर में भी इनका दुर्ग तथा अनेकों प्रासाद थे। महाराज भगवान् शंकर के अनन्य भक्त थे। तत्कालीन काशी नरेश इनके परम मित्र थे। दोनों में मित्रता के कारण यह शर्त होगई थी कि—हमारे-तुम्हारे जो पुत्र-पुत्री उत्पन्न होंगे, उनका परस्पर सम्बन्ध किया जायगा। दैवयोग से दोनों राज घरानों में कन्यायें ही पैदा हुईं। महाराज बदनसिंह को विश्वास था, मेरे अवश्य ही पुत्र होगा। कन्या की उत्पत्ति सुन कर वे कुछ दुखित हुए और उन्होंने अपने समस्त राज्य में घोषणा करादी कि महाराज के पुत्रोत्पन्न हुआ। कन्या को पुरुष वेष में ही रक्खा गया। विवाह का समय आया। दोनों नरेशों ने परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया। विवाह के पश्चात् जब वर वधू घर आये तो काशी नरेश की कन्या को अपने पति के भेद का पता चला और वह दुखी होकर अपने पति (बदनसिंह की कन्या) से बोली कि इस भेद का पता यदि हमारे तुम्हारे मा-बापों को लग जायगा तो वे परस्पर में लड़ मरेंगे। इससे अच्छा है कि हम-तुम दोनों यमुना में डूब जाँय। दोनों ने ऐसा ही किया। महाराज बदनसिंह को उसी समय आकाश-वाणी हुई कि तुम्हारी कन्या यमुना में कूद पड़ी है और अब वह पुत्री न होकर पुत्र होगया है। राजा ने तत्काल उसको निकलवाया, देखा तो वह राज-कुमारी से राजकुमार होगया था। महाराज ने समझा कि यह कृपा भगवान् शिव की है। अतः उन्होंने उसी स्थान पर जहाँ कुमारी से कुमार हुआ था, अर्थात् यमुना के बीच में शिवजी का एक विशाल मन्दिर बनवाना चाहा। मन्त्रियों ने सलाह दी कि महाराज यहाँ पर यमुना का वेग जोरदार है। अतः यमुना की धारा यहाँ से हटा कर तब मन्दिर बनवाया जाय। राजा ने ऐसा ही किया। तभी से यमुना यहाँ पर टेढ़ी बहती है। इसी कारण बटेश्वर यमुनाजी के दाँये किनारे पर है। बटेश्वर महादेव का मन्दिर दर्शनीय है। ये महादेवजी एक बर के नीचे स्थित होने के कारण बटेश्वर कहलाते हैं। महाराज बदनसिंह तथा उनके पुत्र पौत्रादि के बनाये हुए बहुत से मन्दिर विद्यमान हैं। शूरीपुर

श्रीवैद्यनाथ-धाम
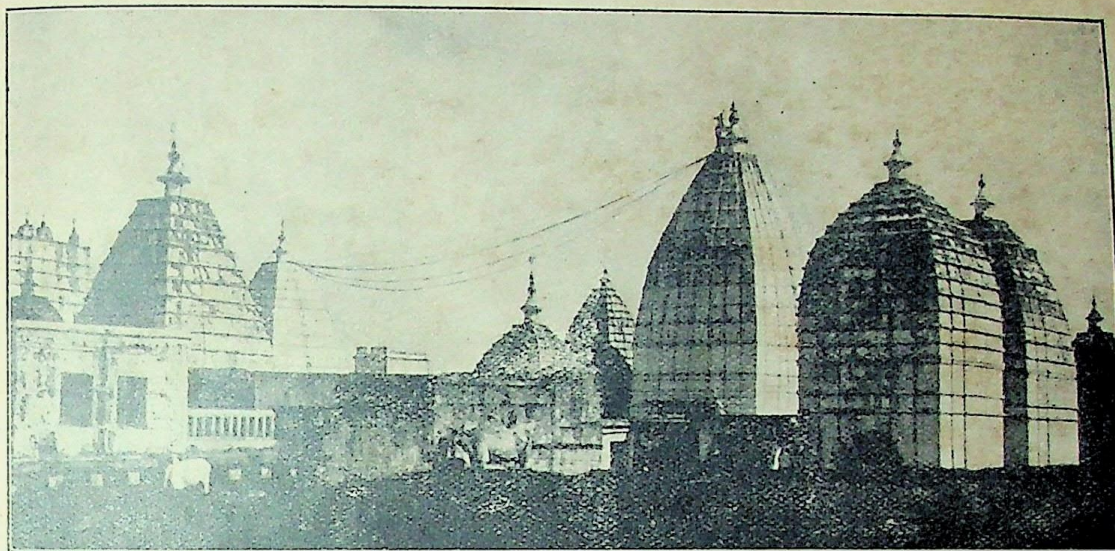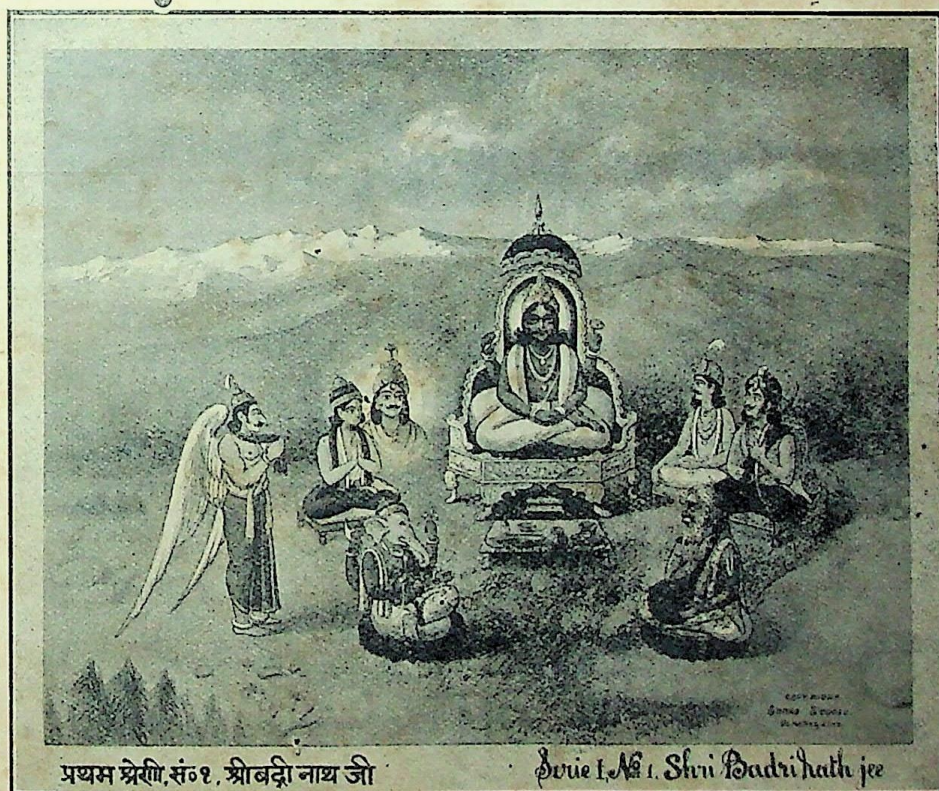
श्रीबदरीनाथजी

श्रीकेदारनाथजी
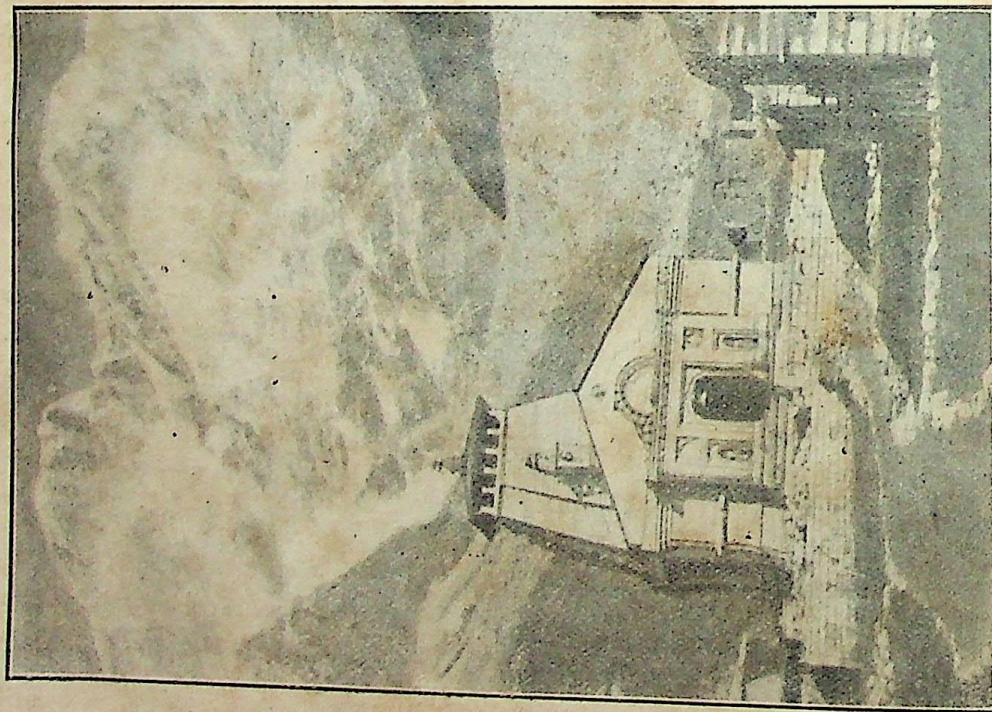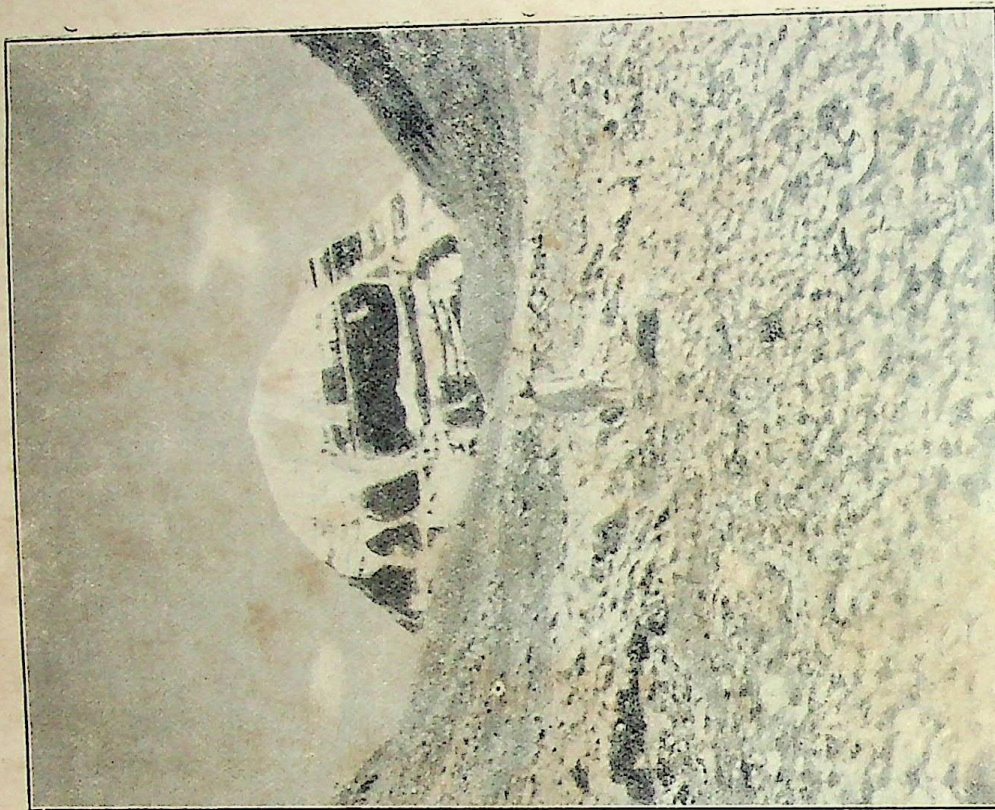
कैलाश (डेरफू-गुफ़ासे)

के प्राचीन दुर्ग और अनेक प्रासाद अब भी ऊपरी प्राचीन स्मृति को जागृत करते हुए खण्डहर के रूप में वर्त्तमान हैं। यहाँ पर एक जैनियों के तीर्थङ्कर का भी प्रादुर्भाव हुआ है—इस कारण जैनियों का भी यह तीर्थ है—इसके अतिरिक्त आदि शक्ति (बड़ी देवी) का विशाल मन्दिर है और भी अनेकों मन्दिर हैं। यहाँ का कार्तिकी का मेला भारत प्रसिद्ध है। यह स्थान रमणीक है। यमुना किनारे के देवमन्दिर चित्ताकर्षक हैं।

मुचुकुन्द तीर्थ—आगरा शहर और ग्वालियर राज्य के बीच जी० आई० पी० रेलवे लाइन पर धौलपुर जङ्कशन है। धौलपुर एक अच्छी रियासत है। धौलपुर स्टेशन के पास एक धर्मशाला है, यात्रियों के ठहरने की यहाँ अच्छी सुविधा है। जङ्कशन से तीन मील की दूरी पर 'मुचुकुन्द तीर्थ' है। स्टेशन से तीर्थ तक वर्त्तमान महाराज धौलपुर ने पक्की सड़क बनवादी है।

यहाँ भाद्र मास में ऋषिपञ्चमी और देवषष्ठी का एक बहुत बड़ा मेला होता है, जिसमें लाखों यात्री एकत्रित होते हैं। मेले का समुचित प्रबन्ध धौलपुर राज्य की ओर से होता है। मेले की व्यवस्था सावधानी से की जाती है—इस कारण यात्रियों को कुछ भी कष्ट नहीं होता। धौलपुर निवासियों के बालकों के मुण्डन-संस्कार भी इसी तीर्थ पर होते हैं। तीर्थ स्थान ऊँचा होने के कारण यहाँ की प्राकृतिक शोभा बड़ी सुहावनी और मनोरम है। यहाँ एक सुन्दर सरोवर है इसके चारों ओर पक्के घाट बने हैं। सरोवर के चारों ओर अनेकों मन्दिर हैं। छोटे-छोटे पर्वों पर भी यहाँ मेले होते रहते हैं। वर्षा ऋतु में यहाँ का प्रकृति-सौन्दर्य विशेष बढ़ जाता है। पर्वत पर अनेकों प्रकार के हरे-भरे लता वृक्ष दीख पड़ते हैं। मुचुकुन्दतीर्थ का इतिहास श्रीमद्भागवत स्क० १० अ० ५१ में इस प्रकार वर्णित है—इक्ष्वाकुवंश में मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द बड़े प्रतापी राजा थे। इन्होंने देवताओं की प्रार्थना पर उनको युद्ध में सहायता दी थी, बहुत वर्षों तक दैत्यों के साथ युद्ध किया—अन्त में विजय प्राप्त की। देवताओं ने प्रसन्न होकर राजा मुचुकुन्द को उनकी इच्छानुसार यह वरदान दिया कि जो कोई उनको सोते से जगावेगा—वह तुरन्त भस्म हो जायगा। इस वर को प्राप्त कर राजा मुचुकुन्द पर्वत की गुफा में जाकर सोगये। मगध सम्राट् जरासन्ध का मित्र कालयवन भगवान् कृष्ण के पीछे-पीछे भागता हुआ उस गुफा में घुस गया और सोते हुए मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण समझकर लात मारी। मुचुकुन्दजी जगे और काल यवन तत्काल भस्म होगया। पश्चात् भगवान् ने मुचुकुन्द को दर्शन दिये और सनाथ किया। राजा मुचुकुन्द ने उसी स्थान पर एक यज्ञ किया—जिससे यह मुचुकुन्द तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

मुचुकुन्द की गुफा अभी तक वर्त्तमान है। इस पर्वत को गन्धमादन कहा जाता है। स्थान देखने योग्य है।

कालिंजर—तमोलिया के स्टेशन से ८ मील पश्चिमोत्तर (मानिकपुर जङ्कशन से ३७ मील) वदौसा का रेलवे स्टेशन है। वदौसा वगई नदी के किनारे पर पश्चिमोत्तर बुंदेलखण्ड के जिला बांदा में तहसील का सदर स्थान है। तमोलिया स्टेशन चित्रकूट स्टेशन से आगे का है। वदौसा से १८ मील और बांदा से ३३ मील दक्षिण वदौसा तहसीली में समुद्र से १२३० फ़ीट ऊपर कालिंजर का क़स्बा और प्रसिद्ध पहाड़ी किला है। कालिंजर क़स्बा जो उस देश में तरहटी कहलाता है, पहाड़ी के पादमूल के निकट है। अधिकांश ब्राह्मणों की बस्ती है, भारतवर्ष के दूर-दूर से यात्री यहाँ आते हैं। पहाड़ी के पादमूल के निकट पूर्वोत्तर चट्टान में काटकर के बना हुआ और पत्थर की सीढ़ियों से घेरा हुआ सुरसरि गङ्गा नामक तालाब है। क़स्बा पहले एक दीवार से घिरा हुआ था—अब तक उसके तीन फाटक खड़े हैं, जिनके नाम कामरा फाटक, रीवां फाटक और पन्ना फाटक हैं।

किले में देवस्थान और देव मूर्त्तियाँ—यहाँ का किला बुंदेलखण्ड के बहुत पुराने किलों में से एक है। इसकी नींव २५ फ़ीट मोटी है। सुरसरि गङ्गा तालाब के पूर्वोत्तर पहाड़ी के आधे रास्ते में ढाल पर बनखण्डेश्वर महादेव का स्थान है। पहाड़ी काटकर चक्करदार मार्ग ऊपर को बना है। उत्तर से ७ फाटकों से होकर किले में जाना होता है। (१) आलम दरवाज़ा, (२) गणेश दरवाज़ा, (३) चण्डी दरवाज़ा, (४) बलभद्र दरवाज़ा, आगे के चट्टान में काटा हुआ ४५ गज लम्बा और १० गज चौड़ा भैरवकुण्ड है, जिसके ३० फ़ीट ऊपर भैरव की बड़ी प्रतिमा चट्टान में बनाई गई गई है। इसके नीचे चट्टान काटकर बनी हुई एक गुफ़ा है। गुफ़ा के बाहर एक शिला लेख है जिसमें वारिवर्मदेव, सुरहारदेव का पुत्र, श्रीरामदेव, महिला और जहुल का भाई और लाखन का पुत्र जस धवल के नाम हैं। अन्त वाले का समय सम्वत् ११६३ है। आगे (५ वां) हनुमान फाटक है, जिसके निकट हनुमान कुंड है—इसके अतिरिक्त किले के इस भाग में बहुतरी बनावट और लेख हैं। लेखों में से चन्देल राजपूत कीर्त्ति वर्मा, मदन-वर्मा का नाम पढ़ा जता है। (६ वाँ) लाल दरवाज़ा और (७ वाँ) फाटक सदर दरवाज़ा है।

कोट के भीतर पत्थर काटकर बनी हुई कोठरी में पत्थर का सीता सेज है। दरवाज़े के ऊपर चौथी सदी के अक्षर का शिला लेख है। जिसमें लिखा है कि इस गुफ़ा के पहाड़ के मालिक हारा ने अपने नाम के स्मरणार्थ इसे बनवाया। इसके पश्चात् पाताल गङ्गा का मार्ग है। इसकी उतराई कठिन है। पाताल गङ्गा ४० फ़ीट लम्बी और इससे आधी चौड़ी गुफ़ा है। इसके आगे पाण्डुकुंड है, इसके आगे एक मार्ग बुद्धि तालाब को गया है। इसके बाद भगवान् सेज और पानी की अमन है। मृगधारा एक प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ दो चट्टानी कोठरी एक पानी का कुंड और चट्टानों में सात हरिन बने हैं। पुराणों में कहीं ऐसा मिलता है कि सप्त ऋषि अपने गुरु के शाप से जन्मान्तर में कालिंजर में हरिन हुए। यात्रीगण इन हरिणों का पूजन करते हैं। कोटि तीर्थ से मृग-धारा में जल आता है। कोटि तीर्थ किले के मध्य में एक बड़ा तालाब है। किनारे पर बहुत से पत्थर के महल हैं—जिनमें बहुत से लेख हैं।

उतरते हुए एक दूसरे फाटक पर दीवार में लगी हुई जैन तीर्थङ्करों की सुन्दर प्रतिमायें हैं। इसके आगे नीलकण्ठ तक पहुँचने में जटाशंकर, क्षीरसागर, तुंगभैरव और कई एक गुफ़ा मन्दिर मिलते हैं। यहाँ पर बहुत से शिला लेख हैं। एक गुफ़ा के लेख में लिखा है कि "चैत्र सुदी नौमी सोमवार संवत् ११६२ रलहन के पुत्र नरसिंह ने वामदेव की प्रतिमा स्थापित की। दूसरे लेख में 'ज्येष्ठ सुदी नौमी संवत् ११६२ और उसके दादा दीक्षित पृथ्वीधर का नाम है। तीसरे लेख में—'श्रीकीर्त्तिवर्मादेव और सोमेश्वर (पृथ्वीराज का पिता) देव दर्शन के लिये आये। तुंग भैरव के पास लिखा है कि कार्तिक सुदी ६ शनिवार संवत् ११८८ में महाश्राणिक का पुत्र सोधन का पोता और मदन वर्मा का नौकर वचराज ने लक्ष्मी की मूर्त्ति स्थापित की। इस स्थान के चारों ओर वैष्णव और शैव दोनों की बहुत-सी प्रतिमायें हैं। नीलकण्ठ का मन्दिर एक समय सात मञ्जिल का था। परन्तु अब केवल खम्भों पर एक मंजिला है। जिसमें नीलकण्ठ बड़ा शिवलिङ्ग है। दरवाज़े के पास लेखों से छिपे हुए दो बड़े पत्थर हैं।

मन्दिर से ऊपर चट्टान में काटा हुआ एक छोटा तालाब है। इसके बाद लगभग ३० फ़ीट ऊँची काल भैरव की प्रतिमा मिलती है।

देशी कहावत के अनुसार प्रसिद्ध है कि चंदेल वंश के क़ायम करने वाले चन्द्रवर्मा ने तीसरी या छठवीं सदी में कालिंजर के क़िले को बनवाया था। इसके पूर्व कुछ स्वाभाविक किलाबन्दी थी। क़िले बनने से पहले हिन्दू मन्दिरों से अवश्य पहाड़ी छिपी थी। क्योंकि पवित्र स्थानों पर लेखों की

तारीखें क़िले के फाटक के लेखों से पहिले की हैं।

महाभारत (वन पर्व ८५ वां अध्याय) में लिखा है कि मेधाविक तीर्थ के पास कालिंजर नामक पर्वत है। जहाँ देव ह्रदतीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है। इसी प्रकार लिङ्गपुराण, शिवपुराण और कूर्म आदि पुराणों में इसका माहात्म्य वर्णित है।

पन्ना–कालिंजर से दक्षिण बांदा से ६२ मील पन्ना राज्य बुंदेलखण्ड की एक रियासत है। पन्ना समुद्र से ११४७ फ़ीट की ऊँचाई पर सुन्दर कस्बा है। जिसमें एक नया महल और एक नवीन बना हुआ बलदेवजी का मन्दिर अत्यन्त दर्शनीय एवं विशाल है। इसके अतिरिक्त और भी वहाँ बहुत से मंदिर हैं। पन्ना राज्य हीरों की खान के लिये प्रसिद्ध है। पहले के समान अब हीरे नहीं निकलते, तोभी प्रतिवर्ष १००००० रुपये का हीरा निकाला जाता है। इस के सम्बन्ध में ऐसा प्रसिद्ध है कि पन्ना महाराज को किसी महात्मा ने उनकी रियासत में हीरा-पन्ना निकालने का वरदान दिया था। इसी कारण रियासत का नाम पन्ना पड़ गया है।

बाँदा---बदौसा स्टेशन से २५ मील (मानिकपुर जङ्क्शन से ६२ मील पश्चिमोत्तर) बांदा का रेलवे स्टेशन है, बांदा पश्चिमोत्तर देश के इलाहाबाद विभाग में ज़िले का सदर स्थान केन नदी के दाहिने एक मील पूर्व एक कस्बा है।

बांदा में १६१ देव मन्दिर हैं। जिनमें बहुत से दर्शनीय है। बांदा में एक छोटी-सी पहाड़ी में पाण्डवेश्वर महादेव में हैं। एक छोटा-सा मन्दिर और गुफा भी बनी है। कहा जाता है कि पाण्डवों ने बनवास के समय यहाँ निवास किया था। शहर से एक मील फतहपुर रोड पर छावनी है। नदी के बायें किनारे पर रेलवे पुल के पास भूरागढ़ नामक पुराना क़िला उजड़ा पड़ा है। जिसको सन् १७८४ में गुमानसिंह ने बनवाया था।

महोबा–बांदा से २०मील पश्चिम कबराई का स्टेशन है, जहाँ चन्देल राजा ब्रह्माहम का बनाया हुआ ब्रह्मताल नाम का एक तालाब है। इसके किनारे बहुत से पुराने मन्दिर और मकानों की निशानियाँ दीख पड़ती हैं।

महोबा—कबराई से १३ मील बांदा से २३ मील (मानिकपुर से ६५ मील) पश्चिम महोबा का स्टेशन है। यह हमीरपुर ज़िले का तहसीली पुराना कस्बा है। चन्देल राजपूत राजा चन्द्रवर्मा ने ८ वीं सदी में इसको बनवाया था, और यहीं पर एक महोत्सव यज्ञ किया था—इसी कारण इसका नाम महोबा पड़ा है। चन्देल राजाओं की बनवाई हुई मदनसागर नामक झील के किनारे पर यह बसा है। इसके तीन हिस्से हैं, एक मध्य पहाड़ी के उत्तर पुराना क़िला, दूसरा पहाड़ी के शिर पर भीतरी का क़िला और तीसरा दक्षिण ओर दरीबा।

चन्देलों के समय की कारीगरी को दिखलाती हुई आस-पास में बहुत पुरानी इमारतें हैं। चन्द्रवर्मा जिस स्थान पर मरा, वहाँ राम कुण्ड है। क़िले उजाड़ पड़े हैं। मदनवर्म्मा का बनवाया हुआ मम्बादेवी का मन्दिर है, जिसके दरवाज़े के आगे पत्थर के स्तम्भ पर मदनवर्म्मा का लेख है। बनवाई हुई झीलों में से दो भरा हैं परन्तु ११ वीं सदी के बने हुए कीर्ति-सागर और मदनसागर अभी तक गहरे और स्वच्छ पानी वाले हैं। किनारों पर और टापुओं में बहुत से उजड़े-पुजड़े मन्दिर, चट्टान काट कर बनी हुई बड़ी-बड़ी प्रतिमायें और बहुत से पुराने मन्दिरों की निशानियाँ देख पड़ी हैं। पहाड़ियों पर पूर्व समय के राजपूतों के गर्मी के दिनों में रहने के मकान और देव स्थान। हैं मुसलमानी अमलदारी का बना हुआ जालानखाँ का मक़बरा और मसजिद है।

चन्देरी–ललितपुर से १८ मील पश्चिम मध्यभारत के गवालियर राज्य में ज़िले का सदर स्थान चन्देरी कस्बा है। पूर्व समय में इसका नाम चेदी और

चदेलो था। यहाँ का सेला और पगड़ी उत्तम होती हैं। इस समय यह प्रसिद्ध नहीं है, परन्तु एक समय बहुत प्रसिद्ध और किलाबन्दी किया हुआ सुन्दर शहर था। आईन अकबरी में लिखा है कि चंदेरी में १४००० पत्थर के मकान ३८४ बाजार ३६० कारखाने सराय, और १२००० मसजिद हैं। इनके अतिरिक्त अनेकों देव मन्दिर भी थे। एक ऊँची पहाड़ी पर किला है, जिसने एक समय ८ महीने तक महासरे का बर्दाश्त किया था। तबाहियों से जान पड़ता है कि पुराने शहर की इमारतों में से कई एक उत्तम और बड़े विस्तार की थीं।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि चन्देली के राजा दमघोष का पुत्र शिशुपाल था—जो रुक्मिणी से विवाह करने के लिये कुण्डिनपुर गया और वहाँ से भगवान् कृष्णचन्द्र से पराजित होकर घर लौट गया। महाभारत (द्रोणपर्व अ० २२) में लिखा है कि चेदि (चन्देली) का राजा शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु कुरुक्षेत्र के संग्राम में पाण्डवों की ओर से लड़ा था । धृष्टकेतु को द्रोणाचार्य ने मारा था।

इस कथानक से ज्ञात होता है कि महाभारत काल में यहाँ का राजा शिशुपाल था। उस समय में भी शिशुपाल का क़िला प्रसिद्ध था—जो ध्वंशावेशमात्र है।

सागर—ललितपुर से १० मील दक्षिण जाखलोन का स्टेशन है और ३६ मील दक्षिण बीना जङ्कशन है। जाखलोन स्टेशन से २ मील दक्षिण जुहाजपुर में देवमन्दिरों के झुण्ड के झुण्ड हैं—जिनमें बहुत से मन्दिर जैनियों के भी हैं।

बीना जङ्कशन से ४६मील पूर्व जी॰ आइ॰ पी॰ पर सागर का स्टेशन है। सागर मध्यभारत के जबलपुर विभाग में जिले का सदर स्थान समुद्र के जल से १६४० फ़ीट ऊपर सागर नामक उत्तम झील के किनारे एक छोटा शहर है।

सागर झील एक मील चौड़ी है। जिसके किनारों पर स्नान के बड़े-बड़े घाट बने हैं। घाटों के ऊपर बहुत से दर्शनीय देवमन्दिर हैं।

दमोह—सागर से जबलपुर जाने वाली सड़क पर सागर से लगभग ५० मील पूर्व जिले का सदर स्थान दमोह कस्बा है। दमोह जिले के कुण्डलपुर और बांडकपुर मेले में होते हैं।

कुण्डलपुर—यहाँ जैनियों के देवता नेमीनाथ का मन्दिर है। होली के पश्चात् यहाँ मेला होता है। बहुत लोग दर्शन को आते हैं।

बांडकपुर—सन् १७८१ में दमोह के महाराष्ट्र पण्डित नागोजी वल्लाल के पिता ने स्वप्न देखने के उपरान्त यहाँ यागेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया यहाँ वसंतपञ्चमी और शिवरात्रि का बड़ा मेला होता है। यात्रीगण स्नान के पश्चात् नर्मदा का पवित्र जल महादेवजी पर चढ़ाते हैं।

भेलसा—वसोदा से २५ मील (झांसी से १४८ मील) दक्षिण भेलसा का स्टेशन है। भेलसा गवालियर राज्य में बेतवा नदी के दाहिने एक चट्टान पर बसा हुआ है। भेलसा—हिन्दू-मन्दिरों की यात्रा और बौद्ध स्तूपों के लिये प्रसिद्ध है। देवताओं के मन्दिर बेतवा नदी के मैदान में हैं। अधिक फैले हुये और कदाचित् हिन्दुस्तान में सब से उत्तम बौद्ध स्तूपों के झुण्ड भेलसा के पड़ौस और सांची में है।

सांची—भिलसा के स्टेशन से ५ मील सांची का स्टेशन है। सांची में ११ बौद्ध स्तूपों का एक झुण्ड है, जिनमें बड़ा स्तूप प्रधान है। सांची के स्तूपों के अतिरिक्त इससे ५ मील दूर सोनारी के पास ८ स्तूपों का झुण्ड है। साधरा के पास १०१ फ़ीट व्यास का एक स्तूप है। एक स्तूप के भीतर से दो डिब्बों में सारिपुत्र और महा मोगलान की हड्डियाँ निकली हैं। ये दोनों बुद्ध के शिष्य थे। साँची से ७ मील भोजपुर के पास ३७ स्तूप हैं, सब से बड़े स्तूप का व्यास ६६ फ़ीट हैं।

सन् १८८३ में हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट की

आज्ञा से स्तूपों के प्रधान झुण्डों पर अधिक ध्यान दिया गया है। ये सभी स्थान दर्शनीय हैं।

सोनागिरि—झाँसी से १५ मील उत्तर दतिया का स्टेशन है। दतिया बुंदेलखण्ड में देशी राज्य की राजधानी है। यहाँ का राजमहल अच्छा है। दतिया से ४ मील दूर जैन मन्दिरों का एक झुण्ड है। दतिया से ७ मील उत्तर (झाँसी से २२ मील) सोनागिरि स्टेशन है, जिसके पास पहाड़ी पर जैन सन्तों की बहुत-सी समाधियाँ हैं। जैनियों के लिये यह स्थान दर्शनीय है।

गवालियर—दतिया से ४५ मील (झाँसी से ६० मील उत्तर) गवालियर स्टेशन है। गवालियर मध्य भारत में सब से बड़ा देशी राज्य की राजधानी एक सुन्दर शहर है। नये शहर को लश्कर और पुराने को गवालियर कहा जाता है। गवालियर की सभी नागरिक व्यवस्थायें सुविधाजनक हैं। एक अच्छे बड़े शहर में जो बात होनी चाहिये-गवालियर में वे सभी हैं।

क़िला—गवालियर का क़िला हिन्दुस्तान के अधिक पुराने, प्रसिद्ध और दुर्गम क़िलों में से एक है, यह देखने योग्य चीज़ है। क़िले की लम्बाई १॥ मील और चौड़ाई ६०० फ़ीट से २८०० फ़ीट तक है। क़िले का प्रधान दरवाज़ा उत्तर पूर्व है। क़िले में ६ फाटक हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—(१) आलमगीर फाटक, (२) बादलगढ़ या हिंदौला फाटक, (३) भैरव फाटक, इस स्थान पर एक लेख है (४) गणेश फाटक, यहाँ एक सरोवर है और ग्वालिया साधु का (जिसके नाम पर शहर का नाम पड़ा है) केवल चार पायों पर गुम्बजदार छोटा मन्दिर है (५) लक्ष्मण फाटक, यहाँ विष्णु भगवान् का मन्दिर है, जो चतुर्भुज का मन्दिर कहलाता है, बांये को एक लम्बे शिला लेख में सम्वत् ६३३ का एक शिला लेख है। फाटकों के बीच में शिव पार्वती और क़रीब ५० शिवलिङ्ग चट्टान काट कर बनाये गये हैं। शूकर भगवान् की घिसी हुई २५॥। फ़ीट ऊँची बहुत पुरानी एक मूर्त्ति है। (६) हथियापंवर, यहाँ एक पत्थर का हाथी था। इसी के नाम पर यह नाम पड़ा। क़िले के तालाबों, कुओं और हौज़ों में कभी भी पानी नहीं चुकता। क़िले में एक सूर्य-कुण्ड है जो सन ३०० से पहले का बना है।

क़िले के मन्दिर—ग्वालिया मन्दिर, चतुर्भुज मंदिर, जयन्ती घोड़ा, तेली का मन्दिर, (इसको एक धनवान तेली ने बनवाया था, यह पहिले वैष्णवों का मंदिर था, किन्तु अब शैवों का होगया है।) सूर्यदेव मन्दिर, मालदेव मंदिर, धौंदादेव मंदिर और महादेव का मंदिर। क़िले में जैन मंदिर भी बहुत हैं। जैन मूर्त्तियाँ और गुफ़ायें-गिनती में अधिक हैं। और इनके समान बड़ी जैन मूर्त्तियाँ उत्तर भारत के दूसरे किसी स्थान में नहीं हैं। वे क़िले की दीवारों के कुछ ही नीचे खड़ी पहाड़ी में चट्टान काट कर बनी हैं। यह स्थान सब के देखने योग्य है।

गवालियर का इतिहास इस प्रकार बतलाया जाता है कि सूर्यसेन नामक एक कच्छ का प्रधान कोढ़ी था। वह शिकार खेलता हुआ गोपगिरि पहाड़ी के पास, जिस पर अब क़िला है, आ निकला और ग्वालिया साधु से पानी लेकर पिया; जिससे वह आरोग्य होगया। उसकी कृतज्ञता में उसने उस पहाड़ी पर एक क़िला बनाया, जिसका नाम ग्वालियर रक्खा। सूर्यकुण्ड और सूर्य मंदिर भी उसीने बनवाया था।

शहर में यात्रियों के ठहरने के लिये स्टेशन से आगे महाराज की एक पक्की सराय है। एक सराय शहर के बीच में भी है।

करौली—भरतपुर से लगभग ५० मील दक्षिण राजपूताने के पूर्व भाग में देशी राज्य की राजधानी करौली एक कस्बा है। करौली को रेल नहीं गई है। हिन्डौन स्टेशन से मोटर ताँगे की सड़क है। लगभग १३४८ ई० में अर्जुनदेव ने करौली को बसाया था। जिसने कल्यानजी का मंदिर बनवाया। कस्बे के चारों ओर २॥ मील लम्बी पत्थर की दीवार है। यात्रियों के ठहरने के लिये एक सराय भी बनी है। कस्बे में बहुत से

सुन्दर मन्दिर भी हैं, जिनमें मदनमोहनजी का मंदिर सबसे प्रसिद्ध है। सबसे सुन्दर मन्दिर शिरोमणिजी का लाल पत्थर से बना हुआ है।

करौली में कैलादेवी प्रसिद्ध हैं। चैत्र के नवरात्र में कैलादेवी का बहुत बड़ा मेला होता है। इसमें पशुओं की बिक्री होती है। करौली के बाग़ों में शिकारगंज, शिकार महल और खवास महल के बाग़ प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ के राजमहल भी देखने योग्य हैं।

कहा जाता है कि यहाँ के मदनमोहनजी के मन्दिर की मूर्त्ति वृन्दावन के सबसे पुराने मदन-मोहन मंदिर की है—जो अति प्राचीन है।

एक छोटी पहाड़ी पर संगमरमर का बना हुआ कैला देवी का विशाल मन्दिर है। मन्दिर के पास एक सुन्दर छोटा–सा सरोवर है। यहाँ की प्राकृतिक रमणीयता देखने योग्य है। कैलादेवी का मेला भारत प्रसिद्ध है। मेले क समय कैला शिला पर यात्रियों का अच्छा समागम होता है। करौली–राज्य प्रायः पहाड़ी प्रदेश है। राज्य की उत्तरी सीमा पर प्रधान पहाड़ियाँ हैं। इन पहाड़ियों से उत्तम पत्थर निकलता है, कहा जाता है कि फतेहपुर सीकरी के महल और ताजमहल के हिस्से करौली के पत्थर से बने हैं। एक पहाड़ी से पाँच धाराओं की एक छोटी नदी निकली है, जो पंचनद के नाम से बोली जाती है। पंचनद उत्तर घूमने के पश्चात् बालगङ्गा में मिल जाता है।

अलवर––बांदीकुई जंकशन से ३७ मील उत्तर, राजपूताने की एक अच्छी रियासत की राजधानी अलवर नगर है। यहाँ पर कई एक उत्तम बाग़, ५ जैन मंदिर और कई देव मंदिर हैं। राजमहल की पश्चिम सड़क के पश्चिमी छोर के पास श्रीजगन्नाथजी का सुन्दर मंदिर है। यह नगर पहाड़ी प्रदेश में है। राजमहल के पश्चिम क़रीब १५० गज़ लम्बा और १०० गज़ चौड़ा पत्थर का बना हुआ एक तालाब है। पहाड़ी के बगल से और तालाब के पश्चिम कई देव मंदिर हैं। शहर से १४ मील पर तालवृक्ष कुंड है। भूमि से जल निकल कर ३ कुंडों में गिरने के उपरान्त बाहर निकला करता है। यहाँ स्नान के लिये बहुत यात्री जाते हैं। राज्य की पहाड़ियां और प्राकृतिक देखने योग्य हैं।

जयपुर––बांदीकुई जंकशन से ५६ मील पश्चिम जयपुर का स्टेशन है। यह राजपूताने की प्रसिद्ध रियासत का प्रधान नगर है। यहाँ के चौपड़ के बाज़ारों का नमूना भारत भर में कठिनता से मिलेगा। यहाँ पर नाहरगढ़ का पहाड़ी क़िला देखने योग्य है। महाराज का हवामहल एक प्रसिद्ध इमारत है। श्रीगोविन्ददेवजी, श्रीगोपीनाथजी आदि अनेक प्रसिद्ध मंदिर हैं। यहाँ का रामनिवास बाग़ भारत के सर्वश्रेष्ठ बाग़ों में से एक है। नगर में और बहुत सी इमारतें और मदनमोहनजी, गोकुलनाथजी, श्रीदाऊजी, श्रीराधा-दामोदरजी, श्रीरामचन्द्रजी आदि के मंदिर दर्शनीय हैं।

नगर से प्रायः डेढ़ मील पर पूर्व की ओर प्रायः ४०० फ़ीट ऊपर पहाड़ी पर एक सूर्य का मंदिर है और चबूतरे के नीचे गोमुखी द्वारा पवित्र झरने का जल गिरता है। यह प्रसिद्ध गल्ता तीर्थ है और यहां पर श्रीरामानंद सम्प्रदाय की एक प्रधान गद्दी है। यह स्थान अति मनोहर, पवित्र और देखने योग्य है। नगर से प्रायः ५ मील पूर्वोत्तर पहाड़ी झील के किनारे आम्बेर एक प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ अनेक दर्शनीय इमारतें हैं। जयपुर से ७ मील दक्षिण पूर्व सांगानेर की बस्ती है, जहाँ पर कल्यानजी का एक छोटा--सा मंदिर है। इसके पास ६--७ फ़ीट ऊँचा मार्बुल का स्तम्भ है। यहाँ विष्णु, ब्रह्मा, शिव और गणेशजी की मूर्त्तियाँ हैं। यहाँ पर एक ३ आँगनों का बहुत बड़ा मंदिर और है।

साँभर—जयपुर से ३५ मील पश्चिम फुलेरा जंकशन है। फुलेरा जंकशन से चार--पाँच मील पश्चिमोत्तर सांभर का स्टेशन है। यहाँ नमक की

बहुत विशाल झील है। सांभर के निकट ब्ररहना में दादूपन्थी सम्प्रदाय का एक मुख्य स्थान है। यहीं पर श्रीदादूजी का देहान्त हुआ था।

देवयानी—सांवर से २ मील पर देवयानी नामक एक स्थान है। शुक्राचार्यजी की पुत्री और राजा ययाति की स्त्री देवयानी के नाम पर ही इस स्थान का नाम देवयानी है। यहाँ पर एक सरोवर के पास कई छोटे मन्दिर हैं, जिनमें शुक्राचार्य, देवयानी आदि की मूर्त्तियाँ हैं। इसी स्थान पर शर्मिष्ठा ने देवयानी को कूए में डाला था; राजा ययाति ने उसे निकाल कर विवाह किया था। यहाँ पर वैशाख की पूर्णिमा को बड़ा मेला होता है जिसमें सहस्रों बाहर के यात्री आते हैं। इस स्थान की महिमा अनेक धर्म ग्रन्थों में लिखी है।

जोधपुर—राजपूताने की मारवाड़ देश के देशी राज्य का प्रमुख नगर जोधपुर है। नगर के चारों ओर सुदृढ़ दीवार है। यहाँ पर सात प्रधान जलाशय हैं--(१) नगर के पश्चिमोत्तर भाग में चट्टान काटकर पद्म सागर नामक एक छोटा तालाब बना है। (२) उसी ओर पश्चिम द्वार के कदम्ब के पास किले में रानीसागर तालाब है। (३) पूर्व ओर पत्थर का सुंदरगुलाब सागर है।(४) शहर के दक्षिण बाईजी का तालाब है। (५) पूर्वोत्तर सरदार सागर है। (६) एक मील पश्चिम एक झील है, जो अखेराजी का तालाब कहलाता है। (७) नगर से सात मील उत्तर एक सुन्दर तालाब है, जिसके बाँध पर सुन्दर महल व एक बाग़ है।

जोधपुर में चैत्र मास में एक बड़ा धार्मिक मेला होता है। जोधपुर से क़रीब ३ मील उत्तर मांडोर है, जहाँ पर अनेक छत्तरियाँ बनी हुई हैं। वहाँ से थोड़ी दूर पर सर्व देवालय है, जिसको लोग ३० कोटि देवताओं का मन्दिर कहते हैं। जोधपुर स्टेशन से २० मील दक्षिण लूनी नदी के पास लूनी जङ्कशन हैं। लूनी से ६० मील पश्चिम पञ्चभद्रा के पास नमक का कारखाना है।

निराना—फुलेरा जङ्कशन से ६ मील पश्चिम निराना का स्टेशन है, जिसके समीप निराना बस्ती में बड़ा तालाब और दादूपंथी सम्प्रदाय का स्थान है। यहाँ पर श्रीदादूजी ने अपने मत का प्रचार किया था।

किशनगढ़--फुलेरा जङ्कशन से २५ मील पर किशनगढ़ का स्टेशन है। यह एक देशी राज्य है। क़स्बे में एक छोटी झील है। नगर में श्रीब्रजराजजी, मोहनलालजी मदनमोहनजी, नरसिंहजी, और चिन्तामणिजी के सुन्दर एवं दर्शनीय मंदिर हैं। एक धर्मशाला भी अच्छी है। राज्य का दृश्य मनोरम है।

परशुरामपुरी (सलेमाबाद)—किशनगढ़ से प्रायः ७ मील पर सलेमाबाद नाम की एक बस्ती है। यहाँ पर श्रीनिम्बार्क संप्रदाय की सर्व प्रधान गद्दी है और श्रीराधामाधवजी का बहुत विशाल मन्दिर है। मन्दिर के निकट एक बहुत बड़ा पक्का तालाब है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्रीपरशुरामदेवजी महाराज ने यहाँ पर तपस्या की थी, उन्हीं के नाम पर इस स्थान का नाम परशुरामपुरी पड़ा है। यहाँ पर परम्परा से श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रधानपीठाचार्य रहते आये हैं। श्रीसर्वेश्वर भगवान् का छोटा मन्दिर भी यहाँ देखने योग्य है। बस्ती के निकट पहाड़ियाँ भी हैं।

अजमेर--किशनगढ़ से १८ मील, राजपूताने का प्रधान नगर अजमेर है। यह छोटी लाइन बी० बी० एण्ड सी० आई रेलवे का प्रसिद्ध जङ्कशन स्टेशन है। स्टेशन के पास कई सुन्दर धर्मशालायें हैं। नगर से उत्तर आना-सागर एक झील है। इस झील से सागरमती, जो सरस्वती, से मिलने के पश्चात् लूनी नदी कहलाती है, निकलती है। झील उत्तर में अधिक फैली है। यहाँ पर पहिले सीसे की खान थी। यहाँ की पहाड़ियों में सब से ऊँची पहाड़ी पर तारागढ़ का पुराना क़िला था, अब यहाँ स्वास्थ्य कर स्थान होने से, कितनी ही कोठी आदि बनी हुई हैं। नगर में श्रीनृसिंहजी का मन्दिर, श्रीलक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर

आदि कई दर्शनीय स्थान हैं। ढाई दिन का झोंपड़ा नामक स्थान, नष्ट-भ्रष्ट होने पर भी दर्शनीय है।

पुष्कर—अजमेर नगर से प्रायः ७ मील पर छोटी पहाड़ियों के बीच अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ श्रीपुष्कर राज है। यह सम्पूर्ण तीर्थों का गुरु माना जाता है। यहाँ पर श्रीब्रह्माजी का विशाल मन्दिर है। बस्ती के निकट ही डेढ़ कोस के घेरे में श्रेष्ठ पुष्कर झील है, जिससे सरस्वती नदी निकलती है। पुष्कर के किनारे गौघाट, ब्रह्माघाट, यज्ञघाट, बदरीघाट, कोटितीर्थघाट, परशुरामघाट आदि अनेक पक्के घाट बने हुए हैं। यहाँ पर अनेक मगर हैं। इस पुष्कर से प्रायः २ मील दूर मध्य पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर है। उसी के निकट शुद्धवायी नाम में प्रसिद्ध गयाकुण्ड है। यहाँ से ५ कोस दूर प्राची सरस्वती और नन्दा नामक नदियों का संगम है। पुष्कर में ब्रह्माजी, बदरीनारायणजी, वाराहजी, आत्मेश्वर महादेव और सावित्री के दर्शनीय मन्दिर हैं। इन सब में ब्रह्माजी का मन्दिर अति विशाल है। ज्येष्ठ पुष्कर की परिक्रमा में एक पहाड़ी के नीचे नागकुण्ड, चक्रकुण्ड, गङ्गाकुण्ड नामक छोटे कुण्ड मिलते हैं। और एक ऊँची पहाड़ी पर सावित्री का मन्दिर है। उपरोक्त मन्दिरों के अतिरिक्त पुष्कर के किनारे विशालदेव, अमरराज, मानसिंह, अहिल्याबाई, भरतपुर-नरेश आदि के बनवाये हुये अनेक देव मन्दिर हैं। इस तीर्थ का माहात्म्य गरुड़पुराण, वाराहपुराण, महाभारत, पद्मपुराण, अग्निपुराण, कूर्मपुराण आदि अनेक ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

चित्तौर-नसीराबाद से १०१ मील (अजमेर से ११६ मील) दक्षिण चित्तौर का स्टेशन है। चित्तौर राजपूताने के मेवाड़ प्रदेश के उदयपुर राज्य में पहाड़ी क़िले के नीचे दीवारों से घिरा हुआ एक कस्बा है।

क़िला—क़िला देखने के लिये उदयपुर के महाराज के कर्मचारी से चित्तौर में पास लेना पड़ता है। रेलवे स्टेशन से पूर्व चित्तौर का विख्यात क़िला उजड़ा पड़ा है। कहावत के अनुसार सन् ७२८ में बाप्पा रावल ने किसी से क़िले को छीन लिया, तब से सन् १५६८ तक यह मेवाड़ की राजधानी था।

जिस पहाड़ी पर क़िला बना है, वह आस-पास के देश से औसत ४५० फ़ीट ऊँची और ३॥ मील लम्बी है। जिसका शिर उजड़े-पुजड़े बहुतेरे महल और मन्दिरों से भरा है। पहाड़ी की बग़लों पर सघन जङ्गल है। क़िले के आधे दक्षिण भाग में ५ बड़े तालाब हैं। क़िले के भीतर छोटे-बड़े ३२ सरोवर हैं। चढ़ाव की सड़क क़िले के सिरे तक १ मील लम्बी है। जिसमें जगह-जगह पदलपोल, भैरवपोल, हनुमानपोल गणेशपोल, जोरलापोल, लक्ष्मणपोल, और रामपोल नामक ७ फाट हैं। इनके पास ही चित्तौर के मृतकवीरों के स्मारक बने हैं। दर्शनीय चीज़ों में से कीर्त्तना और जयस्तम्भ नामक २ बुर्ज हैं।

पूर्व शहरपनाह के समीप ७५ फ़ीट ऊँचा, जिसका नीचे का व्यास ३० फ़ीट और सिर के पास १५ फ़ीट है, एक स्तम्भ चौकोना है। इसको लोग पुराना कीर्त्तना कहते हैं। जो कीर्त्ति स्तम्भ का अपभ्रंश है। इसमें सङ्गतराशी का काम और सैकड़ों मूर्तियाँ बनी हैं। कीर्त्तना स्तम्भ सात मञ्ज़िल का है। इसके भीतर तंग सीढ़ियाँ हैं। यह स्तम्भ १० वीं सदी का बना हुआ जान पड़ता है। यहाँ बहुत से जैन लेख हैं। कीर्त्तना के पास एक मन्दिर भी है। कीर्त्तना से दूर श्वेत पत्थर का बना हुआ १२२ फ़ीट ऊँचा जयस्तम्भ है। इसकी प्रत्येक बग़ल की चौड़ाई नीव के पास ३५ फ़ीट और गुम्बज के नीचे १७' फ़ीट है। चित्तौर के प्रसिद्ध राणा कुम्भ ने मालवा के बादशाह महमूद को जीत कर उस विजय के स्मारक रूप में सन् १४४६ से पूर्व इसको बनवाया था। इसके भीतर की सीढ़ियाँ चौड़ी हैं। भीतर नक्काशी में

हिन्दुओं के देवताओं की मूर्त्तियाँ बनी हैं। ऊपर के मञ्जिल में बड़े लेखों की दो तख्ती हैं। सड़क के पास नीचे के चबूतरे के कोने के समीप एक चौगो से स्तम्भ पर सन् १४६८ का सती सम्बन्धी लेख है। सूर्य फाटक के समीप दो बड़े तालाब हैं। जिनके पास राणा कुम्भ का महल है। रतनसिंह का महल तेरहवीं सदी की हिन्दू कारीगरी का उत्तम उदाहरण है। राणा कुम्भ का बनाया हुआ ऊँचा सिरेदार देवी का मंदिर है, उसी के पास उनकी पत्नी मीराबाई का बनाया हुआ श्रीरणछोर जी (कृष्ण) का मंदिर है। चित्तौर में सब से ऊँचा एक स्थान है, जहाँ से सब दृश्य देख पड़ता है। एक स्थान पर गौमुखी झरना है। राणा मुकुलजी का बनाया हुआ पत्थर का नक्काशीदार एक मंदिर और है। मीराबाई के चरित्र से कोई भी भारतीय अपरिचित नहीं है। वह परम भक्ता राणा कुम्भ की धर्म पत्नी थीं। मीरा का जन्म सन् १४१८ में हुआ था।

उदयपुर—चित्तौर के स्टेशन से पश्चिम थोड़ा दक्षिण उदयपुर के स्टेशन तक ६५ मील की रेलवे लाइन है। चित्तौर से एक पहाड़ी सड़क भी उदयपुर को गई है। मेवाड़ के देशी राज्य की राजधानी उदयपुर एक सुन्दर छोटा शहर है। शहर के चारों ओर दीवार है। भीतर दक्षिण ओर कई वाटिका हैं। पश्चिम ओर एक झील है। उत्तर और पूर्व की ओर खाई है। शहर के चार फाटक प्रधान हैं।

शहर में कई देव मन्दिर हैं। जिनमें जगदीश का मंदिर सब से बड़ा और सुन्दर है। हाथीपोल फाटक से प्रधान बाजार होकर महल को जाना चाहिये, दिल्ली दरवाजा अथवा सूर्यपोल फाटक से बाजारों में होते हुए गुलाब बाग को जाना चाहिये, जहाँ तालाब, सड़क और बाग देखने लायक हैं। शहर के पश्चिम २। मील लम्बी और १। मील चौड़ी पिछौला झील है, जिस के मध्य में जग-निवास और जग-मन्दिर नामक दो महल हैं, जिनको १७वीं सदी के मध्य में राणा जगतसिंह ने बनवाया था, यह महल देखने योग्य है।

राज्य में बहुत सी झील और बहुत से सरोवर हैं। इनमें कई एक झील बहुत बड़ी हैं, जिनमें सब से उत्तम ढेवर झील है, जिसको जय समुद्र भी कहते हैं। उसके पश्चात् राजनगर (जिसको राज-समुद्र भी कहते हैं।) एक उदय सागर भी है। ढेवर झील उदयपुर शहर में लगभग २० मील दक्षिण-पूर्व है। यह कदाचित् पृथ्वी की सब झीलों से बड़ी है। झील ९ मील लम्बी, ५ मील चौड़ी और २१ वर्ग मील में फैली हुई है। दूसरी राज-समुद्र झील ३ मील लम्बी और १॥ मील चौड़ी है। जिसके बनने में ७ वर्ष लगे थे, कहा जाता है कि इसके बनवाने में ९६००:०० रुपये खर्च पड़े थे। इसके पानी के रुकाव के लिये २ मील लम्बा पक्का बाँध बँधा है। झील के दक्षिण किनारे पर द्वारिका-धीश का मन्दिर है। यह झील काँकरौली के पास है। काँकरोली में श्रीनाथ द्वारे के गुसाइयों का मकान है। तीसरी झील भी २ मील लम्बी और १॥ मील चौड़ी है।

नगर के देहली दरवाज़े के समीप बाईजी राज का कुण्ड है, कुण्ड के ऊपर श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध स्थान है। सूर्यपोल मुहल्ले में श्री स्वामी प्रयागदासजी का स्थल नामक श्रीनि-म्बार्क सम्प्रदाय का बहुत बड़ा प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ के मन्दिरों में यह अत्यन्त सुन्दर एवं सुसम्पन्न तथा सुव्यवस्थित स्थान है। नगर में श्रीरामानन्द सम्प्र-दाय के भी कई मंदिर हैं। नगर के बाहर प्रसिद्ध ऐतिहासिक महापुरुष महाराणा प्रताप की पहाड़ी उपत्यिकाओं का दृश्य अति मनोहर है।

उदयपुर से प्रायः ७० मील पहाड़ी मार्ग पर जैनियों का अति प्रसिद्ध तीर्थ श्रीऋषभदेव के नाम से प्रसिद्ध है। ऋषभदेवजी का मन्दिर बहुत विशाल है। जहाँ प्रतिवर्ष हजारों यात्री दर्शन के लिये जाते हैं। बस्ती से प्रायः ८ः मील दूर कनेरा गाँव में श्रीशुकदेवजी का मन्दिर है। यहाँ एक

छोटे कुण्ड से कुछ गरम पानी पतलीधार से बहता है। उदयपुर राज्य की पश्चिमी सीमा के निकट सद्री घाटी में रायपुरा नामक एक बस्ती है जिसमें जैन तीर्थंकर पारसनाथ के दो सुन्दर मन्दिर बने हैं। उदयपुर राजधानी से १२ मील उत्तर एक घाटी में श्वेत सङ्गमरमर का बना हुआ श्रीएकलिंगजी का बहुत विशाल मन्दिर है। शिवलिङ्ग के चारों ओर एक-एक मुख है। मन्दिर के पश्चिम प्रधान द्वार के निकट चाँदी से जड़ा हुआ एक नन्दी है। आस-पास कई दूसरी देव मूर्त्तियाँ हैं। श्रीएकलिङ्गजी मेवाड़ के इष्टदेव हैं। एकलिङ्गजी के मन्दिर से ३-४-सौ गज दूर सौ फ़ीट की ऊँची पहाड़ियों के मध्य एक सुन्दर झील है, जिसके पास बहुत से मन्दिर बने हैं।

श्रीनाथद्वारा—उदयपुर शहर से मावली जङ्कशन होते हुए २२ मील उत्तर-पूर्व बनास नदी के दाहिने किनारे पर श्रीनाथद्वारा नामक एक क़स्बा है, जो श्रीवल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णवों का प्रधान तीर्थ है। यहाँ श्रीनाथजी का उत्तम मन्दिर बना हुआ है। श्रीनाथद्वारे में बहुत यात्रियों का याता-यात रहता है। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को यहाँ अन्नकूटोत्सव देखने योग्य होता है। श्रीनाथजी की ये प्रसिद्ध एवं प्राचीन मूर्त्ति पहले व्रज के प्रसिद्ध गोकुल गाँव में थी, लगभग सन १६७१ में उदयपुर के महाराणा ने उक्त मूर्त्ति की यहाँ स्था-पना की। श्रीनाथजी का मन्दिर वल्लभकुल के गोस्वामियों के अधिकार में है। यह मन्दिर अत्यन्त वैभवशाली है। यहाँ तक कि सुना जाता है कि-यहाँ पर केसर भी चक्की में पीसी जाती है।

कोटा—चित्तौर के स्टेशन से लगभग ७० मील पूर्व, नसीराबाद से सागर जाने वाली सड़क के निकट, चंबलनदी के बांये राजपूताने में देशी राज्य की राजधानी कोटा एक क़स्बा है। कोटा में सैकड़ों देव मन्दिर हैं। जिनमें मधुरियाजी के कई एक मन्दिर प्रधान हैं। मन्दिरों में भगवान् के भोगराग की अच्छी अवस्था है।

बूँदी—कोटा से २० मील पश्चिमोत्तर बूँदी राज-धानी है। क़िले की पहाड़ी पर एक बड़ा मंदिर, दक्षिण में एक दूसरा मन्दिर, क़स्बे में १२ जैन मंदिर और लगभग ४१५ देव मन्दिर हैं।

उज्जैन—रतलाम से ४६ मील (अजमेर से २८२ मील दक्षिण कुछ पूर्व) फतेहाबाद जंकशन है। जिससे १४ मील पूर्वोत्तर उज्जैन को रेलवे शाखा गई है। पंजाब और दिल्ली की ओर से आने वाले यात्री बी० बी एण्ड सी० आई० रेल से मथुरा नागदा होते हुए रतलाम होकर उज्जैन पहुँचते हैं। भारत की सप्त पुरियों में से उज्जैन एक प्रधान नगरी है। यहाँ पर महाकालेश्वर महादेव द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। मध्यभारत के मालवा प्रदेश में क्षिप्रा नदी के तट पर यह पुरी बसी हुई है। इसका प्राचीन नाम अवन्तिका है। यहाँ श्रीकृष्ण की शिक्षा भूमि और सान्दीपन मुनि का विद्यापीठ था। यह नगरी भारत सम्राट् विक्रम की राजधानी और महाकवि कालिदास की सुन्दर निवास--भूमि है। श्रीशंकराचार्यजी ने उस समय के राजा सुधन्वा को जैनमत से हटा कर सनातन धर्मावलम्बी बनाया था। उज्जैन में रेलवे स्टेशन के पास सेंधिया (ग्वालियर) सरकार की एक धर्मशाला है। क्षिप्रा नदी के तट पर रामघाट के समीप बम्बई वाले की धर्मशाला है। कार्त्तिक चौक में भी एक अच्छी धर्मशाला है। उज्जैन एक प्राचीन नगरी है। किन्तु समय सब का परिवर्त्तन कर देता है। प्राचीन उज्जैन नवीन उज्जैन से उत्तर की ओर क्षिप्रा के तट पर अब भी खण्डहर के रूप में वर्त्तमान है। वर्त्तमान उज्जैन नगरी भी बड़ी नयनाभिराम है।

महाकालेश्वर--यहाँ के मुख्य देवता श्रीमहा-कालेश्वरजी हैं। पद्मपुराण के अनुसार जो मुख्य त्रिलिङ्ग माने गये हैं —उनमें महाकालेश्वर की भी गणना है। पद्मपुराण में लिखा है—

आकाशे तारकं लिङ्ग पाताले हाटकेश्वरम्।
मृत्युलोके महाकालं लिङ्गत्रय नमोऽस्तुते ॥

महाकालेश्वर के वर्त्तमान मन्दिर के चारों ओर सुन्दर मकान और धर्मशालायें हैं। मन्दिर के अन्दर ही एक तालाब है, इसे कोटितीर्थ भी कहते हैं। तालाब के एक ओर महाकालेश्वर का पांच मञ्जिला विशाल मन्दिर है। मन्दिर के प्रथम मञ्जिल में महाकालेश्वर का बड़ा शिव लिङ्ग है। तालाब के बगल से दालान है। दालान के एक बग़ल से अन्धेरे रास्ते में होकर गुफ़ा के भीतर मन्दिर में जाना होता है। महादेवजी के समीप अन्य देवी देवताओं की भी मूर्तियाँ हैं। यहाँ के पुजारी तैलङ्ग ब्राह्मण लोग हैं। इनकी नियुक्ति ग्वालियर राज्य की ओर से होती है। यहाँ की सेवा-पूजा बड़े भाव से होती है। यात्री लोग महादेवजी पर मेवा, मिष्टान्न और बेलपत्र चढ़ाते हैं। रुद्राभिषेक कराते हैं। भक्तजन यहाँ के प्रसाद को घर ले जाते है। मन्दिर के ऊपरी भाग में ओंकारेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। मन्दिर के दक्षिण में एक बड़ा भवन है, इसमें सहस्त्रों मनुष्यों के बैठने के लिये जगह है। इस मन्दिर के पास ही वृद्ध महाकालेश्वर का प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर से थोड़ी दूर पर श्रीगणेशजी की विशाल मूर्ति है।

हरसिद्धीदेवी---महाकाल के सामने, रुद्र प्रयाग तालाब के पार हरसिद्धीदेवी (पार्वती) का मन्दिर है। महाराज विक्रमादित्य की यह कुल-देवी थी। यह मन्दिर विशाल और शिखरदार है।

चौबीस स्तम्भों का दरवाज़ा----नगर के भीतर एक प्राचीन दरवाज़ा है। उसमें चौबीस खम्भे हैं। लोगों का कहना है कि यह दरवाज़ा विक्रमा--दित्य के क़िले का एक भाग है।

गोपाल मन्दिर—नगर के मध्य बाज़ार के पास गवालियर की महारानी बैजाबाई का बनवाया हुआ गोपाल मन्दिर है। मन्दिर सुन्दर बना है।

विष्णु मन्दिर—गोपाल मन्दिर से क़रीब आध मील की दूरी पर विष्णु भगवान् का मन्दिर है। मन्दिर के निकट क्षीर सागर है। मन्दिर के अन्दर क्षीरशायी भगवान् की मूर्ति है।

सिद्धवट—शहर से तीन मील क्षिप्रा नदी के तटपर एक छोटा-सा पुराना वट का वृक्ष है। कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को यहाँ बड़ा मेला है। यहाँ धर्मशाला भी बनी हैं। स्थान रमणीक है। घाट पर से क्षिप्रा का दृश्य चित्ताकर्षक है। इनके अतिरिक्त उज्जैन में श्री नागचण्डेश्वर, सत्यनारायण, श्री-नाथजी और वैकुण्ठनाथ आदि के भी मन्दिर हैं

सांदीपन ऋषि का आश्रम– नगर से दो मील की दूरी पर गोमती गङ्गा नामक सरोवर के निकट है। यहाँ पर भगवान श्री कृष्ण और सुदामा ने गुरुकुल में एक साथ विद्या का अध्ययन किया था।

भतृहरी की गुफ़ा—राजा भतृहरि उज्जैन के राजा गन्धर्वसेन के बड़े पुत्र थे। राजा भतृहरि संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे। उनका 'शतकत्रय' संस्कृत साहित्य की एक ख़ास चीज़ है। महाराज को जब राज्य पाट से विराग हुआ तो उन्होंने नगर से डेढ़ मील की दूरी पर यह गुफ़ा बनवाई थी। भतृहरिजी अपना भजन--पूजन इसी गुफ़ा में किया करते थे। क्षिप्रा नदी--यह एक छोटी-सी नदी है, परन्तु भारत की पवित्र नदियों में से एक हैं। यह इन्दौर प्रान्त के समीपवर्ती पर्वत से नकल कर उज्जैन में बहती हुई चम्बल में मिल जाती है। इसी नदी के तट पर सुप्रसिद्ध श्रीमहा-कालेश्वरजी का मन्दिर है।

कालियादह महल----उज्जैन का यह अति सुन्दर ऐतिहासिक महल है। यह अति प्राचीन स्थान है। पुराणों में इस स्थान को 'ब्रह्मकुण्ड' कहा गया है। यहाँ प्राचीन काल में सूर्य भगवान् के मन्दिर होने का प्रमाण मिलता है। यहाँ पर खोज करने से प्राचीन हिन्दू स्मृति के चिन्ह मिलते हैं, इसके देखने से जान पड़ता है कि यहाँ प्राचीन काल में कोई हिन्दू मन्दिर रहा होगा। यह महल देखने योग्य है।

उज्जैन नगरी का पूरा इतिहास और माहात्म्य सभी पुराण और महाभारतादि में मिलता है।

इस तीर्थ में स्नान-दर्शन करने से मनुष्य पापों से मुक्त होजाता है। उज्जैन में कार्त्तिकी पूर्णिमा, शिवरात्रि और बैशाखी पूर्णिमा को बड़े मेले होते हैं। यहाँ प्रति बारहवें वर्ष कुम्भ का मेला होता है।

देवास--इन्दौर शहर से लगभग २० मील पूर्वोत्तर मध्यमारत के मालवा देश में देशी राज्य की राजधानी देवास एक क़स्बा है। कस्बे के पश्चिमोत्तर ३०० फ़ीट ऊँची एक छोटी गावदुमी पहाड़ी पर चामुण्डा देवी का मन्दिर है। खड़ी पहाड़ी के बगल में काटकर गुफ़ा मन्दिर बना है। जिसमें देवी की बड़ी प्रतिमा है। उससे नीचे पहाड़ी के किनारे पर एक चौकोना तालाब और महादेवजी का छोटा-सा मन्दिर है। बहुत से यात्रीगण देवी के दर्शन के लिये पहाड़ी के ऊपर जाते हैं।

देवास राज्य में अलग-अलग दो राजा हैं, बड़े राजा किशनजी राव और छोटे राजा नारायण राव हैं। बड़े राजा को बावा साहेब और छोटे को दादा साहेब कहा जाता है। दोनों राजा एक ही कुल के हैं।

श्रीओंकारेश्वर — भारत के प्रसिद्ध द्वादशज्योतिर्लिङ्गों में से ये एक हैं। सूर्यवंश के राजा मान्धाता ने श्रीनर्मदाजी के पवित्र तट पर भगवान् शंकर की पूजा की थी—तभी से इस स्थान में ओंकारेश्वर ज्योतिलिङ्ग की स्थापना हुई है। अन्य कई ऋषियों की तपस्या के कारण भी यह स्थान पवित्रतम होगया था। ज्योतिर्लिङ्ग की स्थापना से यह भारत का एक प्रधान तीर्थ होगया है। भारत की पवित्र सात नदियों में से नर्मदा भी एक है। जहाँ दो नदियों का संगम होता है। वह स्थान विशेष रूप से पवित्र माना जाता है। ओंकारेश्वर में श्रीनर्मदाजी का कावेरी के साथ संगम हुआ है। इसलिये भी यह स्थान पवित्र है। यहाँ पर नर्मदाजी की दो धारायें होगईं हैं। दोनों धाराओं के बीच एक पहाड़ी है। इसी पहाड़ी पर श्रीओंकारनाथजी का विशाल दर्शनीय मन्दिर है। श्रीनर्मदाजी से पहाड़ी तथा दोनों किनारों का दृश्य बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता है। यात्रीगण इस दृश्य को देखकर चकित रह जाते हैं। मोटर या गाड़ियों के अड्डे से आगे विष्णुपुरी है। यहाँ एक पक्का घाट है। इस घाट से नाव द्वारा नर्मदा पार करने पर दूसरा पक्का घाट मिलता है। जिसे कोटि-तीर्थ या चक्र-तीर्थ कहते हैं। यहाँ नर्मदाजी का जल बहुत गहरा है। इसी घाट के ऊपर श्रीॐकारेश्वजी का मन्दिर है। मन्दिर एक पहाड़ी पर है। पहाड़ी नर्मदा के मध्य में एक टापू के भीतर है। इस टापू को लोग मान्धाता के नाम से पुकारते हैं। इस टापू के नाम पड़ने का कारण यह बताया जाता है कि इक्ष्वाकुवंश के प्रतापी राजा मान्धाता ने नर्मदा के पवित्र तट पर भगवान् शिव की आराधना की थी-यह कथा स्कन्द पुराण के नर्मदा खण्ड में विस्तार पूर्वक वर्णित है। कावेरी नर्मदा की ही एक शाखा है। यह ॐकारपुरी से एक मील पूर्व नर्मदा से निकलकर टापू की उत्तरी सीमा को पार करती हुई ॐकारेश्वर से डेढ़ मील पश्चिम नर्मदा में जाकर मिल गई है। इस तरह टापू के चारों ओर नर्मदा विराजमान है। टापू की पहाड़ी पर एक छोटा-सा गाँव है—जिसे लोग शिवपुरी कहते हैं। नर्मदा के दक्षिण तट पर बसे हुए गाँव को विष्णुपुरी और ब्रह्मपुरी कहते हैं। नर्मदा से शिवपुरी और विष्णुपुरी का दृश्य बड़ा सुहावना लगता है। टापू के एक छोर पर मान्धाता टापू के राजा का विशाल एवं सुन्दर महल है! यहाँ का राजा भिलाला जाति का है। नर्मदा के दोनों तटों के मन्दिरों का प्रबन्ध इसी राजा के हाथ में है। ॐकारेश्वरजी का सम्पूर्ण व्यय राजा की ओर से होता है—और जो पूजा चढ़ती है-उसे ये राजा ही लेता है।

ॐकारनाथ का वर्त्तमान मंदिर पेशवाओं के समय का है और उसके समीपवर्त्ती कई मन्दिर पेशवाओं के समय के बतलाये जाते हैं। ॐकारनाथ का प्रधान द्वार उत्तर की ओर दूसरा द्वार पश्चिम की ओर है। ॐकारनाथ की अनगढ़-

मूर्त्ति है, पास ही पार्वतीजी की मूर्त्ति है। ओंकारनाथ के मन्दिर की एक विशेषता यह है कि ओंकारनाथजी की मूर्त्ति गुम्मज के नीचे नहीं है। मूर्त्ति के समीप चारों तरफ सदैव जल भरा रहता है। मन्दिर के हाते में पञ्च मुखी गणपति है। मन्दिर के दूसरे मञ्जिल में श्रीमहाकालेश्वर की मूर्त्ति है। यह ठीक गुम्मज के नीचे है। मन्दिर में रात-दिन घी का दीपक जलता है। ओंकारेश्वर की नियमित रूप से सेवा-पूजा होती है। पास की एक कोठरी में श्रीशुकदेवजी की मूर्त्ति है और लिङ्ग स्वरूप राजा मान्धाता की मूर्त्ति है। नन्दीकी प्राचीन और नवीन दो मूर्त्तियाँ हैं। ओंकारेश्वर के समीप अविमुक्तेश्वर, ज्वालेश्वर, केदारेश्वर, गणपति आदि के मन्दिर हैं। मन्दिर के नीचे कोटि तीर्थ नामक पक्के घाट पर नर्मदा की धारा कुछ गोलाकार होगई है। प्रति वर्ष ओंकारेश्वर में दो प्रधान मेले होते हैं। एक कार्तिकी पूर्णिमा को और दूसरा शिवरात्रि को। टापू के भीतर ही ओंकारनाथ की छोटी-बड़ी दो परिक्रमा हैं। परिक्रमा में बहुत से प्राचीन मन्दिर और देव प्रतिमायें एवं अनेकों दर्शनीय स्थल मिलते हैं। यात्रियों को यहाँ की परिक्रमा अवश्य करनी चाहिये।

कुबेर भण्डारी—ओंकारेश्वर से डेढ़ मील पूर्व की ओर कावेरी नदी का श्रीनर्मदाजी से दक्षिण तट पर संगम है। वहाँ कुबेर ने तपस्या की थी, इसी तपस्या के कारण यह स्थान पवित्र माना जाता है।

गोमुख—शिवपुरी के घाट से नाव द्वारा श्रीनर्मदाजी को पार करके विष्णुपुरी के घाट पर आते हैं। विष्णुपुरी के घाट से थोड़ी दूर पर गोमुख से जल नर्मदाजी में गिरता है। ब्रह्मपुरी और विष्णुपुरी के मध्य एक धारा बहती है, जिसे कपिल धारा कहते हैं, इसी कपिल धारा का जल गोमुखी से होकर नर्मदा में गिरता है। इस स्थान को कपिलासङ्गम कहते हैं।

अमलेश्वर जोतिर्लिङ्ग—गोमुख से कुछ ऊपर चढ़ाई के बाद यह मन्दिर है। इसमें एक सुन्दर मण्डप है। यहाँ होल्कर सरकार की ओर से ब्राह्मण पार्थिव लिङ्गों की पूजा प्रति-दिन करते हैं। ओंकरेश्वर और अमलेश्वर महादेव की उत्पत्ति साथ-साथ हुई है, इनकी कथा शिव पुराण में प्रसिद्ध है। विष्णुपुरी के पश्चिम में मार्कण्डेयशिला नामक एक चट्टान है, जो नर्मदा के मध्य में है। यात्री लोग यम के कष्टों से छुटकारा पाने के लिये इस चट्टान पर लेटते हैं।

सात माता—ओंकारेश्वर के कुबेर भण्डारी के स्थान से २॥ मील पूर्व नर्मदा के किनारे पर यह तीर्थ है। यहाँ प्रायः नाव द्वारा आना होता है। यहाँ बाराही, चामुण्डा, ब्रह्माणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी और माहेश्वरी सप्त मातृकाओं के मन्दिर हैं। ओंकारेश्वर आने के लिये बम्बई से दिल्ली जाने वाली जी० आई० पी० लाइन पर खंडवा जंकशन है। खंडवा से बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल की शाखा अजमेर तक जाती है। इसी शाखा पर नर्मदाजी के पुल के पास मोरटक्का स्टेशन है। ओंकारनाथ के लिये इसी स्टेशन पर उतरना होता है। रतलाम होकर भी यात्रीगण आते हैं। मोरटक्का स्टेशन से ओंकारनाथ ७ मील है, स्टेशन से पक्की सड़क जाती है। यात्रियों के ठहरने के लिये स्टेशन के पास एक धर्मशाला है। मोरटक्का से नर्मदा का खेड़ी घाट क़रीब एक मील है, यहाँ भी एक धर्मशाला है। स्टेशन से ओंकार-मान्धाता पहुँचने पर अहिल्याबाई की धर्मशाला मिलती है। शिवपुरी में सुन्दरलाल बाहेती की विशाल और सुन्दर धर्मशाला है। जो यात्री धर्मशालाओं में ठहरना नहीं चाहें, वे पण्डाओं के मकान में भी ठहर सकते हैं।

धापड़ी कुण्ड—मोरटक्का स्टेशन से क़रीब २० मील की दूरी पर धापड़ी घाट का प्रसिद्ध जल प्रपात है। सड़क कच्ची है, रास्ते में जङ्गल भी पड़ता है, यहाँ नर्मदाजी का जल बड़ी चट्टानों को छोड़ कर क़रीब ५० फुट की ऊँचाई से गिरता है। जहाँ जल गिरता है, उस कुण्ड में गोलाकार पत्थर

निकलते हैं, जिन्हें लोग शिव की भावना से पूजते हैं। भारत के विभिन्न स्थानों में यहाँ से निकाली हुई शिव की मूर्त्तियाँ हैं। स्थान सुन्दर और चित्ताकर्षक है। जी० आई० पी० के वीर स्टेशन से लोग प्रायः यहाँ आते हैं।

कोटेश्वर और चरुकेश्वर—ओंकारनाथ से पश्चिम में नर्मदा के किनारे आगे जाने पर उत्तर तट पर कोटेश्वर महादेव का पुराना मन्दिर है। इसके आगे नर्मदाजी से चीरल नदी का संगम हुआ है। यह स्थान बड़वाह स्टेशन से लगभग चार मील है।

खेड़ी घाट—मोरटक्का स्टेशन से क़रीब एक मील की दूरी पर है। स्थान दर्शनीय और सुहावना है।

बड़वाड़ा—छोटा स्टेशन है। बस्ती के पास चोरल नदी के किनारे पर जयन्ती माता का प्राचीन मन्दिर है। नगर में नागेश्वर कुण्ड है, कुंड के बीच महादेवजी का मन्दिर है।

भस्म का टीला—उपर्युक्त स्थान से पश्चिम नर्मदा का पुल है, उस से थोड़ी दूर पर भस्म का एक टीला है, यहाँ आज-कल भी सुगन्धित भस्म मिलती है, कहा जाता है कि प्राचीन काल में यहाँ यज्ञ हुआ था।

श्रीविमलेश्वर महादेव—नर्मदा के पुल से क़रीब ३ मील पश्चिम नर्मदा किनारे पर यह मन्दिर है। यहाँ के ये देवता प्रत्यक्ष हैं, इनके पास ही चन्द्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। इस मन्दिर के अन्दर छः मन वज़न का एक भारी घण्टा है। यहाँ एक धर्मशाला भी है।

गंगेश्वर—विमलेश्वर के क़रीब आठ मील की दूरी पर नर्मदा किनारे ये महादेव है। यहाँ के सुन्दर दृश्य को देख कर सबको बड़ा आश्चर्य होता है। यहाँ की ख़ास विशेषता यह है कि नर्मदा अपने दोनों किनारों पर पश्चिम को बहती है। इसके पास और भी देव मन्दिर हैं।

रावेर खेड़ी—नर्मदा किनारे गाँव में प्रसिद्ध बाजीराव पेशवा की समाधि है, इसी घाट के पार पेशवा ने उत्तर-भारत को जीता था। इसका स्मारक रामेश्वर मंदिर और धर्मशाला है।

मर्दाना—रावेर खेड़ी से ६ मील आगे नर्मदा किनारे एक गाँव है। यह स्थान राजा मयूरध्वज का बसाया हुआ बताया जाता है, प्राचीन महलों के खंडहर अब तक मिलते हैं। मयूरेश्वर महादेव का मन्दिर दर्शनीय है। स्थान देखने योग्य है।

पिप्पलेश्वर—मर्दाना से ६ मील पीतामली गाँव में यह मन्दिर है। गाँव के पास भस्म का एक प्राचीन टीला है।

मण्डलेश्वर—पीतामलीसे१२ मील आगे नर्मदा तट पर यह मन्दिर है। यहाँ पर गुप्तेश्वर महादेव का मन्दिर दर्शनीय है।

महेश्वर—मण्डलेश्वर से ५ मील आगे इन्दौर राज्य का प्रसिद्ध नगर नर्मदा किनारे महेश्वर है। इस नगर की शोभा मनोमोहक है। धर्म ग्रन्थों में इस नगरी को माहिष्मती कहा गया है। मंडनमिश्र के रहने का स्थान यहीं पर था। श्रीशङ्कराचार्यजी का मंडनमिश्र से शास्त्रार्थ इसी नगरी में हुआ था। पुराण प्रसिद्ध कार्त्तवीर्यार्जुन राजा यहीं पर हुए थे।

सहस्र धारा—महेश्वर से तीन मील आगे यह रमणीक स्थान है। नर्मदा को यहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानों के बीच होकर बहना पड़ता है। बहुत-सी धारा होजाने के कारण इस स्थान को 'सहस्र-धारा' कहते हैं। यहाँ का दृश्य अत्यन्त मनोमोहक है।

अमरकंटक—मध्य प्रदेश के कटनी जङ्कशन से १३५ मील दक्षिण पूर्व पेंड्रारोड रेलवे स्टेशन है। वहाँ से क़रीब ७ मील की दूरी पर रीवाँ राज्यान्तर्गत विन्ध्याचल के अमरकण्टक शिखर पर बहुत देवमन्दिर हैं। इनमें अमरनाथ महादेव और नर्मदादेवी यह दो प्रधान स्थान हैं। उसी शिखर से नर्मदा नदी निकली है। सोन नदी की उत्पत्ति भी यहीं से हुई है। यह पहाड़ी शिखर

समुद्र जल से प्रायः ३५०० फ़ीट ऊँची है। इससे अनेक झरने भी निकले हैं। यह बहुत प्राचीन तीर्थ है। नर्मदा नदी चिपटी शिखर पर प्रथम एक कुण्ड में गिरती है और वहाँ से ३ मील बहने पर अमरकण्टक पहुँच कर खड़ी पहाड़ी पर गिरती है। लोग यहाँ की धारा को कपिल धारा कहते हैं। नर्मदा के किनारे जबलपुर, हुशङ्गाबाद, हण्डिया, ओंकारपुरी (मांधाता टापू) और भड़ौंच नगर प्रसिद्ध हैं। बहुत यात्री नर्मदा के निवास स्थान से और मुहाने तक इस पवित्र नदी की परिक्रमा करते हैं।

इसका माहात्म्य मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, पद्मपुराण, आदि अनेक धार्मिक ग्रन्थों में लिखा है। मध्यभारत में यह बहुत ही प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थ है।

शबरीनारायण—मध्य-देशान्तर्गत रायगढ़ से ४६ मील पर चांपा स्टेशन से ७ मील पश्चिम नैला का रेलवे स्टेशन है। नैला से १६ मील दक्षिण विलासपुर ज़िले में महानदी और शिवनाथ नदी के सङ्गम से प्रायः १० मील पश्चिम शिवनाथ नदी के दाहिने किनारे पर शबरीनारायण नामका एक तीर्थ है। नदी के तीर पर महादेवजी और उससे थोड़ी दूर पर शबरीनारायण और राम-लक्ष्मण का मन्दिर है। यहाँ पर विजयादशमी और शिवरात्रि पर मेले होते हैं।

कबरदह—मध्य-देश के विलासपुर ज़िले में कबरदह एक छोटी-सी देशी रियासत है। यहाँ पर कबीर पन्थीके वंश घरानेका प्रधान मठ है। यहाँ पर कई देवमन्दिर भी हैं।

रामटेक—नागपुर से २४ मील पूर्वोत्तर रामटेक एक छोटा क़स्बा है। यह एक पवित्र स्थान है। रामटेक पान के लिये भारत प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ से निकट पहाड़ी के उत्तर बगल पर एक बहुत पुराना मन्दिर है, उसके पास और अनेक मंदिर बने हुए हैं। पहाड़ी के ऊपर, उसके पश्चिम किनारे के पास एक हाते के भीतर श्रीरामचन्द्रजी का प्राचीन विशाल मंदिर है। रामटेक से पहाड़ की शिखर तक सीढ़ियाँ बनी हैं। रामटेक से कोई २ मील दूर अम्बाड़ा नामक एक पुराना तालाब है। इसके बगलों में महाराष्ट्रों के बनवाये हुए पन्द्रह-बीस मंदिर बने हुए हैं। कार्तिकी पूर्णिमा को मेला लगता है। यह स्थान बड़ा रमणीक और पवित्र तीर्थ है।

चाँद—नागपुर विभाग में चान्दा ज़िले का प्रधान क़स्बा है। कस्बा साढ़े पाँच मील की पत्थर की दीवार से घिरा हुआ है। यहाँ पर अचलेश्वर, महाकाली और मुरलीधर तीन प्रसिद्ध मंदिर हैं। यहाँ पर बैसाख में बड़ा मेला होता है। स्थान देखने योग्य है।

रोबालसर—पञ्जाब प्रान्त के होशियारपुर से २० कोस ऊना तहसील, ३२ कोस बडसर का बाना, ४२ कोस मेडा का पड़ाव और ६० कोस रोबालसर है। रोबालसर नामक एक बहुत बड़ी झील है। इसमें पौदे लगे हैं और कई टीले हैं। झील में टीले की नक़ल का बनाया हुआ एक बेड़ है, जिस पर पौदे लगे हैं और देव मूर्तियाँ रक्खी हैं। यात्रियों के इकट्ठा होने पर वहाँ के पण्डे गुप्त-भाव से बेड़ को झील के भीतर से किनारे पर खेंच लेते हैं। यात्रीगण टीले को चलता हुआ देख कर बड़ा भारी आश्चर्य मानते हैं और बेड़े के ऊपर की देवमूर्तियों का पूजन करते हैं। मेष की संक्राति को वहाँ पर स्नान दर्शन का मेला होता है। स्थान रमणीक और पवित्र है।

बौद्धस्तूप—पञ्जाब प्रान्त में झेलम से ५४ मील पश्चिमोत्तर लवती स्टेशन से २ मील दूर मानिक-पाला के पत्थर का एक स्तूप है, स्तूप के गुम्बज का व्यास १२७ फ़ीट और घेरा ५०० फ़ीट है। गुम्बज अर्धगोलाकार है। ऊपर चढ़ने के लिये १६ फ़ीट चौड़ी चारों ओर चार सीढ़ियाँ हैं। यह स्तूप सन् १८३०, १८३४ और १८६४ में अच्छी

तरह तलाशा गया, उसमें इसवी सन् के आरम्भ के और यशोवर्मा के (जिसने सन् ७२० के पीछे राज्य किया था) सिक्के मिले और उसी समय के चांदी के बहुत से अरबियन सिक्के भी मिले थे। वैचुरा के स्तूप से २ मील उत्तर एक बहुत पुराना स्तूप है।

कटासराज—पञ्जाब प्रान्त में खेवरा से ५ कोस और पिण्डदादनखां से १६ मील झेलम ज़िले में कटासराज एक तीर्थ है। इसको अमरकुण्ड भी कहते हैं। कटासकुण्ड बहुत बड़ा सरोवर है। सरोवर देखने में बड़ा अच्छा लगता है। सरोवर के निकट बहुत से देवमन्दिर बने हैं। पड़ौस की एक छोटी पहाड़ी पर एक किले की निशानी है। जिसके नीचे एक घेरे में सात धरा नाम से प्रसिद्ध ७ मन्दिर हीन दशा में वर्त्तमान है। इनके पास ही दूसरे मन्दिर भी बहुत हैं। लोग कहते हैं कि पाण्डव लोग अपने १२ वर्ष के बनवास के समय कुछ दिनों तक इन्हीं सात मन्दिरों में रहे थे। कटास कुण्ड के चारों ओर ब्राह्मण तथा कुछ साधुओं की छोटी छोटी बस्तियाँ हैं। वैसाख मास में कटासराज का बड़ा मेला होता है। जिसमें लगभग ३० हज़ार से भी अधिक यात्री इकट्ठे होते हैं। यहाँ के लोग कटासतालाब को पुष्कर तालाब भी कहते हैं।

इलोरा के गुफ़ा मंदिर—दक्षिण प्रान्त के हैदराबाद राज्य में चालीसगांव के स्टेशन से २६ मील (भुसावल से ६८ मील) दक्षिण पश्चिम नन्दगाँव स्टेशन से दक्षिण पूर्व ३६ मील आगे देवगाँव होकर एक इलोरा गाँव मिलता है। इलोरा गाँव गुफ़ा मन्दिरों के लिये बहुत ही प्रसिद्ध है। ऐसा मनोहर आश्चर्य जनक शिल्पविद्या का स्मारक चिन्ह जो पहाड़ से पत्थर काटकर बनाये गये हैं, भारतवर्ष में सहसा नहीं देख पड़ते। इलौरा गाँव के पास अर्धचन्द्राकार की शकल की पहाड़ी में उत्तर से दक्षिण १। मील तक गुफ़ा मन्दिर फैले हुये हैं। इलौरा के गुफ़ा मन्दिर पहाड़ी की ढाल बगल में है। दक्षिण तरफ़ १२ गुफ़ायें बौद्धों की, १७ गुफ़ायें हिन्दुओं की, ५ जैनियों की प्रसिद्ध और दर्शनीय हैं। इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों गुफ़ा मन्दिर हैं—जो देखने योग्य हैं।

बेजवाड़ा- दक्षिण के मद्रास प्रान्त में वारंगल से १२६ मील दक्षिण तैलङ्ग देश के कृष्णा जिले में कृष्णा नदी के बाँये किनारे पर बेजवाड़ा एक कस्बा है। जिसको लोग विजयेश्वर और दक्षिण काशी भी कहते हैं। बेजवाड़ा में एक पुराना क़िला और हिन्दुओं के बहुत से पुराने मन्दिर हैं। पहाड़ी की चट्टान काटकर बनाई हुई बहुत सी दर्शनीय गुफ़ायें हैं। बेजवाड़ा से पश्चिम अण्डावल्ली गाँव के निकट गुफ़ा मन्दिर है, जिसमें एक में अनन्त स्वामी अर्थात् विष्णु भगवान् हैं और दूसरे में सीताहरण राम द्वारा सीता की खोज और लवण बध की लीला देख पड़ती है।

वेलूर—दक्षिण प्रान्त के मैसूर राज्य में बानातार के स्टेशन से २० मील दक्षिण पश्चिम हलवेड़ी से १० मील दक्षिण पश्चिम एक नदी के दाहिने किनारे वेलूर एक क़स्बा है। यहाँ एक बहुत बड़ा चन्न केशव का मंदिर है। मन्दिर की ऊँची दीवार के भीतर ४४० फ़ीट लम्बा और ३६० फ़ीट चौड़ा अर्थात् ६ बीघे विस्तार कला आँगन है, आँगन में चन्नकेशव का विशाल मन्दिर और पाँच छोटे-छोटे मन्दिर हैं। पूर्व तरफ़ २ उत्तम गोपुर बने हैं। चन्नकेशव ७ फ़ीटसे अधिक ऊँचे हैं। इस स्थान पर १२ वीं सदी के मध्य में हौसला वल्लाला वंश के राजा विष्णुवर्द्धन ने जैन धर्म से वैष्णव धर्म में आने पर चन्नकेशव का मन्दिर बनवाया था। मन्दिर की कारीगरी देखने योग्य है।

कोल्हापुर—बम्बई प्रान्त के गोका करोड के स्टेशन से ४६ मील एक प्रसिद्ध देशी राज्य की राजधानी कोल्हापुर है। जिसको बहुत से लोग कावीर कहते हैं। कोल्हापुर शहर के चारों ओर

पहाड़ियाँ हैं। इसलिये शहर की शोभा अच्छी है। कोल्हापुर में महालक्ष्मीजी का एक बहुत प्रसिद्ध मन्दिर है, इस मन्दिर को अम्बा का मंदिर भी कहते हैं। मन्दिर की कारीगरी देखने योग्य है। मन्दिर के पास पद्म सरोवर, काशी और मणिकर्णिका तीर्थ तथा विश्वनाथ जगन्नाथ आदि देवता हैं।

बनाला के क़िले के पास जाने वाली सड़क के समीप ज्योतिबा नामक पहाड़ी पर बहुत से मन्दिर और गुफ़ायें हैं। जिनमें ३ शिव मन्दिर प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ और भी अच्छे-अच्छे दर्शनीय मन्दिर हैं।

भीमताल—युक्त प्रान्त में नैनीताल से प्रायः ४॥ मील आगे भीमताल है। यह क़रीब १ मील चौड़ा और आध मील लम्बा होगा। तालाब के पूर्व किनारे पर भीमेश्वर शिवजी का मन्दिर है। तालाब में पानी रोकने की दीवार और निकलने के मार्ग भी बने हैं। स्थान दर्शनीय है। ❀

❀ सभी भारतवर्ष तीर्थ-भूमि है। यहाँ पर असंख्य तीर्थ हैं। सभी का हाल लिखना हम जैसे तुच्छ बुद्धि के लिये सम्भव नहीं। इसी से कुछ प्रमुख तीर्थों का सूचन-परिचय मात्र दे दिया गया है। बहुत तीर्थ सम्भवतः छूट गये होंगे; चेष्टा तो यही की गई है कि प्रायः सभी प्रमुख तीर्थों का परिचय पाठकों को मिलजाय, किन्तु फिर भी यदि कोई रह गये हों अथवा कोई भूल रह गई हो, तो विज्ञ पाठक कृपया क्षमा करें।

—सम्पादक

हमारे तीर्थ-स्थान

[लेखक—श्री शोभारामजी धेनुसेवक, 'कविरत्न']

(१)

तीर्थ पुण्यागार भारतवर्ष के सदृश कहाँ?
सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तत्वों का पता लगता जहाँ॥
तप्त जीवों को जहाँ मिलती चिरस्थिति शान्ति है।
मिटती ना जिनके दर्श से वह कौन ऐसी भ्रान्ति है॥

(२)

अव्यक्त की भी व्यक्त हो महिमा झलकती है जहाँ।
स्फूर्तिदायक सात्त्विकी श्रद्धा झलकती हैं जहाँ॥
जो मुमुक्षों के लिये बस मोक्ष के ही द्वार हैं।
पूज्य पुण्यागार हैं, स्वर्गीय सुखभोगार हैं॥

(३)

जो प्रातस्मरणीय ऋषियों के निकेतन रम्य हैं।
शान्ति का शासन जहाँ जो सुकृतियों के गम्य हैं॥
तीर्थ जो होते नहीं निर्वाण के साधन यहाँ।
त्याग जग को मोक्ष का करते हम आराधन कहाँ॥

(४)

बस यही पर गूढ़ तत्त्वों का पता लगता रहा।
मोक्ष का सद्भाव उर में बस यहीं जगता रहा॥
पुण्यपुञ्ज महर्षियों के वास स्थल हैं यहीं।
भ्रान्ति नाशक शान्ति कारक तीर्थ निर्मल हैं यहीं॥

सप्तपुरी का वर्णन

[लेखक—श्रीयुत पं० ब्रजमोहनलालजी शर्मा, फ़िरोज़ाबाद]

भारतवर्ष आदि काल से ही भगवद्धाम एवं तीर्थ-प्रधान देश है। इसमें चार धाम और सप्तपुरी तो यथार्थ में ही भगवल्लोक माने गये हैं। सप्तपुरी का उल्लेख गरुड़ पुराण में इस प्रकार किया गया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायकाः॥

अर्थात्—अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन), तथा पुरी द्वारावती ये सात पुरी साक्षात् मोक्ष के देने वाली हैं।

अब यहाँ पर हम उपरोक्त सातों पुरी का सूक्ष्मतया वर्णन करते हैं।

अयोध्या—ई० आई० आर० का यह स्टेशन फ़ैज़ाबाद के निकट है। सरयू नदी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है। लखनऊ से ८४ मील है। मानसरोवर से उद्भव होने के कारण सरयू को मानस-नन्दिनी भी कहते हैं। नगर में अनेक धर्मशालायें हैं, बहुत घाट हैं, और यहाँ पर अनेक दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी, नागेश्वरनाथ महादेव, त्रेतानाथ, श्रीतुलसीदास, कनक भवन आदि अनेक देव मन्दिर हैं। तुलसी चौरा, मणि पर्वत, दतूनकुण्ड, हनुमानगढ़ी, सुग्रीव और अङ्गद के टीले, जन्म स्थान आदि अनेक पवित्र स्थली दर्शनीय हैं। अयोध्या का माहात्म्य अनेक पुराणों और धर्म ग्रन्थों में लिखा है।

मथुरा—आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की जन्म-स्थली होने से मथुरा अत्यन्त पवित्र पुरी है। इसका नाम वेदों में भी आता है। श्रीमद्भागवत में लिखा है—"मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः" अर्थात् मथुरा में भगवान नित्य ही विहार करते हैं। मथुरा के चारों ओर चार शिव मन्दिर हैं। ये भूतेश्वर, पिपलेश्वर, रंगेश्वर, और गोकर्णेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ श्रीकेशवदेवजी का प्राचीन मंदिर था, जिस में श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ द्वारा मूर्ति स्थापित हुई थी। औरङ्गजेब के समय में उक्त मूर्ति को रजधाम में पधरा दिया गया, उसी के निकट श्रीकेशवदेवजी का नया मंदिर है। इस स्थान के निकट ही श्रीकृष्ण-भूमि है। नगर में श्रीद्वारिकाधीश का विशाल मन्दिर है। यह नगर श्रीयमुनाजी के किनारे पर बसा है। यहाँ पर अनेकों घाट, सैकड़ों धर्मशाला और क्षेत्र तथा अनेक दर्शनीय स्थान हैं। श्रीकिशोरीरमणजी, श्रीराधाकान्तजी, श्रीगोवर्धनलालजी, श्रीगोकुलेशजी, श्रीमथुरानाथजी, श्रीगतश्रमनारायण, श्रीराधेश्यामजी आदि अनेकों दर्शनीय देवमन्दिर हैं। नगर के चार स्टेशन हैं। दो जी० आई० पी० पर तथा दो बी० बी० एण्ड सी० आई० आर (छोटी लाइन) पर। नगर के बाहर सरकारी छावनी है। एक पक्का रेल का पुल है। यह स्थान अत्यन्त
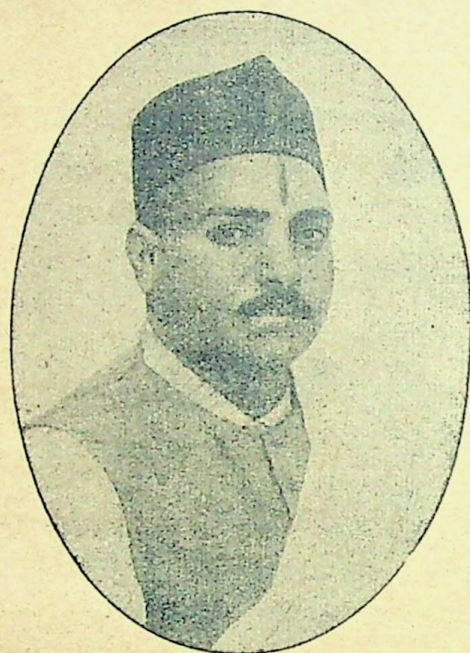
(इस लेख के लेखक)

पवित्र, दर्शनीय है। प्रतिवर्ष अनेक मेले होते हैं। नित्य ही सहस्रों यात्रियों का यातायात रहता है।

मायापुरी (हरिद्वार)—सहारनपुर से लुक्सर जङ्कशन होकर ५० मील पर ई० आई० रेलवे की लुक्सर-देहरादून लाइन पर यह पवित्र तीर्थ स्थित है। स्टेशन पर और नगर में अनेकों धर्मशालायें हैं। हरिद्वार कल-कल नादिनी भागीरथी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है। गङ्गाजी इसी पवित्र स्थान से समतलभूमि पर प्रवाहित होती हैं। हरिद्वार की प्राकृतिक रमणीयता देखते ही बनती है। स्वभावतः चित्तकी वृत्तियाँ पवित्र होजाती हैं—भगवत् प्राप्ति के लिये यह स्थान प्रसिद्ध है—इसी कारण इसका नाम 'हरिद्वार' है। हरिद्वार का ही नामान्तर मायापुरी है। हरिद्वार का सबसे प्रसिद्ध और पवित्र घाट हरि की पैड़ी है। यात्रीगण इसी स्थान पर स्नान कर पुण्य प्राप्त करते हैं। हरि की पैड़ी के ऊपर विष्णु भगवान् का चरण-चिन्ह अङ्कित है। हरिद्वार में कुशावर्त्तघाट, दक्षेश्वर महादेव, सतीकुण्ड, नारायण, शिलाकाया मायादेवी, भीमगोड़ा आदि बहुत से प्रसिद्ध स्थान दर्शनीय हैं। हरिद्वार से ही यात्रीगण बद्रीनाथ और केदारनाथ आदि उत्तराखण्ड के तीर्थों के लिये प्रस्थान करते हैं। हरिद्वार के पास ही मायापुर (इस समय खण्डहर के रूप में है) कनखल, ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला आदि प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

काशी—अयोध्या से काशी १२० मील की दूरी पर है। काशी अपनी महिमा के कारण चिरकाल से अति प्रसिद्ध है। मुगलसराय जङ्कशन से पुल को पार करती हुई रेल जब बनारस पहुँचती है—उस समय काशी की अर्धचन्द्राकार आकृति दर्शकों के मन को मोहित कर लेती है। भगवती भागीरथी के किनारे पर यह विश्वनाथपुरी बसी है। काशी में लगभग ५० से ऊपर घाट हैं। जो अत्यन्त सुहावने हैं। काशी में सैकड़ों देव-मन्दिर हैं, जिनमें विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, आदि विश्वेश्वर, गोपाल मन्दिर, काशी करवट, मान मन्दिर, नैपाली मन्दिर, गोरखनाथ का मन्दिर आदि अनेकों प्रसिद्ध हैं। काशी में माधवराम का धरहरा, रामनगर, हिन्दू-विश्वविद्यालय, कीन्स कालेज, काशी विद्यापीठ आदि कई स्थान दर्शनीय हैं। काशी सदा से संस्कृत विद्या का केन्द्र रही है, वर्त्तमान समय में भी संस्कृत हिन्दी-साहित्य के लिये प्रसिद्ध है। भगवान् विश्वनाथ की यह पुरी यात्रियों को हर तरह से सुख देती है। यह पुरी परम पुनीत है।

काञ्ची—काञ्ची नगरी दो हैं, एक विष्णु काञ्ची दूसरी शिवकाञ्ची है। शिव काञ्ची से प्रायः ३ मील और स्टेशन से २ मील की दूरी पर विष्णुकाञ्ची है। यहाँ पर वरदराज भगवान् विष्णु का बहुत बड़ा मन्दिर है। मन्दिर के परकोटे की ऊँचाई १० फ़ीट है। परकोटे के पूर्व की ओर ग्यारह खण्ड का और पश्चिमी की ओर ६ खण्ड का गोपुर है। मन्दिर का वर्णन बहुत विस्तृत है। सौ फ़ीट लम्बे चौड़े गिरिनायक चबूतरे पर भगवान् वरदराज का मन्दिर है। भगवान् की मूर्त्ति काली और चतुर्भुजी है। अनेकों तरह के बहुमूल्य वस्त्र और भूषणों से मूर्त्ति सदैव सुसज्जित रहती है। भगवान् गले में स्वर्ण-ग्रथित शालग्रामों की एक माला पहने हुए हैं। यह माला बहुत मूल्यवान् है। श्रीरामानुज सम्प्रदाय की प्रधान आठ गद्दियों में से एक गद्दी प्रतिवाद भयङ्कर की इसी काञ्ची में है। विष्णु काञ्ची के समीप शिवकाञ्ची है। यह शैवों का प्रधान केन्द्र है। यहाँ श्रीएकाम्रेश्वर महादेव का बड़ा विशाल मन्दिर है। दक्षिण के पाँच प्रसिद्ध लिङ्गों में से यह एक है।

अवन्तिका (उज्जैन)—रतलाम से ४६ मील फतेहाबाद जङ्कशन से १४ मील पूर्वोत्तर क्षिप्रा नदी के किनारे पर उज्जैन नगरी बसी है। उज्जैन ग्वालियर राज्य का प्रसिद्ध नगर है। नगरी के प्रधान देवता श्रीमहाकालेश्वरजी द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। एक पक्के सरोवर के बगल पर महाकालेश्वर का शिखरदार विशाल मन्दिर है। कार्तिकी पूर्णिमा को यहाँ बड़ा मेला होता है

१२ वर्ष पर यहाँ प्रसिद्ध कुम्भ का मेला होता । अन्य तीर्थों की भाँति यहाँ पर बहुत से प्रसिद्ध मन्दिर हैं, जिनमें हरि सिद्धी देवी, नाग-चन्देश्वर, क्षीर सागर के किनारे क्षीरशायी, भगवान्, राम, लक्ष्मण और जानकीजी का मंदिर (इस मन्दिर की मूर्तियां विष्णु सागर में मिली थीं) गोपाल मन्दिर, क्षिप्रा नदी के प्रयाग घाट के पास एक मन्दिर में रण मुक्तेश्वर महादेव आदि अनेकों मंदिर प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धवट सान्दीपनी ऋषी का आश्रम (जहाँ भगवान् कृष्ण और सुदामा ने साथ-साथ विद्या का अध्ययन किया था) राजा भर्तृहरि की गुफा (कहा जाता है, कि यहाँ के राजा भर्तृहरि को जब वैराग्य हुआ तो इसी गुफा में रहकर भजन, पाठ, पूजा किया करते थे) आदि बहुत से दर्शनीय स्थान हैं। यात्रियों की सदा भीड़ लगी रहती है।

द्वारिकापुरी—पोरबन्दर से राजकोट जंकशन, जामनगर होते हुए द्वारिकाजी २६५ मील हैं। द्वारिका बम्बई प्रान्त के काठियावाड़ प्रदेश में है। यह पुरी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने विश्वकर्मा द्वारा बनवाई थी। द्वारिका की रमणीयता मुख से वर्णन नहीं की जा सकती। यहाँ चक्रतीर्थ में स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। चक्रतीर्थ गोमती नदी के किनारे पर है। स्नान के पश्चात् शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्रीद्वारिकानाथ (श्रीरणछोरजी) और उनके सामने मन्दिर में यशोदा माता के दर्शन होते हैं। यहाँ का पानी खारी है। शहर के बाहर से मीठा पानी आता है। यहाँ पर धर्मशालायें बहुत हैं। यहाँ और भी बहुत से मन्दिर दर्शनीय। गोमती के किनारे सांवलशाह, गणेश और गोमती गङ्गा आदि के मन्दिर हैं। इसी स्थान पर रत्नाकर समुद्र में गोमती का संगम हुआ है। रुक्मिणीजी का मन्दिर नगर से २ मील की दूरी पर है—जो अत्यन्त जीर्णावस्था में है। उपरोक्त मन्दिरों के अतिरिक्त नारायणजी, दत्तात्रेय आश्रम, कुशेश्वर महादेव, जाम्वन्तजी, पुरुषोत्तमजी, बलदेवजी, वेणीमाधवजी, शंकराचार्य का मन्दिर, सत्यभामादेवी, लक्ष्मीनारायण आदि बहुत से प्रसिद्ध मन्दिर हैं। यहाँ से ७ कोस की दूरी पर बेट द्वारिका है। जहाँ भगवान् ने नरसी भगत की हुण्डी स्वीकार की थी। यहाँ से एक मील गोपी-तालाब है। द्वारिका से १८ मील की दूरी पर ऊखा पोर्ट है।

पुराणों में सप्तपुरियों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है। सप्तपुरियों के माहात्म्य-वर्णन में तो लिखा है कि जो प्राणी इन पुरियों में निवास करता है, वह इस असार संसार में फिर नहीं आता है।

भगवान् ने तीर्थों को प्रगट करके मनुष्य के कल्याण का एक सुलभ मार्ग खोल दिया है। सप्तपुरियाँ साक्षात् भगवद्धाम ही मानी जाती हैं, प्रत्येक पुरी में भगवान् ने अपने किसी न किसी रूप से विहार किया है; इसी कारण शास्त्रकारों ने सप्तपुरियों का जो महत्व वर्णन किया है, वह अवर्णनीय है। सप्तपुरियों की पवित्र तीर्थ-यात्रा करना प्रत्येक आस्तिक हिन्दू का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये।

वैसे भी तीर्थों और विशेषतया उपरोक्त सप्त-पुरियों में भ्रमण करने से मनुष्य के लिये अनेक लाभ हैं, चित्त शान्त होता है, मन के संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं, सभी सांसारिक वासनायें भस्मसात् हो जाती हैं, हृदय-पटल स्वच्छ हो जाता है, इन्द्रियों का निग्रह होने लगता है, सत्कर्मों की ओर झुकाव होता है, भगवत् चर्चा सुहाने लगती है, शनैः-शनैः उस प्राणी का कर्त्तव्य-मात्र अपने उपास्यदेव के लिये ही होने लगता है—आत्मा पवित्रतम हो जाती है और उसे शीघ्र ही भगवत् प्राप्ति हो जाती है।

वृहस्पति-कुंड [शैलोदक]

[लेखक—साहित्यभूषण चतुर्वेदी श्रीद्वारिकाप्रसादजी शर्मा, एम० आर० ए० एस०]

आज से लगभग पच्चीस-छब्बीस वर्षों पूर्व की बात है। हमें बैकुण्ठ वासी जगद्‌गुरु प्रतिवादि भयङ्कर श्रीमदनन्ताचार्यजी महाराज के कार्य विशेष से बुन्देलखण्ड प्रान्त के अन्तर्गत छतरपुर राज्य में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ के तत्कालीन नृपति बड़े गुणग्राही मिलनसार और परम आस्तिक थे। हमसे उन नृपति से कैसे और किस समय भेंट हुई, इसकी कहानी यद्यपि बड़ी रोचक और मनोरञ्जक है तथापि उसका यहां उल्लेख प्रसङ्ग विरुद्ध है। अतः प्रस्तुत विषय सम्बन्धी कतिपय बातों का उल्लेख करके ही हमें सन्तोष करना पड़ता है।

महाराज ने प्रसङ्गोपात्त "वृहस्पति कुण्ड" की चर्चा की और वहाँ के जल का बड़ा माहात्म्य वर्णन किया। उसे सुन बृहस्पतिकुण्ड के सम्बन्ध में सब बातें जानने की उत्सुकता का उत्पन्न होना अनिवार्य था। अतः महाराज के पुस्तकालय में जो पुस्तक थी उसकी एक प्रति की याचना की, एक प्रति मिली। उसी के आधार पर यह लेख हमने लिखा है।

वृहस्पतिकुण्ड जाने के लिए जी० आई० पी० रेलवे के या तो सतना स्टेशन पर उतरना चाहिए अथवा बांदा और करवी स्टेशनों के बीच अतर्रा रेलवे स्टेशब पर। इन दोनों रेलवे स्टेशनों से बृहस्पतिकुण्ड को रास्ते गए हैं। प्रथम मार्ग से लगभग १॥ या २ मील पैदल चलना पड़ता है और दूसरे मार्ग से ५–६ मील। छतरपुर में मिली पुस्तक साधन तत्र का उमामहेश्वर संवादात्मक एक खण्ड है। इस खण्ड में भारत के समस्त शैलोदक स्थानों का तथा वहां के जलों के गुणों का उल्लेख है। मूल पुस्तक में जैसा शुद्धा-शुद्ध पाठ था, वही हमारे पास जो उसकी प्रति है, उसमें भी है। अतः नीचे हम उसके कुछ श्लोक अविकल उद्धृत करते हैं। कैलास के सुरम्य शिखर पर आसीन माता पार्वती भगवान् शङ्कर से कहती हैं:—

नाना व्याधि समुद्भूतं पीड़ां सम्प्राप्य मानवाः।
कथं शीघ्रं विनिर्मुक्ता भवेयुश्चकलौयुगे ॥

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् शङ्कर कहते हैं—

शृणु देवि परं तत्वं नाना शैलोदकं तथा।
कलौ ते सर्वथा सिद्धिं पवित्रं पापनाशनम् ॥
विष्णुना क्रोड रूपेण भाराक्रान्ताधराभुवा ।
तदा देहात् समोभूताः प्रस्वेदात् भूरि पर्वताः ॥
प्रस्वेदा पतिता भूमौ नाम्ना भेदा भवत्तदा।
शैलोदक मिति प्रोक्तं घृतोदक विषोदकम् ॥
कृष्णोदकं ततोसिद्धि मेवं सत्य मतः परं ।
करस्थ जलमुत्पन्नो जानो दुग्धोदकं वहुः ॥

इन श्लोकों से ग्रन्थ आरम्भ होता है और समाप्ति के श्लोक ये हैं:—

नहि दुःखं भवेत्किञ्चि देहि लोके कदाचन।
सर्वज्ञो गुण सम्पन्नोविद्या चैव महाबलौ ॥
सर्व व्याधिविनिर्मुक्ता जीवेदा चद्र तारकम्।
आयसे मृन्मये पात्रे पाचनं तत्र कारयेत् ॥
ताम्र तारेण कर्त्तव्यं कलौ शास्त्रं प्रवर्त्तयेत् ॥

इस पुस्तक के अनुसार सतयुग के आरम्भ में जब श्रीविष्णु भगवान् ने बाराह का रूप धारण किया था, तब पृथ्वी उनके बोझ से विकल हुई थी। बड़े पर्वतों से युक्त शरीर वाली यह पृथ्वी उस बोझ से पसीने से लथ-पथ होगई। वही पसीना पर्वतों में होकर बहता हुआ शैलोदक कहलाता है। इस शैलोदक के घृतोदक, कृष्णोदक, दुर्गन्धोदक आदि भेद हैं।

इन शैलोदकों के स्थानों का निरूपण करते हुए बृहस्पति कुण्ड के सम्बन्ध में कालिञ्जर से दक्षिण दो योजन पर बृहस्पतिकुण्ड तीर्थ है। इसका

जल तत्काल वेधी है। इसका गुण देव दुर्लभ सुख देने वाला है। इसकी पहिचान यह है कि वर्षा में इस कुण्ड के जल का रङ्ग पीला, जाड़े में लाल और गर्मी में काला हो जाया करता है। यदि इस कुण्ड के जल में खार पचाकर उसका सेवन किया जाय तो बलि पलित रोग एक मास में दूर हो। एक भाग गन्धक, ४ भाग शैलोदक, ८ भाग दूध, ३ भाग घी और दो भाग शहद मिलाकर एक पल, छः मास तक नित्य सेवन करै, तो बलि पलित रोग नष्ट हो और हजार वर्ष की आयु हो।

इसी प्रकार अनेक रोगों पर अनेक प्रयोगों का इस ग्रन्थ में उल्लेख कर बृहस्पतिकुंड तीर्थ का अलौकिक प्रभाव वर्णन किया गया है।

श्रद्धेय परमहंस जानकी प्रपन्नजी जिनकी अवस्था अब १०० वर्ष के लगभग है। इस कुंड के ऊपर पहाड़ पर रहते हैं और वहीं इनकी खेती होती है।

हमसे कहा गया है कि इस कुण्ड में स्नान करने से परमहंसजी की पूर्व जन्म की विद्या जागृत होगई है। बाल्यावस्था से अद्यपर्यन्त जिन ग्रन्थों को कभी पढ़ा भी न था, वे ग्रन्थ इस तीर्थ के प्रभाव से आपको हस्तामलकवत हो गए हैं। इस कुंड के जल का प्रयोग करने के पूर्व कुछ अनुष्ठान भी करना पड़ता है। इस अनुष्ठान की विधि इसी पुस्तक में दी हुई है।

कई बार हमारी इच्छा इस स्थान को देखने की हुई किन्तु हमारी यह इच्छा अभी तक पूरी नहीं हो सकी। शोधकों को इस कुण्ड के जल की परीक्षा लेकर लोक हित साधन करना चाहिए।

श्रीवृन्दावन धाम

[रचयिता—श्रीयुत पं० नत्थीमलजी उपाध्याय "बेचैन," कविरत्न]

योगेश्वर श्रीकृष्ण जहाँ पर करते हैं सर्वदा विहार।
जिस धरणी ने सबसे ज्यादा पाया व्रजनन्दन का प्यार ॥
जिसकी गली-गली पावन है, कण-कण है जिसका अभिराम।
धाम-धाम में करते हैं जहाँ क्रीड़ा मञ्जुल राधेश्याम ॥
कालिन्दी तट पर कुञ्जों में गोपीगणयुत रासबिलास।
रचकर, दिया कृष्ण ने सबको प्रयत प्रेम का पूर्ण प्रकाश ॥
ऐसे वृन्दावन की महिमा सब प्रकार है अकथ अपार।
जिसकी शोभा के समक्ष हरि भूल गये वैकुण्ठ-विहार ॥
सुर-दुर्लभ यह तीर्थ मनोरम पाप ताप हरने वाला।
भूला नहीं एक पल को भी, जिसको व्रज का वह ग्वाला ॥
ऐसे कहाँ पुण्य हैं मेरे जिनसे हो वृन्दावन वास।
जीवन में दुख ही दुख है बस, कैसे पहुँचू प्रभु के पास ॥

द्वादश—ज्योतिर्लिङ्ग

[*लेखक—पं० श्रीवेणीमाधवशरणजी द्विवेदी 'माधव'*]
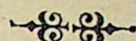
बहुत प्राचीन काल से—सम्भवतः सृष्टि के आदि काल से ही, भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश रहा है। उसी समय से इस देश में आध्यात्मिक तथा तत्त्वदर्शी और मानव-जीवन का कल्याण चाहने वाले, परोपकारी महात्माओं की एक शृङ्खला-सी चली आती है। इन महात्माओं के प्रादुर्भाव और उनके ज्ञान तथा उपदेशों के कारण ही यहाँ पर अनेक प्रकार के मत, सम्प्रदाय तथा तीर्थ विशेष हैं। इन तीर्थों में मुख्यतः चार धाम, सप्तपुरी, ५१ शक्तिपीठ, द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग और दक्षिण के पञ्च-लिंग इत्यादि हैं। यदि इनका सूक्ष्म रूप से भी वर्णन किया जाय तो एक पुस्तक तैयार हो सकती है। अस्तु, यहाँ पर केवल द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग के विषय में ही चर्चा की जाती है।

प्रश्न यह उठता है कि—शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु यह तीन देव हैं अथवा एक? इसका उत्तर यह है कि तीनों एक देव हैं। केवल तीन प्रकार के कार्यों अथवा गुणों के कारण ही ये नाम रक्खे गये हैं। जब परमात्मा सृष्टि उत्पन्न करता है, तब ब्रह्मा जब पालन करता है तब विष्णु और जब हमारे कृत्यों का दण्ड देता है, तब शिव के नाम से पुकारा जाता है। ईशान, ईश्वर, महादेव, शङ्कर, सदाशिव, शम्भु, भोलानाथ, विश्वनाथ; पार्वतीपति, रुद्र आदि अनेक नाम श्रीसदाशिव के हैं। शिव का अर्थ कल्याण तथा रुद्र का अर्थ भयङ्कर या उग्र है। जिस प्रकार अग्नि अन्न को पका कर लोगों के लिये भोज्य पदार्थ तैयार करके, पोषण करती है और वही अग्नि उसे जलाकर राख भी कर देती है, उसी प्रकार सदाशिव लोगों का पोषण तथा संहार करते हैं।

'आर्याहस्कम्भ उपमस्य नीले यथा विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'

(ऋग्वेद १० । ५-५)

इस वेद-वाक्य में शिव का रूप अग्नि के समान माना गया है। अग्नि का स्वरूप उभड़ा हुआ, लम्बा व गोल होता है, उसी प्रकार का स्वरूप शिव की मूर्त्ति का है। अग्नि के आस-पास ज्वाला होती है, अतः शिवजी की जटा ज्वलाओं के अनुसार हैं। अग्नि का अर्थ ज्योति है और और लिङ्ग का अर्थ चिन्ह है। इन दोनों का संयोग ज्योतिर्लिङ्ग हुआ, जिसका अर्थ ज्योति का चिन्ह हुआ। शिव का यह स्वरूप निर्गुण तथा गुणातीत है। 'निर्गुणं ज्ञेयं सगुणं ध्येयं' निर्गुण स्वरूप जानने के लिये है और सगुण स्वरूप ध्यान करने के लिये है। ज्योतिर्लिङ्ग १२ हैं। इनके अतिरिक्त प्रायः सभी गाँवों में शिव का मन्दिर देखने को अवश्य मिलता है। इससे प्रकट होता है कि शिव-पूजा का वर्त्तमान स्वरूप बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है।

अब प्रश्न यह है कि ये १२ ज्योतिर्लिंग कौन हैं और कहाँ-कहाँ पर हैं? इसी का दिग्दर्शन कराना इस लेख का मुख्य अभीष्ट है।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालं ओंकार ममलेश्वरे ॥
प्रपल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुका वने ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे।
हिमालये तु केदारं घृष्णेशं च शिवालये ॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ॥

इन श्लोकों के अनुसार प्रत्येक ज्योतिर्लिंग का परिचय क्रमशः निम्न प्रकार है:—

(१) सोमनाथ—काठियावाड़ में बेरा-वल के पास प्रभास क्षेत्र में यह मन्दिर स्थित

सन् १२०४ ई० में महमूद ग़ज़नवी ने इसे लूटा था। वर्तमान नवीन मन्दिर इन्दौर की रानी अहिल्याबाई ने बनवाया था।

(२) **मल्लिकार्जुन**—मद्रास प्रान्त में बेजवाड़ा नामक नगर है। उसके पास मङ्गलागिरि में विनुकुक्ष्का स्टेशन से तीन मील की दूरी पर पहाड़ के ऊपर मल्लिकार्जुन का मन्दिर है। यह कृष्णा नदी के उद्‌गम के पास है

(३) **महाकालेश्वर**--क्षिप्रा नदी के पास उज्जैन में एक तालाब के किनारे महाकालेश्वर का मन्दिर है

(४) **ओंकारेश्वर**—नर्मदा नदी के किनारे खण्डवा के पास मोरटक्का नाम का स्टेशन है। यहाँ से सात मील की दूरी पर नीमाड़ ज़िले में मान्धाता नाम का एक गाँव है। स्टेशन से अमलेश्वर तक मोटर मिलती है। वहाँ से नाव में बैठकर जाना पड़ता है। नर्मदा और कावेरी के बीच में मान्धाता नाम का टापू है। उसी में ओंकारेश्वर महादेव का मन्दिर है।

(५) **वैद्यनाथ**—(क) बिहार प्रान्त में ई० आई० आर० का जसीडीह नामक एक जङ्कशन स्टेशन है। यहाँ से ब्राञ्च लाइन वैद्यनाथ धाम तक जाती है। इसको देवगढ़ भी कहते हैं। यह कहा जाता है कि रावण सदाशिव को कैलाश से लङ्का ले जा रहा था, रास्ते में थक कर वह वहीं बैठ गया था। इस कारण शिवजी भी यहीं रह गये।

(ख) दक्षिण में हैदराबाद राज्य में गोदावरी के किनारे गङ्गाबेक नाम का एक ग्राम है। यहाँ से १६ मील की दूरी पर परली गाँव है। वहाँ पर एक पहाड़ के ऊपर वैद्यनाथ महादेव का बड़ा शिवालय है। इसको दक्षिणी लोग ज्योतिर्लिङ्गों में गिनते हैं। परन्तु प्रमाण केवल बिहार प्रान्त के वैद्यनाथ मन्दिर का मिलता है।

(६) **भीमशङ्कर**-(क) कामरू देश में गौहाटी के एक मील के ऊपर यह मन्दिर है। कामरू या कामाक्षा का दूसरा नाम डाकिनी भी है। यह स्थान देखने योग्य है।

(ख) बम्बई प्रान्त में जी० आई० पी० का नेरुल नाम का स्टेशन है। यहाँ से १६ मील पर भीमशङ्कर का मन्दिर है।

(७) **रामेश्वर**—मद्रास प्रान्त में मदुरा ज़िले के अन्तर्गत रामेश्वर नाम का रेलवे स्टेशन है। यहाँ पर रामेश्वरजी का एक विशालकाय मन्दिर है। यहीं पर एक तीन मील का मीठे जल वाला पक्का तालाब है।

(८) **नागेश्वर**—(क) दक्षिण हैदराबाद राज्य में गोदावरी के किनारे गङ्गाखेड़ नामक गांव है, जहाँ पैठण से जाया जाता है। गङ्गाखेड़ से ३० मील ऊपर अवढा ग्राम है। यहाँ पर नागेश्वरजी का विशाल मन्दिर है। इसी स्थान का नाम दारुक वन है। इस वन में एक शिव-भक्त वैश्य को एक राक्षस पीड़ा देने लगा। तब शिवजी ने प्रकट होकर उस राक्षस का हनन किया था। इसी से इसका नाम नागेश पड़ा।

(ख) द्वारिकापुरी के पास, गोपी तालाब से तीन मील आगे भी एक नागेश्वर का शिवालय है, परन्तु इसके ज्योतिर्लिंग होने का शास्त्रीय प्रमाण नहीं पाया जाता।

(९) **विश्वनाथ**—युक्तप्रान्त में गङ्गा के किनारे काशी नगरी है। यहाँ पर विश्वनाथजी का विशाल मन्दिर है। औरङ्गज़ेब ने प्राचीन मन्दिर को तुड़वा डाला था और नया मन्दिर इन्दौर की अहिल्याबाई ने बनवाया था। पुराणों में कथन है कि जिसने गङ्गा-स्नान न किया और काशी-विश्वनाथ का दर्शन न किया, तो वह कैसे हिन्दू कहा जा सकता है? अतएव प्रत्येक हिन्दू को काशी अवश्य जाना चाहिये।

(१०) त्र्यम्बकेश्वर-बम्बई प्रान्त में जी० आई० पी० के स्टेशन नासिक से सत्रह मील की दूरी पर त्र्यम्बक नाम का गांव है। यहाँ के लिये स्टेशन से मोटर मिलती है। सन् १७८६ ई० में नाना साहब पेशवा ने यह मन्दिर बनवाया था। यहाँ महादेवजी का रत्नजटित मुकुट और बहुमूल्य रथ देखने योग्य है।

(११) केदारेश्वर-संयुक्त प्रान्त में हिमालय पर्वत के ऊपर हरिद्वार से १७-१८ दिन के पैदल रास्ते पर मन्दाकिनी और सरस्वती नदी के बीच में केदारपुरी नाम का स्थान है। वर्ष के अधिकांश भागों में बर्फ से ढका रहता है। बैशाख से आषाढ़ मास तक श्रीकेदारेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त होता है। व्यासजी की आज्ञानुसार पाण्डव लोग अपने पाप-निवारण के लिये यहाँ आये थे।

(१२) घृष्णेश—इनको घृष्णेश्वर महादेव भी कहते हैं। दक्षिण भारत में दौलताबाद से ६ मील की दूरी पर, पहाड़ी की तलहटी में बेरूिल नाम का गाँव है। यहाँ से आधे मील पर नदी के किनारे घृष्णेश्वर महादेव का विशाल मन्दिर है। यहाँ पर एक बड़ा तालाब है और आस-पास जङ्गल है। यहाँ के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि—एक सुधर्मा नाम का ब्राह्मण यहाँ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुदेहा था। इस स्त्री से कोई सन्तान नहीं होती थी। इस कारण सुधर्मा ने अपना दूसरा विवाह घृष्णा नाम की स्त्री से किया। घृष्णा बहुत शिव-भक्ता थी। वह प्रतिदिन १०८ बार मिट्टी का शिव-पार्थिव बनाकर पूजा करती थी और अन्त में उनको इसी तालाब में पधराती थी। जब एक लक्ष शिव का पूजन समाप्त होगया, तो उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र को सुदेहा ने मार कर उसी तालाब में डाल दिया। जब यह खबर घृष्णा को मालूम हुई, तो वह तनिक भी विचलित नहीं हुई और नियमानुसार पूर्ववत् शिव-पार्थिव का पूजन करती रही। कुछ समय के पश्चात् एक दिन घृष्णा ने उसी तालाब के तट पर अपने बच्चे को घूमते हुए देखा। उसी समय शिवजी प्रकट होकर "माँग-माँग" कहने लगे। तब घृष्णा ने कहा—"प्रभो ! आप यहीं बसिये।" बस तभी से उनका नाम घृष्णेश्वर पड़ा और उस तालाब को शिवालय कहने लगे। अस्तु—

द्वादश ज्योतिर्लिंगों के सम्बन्ध में यह संक्षिप्त संकेत मात्र है। इससे अधिक विस्तृत ज्ञान के लिये पाठकों को तीर्थ यात्रा तथा तत्सम्बन्धी ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये। प्रत्येक हिन्दू को विशेषत: सनातनधर्मी व्यक्ति को द्वादश ज्योतिर्लिंगों का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। लेखक को प्राय: ऐसे मनुष्य मिले हैं, जो कि शिव की भक्ति व पूजा लगातार पचासों वर्षों से करते चले आये हैं, परन्तु उन्हें भी द्वादश ज्योतिर्लिंगों का कुछ भी ज्ञान नहीं है। यही नहीं, वे शिव का अर्थ भी नहीं जानते। अपनी संकुचित मनोवृत्ति तथा अज्ञान के कारण वे शिव और विष्णु को पृथक्-पृथक् मानते हैं और कुछ तो एक-दूसरे को बुरा भला भी कहा करते हैं। यह अत्यन्त दु:ख और लज्जा की बात है। मनुष्य की विशाल दृष्टि तथा विशाल हृदय होना चाहिये। वेदों में कहा है—"एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति" अर्थात् परमात्मा एक है, परन्तु उसका आचार्य लोग अपने-अपने मतानुसार या ज्ञानानुसार अनेक नाम धर देते हैं। अत: विष्णु और शिव में कोई अन्तर नहीं है। अन्त में यही निवेदन है—

यह वरदान न आन, शिव तुम सन चाहत चहौं।
कृष्ण कमल पद ध्यान, रहै हमारे उर सदा ॥

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

श्रीकाशी और काशीस्थ कतिपय शिव-लिंग

[लेखक—पं० श्रीश्यामनारायणजी मिश्र, 'श्याम']

चढ़ि सूल, पुलै, पुर-बासिन लै,
सिव-धाम मिलै--अविनासी अहै ।
बिनु जल जहाँ चिर-शान्ति मिलै--
बिनु दाम की मोच्छ लौं दासी अहै ॥
भव, तारत हैं भव-सिन्धु, बसे जहँ,
ऐसी महा-सुख--रासी अहै ।
जम की गम ना जहँ, सोक-असी,
सुभ-धाम जो 'श्याम' सो कासी अहै ॥

जो पावन-पुरी, शेष संसार की भाँति, शेष भगवान् के फण पर स्थित न होकर, भगवान् त्रिशूली के त्रिशूल पर स्थित है ! जिस अशरण-शरणदात्री पुरी के संसार से संपर्क न रखने के ही कारण, सत्य-संध-सम्राट्-हरिश्चन्द्र को जहाँ अपने वचन पूर्ण करने का सुअवसर मिला । जिस नगरी का महाप्रलय में भी नाश नहीं होता, जो महा-प्रलय में त्रिशूल पर उठकर, परात्पर-धाम-श्रीमहा कैलास में लीन हो जाती है । जहाँ विधि का विधान नहीं ! कर्म-विपाक नहीं ! किसी को स्वर्ग-नरक से प्रयोजन नहीं—शरीर छोड़ा और शिव-तत्व हुए ! हाँ, प्राणी पुनीत-पथ छोड़कर उच्छृङ्खल न हो जावें, इसलिये इतना स्थानीय-विधान अवश्य है, कि पुण्यात्मा प्राणी तो तुरन्त मुक्त हो जाते हैं, परन्तु पापात्मा-जीव भैरव-यातना भोगकर परम-गति प्राप्त करते हैं । जहाँ सातों पुरियाँ, चारों धाम निवास करते हैं । यावत् लिङ्ग, देव-विग्रह, पुण्यक्षेत्र, सरिता और सरोवर हैं, जो सभी १५ कलाओं से जहाँ रहते हैं, शेष केवल एक-एक कला से ही अपने स्थानों पर स्थित हैं । जहाँ की यात्रा से समस्त तीर्थों की यात्रा का फल प्राप्त हो जाता है । जिस पावन-पुरी और उस पुरी में विराजमान श्रीशिव-लिङ्गों के यत्र-तत्र गुण गाकर भगवान् वेदव्यास तक को संतोष नहीं हुआ और उन्हें पृथक् से श्री 'काशी-खण्ड' रचना पड़ा, और यह लिखना पड़ा—

विश्वेश्वरो यत्र न तत्र चित्रं धर्मार्थकामामृतरूपरूपः ।
स्वरूपरूपः स हि विश्वरूपस्तस्मान्न काशीसदृशी त्रिलोकी ॥
(का० ख० अ० ३)

'काशी मरणान्मुक्तिः तथा 'भुक्ति मुक्ति प्रदा काशी, सर्वदा शंकरप्रिया' (श्रीशिव पुराण) यह सिद्धान्त निर्विवाद है । अतएव लेख का कलेवर न बढ़ाकर, केवल २-३ प्रमाण इस बात की पुष्टि के देकर ही सन्तोष करूँगा—

बृहस्पतिरुवाच—अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देव यजनं, सर्वेषां भूतानाम् ब्रह्मसदनम् । (जाबालोपनिषद् १)

"इस पुण्यक्षेत्र अविमुक्त क्षेत्र (जिसका त्याग भगवान् शंकर कभी नहीं करते) में सब देवता भगवान् का पूजन करते हैं और प्राणिमात्र के लिये यह क्षेत्र ब्रह्मलोक है" ।

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ।
दर्शनाद्देवदेवस्य ब्रह्महत्या प्रणश्यति ।
प्राणानुत्सृज्य तत्रैव मोक्षं प्राप्नोति मानवः ॥
(श्रीमद्भागवत १२ स्कं०)

श्रीसूतजी कहते हैं कि समस्त क्षेत्रों में काशी उत्तम है । देवाधिदेव भगवान् शंकर के दर्शन से ब्रह्म-हत्या भी नष्ट हो जाती है और इस पुरी में प्राण-परित्याग से प्राणी परम-पद प्राप्त करता है ।

जो गति अगम महामुनि गावहिं ।
तव पुर कीट-पतंग समावहिं ॥
(विनय पत्रिका)

श्रीकाशीजी के, मृत्युलोक को पवित्र करने के लिये, अवतीर्ण होने की अनेक कथाएँ हैं । मैं केवल, दो कथानकों का सारांश मात्र देकर, सन्तोष

करूँगा। श्रीमच्छिव महापुराण में लिखा है, कि सृष्टि के आरम्भ में सबसे पहिले भगवान् आशुतोष ने, लोक-कल्याणार्थ श्रीकाशी को अपने त्रिशूल पर से उतार कर मृत्युलोक में रख दिया, जिससे कि कर्म पाश बद्ध जीव उनके दर्शन करके मुक्त हो सकें। श्रीब्रह्मवैवर्त पुराण का कथानक-सार यह है। भगवान् विष्णु का श्रीमुख वाक्य है - जब मैंने लोक रक्षा के निमित्त, भगवान् श्रीसदाशिव का स्मरण किया, तो वे प्रादेशमात्र लिङ्ग रूप धारण कर, मेरे हृदय से बाहर आगये और वर्द्धमान होते-होते पाँच कोस के हो गये। वे परं ज्योति के रूप में, आकाश में छत्राकार छागये। उसी परं ज्योति को वेद और लोक में काशी कहा गया है। वह कभी छत्राकार, तो कभी दण्डाकार, कभी लिङ्गाकार, तो कभी पिण्डाकार. इत्यादि अनेक रूपों में दृष्टि-गोचर होती हैं।

अब 'कतिपय' लिङ्गों का वर्णन करूँगा, समस्त पुराण प्रसिद्ध लिङ्गों का वर्णन मेरे लिये तो त्रिकाल में भी असम्भव है।

श्रीविश्वेश्वर--यह ज्योतिर्लिङ्ग, द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। इसका कारण यही है कि एक तो जैसा ऊपर लिखा जा चुका है- पञ्चक्रोशात्मिका श्रीकाशी ही वास्तव में मूर्तिमान शिवलिङ्ग है, जिसका दर्शन सर्व प्रथम भगवान् नारायण और पितामह ब्रह्माजी ने किया था, इस पर श्रीविश्वेश्वर लिङ्ग की स्थापना तो काशीजी की ही प्रार्थना पर भगवान् शङ्कर ने स्वयं निज कर-कमलों से की थी।

इत्येवं प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन शंकरः।
लोकानामुपकारार्थम् तस्थौ तत्रैव सर्वराट्॥
(शि० पु० ४ सू० अ० २७)

और काशी में स्वयम् आशुतोष भगवान्, भगवान् विष्णु तथैव ब्रह्मदेव इत्यादि समस्त देवगणों समेत सदैव के लिये स्थित होगये।

वर्तमान मन्दिर प्रातः स्मरणीया महारानी श्रीअहिल्याबाई ने निर्माण करवाया था और वर्तमान विश्वेश्वर लिङ्ग की स्थापना भी इन्हीं देवी द्वारा हुई थी। प्राचीन मन्दिर तो आततायी औरंगजेब ने ध्वंस कर दिया। इस विषय में एक प्रसंग पुराणों में और आया है। वह इस प्रकार है: -कि यह नियम सदैव से चला आता है कि तीन युगों में तो यह पावन-पुरी, विश्वनाथ-पुरी रहती है, परन्तु कलियुग में अन्नपूर्णापुरी हो जाती है। इससे भुक्ति-मुक्ति का निरन्तर सदावर्त बटने में न तो रंच मात्र अन्तर ही पड़ता है और न कभी भगवान् विश्वनाथ अपनी पुरी ही को छोड़ते हैं, इसी कारण इसका नाम अविमुक्त पुरी, तथापि नियमानुसार विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग तिरोहित हो जाता है। भगवान् की लीला विचित्र है। कदाचित् औरंगजेब के समय से इस महालिंग के तिरोभाव होने का यही रहस्य हो। पुराने मन्दिर का पिछवाड़ा अब भी यथा-पूर्व विद्यमान है, उसको देखकर हृदय विदीर्ण होने लगता है। इस जीर्ण-शीर्णावस्था में भी वह आर्य-शिल्पकला का सजीव चित्र है। जो सभी शिव भक्तों के देखनेयोग्य है।

यहाँ पर शयन-आरती-जो रात्रि में लगभग १०॥ बजे होती है, बहुत ही भावोत्पादक होती है। उस समय, प्रायः, भीड़ नहीं रहती और १००,५० प्रेमी भक्त ही रह जाते हैं। इस समय के आनन्द का वर्णन मेरी लेखनी की शक्ति से बाहर है। पल-पल रोमाञ्च होता है, इतना ही कह सकता हूँ।

माँ अन्नपूर्णा--माँ के स्वर्ण-विग्रह के दर्शन तो वर्ष भर में केवल ३ दिन कार्तिक कृष्णा १४, ३० तथा कार्तिक शुक्ल १ को ही होते हैं। यह विग्रह मन्दिर के ऊपरी भाग में प्रतिष्ठित है, वहीं पुजारी पूजन करते हैं, दूसरा विग्रह नीचे के भाग में है और यहीं सदैव दर्शन हुआ करते हैं। माताजी का मन्दिर बहुत विशाल है। इसी मन्दिर में, हाल ही में, श्रीराम-पञ्चायतन, श्रीराधा-माधव, श्रीगङ्गावतरण, श्रीगौरीशङ्कर, श्रीनृसिंह भगवान्, श्रीमहाकाली आदि के दिव्य-विग्रहों की स्थापना होगई है। यह बड़े ही भव्य एवं आकर्षक हैं, घण्टों

निर्निमेष देखने पर भी तृप्ति नहीं होती।

श्रीव्यासेश्वर—एक बार, भगवान् वेदव्यास अनेक तीर्थों का पर्यटन करते हुए श्रीकाशी पहुँचे और वहाँ—

स्थापयामास पुण्यात्मा लिङ्गं व्यासेश्वराभिधम्।
यद्दर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः॥
लिं० पु० ४४ अ० ५७

श्रीव्यासेश्वर शिव-लिङ्ग की स्थापना की, जिसके दर्शन मात्र से विप्र-विद्या-वारिधि हो जाता है।

श्रीमध्यमेश्वर—उपरोक्त कथानक के पश्चात्, भगवान् वेदव्यास के चित्त में ग्रंथ रचना का विचार हुआ। उन्होंने सोचा कि किस लिङ्ग, अथवा देवी-देवता का अर्चन करने से मुझ में यह शक्ति आवेगी। तब भगवान् भूतभावन ने प्रकट होकर कहा कि आप श्रीमध्यमेश्वर लिङ्ग की सेवा कीजिये—

अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वर संज्ञकः।
अस्याराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः॥

इनकी सेवा से बहुतों को सिद्धि प्राप्त हो चुकी है। यह दिव्य लिङ्ग, कम्पनीबाग से उत्तर, श्रीराजा शिवप्रसादजी की बारादरी के निकट है। यहाँ बहुत कम यात्री पहुँचते हैं। हमारा अभाग्य! और क्या कहूँ?

श्रीबृहस्पतीश्वर—इस लिङ्ग को श्रीअङ्गिरसजी ने स्थापित किया था और इसी की सेवा करके, उन्होंने अपार-बुद्धि एवं देव-गुरु बृहस्पति का पद प्राप्त किया। यह लिङ्ग, संकटाघाट पर है और इसका माहात्म्य इस प्रकार वर्णन किया गया है—

अस्य संदर्शनादेव प्रतिभा प्रतिलभ्यते।
आराध्यधिषणेशं वै गुरुलोके महीयते॥

इनके दर्शनमात्र से प्रतिभा प्राप्त होती है, और आराधना से बृहस्पति लोक।

श्रीबुधेश्वर—बुधजी ने इस लिङ्ग की स्थापना और सेवा से सब नक्षत्रों से ऊपर लोक, और ग्रहों में स्थान पाया। इस लिङ्ग का फल इस प्रकार लिखा है—

काश्यां बुधेश्वर समर्चन लब्ध बुद्धिः;
संसार सिन्धुमधिगम्य नरोह्यगाधम्।
मज्जेन सज्जन विलोचन चन्द्रकान्तिः;
कान्ताननस्त्वधिवसेच्च बुधेऽत्र लोके॥
स्कं० पु३ का० खं १५-६६

यह लिङ्ग भी सङ्कटाघाट पर है यहीं पर प्रायः समस्त ग्रहों द्वारा स्थापित लिङ्ग है।

श्रीॐकारेश्वर—पूर्णभद्र यक्ष ने सन्तान-हीन होने पर, अपनी पत्नी सुवर्ण कुण्डला के परामर्श से, गीत-वाद्य द्वारा इस लिङ्ग की सेवा करके अपना अभीष्ट सिद्ध किया था (काशी खं० अ० ३२)। यह लिङ्ग मत्स्योदरी से उत्तर कोयला बाजार में है।

श्रीदण्डपाणीश्वर—उपरोक्त यक्ष की तपस्या से जो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ उसका नाम 'हरिकेश' पड़ा। वह बाल्यकाल से ही भगवान् शङ्कर का अनन्य भक्त हो गया। उसकी संसार की ओर प्रवृत्ति ही नहीं हुई। उसने काशी में उग्र तपस्या की। उसके तप पर रीझ कर भगवान् आशुतोष पराम्बिका के साथ प्रकट हुए, यक्ष का स्पर्श किया और यह बरदान दिया कि तुम आज से मेरे क्षेत्र के दण्डनायक हुए और तुम्हारा नाम 'दण्ड-पाणीश्वर' हुआ। इतना ही नहीं, श्रीमुख से इस प्रकार माहात्म्य बतलाया :—

त्वमन्नदः काशि निवासिनां सदा;
त्वं प्राणदो ज्ञानद एक एव हि।
त्वं मोक्षदो मन्मुखसूपदेशत--
स्तवं निश्चलं सद्वसतिं विधास्यसि॥
का० खं अ० ३२--५५

"काशीवासियों के एक मात्र तुम्हीं अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता हुए और मेरे द्वारा उपदेशित तारक मन्त्र के उपदेश से मोक्षदाता भी हो कर, सदैव काशी में निवास करो। यह विग्रह ढुँढिराज से उत्तर ओर जाने वाली गली में है।

श्रीवीरेश्वर—परम शिव-भक्त, मुनि श्रेष्ठ
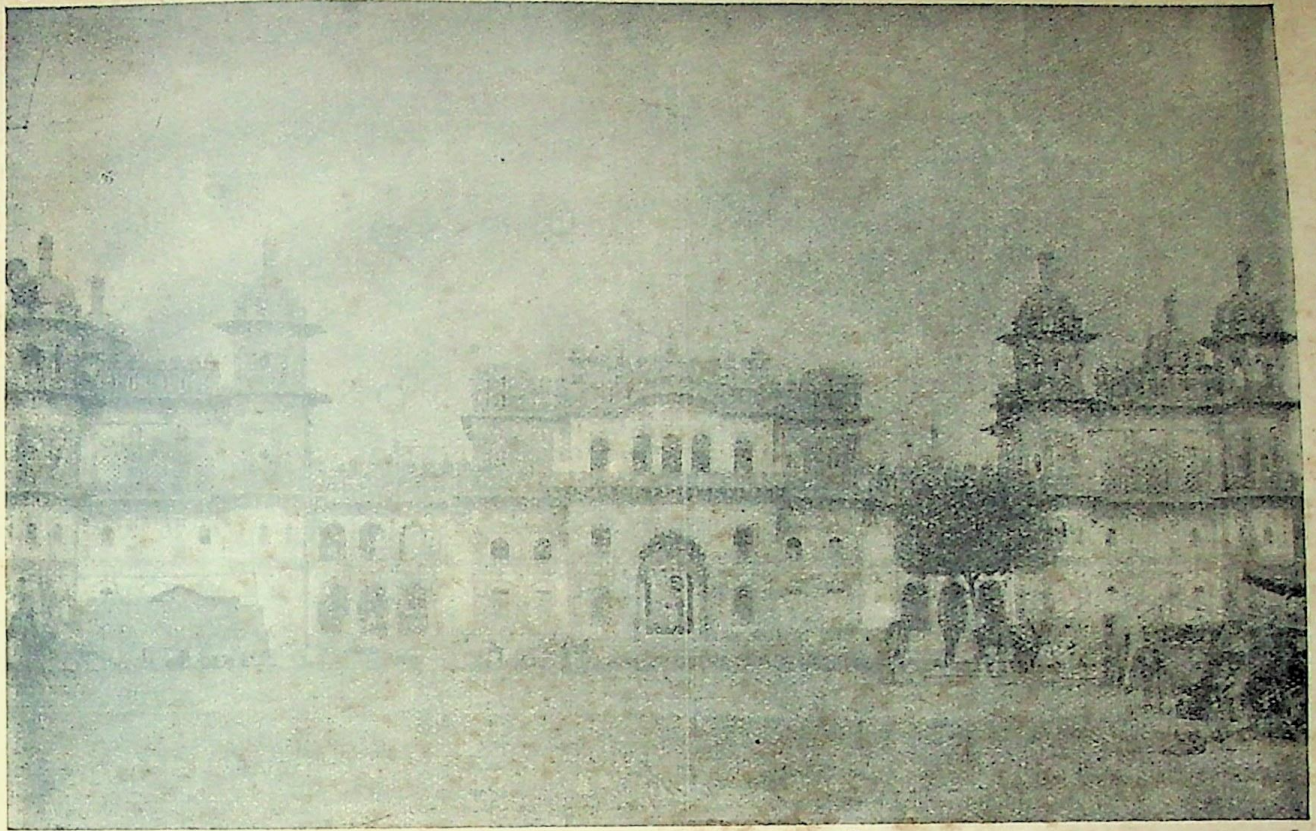
श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर—जनकपुर
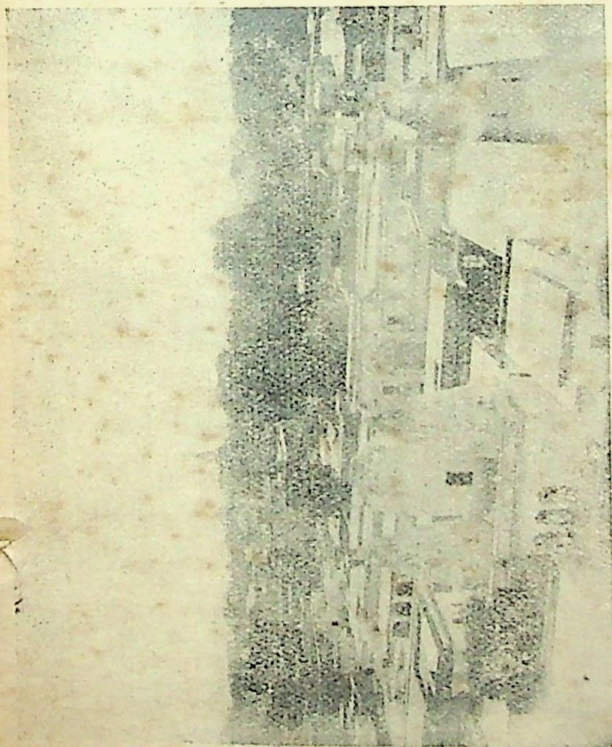
अयोध्यानगरका एक दृश्य

भरत-मन्दिर—चित्रकूट
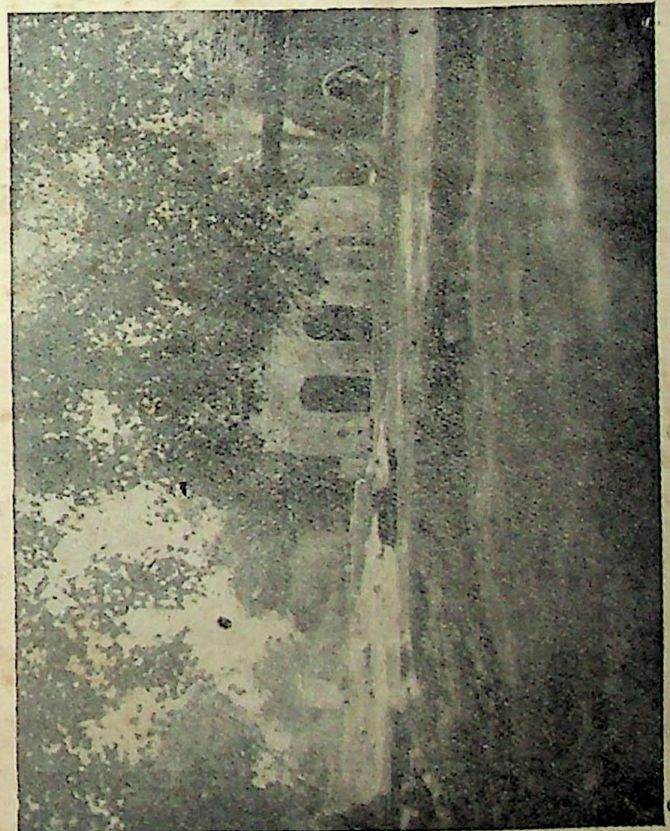
नासिकमें गोदावरीका एक दृश्य
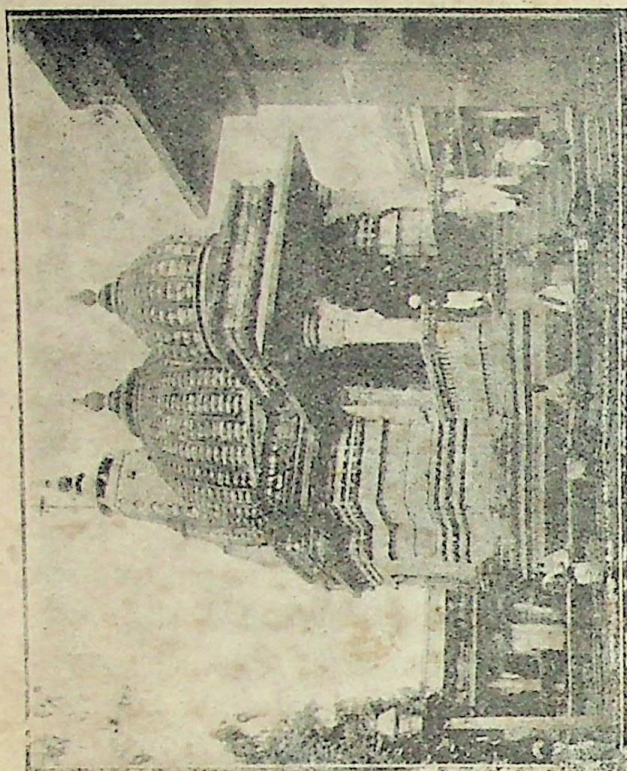
(नासिक) पञ्चवटीमें श्रीराम-मन्दिर
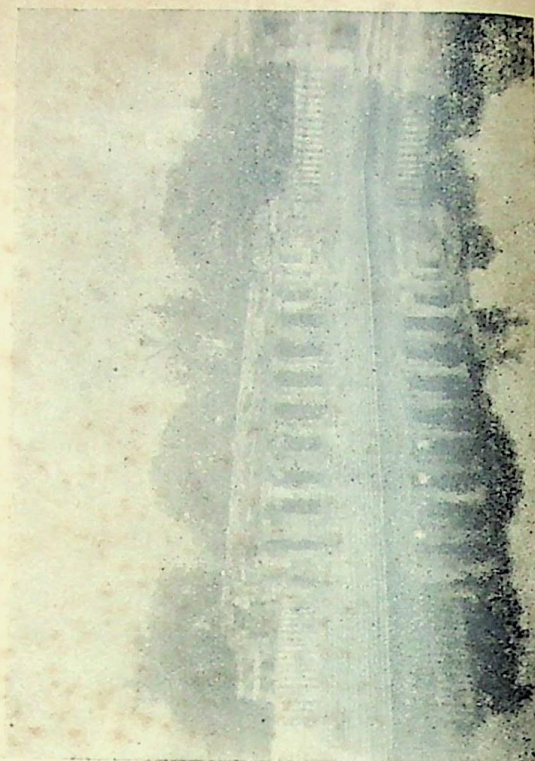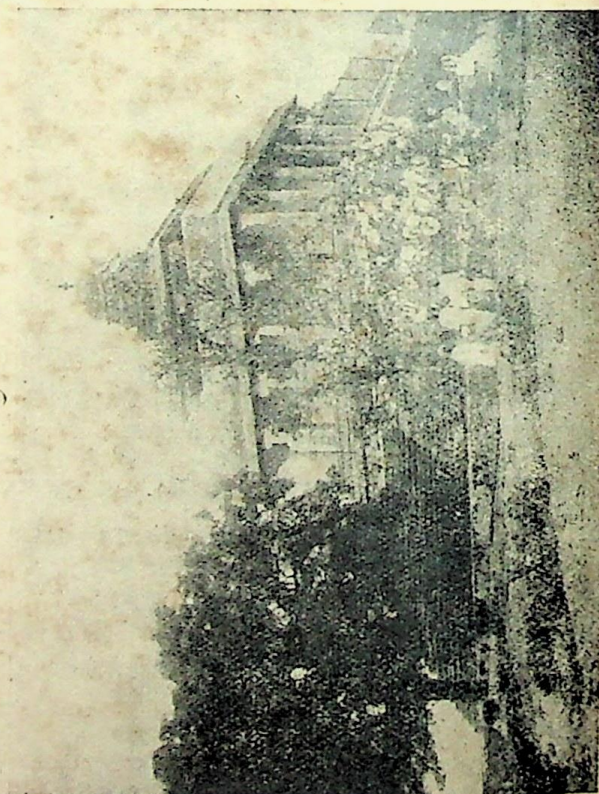
श्रीविश्वानरजी से उनकी धर्म-पत्नी, शुचिस्मिता ने प्रार्थना की कि हे नाथ ! आप मुझे भगवान् शङ्कर के ही समान पुत्र दीजिये ! पहिले तो मुनिवर घबराये, परन्तु भगवान् आशुतोष की अवढर ढरनि-बानि का स्मरण करके पावन पुरी काशी में आकर श्रीवीरेश्वर शिव-लिङ्ग की सेवा की। १३ वाँ मास प्रारम्भ होते भगवान् शङ्कर ने इस लिङ्ग से प्रकट होकर, मुनिराज को वर दिया कि तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा और मैं स्वयम् शुचिस्मिता से गर्भ के बालक-रूप में अवतरित होऊँगा। यह इतिहास शि० रु० सं० ३ अ० १४ में है। यह महा-लिङ्ग सङ्कटाघाट पर है।

श्रीब्रह्मेश्वर—भगवान् ब्रह्मा द्वारा स्थापित—श्रीस्वामिकार्तिकेयेश्वर—कुमार श्रीस्कन्द द्वारा स्थापित श्रीदशाश्वमेध घाट पर है।

श्रीजैगीषव्येश्वर—महर्षि श्रीजैगीषव्यजी काशी में ही रहते थे। उनका नित्य-नियम था कि विश्वेश्वर भगवान् का दर्शन करके ही भोजन करते थे। एकबार विश्वेश्वर भगवान् ने जगज्जननी उमा के साथ मन्दराचल-यात्रा की। महर्षि इस बात को जान गये और उसी दिन से ऐसा कठोर व्रत ले लिया कि जब तक भगवान् लौट न आवेंगे, मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगा ! भगवान् ने लौट कर अपने स्वरूप, नन्दीश्वर को उनके पास भेजा। महर्षि सूख कर काँटा हो गये थे, श्रीनन्दीश्वर ने उन्हें स्वस्थ किया और अवढरनाथ के निकट लिवा लाये। महर्षि ने आकर साम्बसदाशिव भगवान की स्तुति की भगवान् बोले—ऐसा उग्र-तप किसीने नहीं किया, तुम यथेप्सित वर माँग लो जेगीषव्येजी बोले—कृपा नाथ ! अब क्या पाना अवशिष्ट रह गया ? हे वरद ! यदि आपकी वर देने की ही इच्छा है, तो कृपया आप जैगीषव्येश्वर शिव-लिङ्ग में सदैव निवास करें।" इस दिव्य-लिङ्ग का माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है—

जैगीषव्येश्वर नामलिङ्गं काश्यां सुदुर्लभम् ।
त्रीणि वर्षाणि संसेव्य लभेद्योगं न संशयः ॥
नाशयेदघसंघानि दृष्टं स्पृष्ट समर्चितम् ॥

(स्क० पु० का० खं० ६३ श्लो० ६)

जैगीषव्य गुहा-बाबू बाजार के पास, श्रीजागेश्वरजी के निकट है।

श्रीजागेश्वर—इस महालिङ्ग का इतिहास यदि पुराणों में हो, तो वह मुझे शीघ्रता में नहीं मिला, परन्तु यह लिङ्ग है दर्शनीय। इतने स्थूल-लिङ्ग के दर्शन मुझे तो कभी हुए नहीं—संभवतः ३ आदमियों की भुजाओं के घेरे में भी यह दिव्य-विग्रह न आ सकेगा। यहाँ भी बहुत कम यात्री पहुंचते है। एक तो मन्दिर एकान्त में है, दूसरे ठाठ-बाठ भी नहीं, परन्तु प्रबन्ध कर्ता महोदय ने विविध शास्त्रों और वेद के आचार्य एवं अँग्रेजी के विद्वान् रख छोड़े हैं, जो विद्यार्थी चाहें, निःशुल्क यहाँ विद्योपार्जन कर सकते हैं और रह भी सकते हैं। एक आचार्य महोदय ने मुझसे कहा कि यहाँ के सम्बन्ध में २ किंवदन्तियाँ हैं—एक तो यह कि लिङ्ग स्वयम्भू हैं; दूसरे औरङ्गजेब ने लिङ्ग को तोड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु सफल नहीं हुआ मुझे दोनों ही बातें ठीक मालूम हुई। कारण यह कि लिङ्ग, ऊँचा-नीचा (अनगढ़) है किसी संग-तराश का हाथ लगा मालूम नहीं होता।

श्रीतिलभाण्डेश्वर—इस लिङ्ग के दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। लौटने पर सुना कि यह लिङ्ग विश्वविद्यालय से भी आगे है और तिल प्रमाण नित्य बढ़ता है !

श्रीविश्वाराध्य पीठ—यह जङ्गम-बाड़ी के नाम के प्रसिद्ध और वीर-शैव (शिवाद्वैत वाद अथवा शिव शक्ति विशिष्टाद्वैतवाद) सम्प्रदाय का मुख्य स्थान है। जब औरङ्गजेब अनेक मठों को ध्वंस करता हुआ यहाँ पहुँचा, उस समय इस पीठ के अधिपति, प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्रीमल्लिकार्जुन शिव योगी पूजा में लीन थे। पूजन समाप्त होने पर शिष्यों ने उनसे सब हाल निवेदन किया

इन पूज्य महात्मा ने भगवान् से प्रार्थना की और फाटक पर ऐसा विकट रूद्र-रूप दिखलाया कि उस यवन की सेना तितर-बितर होगई और वह स्वयं पागल होकर पृथिवी पर गिर पड़ा और चिल्लाने लगा। 'संत हृदय नवनीत समाना'-महात्माजी ने दयार्द्र होकर उसको क्षमा कर दिया, तब उसने फारसी में, जङ्गम-बाड़ी के नाम पर एक भूमि दान-पत्र लिखा—जो अब तक विद्यमान है। उसका सारांश यह है-'मेरे जङ्गम बाड़ी में जाते ही उस मठ की मूर्ति मुझे सामने खड़ी दिखलाई पड़ी। वह मूर्ति नितान्त काली थी, और उसकी आँखें प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित थीं। मस्तक पर केश बकरे के समान बढ़े हुए थे। आकार छोटा होने पर भी वह भूमि और आकाश में लगी थी। देखकर मैं 'भयभीत होकर शरणागत हुआ हूँ और भक्ति पूर्वक (!) भू-दान करता हूँ'।

भगवान् पूरे नट-नागर हैं! वह न जाने क्या-क्या चरित्र किया करते हैं। औरङ्गजेब ने विभिन्न तीर्थों में, या काशी ही में न जाने कितनी लीलाएँ देखी होंगी। तीन ऐसी लीलाएँ तो मुझ साधारण जीव (Layman) ने इस लेख में ही लिखी हैं—एक हुई श्रीविश्वनाथजी में, दूसरी श्रीजागेश्वरजी में और तीसरी यह।

विभिन्न-पुराणों के मत से काशी में अनेकानेक तीर्थ हैं, प्रधान यह हैं—

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्देकाशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥

(१) श्रीविश्वेश्वर (२) श्रीविन्दु माधव (३) श्रीढुण्ढिराज गणेश। यह विग्रह अन्नपूर्णाजी के मन्दिर से निकट ही है। (४) श्रीदण्डपाणीश्वर (५) श्रीकालभैरव (६) गुहा (७) (उत्तर वाहिनी) गङ्गा (८) अम्बिका अन्नपूर्णा और (९) मणिकर्णिका।

निम्नाङ्कित शिव-लिङ्गों का इतिहास प्रभास, अर्बुद इत्यादि क्षेत्रों में स्थापित होने का मिलता है, परन्तु यह लिङ्ग श्रीकाशीजी में भी विद्यमान हैं।

श्रीपरशुरामेश्वर—मुहल्ला नन्दन साहु में-बिल्कुल सड़क के किनारे।

श्रीवसिष्ठेश्वर—संकटा घाट पर।

श्रीपुष्पदन्तेश्वर—अति प्रसिद्ध 'श्रीशिव महिम्न' के रचयिता श्रीपुष्पदन्त के नाम पर-बंगाली टोला में, श्रीचौसट्टी देवी के निकट।

श्रीलक्ष्मणेश्वर—पञ्चकोशी में।

श्रीकुबेरेश्वर—श्रीअन्नपूर्णाजी के मन्दिर में।

श्रीअग्नीश्वर—आग्नेय घाट पर।

श्रीममेश्वर—संकराघाट की सीढ़ियों पर, यह बहुत ही छोटी मठिया है।

श्रीपाराशरेश्वर—मुहल्ला भदैनी में, श्रीलोला-र्केश्वरजी के पास।

पूज्यपाद, महामना श्रीमालवीयजी महाराज, हिन्दु-विश्वविद्यालय के अहाते में भारतवर्ष का सबसे ऊँचा और प्राचीन हिन्दु-शिल्पकला के जीर्णोद्धार स्वरूप, कई लाख की लागत से एक श्रीविश्वनाथजी का मन्दिर बनवाना चाहते हैं, जिसकी नींव पड़ गई है।

इस लेख के लिखने में मुझे आदरणीय श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ी वाला लिखित, 'शिव-भक्त माल' से बड़ी ही सहायता मिली है। काशी के समस्त शिवलिङ्गों के विषय में लिखा जाय, तो कई विशाल ग्रन्थ तैयार करने पड़ते, अतः—

न्यारी तीन लोकन सों-पुरी सूली सूल-बसी,
जहाँ जन्म पैवे को सुर-नर-मुनि सिहाहिं।
अगम, सुगम करि, कैवल्य मोच्छ-दायिनि-
केवल नगरि, जहँ विधि कौ बिधान नाहिं॥
राउ-रंक, जोगी-भोगी—पावैं सब एक गति,
प्रलै लौं में-धाम-सहित-महा कैलाश जाहिं।
कह कासी-कीर्ति कहि सकत अधम 'श्याम',
जहाँ कीट-पतंग लौं सिव-तत्व हुइ जाहिं॥

वटेश्वर-तीर्थ

[लेखक—वैद्यराज पण्डित श्रीकृष्णशङ्करजी शास्त्री, काव्यतीर्थ]
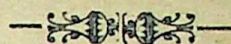
यह स्थान आगरा कमिश्नरी के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों में से एक है। संसार को वाह्य तथा आन्तरिक प्रकाश देने वाले भगवान् भास्कर की आत्मजा, जगन्नियन्ता धर्मराज की भगिनी तथा त्रिलोकीनाथ भक्तसर्वस्व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की प्रेयसी, लोक को तापत्रय से बचाने वाली तथा भुक्ति और मुक्ति को एकमात्र देने वाली भगवती यमुनाजी इसका पद प्रक्षालन करती हुई बहती हैं। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन तथा अद्भुत कथाओं का भण्डार है। वे कथायें केवल भक्तों को ही आनन्द नहीं देतीं, वरन इतिहासज्ञ तथा पुरातत्त्व वेत्ताओं के भी परम प्रयोजन की वस्तु हैं।

धार्मिक दृष्टि से भी यह स्थान परम-पुनीत माना जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के पितामह इसी स्थान पर निवास करते थे, कंस से पूर्व व्रजमण्डल की राजधानी यही नगर था। व्रजभाषा के पूर्व वाली शौरसेनी भाषा का जन्म इसी स्थान से हुआ था।

प्राचीन काल में वटेश्वर यमुना नदी के बायें किनारे पर बसा हुआ था, तथा यमुनाजी का प्रवाह पश्चिम से पूर्व को था जैसा कि प्रायः सब स्थानों में पाया जाता है।

द्वापर युग के अन्त में अर्थात् आज से ५ हजार वर्ष से भी अधिक पूर्व, जब भगवान् कृष्णचन्द्रजी का जन्म हुआ, तब भी यह स्थान गौरव गरिमा सम्पन्न था। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें से दो प्रमाण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

प्रथम यहाँ पर राजा शूरसेन का क़िला था और उन्होंने अपने नाम पर एक नगर बसाया था, जिसका नाम शूरीपुर है। यह स्थान वर्त्तमान वटेश्वर से १ मील दूर है। प्राचीन काल में वटेश्वर तथा शूरीपुर अभिन्न से थे, अर्थात् नगर का एक भाग वटेश्वर और द्वितीय भाग शूरीपुर था।

दूसरे यहाँ एक स्थान कंस कगार के नाम से है, इस स्थान के विषय में ऐसी जन श्रुति है कि यहाँ पर आकर कई धार्मिक महात्माओं को कंस ने त्रस्त किया था।

इसके बाद आज से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व जब कि यहाँ भदौरिया क्षत्रियों का राज्य प्रतिष्ठित था, यहाँ के इतिहास ने पुनः पलटा खाया, और उसी समय के बने हुये वर्तमान वटेश्वर के ध्वंसावशेष राजप्रासाद, राजदुर्ग, प्राचीन इमारतें तथा १०८ मन्दिरों की अविच्छिन्न पंक्तिमूक भाव से खड़ी हुई अपनी गौरव गाथा सुना रही है।

यह अद्भुत कथानक इस प्रकार है कि—आज से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध महाराज बदनसिंहजी भदावर के राजा थे। यह परम आस्तिक तथा शङ्करजी के अद्वितीय भक्तों में थे। इनका वटेश्वर में दुर्ग तथा प्रासाद भी था जो अब भी मौजूद है। यह महाराज कार्तिक शुक्ल पक्ष में वटेश्वरनाथ (शङ्करजी) का एक मेला लगवाते थे, जो आज भी वटेश्वर के मेले के नाम से भारत प्रसिद्ध है।

तत्कालीन काशी नरेश इनके परम मित्र थे। जब वे एक दूसरे से मिले तो दोनों को इस बात का पता चला कि दोनों की ही रानियाँ गर्भवती हैं तथा उन दोनों में आपस में यह निश्चय हुआ कि हम दोनों में यदि किसी एक के पुत्र और दूसरे के पुत्री हुई तो पारस्परिक सम्बन्ध हो जायगा।

महाराज बदनसिंहजी को पूर्ण विश्वास था कि उनके पुत्र ही होगा, परन्तु दैव गति से उनके पुत्री हुई, किन्तु उन्होंने इस बात का किसी को पता नहीं चलने दिया और अपने राज्य में यह घोषित करा दिया कि राजकुमार हुए हैं। कुछ महीनों बाद ही काशी नरेश के पुत्री हुई, जब दोनों बालक विवाह योग्य (उस समय की प्रथा के अनुसार

१२ वर्ष के) हुये तो दोनों का विवाह सम्पन्न होगया। विवाह सम्बन्ध के कुछ दिन बाद जब वे दोनों परस्पर मिले, तो दोनों को उपर्युक्त रहस्य का पता चला। तब दोनों ही परम निर्वेद को प्राप्त हुये। उसी समय काशीनरेश की सुयोग्य पुत्री ने अपने पतिदेव से (जोवस्तुतः स्त्री था पुरुष वेष में रक्खा गया था) कहा कि यदि इस कपट का पता मेरे पिता को चल गया तो हमारे और तुम्हारे पिता में युद्ध होना अनिवार्य है। जिसके परिणाम स्वरूप सहस्त्रों मनुष्यों के प्राण जायेंगे, तथा हम दोनों का जग में परिहास होगा। इसलिये यह उत्तम है कि हम तुम दोनों यमुना में डूबकर जीवन की समाप्ति करदें। यह निर्णय दोनों ने स्वीकार कर लिया और तदनुसार दूसरे ही दिन दोनों वेष बदलकर घर से निकल गये। काशीराज की पुत्री जिसका नाम नारङ्गी था, वटेश्वर से दो मील की दूरी पर यमुना में कूद पड़ी और वह जीवित ही पकड़ली गइ। इस स्थान का नाम आज भी "नारंङ्गी बाया" घाट पुकारा जाता है और जो लोग प्रायः मेले पर वटेश्वर जाते हैं, उन्हें यह घाट पार करना पड़ता है। इधर जिस समय राज कर्मचारियों ने राजा को सूचित किया कि राजकुमार यमुना में डूब गये तो राजा बहुत दुखी हुये और उन्होंने अपने मन में कहा कि राजकुमार ही होते तो डूबते ही क्यों,किन्तु उसी समय राजा को यह आकाश वाणी हुई कि हे राजा तू दुःखी मत हो, वह राजकुमार ही है, उसे शीघ्र निकलवा ले। उसी समय राजपुरुष गये और राजकुमार को निकाल लाये और राजा के सामने उपस्थित किया। राजा ने आकाश वाणी पर विचार करते हुये उसके अङ्ग प्रत्यंगों पर दृष्टि डाली तो वस्तुतः राजकुमार ही पाया, उस समय राजा के हर्ष और आश्चर्य की सीमा न रही और तत्काल ही उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि मैं,जिस स्थान पर यह पुत्र निकला है। उस स्थान पर अपने आराध्य देव भगवान् शङ्करजी का मन्दिर बनवाऊँगा।

जिस समय राजा ने यह प्रश्न उस समय के कारीगरों के सामने रक्खा तो उन्होंने राजा को यह सलाह दी कि, चूँकि यमुना का प्रवाह अति तीव्र है, इसलिये प्रथम तो प्रवाह में मन्दिर बनवाना ही कठिन है, इसके अतिरिक्त प्रवाह में बना हुआ मन्दिर अधिक काल तक टिक नहीं सकता, इसलिये आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये प्रवाह की गति को बदलवा दीजिये और उस स्थान को जहाँ पर पुत्र निकला है, शुष्क करा के मन्दिर की स्थापना कराइये।

महाराज को उक्त बात ठीक प्रतीत हुई और उन्होंने वैसा ही किया अर्थात् यमुना का प्रवाह पूर्व के बजाय पश्चिम कर दिया। इस धारा परिवर्तन के कारण अब वटेश्वर यमुनाजी के "दाहिने किनारे पर है" और उसके स्थान पर वटेश्वर-नाथजी का मन्दिर बनवाया। इन शङ्करजी का नाम वटेश्वरनाथ इसलिये है, कि यह एक वट वृक्ष के नीचे स्थित हैं, जो अति प्राचीन है, इसके बाद महाराज बदनसिंहजू तथा उनके पुत्र पौत्रादि ने वहाँ अनेकों मन्दिर बनवाये। अन्य लोगों के बनवाये हुए भी बड़े-बड़े सुन्दर मन्दिर मौजूद हैं। यद्यपि यहाँ प्राचुर्य भगवान शङ्करजी के मन्दिरों का ही है, परन्तु इस के अतिरिक्त भगवान् कृष्णजी, महावीरजी, गणेशजी, गङ्गाजी, गोकुलनाथजी आदि के मन्दिर भी सुरम्य हैं। शूरीपुर और आधुनिक वटेश्वर के मध्य में प्राचीन वटेश्वर के खण्डहर तथा आदि शक्ति (बड़ी देवी) भगवती का मन्दिर भी उल्लेखनीय है, जो कि स्थानीय एक प्रतिष्ठित पुरुष स्वनाम धन्य स्वर्गीय बलदेव सिंहजी का बनवाया हुआ है। इस मन्दिर के विशाल चबूतरे पर सैकड़ों व्यक्ति होलिकोत्सव पर इकट्ठे होकर देवोत्सव मनाते हैं। इस मन्दिर के सामने सर कुंवर जगदीशप्रसादजी के पूर्वजों का बनवाया हुआ एक मन्दिर तथा अन्यान्य कई मन्दिर हैं, जो इस तपोभूमि की शोभा बढ़ा रहे हैं। इनके अतिरिक्त जैन धर्मावलम्बियों के भी मन्दिर यहाँ बहुत

हैं और एक तीर्थङ्कर का प्रादुर्भाव यहीं शूरीपुर में हुआ था, जिनका एक विशाल मन्दिर, धर्मशाला तथा बग़ीचा इस अरण्य को सुशोभित कर रहा है। यमुनातट पर भी इनका एक मन्दिर अच्छा बना हुआ है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक बात उल्लेखनीय हैं, परन्तु विस्तारभय से उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। साथ ही साथ इतना लिखना आवश्यक है कि जब आश्विन शुक्ला १० सं० १६८१ में यमुनाजी में विशाल बाढ़ आई थी, उस समय यहाँ का प्राचीन प्रवाह खुल गया था, और उस पर बँधा हुआ प्राचीन काल का पुल स्पष्ट दिखाई देने लगा था और प्राचीन काल की बातों को आज की सी प्रतीत करा रहा था। इसी पुल के किनारे प्राचीन काल के बने हुये कई कुएँ भी निकले, जिनमें दो-एक तो इतनी अच्छी हालत में हैं कि अब भी उन पर पानी भरा जाता है। उस प्राचीन प्रवाह में जहाँ कि आज-कल कार्तिक में मेला होता है और अन्य काल में खेती होती है, वह महाराज बदनसिंहजी के नाम से ही बनवाया कह कर पुकारते हैं।

वटेश्वर एक सुन्दर क़स्बा है और इसकी जनसंख्या लगभग २॥ हज़ार है। यमुना के किनारे पर धनुषाकार देव-मन्दिरों की पंक्ति प्रत्येक आगन्तुक के लिये आह्लाद देने वाली है। कार्तिकी का मेला भारत प्रसिद्ध है ही तथा प्राचीन खण्डहरों के तले इसका इतिहास तथा गौरव छिपा हुआ है। प्राचीन तपोभूमि होने में लेश-मात्र भी सन्देह नहीं। प्राक्तन ब्रह्मर्षियों द्वारा वाजपेय यज्ञ यहीं हुआ था, जिसका कुण्ड, वेदी तथा बाग़ जीर्ण-शीर्ण रूपेण अब भी विद्यमान है। प्राचीन तपोबल का ही प्रभाव है कि रवि-तनया श्रीयमुनाजी यहाँ घाटों को कभी परित्याग नहीं करतीं, जब कि अन्य स्थानों पर प्रवाह दूर होजाता है। यहां ग्रीष्म ऋतु में भी पर्याप्त जल रहता है। यह सब महापुरुषों के ही पुण्य का फल है।

श्रीनिम्बार्क-सुदर्शन (चक्र) और हंसतीर्थ

[लेखक—श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायाचार्य श्रीराधाकृष्णजी गोस्वामी]

श्रीनिम्बार्क तीर्थ (निम्बग्राम)--

व्रजान्तर गोवर्द्धन गिरि से पश्चिम की ओर बरसाने वाले मार्ग में लगभग २ मील की दूरी पर भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी के नाम से प्रसिद्ध निम्बग्राम आचार्य प्रभु की तपोभूमि 'श्रीनिम्बार्क तीर्थ' है। यहीं पर आद्याचार्य जगद्गुरु श्री १००८ निम्बार्क महाप्रभु ने शालिग्राम विग्रह। श्रीराधिका-सर्वेश्वरजी की उपासना कर भगवान् श्रीराधिका-कृष्णजी का साक्षात्कार किया और यहीं पर सर्व प्रथम वेदत्रयी पर भाष्य रचना की।

यहाँ पर एक सफ़ेद सङ्गमरमर का बना हुआ भगवान् सुदर्शन चक्रराज श्रीनिम्बार्काचार्यजी का मन्दिर है। पास ही सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध एक कुण्ड है, जिसके एक ओर पक्का घाट बना है, शेष तीन ओर सघन कुञ्जों की वृक्षलताएँ झुक-झुक कर कुण्ड में स्नान कर रही हैं। यहाँ का शान्त वायु मण्डल अब भी आचार्यदेव के तप का वर्णन पक्षियों के मुख से करता प्रतीत होता है। इस कुण्ड में आचार्य-चरण ने सब तीर्थों के जल का आह्वान किया था। इसलिये इसमें स्नान नहीं किया जाता, केवल आचमन ही किया

जाता है। आचमन से ही सब तीर्थों के जल पान करने का फल प्राप्त होता है।

कुण्ड का जल कभी सूखता नहीं। इस जल में एक अपूर्व चमत्कार यह है कि ग्राम का दूध इस जल के सम्बन्ध से ही जमता है, अन्यथा इस जल का सम्बन्ध न होने से फट जाता है।

यहीं पर एक प्राचीन कूप और रास मण्डल का चबूतरा और सूखा हुआ एक निम्ब-वृक्ष है। यहीं श्रीनिम्बार्काचार्य महाप्रभु की वासस्थली है। इस रासमण्डल चबूतरा के नीचे आचार्य प्रभु की तपोगुफा है। अब इस गुफा का द्वार बन्द कर दिया गया है।

श्रीसुदर्शन (चक्र) तीर्थ, नेमिषारण्य—

यह तीर्थ नैमिषारण्य में है। जब ऋषि, मुनि, साधु, वैष्णव असुरों द्वारा सताये गये, तब सब एकत्रित हो नैमिषारण्य में तप द्वारा भगवान् का स्मरण करने लगे। भगवान् ने इन पर प्रसन्न होकर श्रीसुदर्शन चक्र को इस प्रकार आज्ञा दी—

सुदर्शन महाबाहो कोटि सूर्य्य समप्रभः ।
अज्ञान तिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥

हे महाबाहो ! कोटि सूर्य्य के समान कान्ति वाले—तुम भूमण्डल में अवतीर्ण होकर जीवों का अज्ञानान्धकार हरण एवं दुष्टों का समन कर विष्णु मार्ग का पुनः पथ-प्रदर्शित करो। इस भगवदाज्ञानुसार नैमिषारण्य में श्रीसुदर्शनचक्र ने भूमि-प्रवेश किया और यही श्रीसुदर्शनचक्रावतार श्रीनिम्बार्क भगवान् श्रीजयन्ती नन्दन हुए। ऐसा गोपालोपनिषद् में कहा है—

संहारार्थं च शत्रूणां रक्षणायच सां थतिः ।
कृपाय सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ॥
पत्स्रष्ट मीश्वेरणासीत चक्रम् ब्रह्मरूपधृक् ।
जयन्ती नन्दनः श्रीमान् निम्बाशुमानितिः ॥

इस तीर्थ का नैमिषारण्य माहात्म्य में अधिक वर्णन है।

श्रीहंसतीर्थ, प्रयाग—

प्रयाग से पूर्व गङ्गा पर प्रतिष्ठानपुर (भूँसी) में श्रीहंस भगवान् के नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध है। वहीं हंसकूप भी है। प्राचीन हंसतीर्थ हंसकूप के निकट था, जहाँ मुसलमानों की इस समय ईदगाह बनी है। मुसलमानी धर्मान्धता के युग में उसे तोड़ कर ईदगाह बनवाई गई। उसका पिछला भाग अब भी प्राचीन ही बना है। हंसकूप वही प्राचीन है। पास ही सहारनपुर जिला भागलपुर के एक प्रतिष्ठित जमींदार ने नये हंसतीर्थ का निर्माण किया है। यह स्थान सहस्रदल कमल के आधार पर बना है। इसमें त्रिकुटी, अन्तःकरण, भ्रमगुफा, सुशुम्नाकूप, मेरुदण्ड, मानसरोवर आदि स्थान बड़े ही नियम और क्रम से बने हैं। पूरा आश्रम एक योग का चित्र है। स्थान बड़ा ही विशाल और दर्शनीय है। भारत में ऐसा स्थान शायद ही कहीं हो। इस स्थान के निर्माण-कर्त्ता स्वयं हंस सम्प्रदाय के स्वामी हंसजी नाम के थे।

इस सम्प्रदाय के परम्परागत महन्त श्वेत वस्त्र को ही धारण करते हैं। ये हंस सम्प्रदाय श्रीमद्भागवत स्कंध ११ अध्याय १३ में इस प्रकार वर्णित है– 'एतावान योगमादिष्टो मच्छिष्यै सनकादिभिः' एक समय भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव को उपदेश करते हुये कहने लगे—हे उद्धव ! हम अपने शिष्य चतुः सनकादिकों को योग का उपदेश दे शिष्य किया था। तब उद्धव ने कहा—आपने कब और किस रूप से कुमारों को शिष्य किया ? यह सुनने की हमारी बड़ी इच्छा है। तब भगवान् ने कहा—एक समय मानस पुत्र चतुः सनकादिकों ने पिता ब्रह्मा से योग की सूक्ष्म पराकाष्ठा पर प्रश्न किया—

एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूत भावनः ।
ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्य पद्यत कर्मधीः॥
समां चिन्तयद्देवः प्रश्नपार तितीर्षयः ।
तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥

पर वयोवृद्ध ब्रह्मा को इस गूढ़ प्रश्न का बीज ध्यान में न आया और ब्रह्मा ने हमारा ध्यान

किया, तब हमने 'ऊर्जेसिते नवम्यां च हंसो जातः स्वयं हरिः।' सतयुग में कार्तिक शुक्ला ९ को हंसावतार धारण कर सनकादिकों के योग के सूक्ष्म प्रश्न को 'नीर क्षीर विवेको हंसः' जैसे हंस नीर और क्षीर को पृथक् करता है, वैसे ही हंस स्वरूप हमने माया ब्रह्म और जीव को पृथक् कर, सनकादिकों को अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल मन्त्र का उपदेश दे शिष्य किया।

विष्णुयामल में कहा है कि इसी प्रकार सनकादिक कुमारों से श्रीनारदजी और नारदजी के श्रीनिम्बार्क भगवान् शिष्य हुए—

नारायण मुखाम्भोजान् मंत्रस्त्वष्ट दशाक्षरः।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च॥
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेनतुः।
एवं परम्परा प्राप्तो मन्त्रस्त्वष्ट दशाक्षरः॥

इस आदि वैदिक द्वैताद्वैत (भेदाभेद) वादीय श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय को नारद, सनक तथा हंस सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस लेख में निम्बार्क सम्प्रदाय के तीन ही तीर्थों का उल्लेख किया गया है। इसके परे और भी अनेक तीर्थ हैं।

मिथिला के तीर्थ

[लेखक—साहित्य-मनीषि श्रीसत्यनारायणजी "वर्मा" हिन्दीभूषण, विशारद]

लिखा है:—

मिथिला सर्वतः पुण्या सुराणामपि दुर्लभा।
अतस्तीर्थेषु सर्वेषु मिथिला पूज्यते सदा॥

मिथिला परम-पूज्य क्यों न हो, जहाँ जगज्जननी श्रीजानकीजी का प्रादुर्भाव और मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामजी का शुभ-विवाह हुआ, भला उस मिथिला की बात ही क्या? निःसन्देह भारतीय प्राचीन इतिहासों में मिथिला का एक गौरव पूर्ण अध्याय है। इस पवित्र तपोभूमि मिथिला के तीर्थों का वर्णन तो एक ग्रन्थ में ही किया जा सकता है। यहाँ केवल सूची मात्र दी जाती है।

श्रीजनकपुर धाम—यह मिथिला का प्रधान तीर्थ स्थान है। यहीं श्रीशुकदेवजी के उपदेशक, "जोग भोग महँ राखौ गोई" वाले योगीराज श्रीजनकजी की राजधानी थी। यही जगन्माता श्रीजानकीजी की मातृभूमि और जगत्पिता भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की विवाह-स्थली है। यहाँ अग्रहण (मार्गशीर्ष) में विवाह पञ्चमी और चैत्र में श्रीरामनवमी को बहुत बड़ा मेला होता है।

श्रीक्षेत्र—यह तीर्थ लखनदेई नदी के तट पर, जनकपुर से पश्चिम 'पुनौरा' नामक ग्राम में है। सीरध्वज श्रीजनकजी की यहीं यज्ञ स्थली थी। यहीं श्रीसीताजी पृथ्वी से प्रकट हुई थीं। लिखा है—

दुर्गात्पश्चिमतोभागे योजनात्त्रितयात्परम्।
यज्ञस्थलं नरेन्द्रस्य यत्र लांगल-पद्धतौ॥
समुत्पन्ना महाभागा सीता रामवल्लभा।

श्रीसीता मढ़ी—यह लखनदेई नदी के तट पर अवस्थित है। ससुराल जाने के समय श्रीसीताजी ने यहाँ कुछ देर तक विश्राम किया था। चैत्र रामनवमी को यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है।

श्रीगिरिजा स्थान—यह स्थान दरभङ्गा जिला अन्तर्गत फुलहर ग्राम में अवस्थित है।

यहीं महाराज श्रीजनकजी की कुलदेवी गिरिजा महाराणी स्थापित थीं, जहाँ श्रीकिशोरीजी प्रतिदिन पूजा-निमित्त जाया करती थीं। इसी स्थान का वर्णन राम-चरित-मानस में यों किया गया है:—

सर समीप गिरिजा गृह सोहा।
बरनि न जाइ देखि मन मोहा॥
मज्जन करि सब सखिन समेता।
गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग वर माँगा॥ इत्यादि।

श्रीअहिल्या स्थान—यह तीर्थ 'अहियारी' ग्राम में अवस्थित है। यहीं महर्षि गौतम अपनी धर्मपत्नी अहिल्या के साथ रहते थे। इन्द्र के छल से अहिल्या को महर्षि ने शाप दिया, जिससे वह पाषाण होगई, पश्चात् श्रीरघुनाथजी के पद-पद्मों की धूलि से अहिल्या का उद्धार हुआ, जिसका वर्णन श्रीराम-चरित-मानस में यों किया गया है:—

आश्रम एक दीख मग माहीं।
खग-मृग जीव-जन्तु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी।
सकल कथा ऋषि कही विसेखी॥
गौतम नारी साप बश, उपल देह धरि धीर।
चरन-कमल रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर॥

कुछ व्यक्तियों का कथन है कि यह स्थान बक्सर के समीप है। किन्तु स्कन्द पुराण में लिखा है:—

आसी ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजिता।
तस्यां विराजते नित्यं गौतमो नाम तापसः॥
अहिल्यानाम तत्पत्नी पतिव्रता प्रियम्वदा।
सर्व लक्षण सम्पूर्णा आसीत्सर्वाङ्ग सुन्दरी॥

श्रीधनुषा स्थान—यह तीर्थ जनकपुरी से पूर्व यमुनी नदी के तट पर कुसुमा ग्राम के समीप विद्यमान है। शङ्कर-पिनाक जिसको भगवान् श्रीराम ने तोड़ा था, उसी का एक टुकड़ा जो लगभग २५ गज लम्बा है, अभी भी यहाँ विद्यमान है। यहाँ पहले घोर जङ्गल था, पर इधर धीरे-धीरे जङ्गल कट चला। अब यहाँ यात्रियों के ठहरने का स्थान भी हो गया है। एक समय था, जब इस स्थान की छटा अलौकिक थी, अपूर्व थी। श्रीराम-चरित मानस में गोस्वामीजी ने लिखा है:—

राम दिखावहिं अनुजहिं रचना।
कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महँ भुवन निकाया।
रचे जासु अनुसासन माया॥
भक्त हेतु सोइ दीन दयाला।
चितवत चकित धनुष मखसाला॥

शिव-तीर्थ—

श्रीशिलानाथ—यह स्थान दरभङ्गा जिला अन्तर्गत शिलानाथ ग्राम में कमला नदी के तट पर अवस्थित है। कार्त्तिक पूर्णिमा को विशेष कर यहाँ दर्शकों की भीड़ होती है। यह स्थान महाराज जनक के कोट के पूर्व द्वार पर था, ऐसा प्रमाण मिलता है।

श्रीकपिलेश्वर स्थान—यह स्थान मधुबनी के पश्चिम में है। यहाँ ही कपिल मुनि का आश्रम था। आप ही ने बाबा कपिलेश्वर की स्थापना की थी। यह स्थान बड़ा ही उग्र है। शिवरात्रि को विशेषतः बहुत बड़ा मेला लगता है।

श्रीकुशेश्वर स्थान—यह स्थान जीनद नदी के किनारे रौना ग्राम में अवस्थित है। दर्शन के लिये यहाँ दूर-दूर से लोग आया करते हैं।

श्रीबाबा उग्रनाथ—यह स्थान पंडौल के समीप भवानीपुर ग्राम में अवस्थित है। यह भी बहुत प्राचीन स्थान है। मन्दिर के सटे पूर्व-विद्यापति कूप मिला है, जिसको महाराज दरभङ्गा ने बँधवाया है। विद्यापति के 'उग्रजा' रूप में शङ्कर यहीं अन्तर्हित हुए थे।

श्रीईशान नाथ—वेसंडथाने में दमामी गाँव में अवस्थित है।

श्रीकूपेश्वर—यह स्थान जयनगर स्टेशन के समीप है।

श्रीकल्याणेश्वर--यह स्थान कलना नामक ग्राम में है।

श्रीजलेश्वर—यह स्थान नेपाल राज्यान्तर्गत विरजा नदी के तट पर है!

श्रीक्षीरेश्वर-यह स्थान भी नेपाल राज्यही में माना है।

श्रीमिथलेश्वर—यह स्थान जनकपुर के ईशान कोण में अवस्थित है।

श्रीहरिहर स्थान--यह जनकपुर के पूर्व भाग में है।

श्रीभैरव स्थान—यह मुजफ्फरपुर जिला अन्तर्गत लखनदेई नदी के तट पर है।

श्रीहलेश्वर स्थान--यह यज्ञभूमि के समीप नेपाल के अन्तर्गत है।

श्रीभुवनेश्वर--यह स्थान नाहर गाँव में है।

श्रीचण्डेश्वर--यह इदड़ी ग्राम में बलान नदी के किनारे है।

श्रीकामदनाथ--यह स्थान उच्चेढ गाँव में है।

श्रीमणीश्वर-यह स्थान योगियारा स्टेशन के पास है।

श्रीसिंहेश्वर स्थान—यह अगलपुर जिले में है।

श्रीअजगवीनाथ—यह स्थान सुल्तानगञ्ज (अगलपुर) में गङ्गा की बीच धारा में है।

ये सभी उपर्युक्त स्थान बहुत ही प्राचीन हैं। इनका उल्लेख पुराणों में मिलता है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से स्थान हैं जिनका उल्लेख विस्तार भय से यहाँ नहीं किया जाता है।

देवी-तीर्थ।

श्रीदुर्गास्थान—दरभंगा जिला अन्तर्गत उच्चेढ़ ग्राम में अवस्थित है। सुना जाता है कि कवि-कुल कुमुद-कलाधर-कालीदास इन्हीं दुर्गाभवानी की आराधना से इतने बडे विद्वान् हुए थे।

श्रीराजेश्वरी स्थान—यह स्थान डोकहर गाँव में है जो मधुवनी के समीप ही है। यहाँ गौरी-शङ्कर की मूर्ति स्थापित है।

श्रीभद्रकालिका स्थान—यह मधुवनी के समीप कोइलखापुर गाँव में है।

श्रीभुवनेश्वरी स्थान---यह स्थान भगवतीपुर गाँव में है।

श्रीयोगनिद्र स्थान--खिरोई नदी के समीप नेपाल राज्य में है।

श्रीकालिका स्थान--पराग्रानय नदी के किनारे नेपाल राज्यान्तर्गत सखरा ग्राम में है।

श्रीउग्रतार स्थान--यह स्थान धेमुड़ा नदी के तट पर बनगाम महिषी में अवस्थित है।

श्रीचामुण्डा स्थान-यह स्थान पचहीगाँव में है।

श्रीचण्डीस्थान—चण्डीपुर गाँव में अङ्कुत्ति नदी के तट पर है।

श्रीजयमङ्गला स्थान--यह स्थान भागलपुर जिले में है।

श्रीकात्यायनी स्थान—यह मुंगेर जिले में है।

ऋष्याश्रम।

श्रीयाज्ञवल्क्याश्रम—यहीं महर्षि याज्ञवल्क्य ने भगवान् सूर्य्य से वेद पढ़ा था और स्मृति लिखी थी। यह धनुषा स्थान के समीप है।

श्रीगौतमाश्रम—यह ब्रह्मपुर गाँव में है। यहीं न्याय दर्शन के आचार्य्य महर्षि गौतम रहते थे।

श्रीवाल्मीक्याश्रम - यह स्थान मण्डला और लक्ष्मण नदियों के संगम पर है। लिखा है—

निवसत्युटजं कृत्वा वाल्मीकिस्तत्र पश्चिमे!
उत्तरे याज्ञवल्क्यस्तु निवासेऽभिरत: सदा॥

श्रीकौशिकाश्रम— यह कौशिकी नदी के तट पर है। समीप ही श्री कामेश्वर बाबा का मन्दिर है।

श्रीविसारमुकाश्रम—यह जगवन ग्राम में विरजा नदी के तट पर है।

नदी-सरोवर-कूप- कुण्ड-तड़ागादि के कुछ नाम—

नदियाँ—गङ्गा, कौशिकी, गंडकी, कमला, वारमती, त्रियुगा, धेमुड़ा, लखनदेई, बलान, दुग्धवती यमुनी, अङ्कुत्ति, गौरीझा, बेलौनी, संडना, जीवछ, इत्यादि।

सरोवर---दाशरथि सर, लक्ष्मणसर, जनकसर, धनुसर, (इस सरोवर में कभी-कभी धनुष का दर्शन होता है) मन्थनसर (यहीं महाराज निमि के शरीर का मंथन हुआ था) वशिष्टसर, बलदेवसर, इत्यादि।

कूप—शतानन्दकूप, जनककूप, विद्याकूप, विद्यावति कूप, ज्ञानकूप, पुण्यकूप, इत्यादि।

कुण्ड—सीताकुण्ड, अमृतकुण्ड: इत्यादि।

सीता-धाम

[लेखक—श्रीयुत भगवन्त सूरजचन्दजी सत्यप्रेमी [डाँगीजी महाराज]

प्रतापगढ़ रियासत में सीताधाम नामक एक महातीर्थ है, जिसकी महिमा का वर्णन मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र भी वर्णन नहीं कर सकते। हाँ, अपनी—अपनी शक्ति के अनुसार सभी कहते रहे हैं, सो मैं भी क्यों चूकूँ ? और मैं भी प्रयत्नशील हूँ।

हाँ, तो हम कुछ भाइयों और बाइयों को साथ लेकर अपने निवास स्थान बड़ी सादड़ी (मेवाड़) से उक्त तीर्थराज की यात्रा को निकले। चाँदनी रात में रात को ७॥ बजे। १४ मील चलना था—रामायण गाते हुए—जगज्जननी की जय पुकारते हुए हमें वह यात्रा काफ़ी सुगम मालूम हुई। पर्वत-मालायें इतनी बिकट हैं कि बड़े-बड़े पहलवानों की टाँगें भी भर जाँय। बड़ीसादड़ी (मेवाड़) की सतह से यह तीर्थ स्थान क़रीब ३००--४०० गज नीचे है। रास्ता इतना सँकरा है कि एक आदमी से अधिक नहीं चल सकता और दोनों तरफ़ भयङ्कर गहरी खोहें हैं, जिनको देखते ही ललाट में चक्कर पड़ने लग जायँ, पर सीताधाम के पवित्र स्थान पर पहुँचते ही ऐसा मालूम होता है मानों नन्दनबन में पहुँच गये। वैशाख जेठ में भी यहाँ ऐसी मनहर हरियाली रहती है कि चौमासे में भी कहीं नहीं देखी। प्राकृतिक बगीचे लगे हैं, जहाँ उत्तम महुए, केले आदि नाना फलफूल अनायास प्राप्त होते हैं। एक ही नदी ऐसी है जो १०--१२ चक्कर खाती है। पहले पर्वत, फिर नदी, फिर पर्वत, फिर नदी, फिर नदी, इस प्रकार चलते ही चलो वृक्ष इतने ऊँचे कि चोटी देखते ही पगड़ी टोपी नीचे गिर जाय, और गर्दन लचक जाय। रास्ता ऐसा है कि मानों हम लता-बितानों के झरोके पार करते हुए जा रहे हैं।

एक स्थान पर नदी दो धारायें धारण करती हैं। एक धारा गर्म पानी की और दूसरी ठण्डे की। कहते हैं यहाँ माताजी ने अग्नि-प्रवेश किया था। पार्वतीय नदी-निकुञ्जों को पार करके हम पुनः नीचे उतरते हैं। पर्वत राजियाँ बढ़ती ही चली जाती है। उतरने का ऐसा प्राकृतिक मार्ग-सोपान बना हुआ है, मानों किसी ने बँधवा कर रक्खी हो। पर्वतों पर नाना कुण्ड बने हुये हैं, जो प्राकृतिक होते हुये भी कृत्रिम मालूम पड़ते हैं। पहला कुण्ड पापीकुण्ड कहलाता है, जिसमें स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते, फिर धर्मीकुण्ड आता है, जिसमें स्नान करने से हृदय पवित्र बन जाता है। उस कुण्ड की गहराई नापने का बहुत प्रयत्न किया गया, पर सफलता प्राप्त न हुई। कहते हैं यहीं माताजी ने अपनी महामाता पृथ्वी में प्रवेश किया था। उसी कुण्ड के ठीक ऊपर के स्थान पर एक गहरी खोह है, जहाँ माताजी की कोटि कोटि रतियों को लज्जित करने वाली महा-मनोहारिणी प्रस्तरमूर्ति विराजमान है। मुद्रा इतनी गम्भीर है कि "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" कैसे वर्णन करें। दर्शन करने वाली आँखें बोल थोड़े ही सकती हैं। और बोलने वाली वाणी लिखकर तो क्या देगी ? दर्शन करके हम कृत्य-कृत्य हो गये।

इच्छा तो ऐसी हुई कि वहाँ से पुनः माया-मोह के संसार में क्यों जाँय, जिसे छोड़ कर माताजी ने यहाँ निवास किया, परन्तु उन्होंने हमें इतनी शक्ति भी दी है कि हम व्यक्तिगत कर्त्तव्य करते हुये भी इस नश्वर संसार को ही अमरावती बना सकें।

लौटते समय लव-कुश-कुण्ड के दर्शन किये जो सिर्फ़ एक गज गहरा होते हुये भी अनन्त दिगपाल हाथियों को भी पानी पिला सकता है।

जयपुर का गलता-तीर्थ

[लेखक—पं० श्री 'उमेश' चतुर्वेदीजी, साहित्यभूषण, कविरत्न]

प्राचीन काल से ही तीर्थयात्रा की प्रथा भारतवर्ष में चली आती है। यह प्रथा वास्तव में हमारे पूर्वजों ने बहुत सोच समझकर रक्खी है। यह बात दूसरी है कि आजकल उसका कुछ दुरुपयोग भी होरहा है। देवताओं के दर्शन, मूर्तिपूजा आदि तो घर पर भी हो सकती हैं, परन्तु तीर्थयात्रा का उद्देश तो इससे अधिक महत्वपूर्ण है। तीर्थयात्रा स्वास्थ्य के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है, क्योंकि तीर्थों का जलवायु प्रायः अति उत्तम एवं स्वच्छ होता है। इसके अतिरिक्त वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करने से ही नाना प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं और हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगती हैं।

जयपुर में गलता नामक तीर्थ स्थान भी ऐसा ही है। जिन्होंने कभी जयपुर के इस सुरम्य तीर्थ को देखा है, वही इस बात की सत्यता जान सकते हैं। वास्तव में यह स्थान देखने ही योग्य है।

स्थिति—गलता जयपुर नगर से पूर्व दिशा में स्थित है। रेलवे स्टेशन से यह लगभग साढ़े चार मील की दूरी पर है। जयपुर नगर के चारों ओर एक पक्का परकोटा (चहारदीवारी) है और उसमें सात दरवाज़े हैं। पूर्व की ओर जो दरवाज़ा है, उसका नाम "सूरजपोल" है। यही गलता दरवाज़ा भी कहलाता है। यहाँ से एक पक्की सड़क गलता की पहाड़ी तक जाती है। वहाँ एक दरवाज़ा और भी है और वहीं से गलता की पहाड़ी शुरू हो हो जाती है।

पहाड़ी पर यात्रियों के चलने के लिये पगडण्डी बनी हुई है जो बिल्कुल साफ़ है और पहाड़ को काटकर बनाई गई है। चढ़ाई सीधी नहीं है, क्योंकि सीधी चढ़ाई कठिन होती है और यात्री शीघ्र ही थक जाते हैं। इस पगडण्डी पर स्त्रियाँ और बच्चे भी आसानी से चले जाते हैं।

पहाड़ की चोटी पर पहुँच जाने पर फिर नीचे उतरने की पगडण्डी शुरू होती है। यह पगडण्डी भी पहली ही जैसी है। जितनी चढ़ाई है लगभग उतनी ही उतराई भी है। नीचे उतर आने पर एक द्वार में होकर सीढ़ियों द्वारा फिर नीचे उतरना पड़ता है। बस वहीं गलता स्थान है। पहले जो एक कुंड आता है, जो केवल पुरुषों के लिये ही है और उसके आगे नीचे उतरकर दूसरा कुंड केवल स्त्रियों के लिये है।

वर्णन—इसी पहाड़ी पर कहते हैं "महर्षि गालव" तपस्या किया करते थे। उन्हीं के नाम से इस स्थान का नाम गलता पड़ा। कहा जाता है कि उनकी तपस्या के प्रभाव से ही इस पहाड़ी में से जल निकलने लगा। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि उन्होंने अपनी तपस्या के बल से गङ्गा को यहाँ प्रकट किया था और उसी का जल अब तक जारी है, यही कारण है कि हिन्दू लोग इसको तीर्थ मानते हैं और इसके जल को गङ्गाजल के समान पवित्र और शुद्ध समझते हैं। यह अभी तक नहीं मालूम हो सका है कि जल कहाँ से आता है और इसका मालूम होना भी असम्भव ही है, क्योंकि जल पहाड़ के अन्दर से निकलता है और गोमुख से होकर नीचे गिरता है। गोमुख सफ़ेद पत्थर का बना हुआ है और कुंड से काफ़ी ऊँचाई पर है। गोमुख कभी बन्द नहीं होता। हर समय उसमें से जल निकलता ही रहता है।

गोमुख के नीचे ही कुंड (तालाब) है, जो पक्का बना हुआ है। दोनों तरफ़ पहाड़ हैं। यह कुंड पुरुषों के नहाने के लिये है। यह काफ़ी गहरा है और सदा भरा हुआ ही रहता है। नहाने वालों की सुविधा के लिये इसमें सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं।

और इसके अतिरिक्त दो तरफ़ लोहे की जंजीरें दीवार में लगीहुई हैं। जल जन्तु (मछली, कछुआ आदि) तो यहाँ नाम को भी नहीं हैं। पानी इतना साफ़ रहता है कि कभी काई जमने नहीं पाती।

इस कुंड की बगल में ही एक छोटा-सा मंदिर भी है। मन्दिर के आगे एक दालान है, जहाँ स्नान करने वाले अपने वस्त्र आदि रखते हैं। यहाँ हिन्दू ही आ सकते हैं, अन्य जातियाँ नहीं। इसी आशय का एक बोर्ड सूचना के रूप में मन्दिर के बाहर लगा हुआ है। अन्य तीर्थों की भाँति यहाँ पण्डे भी नहीं हैं।

इसी कुण्ड का जल नीचे दूसरे कुण्ड में जाता है। यह भी पक्का बना हुआ है, वहाँ स्त्रियाँ स्नान करती हैं। किनारे पर पक्की तिबारियाँ (दालान) बनी हुई हैं, जहाँ स्त्रियाँ वस्त्रादि बदलती हैं। यह कुंड भी ऊपर के कुंड की भाँति ही है।

वर्ष में एकबार राज्य की ओर से इन कुण्डों की सफ़ाई होती है। इन दोनों का पानी आगे के कुण्डों में जाता है। वे स्नान के लिये उपयोगी नहीं हैं।

स्त्रियों के कुण्ड से जाकर मन्दिर शुरू हो जाते हैं। जो दाहनी ओर बने हुए हैं, बाईं ओर कुछ दूकानें हैं, जहाँ सब तरह की खाने-पीने की साधारण चीज़ें मिलती हैं। मन्दिर बड़े-बड़े और शानदार हैं। चित्रकारी की प्राचीन कला जो वहाँ की छतों की शोभा बढ़ा रही है देखने ही योग्य है। यात्री लोग यहाँ विश्राम भी करते हैं।

बाईं ओर की पहाड़ियों के सिलसिले में ही आगे जाकर रघुनाथगढ़ का किला है और दाहिनी ओर एक गुफ़ा है। कहते हैं, उस गुफ़ा में "महात्मा पियाहरीजी" ने तप किया था और वहीं भगवद्भजन में अपना जीवन व्यतीत किया था। वे प्रसिद्ध भक्त नाभाजी के शिष्य थे और बड़े ज्ञानी और चमत्कारी महात्मा थे। उनका आत्मबल ऐसा दृढ़ था कि बड़े-बड़े भयङ्कर सिंह उनके चारों ओर फिरा करते थे, इतना ही नहीं, उनके इशारों पर चला करते थे। आँख से आँख मिलते ही भयङ्कर जन्तु भी उनके चरणों पर लोटने लगते थे। यह यह उनके अपूर्व तेज का प्रभाव था। कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध पुस्तक "भक्तमाल" उन्हीं की लिखी हुई है और उसकी रचना उन्होंने यहीं की।

पहाड़ की चोटी पर भगवान् सूर्यनारायण का मन्दिर है। मन्दिर के पास खड़े होकर जयपुर नगर का सुन्दर दृश्य देखते ही बनता है। एक ओर नगर का दृश्य और दूसरी ओर प्रकृति की अत्यन्त मनोरम दृश्यावलियां मन मोह लेती है। जैसा आनन्द गलता का जल दृश्य देखने में आता है, वैसा ही इस प्राकृतिक छटा के अवलोकन में भी।

यहीं कुछ पक्के मकान भी बने हुए हैं। मकान तो क्या दालान हैं और साधु सन्तों का यहाँ निवास रहता है। यात्री लोग भी यहाँ अपनी थकान दूर करने के लिये या प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेने के लिये विश्राम किया करते हैं।

नीचे ढलाव पर जो गलता की तरफ़ है दो कुण्ड और भी हैं; जो बहुत छोटे-छोटे हैं, पर स्नान के योग्य नहीं हैं। बाईं ओर वाले कुंड को "कदम कुंड" और दाहिनी ओर वाले कुंड को "यज्ञकुंड" कहते हैं और वहीं पास ही महर्षि गालव का स्थान है। इसके अतिरिक्त चारों ओर पहाड़ और जङ्गल हैं।

गलता में बन्दरों की भी बहुतायत है। यात्री उन्हें खाने की चीज़ें दिया करते हैं बन्दर भी दुखदाई नहीं हैं।

गलता की पहाड़ियों में शेर बघेरे आदि भी काफ़ी हैं, किन्तु वे केवल रात को ही निकलते हैं, इसीलिये गलता दरवाजा रात को नौ बजे बन्द हो जाता है और सुबह पाँच बजे खुलता है।

मनोविनोद के लिये लोग यहाँ गोष्ठी भी किया करते हैं। जिसे यहाँ "गोट कहते हैं मेलों में भी यहाँ खूब बहार रहती हैं, जो सावन के महीने में होते हैं। सूर्यसप्तमी के दिन भगवान् सूर्य का रथ यहाँ से निकलता है, जो बहुत सुन्दर बना हुआ है।

गलताजी श्रीरामानन्दीय सम्प्रदाय का प्रधान पीठ है और यहाँ की गादी का इस सम्प्रदाय में बहुत अधिक मान है।

जङ्गम-तीर्थ

[लेखक—श्रीयुत पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य, वेदरत्न, काव्यतीर्थ]

तीर्थ शब्द का अर्थ है—'तरति पापादिकं यस्मात्' अर्थात् जिसके द्वारा पापादिकों से छुटकारा हो उसे 'तीर्थ' कहते हैं। वह तीर्थ तीन प्रकार के हैं—जङ्गम, मानस और स्थावर।

उपर्युक्त तीर्थत्रय के अन्तर्भूत ही समस्त तीर्थ हैं, जो कि भारतवर्ष में अनन्त रूप में विभक्त हैं। उन तीर्थों में स्थान-भेद के कारण देव विशेष की प्रधानता एवं मान्यता पायी जाती है न कि समस्त देवताओं की। किन्तु भारत में एक ऐसा परम पवित्र तीर्थ है, जो सभी तीर्थों में व्यापक है तथा उसकी मान्यता और प्रधानता सर्वत्र समान रूप से पायी जाती है। उस परम पुनीत तीर्थ का नाम है 'जङ्गम-तीर्थ' अर्थात् चलता फिरता तीर्थ। जङ्गम तीर्थ पदेन 'ब्राह्मण तीर्थ' समझना चाहिये, क्योंकि शास्त्रों में ब्राह्मणगण को ही 'जङ्गम तीर्थ, कहा गया है। यथा—

ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्धयन्ति मलिना जनाः॥

'ब्राह्मणगण जङ्गमतीर्थ हैं, यह पवित्र स्वभाव और सर्व फलप्रद हैं। इनके वाक्योदक के द्वारा मलिन मनुष्य परम पवित्रता को प्राप्त करते हैं।'

शास्त्रज्ञ महर्षियों ने अपने--अपने ग्रन्थरत्नों में जङ्गमतीर्थ (ब्राह्मण तीर्थ) की अपार महिमा लिखी है। इसका मुख्य कारण यह है, कि पृथ्वी में जितने तीर्थ हैं, वे सभी जङ्गमतीर्थ अर्थात् ब्राह्मण गण के दाहिने चरण में निवास करते हैं। इस विषय का उल्लेख बृहद्भारत में भी किया गया है—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सागरे।
सागरः सर्वतीर्थानि पदे विप्रस्य दक्षिणे॥

'पृथ्वी में जितने तीर्थ हैं, वे सभी समुद्र में रहते हैं। समुद्र और समस्त तीर्थ ब्राह्मण के दाहिने चरण में निवास करते हैं।'

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने भी 'जङ्गमतीर्थ' की महिमा का वर्णन बड़े ही सुन्दर और रोचक शब्दों में इस प्रकार किया है—

मुद मङ्गलमय सन्त समाजू।
जो जग जङ्गम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
बिधि निषेधमय कलि मल हरनी।
करम कथा रबिनन्दनि बरनी॥
हरि हर कथा बिराजत बेनी।
सुनत सकल मुद मङ्गल देनी॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा।
तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

(बालकाण्ड)

प्राचीन इतिहास और पुराणों का अवलोकन कीजिये, तब आपको मालूम होगा कि-पूर्वकाल में ब्राह्मण-जाति का कितना समादर और महत्त्व था? मनुष्य का तो कहना ही क्या है, देवगण तक इनकी अतुलशक्ति और उग्र तपस्या से सर्वदा थर-थराते थे। इतना ही नहीं, ब्राह्मणदेवता की सेवा शुश्रूषा एवं उनकी आज्ञा का परिपालन बड़ी श्रद्धा-भक्ति से किया करते थे। और ब्राह्मण गण भी देवताओं में अत्यन्त निष्ठा रखते थे। यही कारण था, कि देवताओं और ब्राह्मणों की आत्मा परस्पर सन्तुष्ट रहा करती थी। गीता गायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भी ऐसे ही परस्पर भाव को कल्याण का साधन बतलाया है--

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
(गीता ३। ११)

'तुम देवताओं की उन्नति करो और वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें। इस प्रकार परस्पर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होगे।'

इस प्रकार की पारस्परिक सन्तुष्टता के प्रभाव से भारतवर्ष में ही क्या! त्रिलोक में भी किसी प्रकार की दैवी एवं मानुषी व्याधि नहीं होती थी। प्रत्युत सुखेन सब के कार्य निर्विघ्न होते रहते थे। किन्तु पूर्वकाल की परिस्थिति को स्मरण करते हुए अब विश्वास नहीं होता, कि क्या सचमुच पुरातन बातें सत्य थीं? जो कुछ भी हो अब वे बातें अदृश्य और स्वप्न सी होगईं।

तीर्थयात्री का कर्त्तव्य है, कि वह तीर्थाटन करने का निश्चित विचार कर लेने पर पहले अपने निवासस्थान पर ही ब्राह्मण-देव का सविधि पूजन-अर्चन कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे पश्चात् तीर्थयात्रा करे। तीर्थयात्रा के निमित्त वह जिस तीर्थ में पहुँचे, वहाँ भी सर्व प्रथम ब्राह्मण देव का ही पूजन और द्रव्यादि द्वारा सत्कार करे। ऐसा करने से तीर्थस्थ ब्राह्मण की आत्मा सन्तुष्ट होती है और इनकी सन्तुष्टता से ही वहाँ के देवताओं की सन्तुष्टता और तीर्थफल की प्राप्ति होती है। अन्यथा तीर्थयात्रा और तीर्थफल की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह सर्वथा तथ्य है।

एक बात और भी विशेषतः स्मरणीय है, वह यह है कि—'न परीक्ष्यो द्विजस्तीर्थे' (काशी खंड) अर्थात् तीर्थ में जाकर ब्राह्मण की परीक्षा न करे, वह चाहे विद्वान् हो या मूर्ख उसे अपना परमाराध्य देवता मानकर श्रद्धा-भक्ति से उसकी सेवा करे। जैसा कि मनु भगवान् ने कहा है—

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्॥
(मनु० ६। ३१७)

'ब्राह्मण विद्वान् हो या मूर्ख वह अग्नि के सदृश परम उत्कृष्ट देवता है, अतः ब्राह्मणों का पूजन सर्वदा करना चाहिए।'

स्वयं भगवान् ने 'ब्राह्मणो मामकी तनुः' यह कहकर ब्राह्मण-जाति के लिये कितने महत्त्व का स्थान दिया है। भगवान् मनु ने भी अपनी स्मृति में 'वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः' कहकर ब्राह्मण-जाति की ही प्रभुता दिखलाकर उनकी सर्वोत्कृष्टता के लिये उन्हें अपना अमूल्य आशीर्वाद प्रदान किया। महर्षिप्रदत्त आशीर्वाद के सामने अन्य वर्णों को किसी प्रकार की ननु नच करने की तनिक भी गुञ्जाइश नहीं रही, बल्कि उन्हें सर्वदा के लिये ब्राह्मण-जाति के सामने नत मस्तक हो जाना पड़ा।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि ब्राह्मणदेव को परमाराध्य देवता समझ कर उनमें श्रद्धा-भक्ति रक्खे, तथा जैसे भी हो ब्राह्मण के कार्य में मनसा, वाचा, कर्मणा सहायता पहुँचावे अर्थात् उन्हें किसी प्रकार भी कष्ट न पहुँचावे, देखिए, इस विषय में वेद भगवान् की क्या आज्ञा है—

यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम्॥

'जो देवबन्धु ब्राह्मण को मारता है, पितृस्थान मार्ग को नहीं जाता है, किन्तु अन्धतम लोकों में नीचे गिर जाता है।'

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते॥
(अथ० ५। ४)

'जो ब्राह्मण पर थूकता है, मल गेरता है वह रुधिर के कुण्ड में केशों को खाता है।'

तद्वै राष्ट्रमास्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना॥
(अथ० ५। ४)

'जिस राज्य में ब्राह्मण को पीड़ा दी जाती है, वह राज्य टूटी हुई नौका के सदृश डूब जाता है।'

ब्राह्मणगण साक्षात् प्रत्यक्ष तीर्थ हैं। इस तीर्थ में सभी तीर्थों की आस्था है, श्रद्धा है और है विश्वास। इतना ही नहीं, सभी तीर्थ इस तीर्थ

को अपने से श्रेष्ठ समझते हैं। अतः प्रत्येक तीर्थ-यात्री का कर्त्तव्य है कि—वह तीर्थस्थ भूदेवों की श्रद्धा-भक्ति के साथ सेवा शुश्रूषा करे। ऐसा करने से ब्राह्मणदेव की आत्मा सन्तुष्ट होती है और वह सन्तुष्ट होकर तीर्थयात्री को सच्चे दिल से इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान करते हैं—

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु
गोवाजिरस्तु धन-धान्य-समृद्धिरस्तु।
ऐश्वर्यमस्तु विजयोस्तु रिपुक्षयोऽस्तु
कल्याणमस्तु सततं हरिभक्तिरस्तु॥

पवित्रात्मा ब्राह्मणप्रदत्त आशीर्वाद के बाद तीर्थयात्री के लिये अवशिष्ट ही क्या रहा?

तीर्थों का माहात्म्य

[लेखक—व्या० भू०, वै० भू०, गोस्वामि श्रीनीलाम्बरशरणदेवाचार्यजी]

सनातन वैदिक हिन्दू धर्मशास्त्रानुसार तीर्थाटन करना प्राणीमात्र का कर्तव्य है, तीर्थ किसे कहते हैं "तरति पापादिकं यस्मात् तत् तीर्थम्" अर्थात् जिससे पापादिकों से तरजाये उसे तीर्थ कहते हैं। तीर्थ का वास ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में है। जैसे पराशर ऋषि कहते हैं--

प्रभासादीनि तीर्थानि, गंगाद्याः सरितस्तथा।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे, वसन्ति मनुरब्रवीत्॥

प्रभास आदि तीर्थ और गङ्गा आदि नदी, ब्राह्मण के दाहिने कान में रहते हैं। तीर्थ तीन प्रकार के हैं, जङ्गमम् १ मानसम् २ स्थावरम् ३।

ब्राह्मणं जङ्गमं तीर्थं निर्म्मलं सार्व्वकामिकाम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिनो जनाः॥

ब्राह्मण जङ्गम तीर्थ हैं, निर्म्मल (स्वच्छ) हैं और सम्पूर्ण कामनाओं के देने वाले हैं, जिन ब्राह्मणों के वाक्य जल से ही पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं।

अब मानस तीर्थ कहते हैं, अगस्तिरुवाच-

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यक् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः।
सर्व्वभूतदया तीर्थं सर्व्वत्रार्ज्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रिय वादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपितत्तीर्थं विशुद्धिर्म्मनसः परा॥
एतत्ते कथितं देवि! मानसं तीर्थलक्षणम्।

अर्थात्-हे पाप रहित! मेरे कहे हुए मन के तीर्थों को सुनो। जिनमें अच्छी तरह स्नान करके मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है, सत्य बोलना तीर्थ है, क्षमाकरना तीर्थ है, इन्द्रियों को वश में करना भी तीर्थ है।

सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है। सब जगह सरलता करना तीर्थ है। दान तीर्थ है, मन को वश में करना तीर्थ है, सन्तोष भी तीर्थ है, ब्रह्मचर्य्य से रहना परम तीर्थ है और प्रिय बोलना भी तीर्थ है, ज्ञान तीर्थ है, धारणा तीर्थ है, पुण्य को भी तीर्थ कहा है, मन की परम शुद्धि को तीर्थों का भी तीर्थ कहा है, हे देवि! यह तुमसे "मानस" तीर्थों के लक्षण कहे।

अब स्थावर तीर्थों की पुण्यता का कारण सुनो-

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित् पुण्यतमाः स्मृताः॥
प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनाञ्च तीर्थानां पुण्यता स्मृताः॥

तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च नित्यशः ।
उभयेष्वपि यः स्नाति स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात—जैसे शरीर के उद्देश पवित्रतम कहे हैं, तैसे ही कोई पृथिवी के उद्देश पवित्रतम कहा है। अद्भुत पृथिवी के प्रभाव से जल और तेज से तथा मुनियों के दान से तीर्थों की पुण्यता कही है। इससे स्थावर तीर्थ और मानस तीर्थों में जो दोनों में नित्यप्रति स्नान करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

तीर्थों में न जाने से दोष—

"अनुपोष्या त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्यच ।
अदत्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रोनाम जायते ॥"

अर्थात्—तीन रात्रि व्रत न करके और तीर्थों में न जा करके गौ और सोना न देकर दरिद्र नाम करके पैदा होता है।

तीर्थों में जाने का फल—

"अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टा विपुल दक्षिणैः ।
न तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥"
'तीर्थान्यनुस्मरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः ।
कृतपापो विशुध्येत किं पुनः शुद्ध कर्मकृत् ॥"
"तिर्यग् योनिं न वै गच्छेत् कुदेशे नच जायते ।
न दुःखी स्यात् स्वर्गभाक् च मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥"

अर्थात्—अग्निष्टोमा आदि यज्ञों को करके बहुत-सी दक्षिणा देकर जो फल नहीं प्राप्त होता है, वह फल तीर्थ जाने से होता है। श्रद्धावान् एकाग्र मन से धीर पुरुष तीर्थों का अनुस्मरण करने से किये हुए पापों से भी शुद्ध होता है। शुद्ध कर्म करने वाले का तो फिर कहना ही क्या है, वह तीर्थ गामी निश्चय ही सर्पादि योनियों में नहीं जाता और खोटे देश में नहीं जन्म लेता है, न दुखी ही होता है तथा स्वर्ग का अधिकारी होता है और मोक्ष के उपायों को प्राप्त होता है।

तीर्थ के फल को कौन प्राप्त होता है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थं फलमश्नुते ॥
प्रतिग्रहादुपावृतः सन्तुष्टो येन केन चित् ।
अहङ्कार विमुक्तश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥
अदाम्भिको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्व सङ्गैर्यः स तीर्थ फलमश्नुते ॥
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थ फलमश्नुते ॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्न संशयः ।
हेतु निष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थ फलभागिनः ॥

तीर्थफल भागी कौन होता है। यह काशी खंड में लिखा है। जिसके हाथ, पाँव और मन वस में हो, विद्या, तप और कीर्ति हो, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है। जो दान को न लेता हो, जिस किसी प्रकार सन्तोसी हो, अहङ्कार से दूर, वह तीर्थ फल को प्राप्त होता है। कपटी न हो निरारम्भी हो, थोड़ा भोजन करता हो, इन्द्रिय जीत हो, सम्पूर्ण संघों से अलग हो, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है। क्रोधी न हो, शुद्ध बुद्धि वाला हो, सत्य बोलने वाला दृढ़ प्रतिज्ञ हो, सम्पूर्ण प्राणियों को अपना-सा जानता हो, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है।

बिना श्रद्धा वाला हो, पापी हो, वेद का निन्दक हो, जिसका संशय दूर न भया हो, कारण में निष्ठा वाला हो। इन पाँच प्रकार के मनुष्यों को तीर्थ का फल नहीं मिलता।

अब तीर्थ यात्रा का विधान कहते हैं—

यो यः कश्चित् तीर्थ यात्रान्तुगच्छत्—
सो संयतः सच पूर्वं गृहे स्वे।
कृतोपवासः शुचिरप्रमत्तः—
संपूजयेद् भक्ति नम्रो गणेशम् ॥
देवान् पितृन् ब्राह्मणांश्चैव साधून्—
धीमान् प्रणीयन् वित्त शक्त्या प्रयत्नात्।
प्रत्यागतश्चापि पुनस्तथैव—
देवान् पितृन् ब्राह्मणान् पूजयेच्च ।

अर्थात्—जो कोई जिस किसी तीर्थ यात्रा को जाता है वो पहले अपने घर इन कार्यों को करे, व्रत करे पवित्र हो उसमें प्रमत्त न हो भक्ति से नम्र हो। श्रीगणेशजी का सब प्रकार पूजन करे देवता

देवता, पितर और परोपकारी बुद्धिमान ब्राह्मण को प्रयत्न करके धन की शक्ति से प्रसन्न करे फिर तीर्थयात्रा से लौटकर पूर्वोक्त रीति से देवता पितर और ब्राह्मणों का पूजन करे, इस तरह करने पर उसको तीर्थ में जो कुछ फल कहा है, वह सब फल होता है, इसमें निश्चय ही सन्देह नहीं है। ये ब्रह्म-पुराण में कहा है—

"प्रयागे तीर्थ यात्रायां पितृ मातृ वियोगतः।
कयानां बपनं कुर्य्यात् वृथा न विकयो भवेत ॥

प्रयाग में तीर्थ यात्रा में माता पिता के वियोग वालों का मुण्डन करावे, व्यर्थ मुण्डन न करे, ये भविष्य पुराण में लिखा है। तीर्थयात्रा के प्रारम्भ में और उससे लौटकर बहुत से घी से वृद्धि श्राद्ध करे ये पूर्वपुराण में लिखा है।

और भी—

"ऐश्वर्य लाभ माहात्म्यात् गच्छेद्यानेन योनरः।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थ तस्मात् यान' विवर्जयेत् ॥

धन लाभ की महिमा से जो मनुष्य सवारी से तीर्थ जाता है उसका वो तीर्थ निष्फल होता है। इसलिये सवारी से न जाय, ये मत्स्यपुराण में लिखा है। एक वर्ष २ महीना से कम फिर जो तीर्थ को जाता है तब फिर मुण्डन और व्रत यत्न से करने चाहिये। ऐसा गङ्गा वाक्यावली में लिखा है। तथा तीर्थ में जाने पर ये विधि लिखी है कि तीर्थ के ब्राह्मण की परीक्षा न ले और अन्नकी इच्छा वाले को भोजन देवे, चरु खीर तथा सत्तू के पिण्ड दान देवे, ऋषियों के कहे हुए पिण्याक (पिन्नी) और गुण से वहाँ पर अर्घ्य आवाहन से वर्जित-श्राद्ध करे। बिना विलम्ब के समय हो या असमय तीर्थश्राद्ध और तर्पण करे तथा विघ्न न डाले। जिस दिन तीर्थ मिले उससे एक दिन पहिले व्रत करे, और तीर्थ में श्राद्ध करे। तीर्थ पर उपवास करके माथा मुड़ावे, क्योंकि माथे के पाप सब मुण्डन से दूर हो जाते हैं। और प्रसङ्ग से भी तीर्थ को प्राप्त होकर तीर्थ में स्नान अवश्य करे तो तीर्थ यात्रा का तो फल नहीं किन्तु स्नान का फल अवश्य मिलता है। ये काशीखण्ड में लिखा है—केवल गया गङ्गा विशाला और विरजा नदी को छोड़कर मुण्डन और व्रत अवश्य करे ये विधि सब तीर्थों की है, ये स्कन्द पुराण का वाक्य है। जो दूसरे के धन से तीर्थ यात्रा करता है उसे सोलहवाँ हिस्सा मिलता है। किन्तु जो प्रसङ्ग से जाता है उसे तीर्थ का आधा फल मिलता है ये वाक्य पैठीनसी का है। जो नरोत्तम तीर्थ में अपने प्यारे मित्र भाई बन्धुओं को तथा ज्ञाति (जात के) को स्नान करावे। जो नहीं करावे तो तीर्थ फल को ये लोग जबरदस्ती छुड़ा लेते हैं। ये स्कन्द का वाक्य है। माता पिता स्त्री भाई प्यारा गुरू जिनका नाम लेकर गोता लगाता है, उसके पुण्य का आठवाँ हिस्सा उसे मिलता है। ये मार्कण्डेय पुराण का वाक्य है। काशी और वृन्दावन को छोड़ कर जितने सब तीर्थ हैं वे हरि की आज्ञा से उन्हींके साथ बैकुण्ठ जाते हैं। तीर्थ में दान लेने पर दोष लिखा है, वहाँ नारायण क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, हरिपद, काशी, बदरिकाश्रम, गङ्गासागर सङ्गम, पुष्कर, सूर्यक्षेत्र, प्रभास, रासमण्डल, (वृन्दावन) हरिद्वार, केदारनाथ, चन्द्रतीर्थ, सरस्वती नदी के किनारे, पवित्र वृन्दावन में, पवित्र गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी (प्रयाग) हिमालयादि इन तीर्थों में तथा अन्य तीर्थों में जो कामना से दान लेता है वो तीर्थ प्रतिग्राही कुम्भीपाक नरक में पड़ता है ये ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड का वाक्य है, तीर्थ में सवारी से जाने पर, आधा पुण्य, उससे भी आधा जूता छाता लेकर जाने पर उससे भी आधा तेल लगाने और मास खाने पर और सब पुण्य स्त्री सङ्ग करने से नष्ट हो जाता है।

युगोंके भेद से तीर्थ विशेष की श्रेष्ठता पद्मपुराण में कही है। सतयुग में पुष्कर तीर्थ त्रेता में नैमिषारण्य तथा द्वापर में कुरुक्षेत्र किन्तु कलियुग में गङ्गा तीर्थ है। वायुपुराणने साढ़ेतीन करोड़ आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष में तीर्थ कहे हैं, वे सब जान्हवी (गङ्गा में) हैं, अब पृथ्वीमण्डल में प्रदक्षिणा के

क्रम से तीर्थों को कहते हैं। पुष्करम्--१ ब्रह्माजी का स्थान है और तीर्थ राज नाम है वहाँ त्रिसन्ध्य (प्रातः मध्यान्ह प्रदोष) दशकरोड़ तीर्थ आते हैं उसका फल अश्वमेध के तुल्य और ब्रह्मलोक प्राप्ति है अब सब तीर्थों के नाम देते हैं। जम्बूमार्ग —२ तण्डुलिकाश्रम—३ अगस्त्यसर—४ धर्मारण्य —५ ययातिपतनम्—६ कोटि तीर्थम्—७ भद्रवट —८ नर्मदानदी—९ दक्षिण समुद्र—१० चर्मण्वती —११ हिमवत् सुतार्बुद—१२ पिङ्गतीर्थम्—१३ प्रभास —१४ सरस्वती सागर सङ्गम—१५ वरदानम् —१६द्वारिका में पिण्डारकतीर्थ—१७ समुद्रसिन्धु सङ्गम—१८ त्रिमीतीर्थ—१९ वसुधारा २० सिन्धु पत्तम् २१ यदुतुङ्गम् - २२ कुमारिकाशक्रतीर्थम् —२३ पञ्चनद -२४ भीमास्थानम् - २५ गिरिकुञ्जम् —२६विमल तीर्थम्—२७ वितस्ता नदी -२८ तक्षकनागसदनम्—२९ शमपरा—३० रुद्रास्पदम् —३१मणिमान् पर्वत—३२ देविकानदी—३३ दीर्घ सत्रम्—३४विनशनम् —३५ शशपानतीर्थ ३६— कुमारकोटि ३७ रुद्रकोटि ३८—सरस्वती सङ्गम ३९ सयावसानम् ४० कुरुक्षेत्रम् ४१ विष्णु स्थानम् ४२ -परिवल्लम् ४३—पृथ्वी तीर्थम् ४४— शालूकिनीतीर्थम् ४५—सप्पिदर्पी ४६—अवर्णकः- द्वारपाल ४७—पञ्चनदम् ४८—अश्वितीर्थ ४९— वराहतीर्थ ५०—जयन्त्यन् ५१ —एकहंसतीर्थ ५२—कृतशौचम् ५३—मुञ्जावट तीर्थम् ५४— जामदग्न्याहृत पुष्कर तीर्थम् ५५ - रामहृदः ५६- वंशभूतकम् ५७—कायशोधनम् ५८ - लोकोद्धार ५९—श्रीतीर्थम् ६०—कपिलातीर्थम् ६१— सूर्यतीर्थम् ६२—गवाँभवनम् ६३—शङ्खिनीतीर्थम् ६४—ब्रह्मावर्त ६५—सुतीर्थम् ६६—अम्बुमती ६७—शीतवनम् ६८—श्वानलोमापह ६९—दशाश्वमेधिकम् ७०—मानुषतीर्थम् ७१—आपगानदी ७२—सद्योडुम्बर ७३—कपिलस्यकेदारम् ७४—सरकम् ७५—इलास्यदम् ७६—किंदानम् ७७ -किंजप्यम् ७८—अनाजन्मम् ७९—वैतरणीनदी ८०— फलकीतीर्थम् ८१—आदि २६४ प्रसिद्ध तीर्थ हैं। जिनमें स्नान दान से मनुष्य परम पद को प्राप्त होता है। अपने जन्म को सफल कर पितृगणों का भी उद्धार करताहै। इसलिये तो तीर्थाटन मनुष्य जन्म का परम कर्त्तव्य बतलाता है। इन तीर्थों के नाम और माहात्म्य स्थाना भाव से प्रकट नहीं कर सके हैं। प्रेमी पाठक तण्डुल न्याय से समझने की कृपा करके साफल्यता प्राप्त करेंगे।

लङ्का के तीर्थ

[लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी शुक्ल 'रमेश']

सीलोन अथवा लङ्का भारत के दक्षिण में एक द्वीप है। इसके बारे में यह भ्रम फैला हुआ है कि यह असली लङ्का नहीं है, बल्कि दूसरी लङ्का है। असली लङ्का तो भारत से बहुत दूर पर स्थित है और वह सुवर्ण की बनी हुई है। वहाँ केवल राक्षस ही रहते हैं और मनुष्य नहीं जा सकते। कुछ लोग पञ्चवटी के दक्षिण, भारतवर्ष के भीतर ही लङ्का बतलाते हैं। जो कुछ भी हो, इस विवाद का निर्णय करना यहाँ पर अभीष्ट नहीं। इस विषय पर तो एक विस्तृत पुस्तक लिखी जा सकती है। विशेषतः जिसे लोग लङ्का कहते हैं, उसे ही मैंने देखा है और उसी का वर्णन आपको इसमें मिलेगा। पूर्व इसके कि मैं लङ्का के सम्बन्ध में कुछ लिखूँ, पाठकों को यह बताना अति आवश्यक होगा कि लङ्का में किस प्रकार प्रवेश करना चाहिये।

रामेश्वर के उत्तर तथा रामनद के दक्षिण में मण्डपम नाम का एक स्टेशन है। यहाँ पर सीलोन

गवर्नमेन्ट का दफ्तर है। प्रत्येक यात्री को यहाँ पर सीलोन गवर्नमेन्ट की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। जो सब भाँति उत्तीर्ण हो जाते हैं, उन्हीं को सीलोन का पासपोर्ट मिलता है। अर्थात् प्रत्येक यात्री को टीका लेना पड़ता है और दो दिन तक रहने के पश्चात् वह जा सकता है। परन्तु जो प्रतिष्ठित लोग हैं, वे इस बात का डाक्टरी सार्टीफिकेट देकर कि, एक महीने के अन्दर उन्हें टीका लगा है, जाने की आज्ञा पा जाते हैं। इसके अलावा हर यात्री को या उसके जमात को ५०) रु० जमानत के तौर पर जमा करने पड़ते हैं, जो कि भारत लौटने पर उसे वापिस कर दिये जाते हैं। मण्डपम् से प्रमाण-पत्र लेकर धनुष कोटि तक रेल से यात्रा करनी पड़ती है। बाद को समुद्र द्वारा लङ्का के टलाई मीनार बन्दरगाह पर उतरना होता है। इस समुद्री यात्रा में लगभग ३ घण्टा लगता है। एक दूसरा समुद्री रास्ता तूतीकोरन से कोलम्बो को है। उसमें लगभग १८ घंटे का समय लगता है। परन्तु लेखक पहले मार्ग से ही गया था। अस्तु—

लङ्का द्वीप चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ है। इस कारण यहाँ का जल-वायु शीतोष्ण है। गर्मी तथा सर्दी अधिक नहीं पड़ती, परन्तु वर्षा अधिक होती है। प्राकृतिक छटा की दृष्टि से लङ्का अत्यन्त सुन्दर तथा मनोरम प्रदेश है। अनुपम वन-श्री तथा कल-कल करते हुये मनोहर झरने, नाना प्रकार की सुगन्धित फूल-पत्तियाँ और चारों ओर समुद्रदेव की अपार जल-राशि देख कर दर्शक आनन्द-विभोर होजाता है। विशेषतः यहाँ के निवासी सुखी हैं। मोती, पुखराज वग़ैरह बहुमूल्य रत्न यहाँ पर पाये जाते हैं। रतनपुर नामक नगर रत्नों के लिये ही प्रसिद्ध है। इन सब कारणों से यदि हम वर्त्तमान लङ्का को भी सोने की लङ्का कहें, तो कोई आश्चर्य तथा अत्युक्ति नहीं। यहाँ का मुख्य धर्म बौद्ध है, परन्तु फिर भी हिन्दू विशेष संख्या में पाये जाते हैं। यहाँ के लोग स्वभाव से मिलनसार तथा सहानुभूति रखने वाले होते हैं। इनकी बोलचाल की भाषा विशेषतः सिंहाली, संस्कृत और अंग्रेज़ी है।

लङ्का का प्रमुख नगर तथा राजधानी कोलम्बो इसके उत्तर की ओर केलेनी गङ्गा बहती है, जिसे बौद्ध लोग बहुत पवित्र मानते हैं। गवर्नर के रहने का स्थान क्वीन्स हाउस देखने योग्य है। सायङ्काल को लोग समुद्र के किनारे गेलीकेस नामक स्थान पर घूमने जाते हैं। सिनमन बाग़ व उसके भीतर का अजायबघर देखने योग्य है।

तलाई मीनार से अनिरुद्धपुर रेल तथा मोटर द्वारा जाना पड़ता है। यहाँ पर गणेशजी का मन्दिर है। पुल के पार लछमन झूला का सुन्दर दृश्य है। बौद्ध धर्म के बहुत से पवित्र व पुराने स्थान देखने योग्य हैं। यहाँ से मोटर द्वारा माइन्ट पेड्रो जाना चाहिये। यहाँ पर सुन्दर कुण्ड के किनारे गणेश-मन्दिर है। इसके पास बहुत प्राचीन एक इमली का वृक्ष है, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह सन् १६५८ से है।

अनरुद्धपुर से किरमिल्ली को जाना चाहिये। किरिमिल्ली स्प्रिंग पर स्नान करने से रोग निवारण होता है। यहाँ से थोड़ी दूर रत्नागिरि है, जहाँ का झरना बहुत विचित्र है। उसके एक किनारे का मीठा जल तथा दूसरे किनारे का समुद्र का खारी जल मिलता है। यहां पर नगलेश्वर तथा नगलेश्वरी देवी का दर्शन होता है। यह मन्दिर कलियुग के आरम्भ में ५००६ वर्ष पहले स्थापित हुआ था। यहाँ से जाफना जाइये—यहाँ पर कन्दस्वा स्वामी अर्थात् कार्तिक स्वामी व कैलाशनाथ, शिव, महिषासुर और वीरभद्र का मन्दिर है।

लङ्का में तीन कोण हैं। एक कोण में स्थित नगर को त्रिकोमल्ली कहते हैं। यहां कोनेश्वर महादेव का मन्दिर है। कहा जाता है कि रावण की माता कन्या इनके पूजन को नित्य जाती। वृद्धावस्था के कारण उसे आने जाने में कष्ट होता था, अतएव इस कष्ट को दूर करने के लिये रावण ने उस मन्दिर को, उस पहाड़ के सहित जिस पर कि वह

मन्दिर स्थित है, त्रिकूट पर ले जाने के विचार से पत्थर काटना प्रारम्भ किया था, जिसका कि चिन्ह आज तक यहाँ मौजूद है और जिसे रावण कट कहते हैं। कार्य पूरा न होने पाया था कि रावण को माता के मरने का समाचार मिला, अतएव वह उसे छोड़ कर चला आया। यह मन्दिर ईश्वर कृत है। यहाँ तक कोई नहीं पहुँच सकता पास ही की एक चट्टान पर से यात्री लोग जल व पुष्प चढ़ाते हैं। यह मन्दिर क़िले के आगे है, इस कारण केवल सोमवार व शुक्रवार को ही यात्री लोग दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही विचित्र और देखने योग्य है। रावण ने वापसी में सात कुण्ड बनाये, जिनमें से ६ का जल एक दूसरे से गरम और सातवें का बहुत ठंडा है। उसने यहीं पर अपनी माता का श्राद्ध किया था। भारतवर्ष में जिस प्रकार गया श्राद्ध-कर्म के लिये प्रसिद्ध है, उसी प्रकार लङ्का में ये कुण्ड हैं। यहाँ पर लोग श्राद्ध करने जाते हैं।

त्रिकूट पर्वत–जिसे अब कैण्डी कहते हैं, यहाँ से रेल द्वारा न्युरेलिया स्टेशन पर उतर कर सीता ऐलिया स्थान को जाना होता है। यहाँ बहुत ठण्ड पड़ती है। कहा जाता है, जिस समय लङ्का जल रही थी, उस समय सीताजी को प्यास लगी और उन्होंने अपना पैर पृथ्वी पर पटका, जिससे वाकगङ्गा कुंड निकला, और उससे ये गङ्गा बही। इस कुण्ड का पानी बहुत ठंठा है। यह भी कहा जाता है कि श्रीरामचन्द्रजी सीताजी से छिप कर यहाँ मिले थे। जब रावण को यह ख़बर मिली तब वह हाथी पर बैठ कर अपनी सेना सहित वहाँ आया। उसके आते ही रामचन्द्रजी गुप्त होगये और सीताजी कुण्ड में समा गईं। जब रावण ने उन लोगों को वहाँ न देखा, तो हाथी के पैर से ज़मीन को कुचलवाया। हाथी के पैर के निशान यहाँ अब तक चट्टानों पर दिखाई देते हैं। इसी कारण यहाँ पर केवल रामजानकी का एक मन्दिर है। भारतवर्ष में केवल चित्रकूट के अन्तर्गत कोटद्वारा में ही एक रामजानकी का मन्दिर है। अन्यत्र किसी स्थान पर केवल रामजानकी का मन्दिर नहीं है। यहाँ पर ५० मील तक राख की ज़मीन है। कहीं-कहीं ६ फ़ीट नीचे तक राख मिलती है, उसके बाद पत्थर की चट्टान। यह हनुमानजी के लङ्का जलाने का प्रमाण है। सिवाय सीता वाकगङ्गा के सब जगह की वस्तु काले रङ्ग की है। वृक्ष इत्यादि भी श्यामवर्ण हैं। सीता वाकगङ्गा आकर बीच में ग़ायब होजाती है और बाद को फिर एक दर्रे से पैदा हो जाती है। यहाँ का अशोकवन बहुत ही विचित्र तथा दर्शनीय है।

आडम्स पीक एक सुन्दर स्थान है। यहाँ पहाड़ पर एक चरण बना है, जिसे हिन्दू लोग शिवजी का चरण कहकर पूजते हैं। मुसलमान भी इसे पूजते हैं; क्योंकि उनका विश्वास है कि जब आदम स्वर्ग से निकाले गये थे तो यहाँ पर एक पैर से खड़े होकर अपने पाप के प्रायश्चित के लिये तपस्या की थी। जिबराइल ने तरस खाकर आदम को हौवा से मिला कर स्वर्ग के बजाय उसे लङ्का का राज्य दिया। इसी विचार से इसे ईसाई भी पूजते हैं और बौद्ध लोग भी इसे बुद्ध भगवान् का चरण समझ कर इसकी पूजा करते हैं। केवल यही एक ऐसा विचित्र तथा अनोखा स्थान है, जहाँ पर सब धर्मावलम्बी एकत्रित होकर एक ही चीज़ की पूजा करते हैं। यहाँ पर जाने का मार्ग बहुत कठिन है। कहीं-कहीं लोहे की सीढ़ी और जंजीर के ज़रिये चढ़ना पड़ता है। कहा जाता है कि इनको सिकन्दर आज़म ने बनवाया था।

इसके पश्चात् खाने-पीने का सामान साथ में लेकर जङ्गल के रास्ते काटरगामा को जाना पड़ता है। यहाँ पर शेष भगवान् का मन्दिर है और यह हिन्दुओं का पवित्र स्थान है। कैण्डी नगर महावली गङ्गा के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। ऊपर की ओर एक सुन्दर झील है। जैसा कि रामायण में वर्णन किया गया है, वास्तव में यह स्थान नाना प्रकार की मनोहर लता-बल्लरियों से शोभायमान है, दशकंधर के अखाड़े में एक कम्पनीबाग है। यह भी अत्यन्त रमणीय तथा विलक्षण स्थान है। लङ्का की यात्रा परमरम्य है और वहाँ के स्थान दर्शनीय हैं।

तीर्थयात्री

[कहानी]

[लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' सम्पादक 'संकीर्तन']

"एक सौ बत्तीस दान होते हैं !" पण्डे ने कहा 'आप साढ़े चार-चार आना कहाँ तक देंगे ? अतः मुझे एकत्र ही पांच रुपये दे दीजिये !"

श्यामवर्ण, सुगठित शरीर, विशाल भाल, बड़ी-बड़ी बेधक आँखें, मस्तक पर गोखुर बराबर शिखा और चौड़े किनारे की धोती से स्पष्ट जान पड़ता है, कि वह कोई दक्षिणी तीर्थयात्री है। नेत्रों से भावुकता टपक रही थी। पता नहीं कितनी मृदुल धारणायें लेकर कठिनाइयों को कुचलता यह तरुण सुदूर दक्षिण से तीर्थराज पहुँचा होगा।

पंडाजी ने अपने उस यजमान के करों में कुश दे रखा था। सामने वे अपनी आधी गीली धोती पहिने तख्ते पर बैठे थे। हाथ में जल देकर वे उलटा-सीधा संकल्प पढ़ने लगे। सम्भवतः वे एकत्र ही ठनाठन बजाना चाहते थे। 'गोदान, गंगादान, यमुनादान, त्रिवेणीदान' इस प्रकार उन्होंने कुछ नाम गिना दिये। पूछने पर वे एक सौ बत्तीस नाम पूरे कर सकते—इसमें सन्देह ही है।

आस-पास सब गण घेरे हुये थे। 'शुद्ध गंगा-जल मिला दूध ! त्रिवेणीजी को चढ़ाइये !' यहाँ दूध बेचने वाले इस प्रकार सत्यवादी होते हैं। फूल वाले कई माली भी थे। एक हलवाई नावों पर मिठाई लादे, गंगाजी को पेड़े, जलेबी का भोग लगाने का यह उपदेश दे रहा था। "बाबूजी, त्रिवेणीजी को फल जरूर चढ़ाने चाहिये !" एक मल्लाह नावों पर तरबूज और खरबूज लिये खड़ा था। एक नन्हीं नौका पर एक झोपड़ी में भगवान् श्रीकृष्ण और व्रजेश्वरी की मिट्टी की मूर्ति रखे एक पण्डाजी सामने अड़े थे, 'भगवान् को भी कुछ चढ़ाओ !' मानो भगवान् भी इन्हीं की भाँति भिक्षुक हों ! एक नौका पर कुछ गेरुआधारी बैठे थे और वे साधुओं को भी कुछ देने का उपदेश कर रहे थे। आस-पास भिक्षा मांगने वालों की भी भीड़ थी।

चारों ओर की इस चिल्लाहट में कोई सुने भी तो किसकी ? लेकिन ये सब भी ऐसे-वैसे गुरु के चेले नहीं थे। यात्रियों की उपेक्षा तो क्या, कटु वचन और धक्के सहकर भी उनसे त्रिवेणीजी पर दान कराकर उन्हें पुण्य-भाजन बनाने के व्रतधारी वीर थे। सबके मध्य में थे पण्डाजी। वे सब पर रोब रखते थे। सब उनसे दबते थे। क्योंकि पंडाजी के समर्थन पर ही सब को कुछ पाने की आशा हो सकती है। पण्डाजी का रोब भी ठीक ही था। अनेक प्रतियोगियों के संघर्ष में अपनी मोटी बहियों को उलटकर उन्होंने सिद्ध कर दिया था, कि इस यात्री के ग्राम की एक बुढ़िया की परदादी यहाँ तीर्थ करने आयी थी और इन्हीं पण्डाजी के पूर्वजों ने उसका उद्धार किया था। फलतः यह यात्री उन्हीं की जागीर है।

ऐसे दृश्य मुझे बराबर देखने को मिलते हैं कहाँ तक कोई एक ही काण्ड में रुचि रखेगा। हमारी नौका भागी जारही थी। दिन चढ़ आया था। 'अभी श्यामसुन्दर को पहुँचकर स्नान कराना है।' हमने अपने मल्लाह को रोकने की आवश्यकता नहीं समझी, मेरे एक साथी ने जो यहाँ बाहर से आये थे, कहा 'पण्डों को साथ नहीं लेना चाहिये।' मुझे हँसी आगई। मैने बताया 'अपरिचित व्यक्ति पण्डों को न साथ ले तो करे भी क्या ? मल्लाह तो उसे कहीं गंगा या यमुना में ही त्रिवेणी बताकर लौटा देंगे।' उन्होंने हमारी नौका के मल्लाह से पूछा, तो वह सरलता से बोला 'कौन त्रिवेणी तक भटके ? कहीं भी आस-पास त्रिवेणी बताकर स्नान करा देते हैं। उसे तो भावना के अनुसार फल मिल ही जाता है। हम सर्वथा सत्य बोलने

लगें, तो फिर काम कैसे चले ?' मैंने कहा 'यही तीर्थों के देवता हैं।'

(२)

लगभग सन्ध्या हो चली थी। हम एक महापुरुष के श्रीचरणों बैठे थे। एक आगन्तुक ने लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। मेरी दृष्टि ने पहिचान लिया कि यह तो वही दक्षिणी यात्री हैं, जिन्हें हमने प्रातः देखा था। वे प्रणाम करके एक ओर शान्ति से बैठ गये। नेत्रों में करुणा थी, किन्तु उसमें क्रोध या अश्रद्धा का लेश भी न था।

महात्माजी ने उन्हें समीप बुलाया। हम सभों ने भी घेर लिया। प्रश्नों की हमने झड़ी लगादी। वे श्रीरामेश्वरजी के रहने वाले थे। "अति सान्निध्यात् अनादरं भवति" श्रीरामेश्वरजी हम सब कितनी श्रद्धा से जाते हैं? लेकिन समीप के काशी, प्रयाग में हमारी श्रद्धा कहाँ होती है? ऐसा ही हृदय उनके भी तो पास है। वे काशी, प्रयाग आदि के दर्शनार्थ पधारे थे। विश्वनाथ पुरी से यहाँ आये थे।

वे हिन्दी समझ लेते थे। कठिनता अवश्य पड़ती, पर अपनी टूटी-फूटी हिन्दी से वे किसी प्रकार अपने भाव हमें समझा देते। "चित्रकूट जाने का विचार है। अयोध्या और मथुरा--वृन्दावन भी जाना है।" मैंने देखा कि यहाँ की कठिनाइयों ने उनकी श्रद्धा को तनिक भी स्पर्श नहीं किया है। वे वैसे ही अडिग बने हैं। वैसे ही उत्सुक हैं। यद्यपि उन्हें अविदित नहीं है, कि प्रायः सब कहीं इसी प्रकार नोचने खसोटने वाले उन्हें मिलेंगे। उनका निश्चय सुस्थिर है "प्रभु की इच्छा! मैं तो उनकी पुण्य-भूमियों का दर्शन करने आया हूँ।

उनके पास कुछ भी अवशेष नहीं था। चार छः पैसे संगम-स्नान के भाड़े के बदले मल्लाह ने उनसे पूरा रुपया वसूल किया। मुण्डन की एक अठन्नी दक्षिणा नाई को भेंट करनी पड़ी। माली और दूध वालों ने उसे भी पूरा रुपया बना दिया। कुछ साधुओं और भिक्षुकों को भी देना ही था। जो कुछ बचा खुचा था सो पण्डाजी के एक सौ बत्तीस दानों की भेंट हुआ। दान की दक्षिणा भी चाहिये। आखिर जिसने इतने दान कराने का कष्ट किया, उसकी भी तो चरणपूजा होनी चाहिये न? अब पास में नक़द नारायण तो थे नहीं। इससे पण्डाजी को कोई बाधा नहीं होती। दस रुपये का संकल्प कराके उसे घर जाकर भेज देने का आदेश कर दिया। कोई भेजने की स्मृति न रख सके तो दयालु पंडाजी स्वयं कष्ट करके घर भी पहुँच सकते हैं। भला यजमान संकल्प करके न दे तो नर्क जायगा। इसे ये करुणावतार कैसे सह सकते हैं? रुपये तो घर जाने पर मिलेंगे, किंतु ब्राह्मण को रिक्त हस्त नहीं छोड़ना चाहिये। यजमान के समीप एक कम्बल और एक सुन्दर लोटा था। उसी पर पण्डाजी की शनि दृष्टि थी। भला वे बच कैसे सकते थे?

दो धोती, एक तौलिया और पहिनने का एक कपड़ा, यही उनके समीप शेष रहे थे। तीर्थराज में पूर्वकाल में बड़े-बड़े महाराज पधारते थे और सर्वस्व दान कर जाते थे। स्वेच्छा से न सही, पण्डाजी की कृपा से आज भी बहुतों को उन महाराजाओं की समताका सौभाग्य मिल जाता है। पास में कौड़ी नहीं थी। गङ्गा पार होने को तो दो पैसे लगते हैं। लगभग ढाई तीन मील गङ्गा किनारे घूमकर वे पीपे के पुल से झूसी पहुँचे थे।

पेट तो मानता नहीं, घर लौटने या आगे यात्रा करने को भी रुपये चाहिए। पत्र लिखकर या तार देकर घरसे रुपये मँगाने थे। वे तार या पत्र के लिये भी परमुखापेक्षी थे। एक आश्रय चाहते थे घर से रुपये आने तक के लिये। रुपये आने पर पूरा व्यय देने का वचन भी दे रहे थे। दूध का जला छांछ भी फूँक-फूँक कर पीता है। आजकल दूसरों को ठगने वाले बहुत धूर्त घूमते हैं। एक परदेशी और अपरिचित पर कौन विश्वास करे? बड़ी दयनीय दशा होरही थी।

(३)

वे हमसे भली प्रकार हिल-मिल गये थे। अब उनकी भाषा समझने में हमें कोई कठिनाई नहीं होती थी। बड़े भावुक, बड़े सरल। पर्याप्त संस्कृत जानते थे। दक्षिण में अँग्रेजी की भरमार तो है ही, वे बहुधा हिन्दी की अटपट विभक्तियों।को जोड़कर संस्कृत ही बोलते। बड़ी रुचिकर लगती थी उनकी भाषा। हमारा बन्धुत्व होगया था। उनके रुपये घरसे तार द्वारा आगये थे; पर भला परस्पर में हिसाब किताब और लेन-देन कैसा?

"भैया, तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं?" महात्माजी ने उनसे पूछा। हम सब नित्य सायङ्काल उनके समीप पहुँच जाते थे। हम तनिक प्रमाद भले करें, पर हमारे वे दक्षिणी मित्र हमें ऐसा करने कब देते थे।

"आपके श्रीचरणों में कष्ट कैसा?" उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया। "यहाँ तो मैं घर से कहीं अधिक सुखी हूँ। मेरे घर से आये रुपये तो योंही पड़े-पड़े घिस रहे हैं। भाई साहब (संकेत था मेरी ओर) बड़ा ध्यान रखते हैं।"

"अच्छा, तो तुमने घर से रुपये मँगा लिये?"

"जी हाँ! रुपये तो आगये।"

"रुपये आगये तो अच्छा ही है। अभी तो दो चार दिन यहाँ रहोगे न?" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना महात्माजी कहते गये। "अभी तो दो चार दिन यहीं रहो! चित्रकूट तो पास ही है। कभी चले जाना। फिर वहाँ से लौटकर इधर से ही श्रीअयोध्याजी जाना होगा।"

"मैंने तो अपना विचार परिवर्तित कर दिया है।" उन्होंने कहा "मैं अब और कहीं भी इधर-उधर भटकना नहीं चाहता। अभी एक महीने की छुट्टी अवशेष है। उसे श्रीचरणों के ही सान्निध्य में सार्थक करना चाहता हूँ। वहाँ से सीधे रामेश्वरम् लौट जाऊँगा।"

"भैया, ऐसा नहीं!" स्नेह सिक्त स्वर में महात्माजी ने कहा "तुम सर्वथा सुदूर दक्षिण के रहने वाले ठहरे। भला बार-बार इधर आनेका अवसर जीवन में कहां मिल सकता है? सौभाग्य से इधर आगये हो। चित्रकूट, अवध, वृन्दावन प्रभृति श्रीहरिकी क्रीड़ाभूमि हैं। ये दिव्यधाम हैं। इनका अपार महत्व है। फिर पता नहीं किस पुण्य प्रताप से इनके दर्शनों का शुभ संकल्प तुम्हारे हृदय में उठा। तुम इधर आगये हो। सुअवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। 'शुभस्य शीघ्रम्' कल ही चित्रकूट चले जाओ! उधर से लौटने पर यहाँ फिर दो चार दिन रुक जाना! ऐसे शुभ संकल्पों को रोकना ठीक नहीं।"

स्पष्ट प्रतीत होरहा था कि वे हृदय से इस बात के समर्थक नहीं हैं। पूर्ववत हैं, करबद्ध होकर उन्होंने कहा—"मुझे तो अब इधर उधर भटकने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जिस पवित्रता और शान्ति के लिये तीर्थाटन को निकला था, उससे शताधिक गुनी शान्ति इन श्रीचरणों में मुझे उपलब्ध हुई है। इसकी और कहीं मैं आशा भी नहीं कर सकता। फिर भी आपकी आज्ञा है तो केवल आज्ञा पालन के लिये मैं कल चित्रकूट के लिये प्रस्थान करूँगा।" उनके भरे कण्ठ से निकली इस भाव भरी वाणी को सुनकर श्रीमद्भागवत का एक श्लोक सहसा स्मरण हो आया—

"न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः॥"

तीर्थों में याद रखने योग्य बातें और स्मृतिकारों की सम्मतियाँ

[लेखक--पं० श्रीवियोगी विश्वेश्वरजी महाराज]

प्रतिनिधिं कुशमयं तीर्थवारिषु मज्जति,
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः ।
मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम्,
यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांफलं लभेत ॥

(अत्रि स्मृति ५०।५१)

जब कोई किसी की कुशा की प्रतिमा लेजाकर तीर्थ के जल में प्रतिमा वाले मनुष्य को फल मिलने के उद्देश्य से स्नान कराता है, तब प्रतिमा वाले मनुष्य को स्नान के फल का आठवाँ भाग प्राप्त होता है। जब कोई अपने पिता, माता, भाई, सुहृद् अथवा गुरु को फल मिलने उद्देश्य से उनका नाम लेकर तीर्थ के जल में स्नान करता है, तब पिता, माता, भाई आदि को स्नान के फल का बारहवाँ भाग मिलता है।

जायन्ते बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् ।
यजते चाश्वमेधं च नीलंवा वृषमुत्सृजेत् ॥
काङ्क्षन्ति पितरः सर्वे नरकान्तरभीरवः
गयां यास्यति यः पुत्रस्सनस्त्राता भविष्यति ॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वादेवं गदाधरम् ।
गयाशीर्षं पदाक्रम्यमुच्यते ब्रह्महत्यया ॥
महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अक्षयाँल्लभते लाकान्कुलं चैवसमुद्धरेत् ॥

(अत्रि स्मृति-श्लोक ५५।५६।५७।५८)

उत्पन्न हुए बहुत से पुत्रों में से कोई एक तो गया में जायगा या अश्वमेध यज्ञ करेगा अथवा नीलबैल से वृषोत्सर्ग करेगा। नरकों से डरते हुए पितृगण ऐसी इच्छा करते हैं कि जो पुत्र गया जायगा वह हमारा रक्षक होगा। फल्गु नदी में स्नान और गदाधरदेव का दर्शन करने से तथा गयासुर के सिर पर चरण रखने से मनुष्य की ब्रह्महत्या छूट जाती है। फल्गु में स्नान करके पितरों और देवताओं के तर्पण करने वाले मनुष्य अपने कुल का उद्धार करते हैं और मृत्यु होने पर अक्षय लोक को जाते हैं। बृहस्पति स्मृति २०-२१ श्लोक में भी ऐसा ही है-

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥

समुद्र के सेतु का दर्शन करके समुद्र में स्नान करने से ब्रह्महत्या का पाप छूट जाता है और इसी स्मृति के ६२ श्लोक से ७२ वें श्लोक तक प्रायश्चित्त प्रकरण में इस यात्रा की विधि लिखी हुई है।

गयायामक्षयं श्राद्धं प्रयागे मरणादिषु ।
गायन्ति गाथां ते सर्वे कीर्तयन्ति मनीषिणः ॥

(उशनस्मृति १३० श्लोक)

गया का श्राद्ध अक्षय होता है और प्रयाग में मृत्यु होने से विद्वान् लोग मृत मनुष्य की कीर्त्ति का गान करते हैं।

गयाशिरे तु यत्किञ्चिन्नाम्ना पिण्डन्तु निर्वपेत् ।
नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥

(लिखित स्मृति श्लोक १२)

जिसके नाम से (गया में) गया शिर पर पिण्ड दिया जाता है, वह यदि नरक में हो तो स्वर्ग में चला जाता है और स्वर्ग में हो तो मुक्त हो जाता है।

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ।
हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥

(लिखित स्मृति श्लोक ११)

जब कोई मनुष्य काशी में जाकर उससे बाहर होने लगता है, तब भूत गण ताली बजाकर उसको हँसते हैं अर्थात् काशी छोड़ने से उसको मूर्ख समझकर ताली बजाते हैं तथा हँसते हैं।

यः कश्चिन्मानवो लोके वाराणस्यां त्यजेत्वपुः ।
सचाग्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः ॥

(लघुआश्वलायन स्मृति १८६)
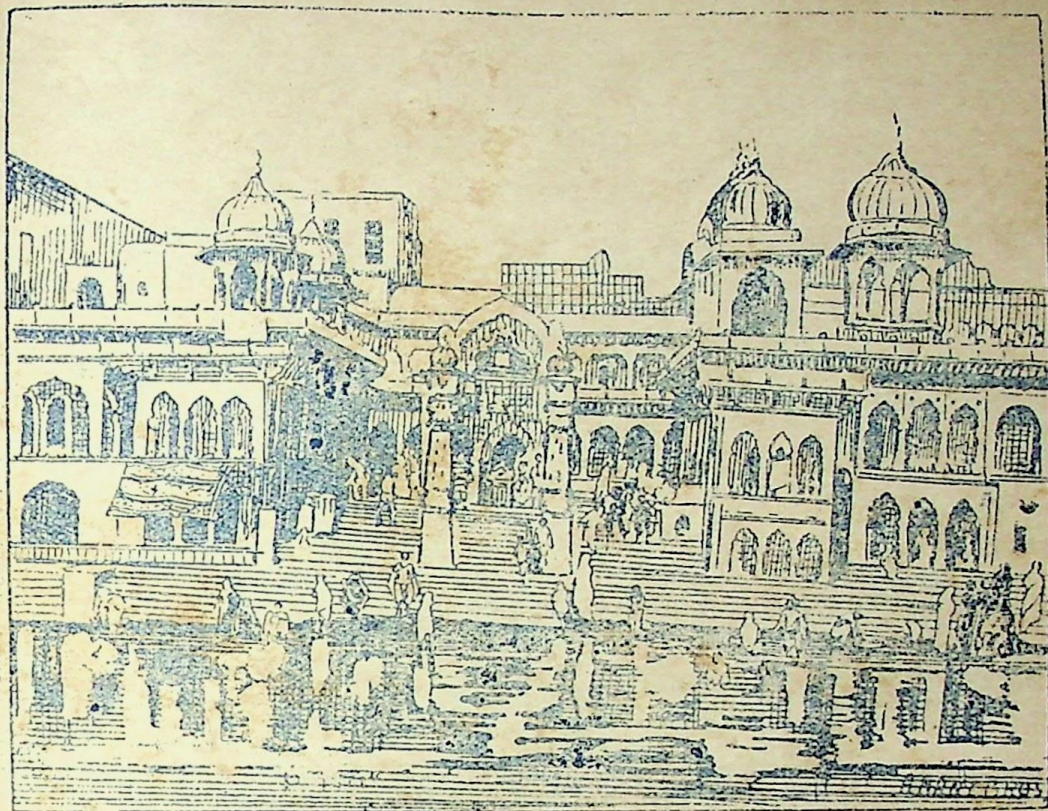
विश्रामघाट, मथुरा।
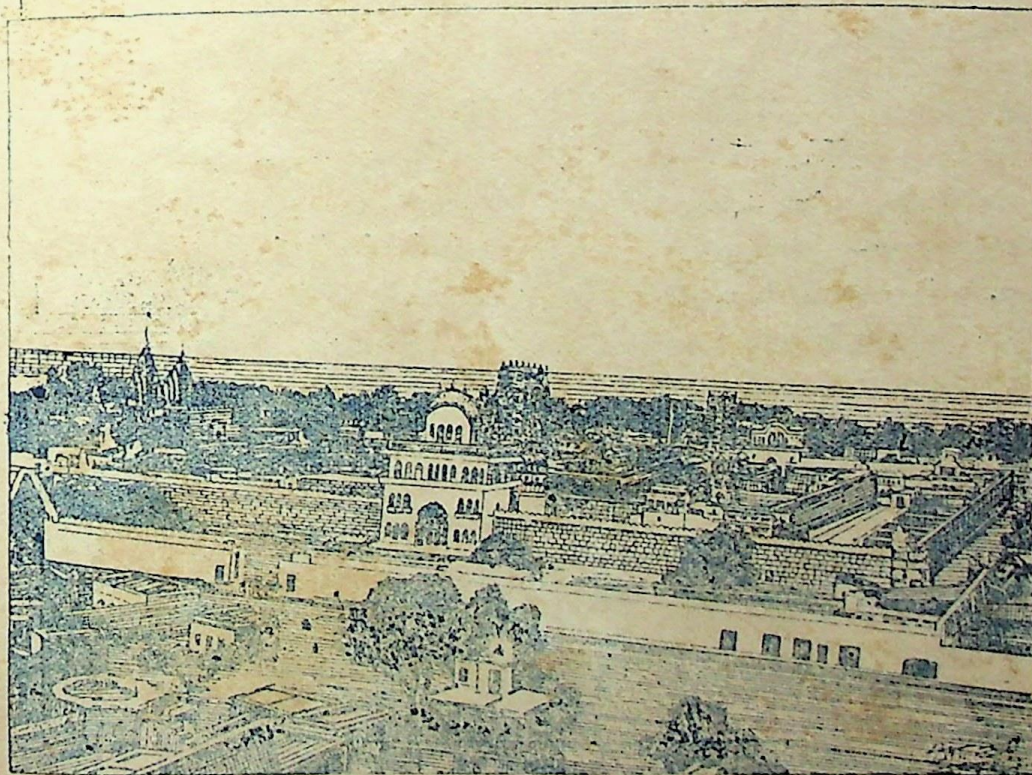
श्रीरङ्गजी का मन्दिर, श्रीवृन्दावन
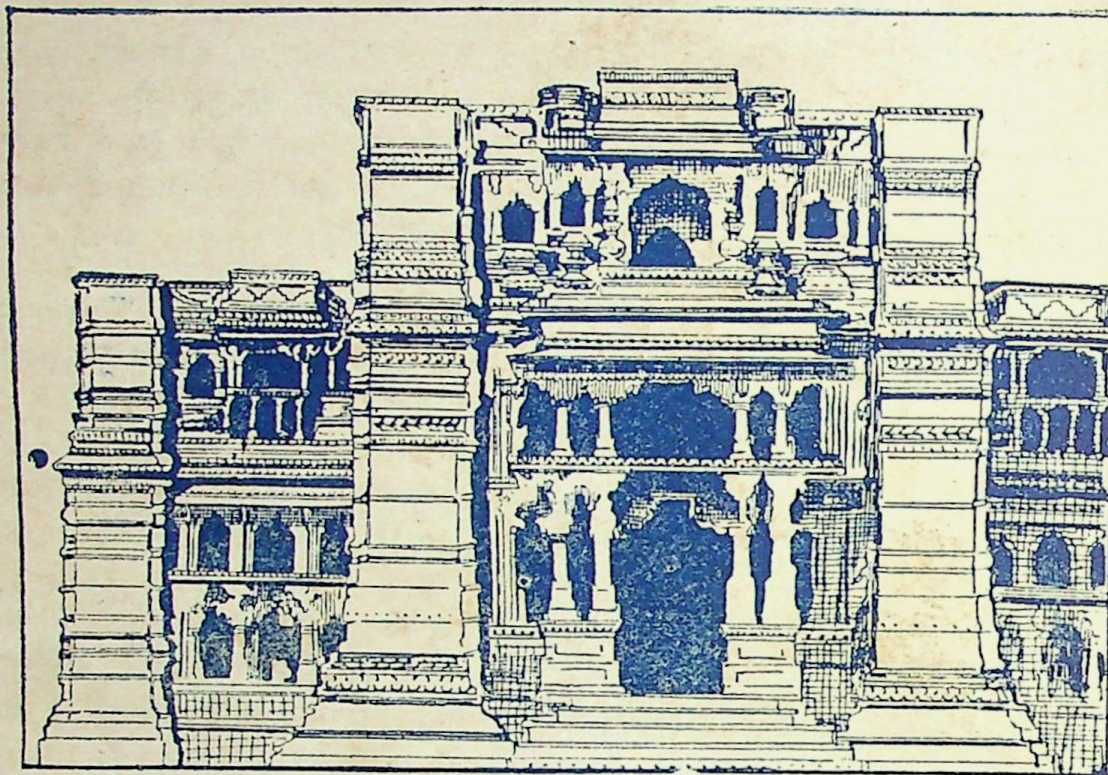
श्रीगोविन्ददेवजी का मन्दिर, श्रीवृन्दावन।
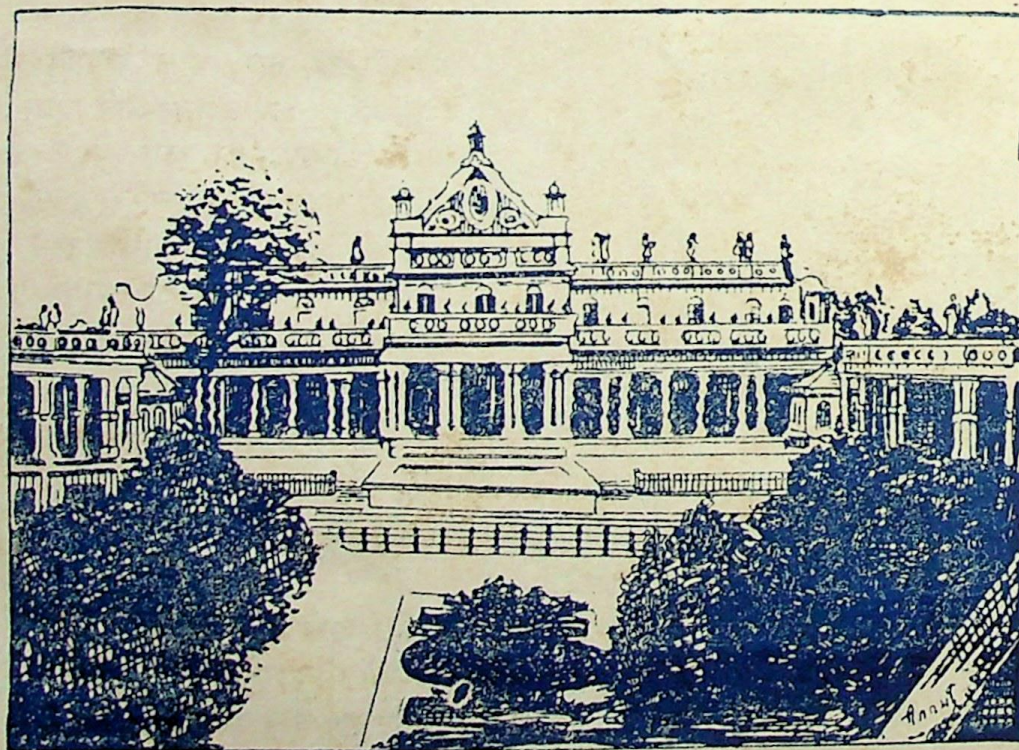
श्रीशाहजी का मन्दिर, श्रीवृन्दावन।

महर्षियों ने कहा है कि जो लोग मनुष्य लोक में जन्म लेकर काशी में शरीर--त्याग करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं।

यत्फलं कपिलादाने कार्त्तिक्यां ज्येष्ठ पुष्करे।
तत्फलं ऋषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशौचने॥
इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
गंगाद्वारं च केदारं सन्निहत्यं तथैव च।
एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते॥
(व्यास स्मृति १०।१३।१४)

कार्तिक मास में (पुष्कर तीर्थ के) बूढ़ा पुष्कर (सरोवर) में कपिला गोदान करने से जो फल मिलता, है वह फल ब्राह्मण के चरण धोने मात्र से प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में करके गृह में निवास करता है, उसको घर में ही पुष्कर, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार और केदार तीर्थ प्राप्त होते हैं और वह इन तीर्थों को करके सब पापों से छूट जाता है।

यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा।
प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते॥
गंगायमुनास्तीरे पयोष्ण्यमरकंटके।
नर्मदायां गया तीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते॥
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुङ्गे महालये।
सप्तवेण्यृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते॥
(शंख स्मृति २७।२८।२६)

गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग और नैमिषारण्य तीर्थ में, गंगा, यमुना और पयोष्णी नदी के तीर पर, अमरकंटक तीर्थ में, नर्मदा और गया के तीर पर, काशी, कुरुक्षेत्र, मृगतुङ्ग और महालय तीर्थ में तथा सप्तवेणी तथा ऋषि कूप के निकट पितरों के निमित्त जो कुछ दिया जाता है, उसका फल अक्षय होता है।

पवित्र देश—इस विषय को अगर आप देखें तो मनुस्मृति अध्याय २ में श्लोक १७-१८-१६-२० २१-२२-२३-२४ वशिष्ट स्मृति १ अध्याय में ८ और ११ अङ्क और बौधायन स्मृति १ प्रश्न १ अध्याय के २७--२८ अङ्क वृहत्पाराशरस्मृति १ अध्याय ४२ वाँ श्लोक, वशिष्ट स्मृति १ अध्याय के ७--६ अङ्क, वोधायन १ प्रश्न १ अध्याय के २७ अङ्क में संवर्त्त स्मृति ४ श्लोक, व्यास स्मृति १ अध्याय ३ श्लोक, वशिष्ट स्मृति १ अध्याय १३ अङ्क और १४ श्लोक, वोधायन स्मृति १ प्रश्न १ अध्याय २६ अङ्क ३० श्लोक, वृहत्पाराशरी, धर्मशास्त्र १ अध्याय ४१ श्लोक इत्यादि अनेकों स्मृतियों में तीर्थ माहात्म्य वर्णित है।

सम्प्रति रेल, तार, डॉक इत्यादि के कारण तीर्थों का महत्त्व कम समझा जाने लगा है। पहिले जो यात्री तीर्थ यात्रा को जाते थे, उनके इष्टमित्र कुटुम्बी खेद प्रकट ही नहीं बल्कि दुतर्फा आंसुओं की झड़ी लग जाती थी कि न मालूम पुनः मिल सकेंगे अथवा नहीं। तभी तीर्थ-यात्रा पूरी तपस्या मानी जाती थी और साथ--साथ मनोकामना भी पूरी होती थी।

❀ तीर्थ नैमिषारण्य ❀

[लेखक—पं० श्रीमुरारीलालजी पाण्डेय 'मयंक']

पूज्य पुण्यभूमि और तपभूमि मानी गई, इस हेतु ऋषियों ने इसे अपनाया है।
ब्रह्म ही के ध्यान में निमग्न रह आठों याम, सूत ने कथायें सौनकादिक को सुनाया है॥
व्यास के निवास से हुआ है ज्ञान का प्रकाश, चक्रपाणि चक्र ने कुचक्र भी मिटाया है।
तीर्थ भूमि पावन प्रसिद्ध युग-युग से है, महिमा 'मयंक' कवि पुंगवों ने गाया है॥

द्वारिका पुरी

[लेखक--श्रीयुत कैलाशचन्द्रजी 'पीयूष' प्रभाकर]

चरणों की रज अब तक जिसकी,
प्रक्षालित करता रत्नाकर ।
जिसके सौध आदि पर अमृत,
सींचा करता नित्य सुधाकर ॥१॥
दिनकर जिसके भव्य-भवन को,
नित स्वर्णिम आभा देता है।
नाम 'द्वारिका' जिसका भारत,
अब तक मान सहित लेता है ॥२॥
है प्रतीक यह उसी नगर को,
जो कि कृष्ण की ललित पुरी थी।
जिसकी चकाचौंध के आगे,
सुरपुर की भी दमक छुटी थी॥३॥
चार तरफ को प्राचीरें थीं,
जो घन-पथ को रोका करती थीं।
विश्व-विजयिनी सेनाओं के,
साहस को रोका करती थीं ॥४॥
प्राचीरों के द्वार--द्वार पर,
शुभ्र केतु पर लहराते थे ।
कृष्णचन्द्र की धवल कीर्तियाँ,
जो नभ में भी फैलाते थे ॥५॥
थे ऊँचे प्रासाद मनोहर,
ललित कला का परिचय देते।
विपणि पंक्तियों में दिखते थे,
ग्राहक रत्न--राशि नित लेते ॥६॥
मानो रत्नाकर ने उसको,
कोषाध्यक्ष बनाया अपना ।
सुख समृद्धि पूर्ण नगरी थी,
जन न जानते कभी कलपना॥७॥
शिव भालऽस्थित चन्द्र-कान्ति पा,
यद्यपि नग-कैलाश कलित है ।
किन्तु ज्योत्स्ना-दीप्त सदन लख,
छटा धराधर की विफलित है ॥८॥

मेरु-खण्ड पा उषाकाल को,
फूला नहीं समाता होगा ।
स्वर्ण-राशि सज्जित सदनों को,
लखकर किन्तु लजाता होगा॥९॥
इसी पुरी के ठीक मध्य में,
गगन-स्पर्शी भव्य भाल ले ।
खड़ा हुआ था चन्द्र-सूर्य की,
पूजा हित निज तन विशाल ले॥१०॥
सुन्दर-सा प्रासाद एक था,
जो पाषाण कला की सीमा।
विश्वकर्म-चातुर्य देख कर,
मन कुवेर का पड़ता धीमा ॥११॥
सिंह द्वार पर बड़े-बड़े दो,
स्वर्ण-कलश शोभा देते थे ।
रजत स्तम्भों पर रक्खे थे,
मन दर्शक का हर लेते थे ॥१२॥
और केतु पर शुभ्र सौध को,
वियत व्योम को चूम रहे थे।
सकुन्तला के कुन्तल के सम,
मारुत में वे झूम रहे थे ॥१३॥
सात ड्यौढ़ियाँ इसी भाँति उस,
राज महल की सजी हुई थीं।
तत्पश्चात् अनेकों ही—
कक्षों की पंक्ति लगी हुई थीं॥१४॥
शीशमहल था रङ्गमहल था,
थे क्रीड़ा के कक्ष मनोहर ।
सुन्दर कुसुमित सुरभित अतिशय,
थे विहार के कुञ्ज वहाँ पर ॥१५॥
शुक, पिक, केकी, खञ्जन, मधुकर-
आदि सभी तो थे एकत्रित ।
भिन्न-भिन्न ऋतुओं के थल थे,
पृथक्-पृथक् ही भाँति सुसज्जित॥१६॥

तीर्थों से हमें क्या शिक्षा मिलती है

[लेखक—श्रीहरेकृष्णजी ब्रह्मचारी, व्याकरण शास्त्री, साहित्य-विशारद]

६ वर्ष व्यतीत हुये जिस दिन विहार का भारत-व्यापी भूकम्प आया था। मैं तीर्थराज प्रयाग के पवित्र त्रिवेणी तटपर रजत रेणुका में बैठा हुआ सनातन धर्म सभा का व्याख्यान सुन रहा था। आसपास आर्यसमाजी और बौद्ध, ईसाई आदि भिन्न-भिन्न मतावलम्बी पण्डाओं में अपने-अपने मत का प्रचार कर रहे थे। अचानक पृथ्वी हिलने लगी। सब लोग भौचक्के से एक दूसरे को देखते हुये काँपने लगे। हमारे वक्ता महोदय ने व्याख्यान को जारी रखते हुये कहा:—

"पृथ्वी हिल रही है, आप लोग डरिये नहीं। आत्मा अजर अमर है। बोलियेः—

हरे राम हरे राम रामः राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

सनातनधर्म ही वह धर्म है जो ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी जनसमाज को सरलता पूर्वक एक सूत्र में बाँधकर जीव मात्र की सहायता तथा रक्षा कर सकता है।

यह सुनकर ईसाइयों के उस तर्क का उत्तर समझ में आगया, जिसे मैंने जन्म-भूमि के पवित्र तीर्थ ब्रह्मावर्त्त पर व्याख्यान देते हुये एक पादरी के मुख से सुना था कि प्रभु यीशु ही केवल गुनाहों को माफ़ करता है, पापों को दूर करता है। अन्य सभी धर्म पाप करने पर दण्ड मिलना निश्चय बतलाते हैं। परन्तु यीशु ऐसा दयालु है कि वह सब के गुनाह फ़ौरन मुआफ़ फ़रमा देता है।

वास्तव में ईसाइयों के इस कथन में प्रलोभन के अतिरिक्त और कुछ भी सार नहीं। पाप-क्षमा की भी मर्यादा है। उसके लिये भी शरणागति सत्सङ्ग, तीर्थवास, अहैतु की भगवत्कृपा आदि सत्कर्म आवश्यक है।

पाप-क्षमा, सङ्कट-मोचन, पश्चाताप की जागरूक शिक्षा हमें तीर्थ-दर्शन मात्र से प्राप्त होती है। क्योंकि जो स्थान प्राकृतिक वातावरण या किसी महापुरुष सम्बन्धी विशेषताओं के कारण अध्यात्म-उन्नति में हमारी सहायता करते हैं, उन्हीं को हम तीर्थ स्थान कहते हैं। संस्कृत में तीर्थ शब्द का अर्थ होता है।

'तरति पापादिकं यस्मात् येन वा तत्तीर्थम्'।

अर्थात् जिसके आश्रय से पापादिकों से तरा जाता है, उसे तीर्थ कहते हैं।

तीर्थ ३ प्रकार के होते हैं। जङ्गम, मानस और भौतिक। जङ्गमतीर्थ ब्राह्मणादि कर्म निष्ठ सत्पुरुष हैं। मानस तीर्थ निम्नाङ्कित हैं:—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थ मिन्द्रिय निग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं सर्वत्रार्जवमेवच ॥ १ ॥
दयातीर्थमृतं तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थञ्च प्रियवादिता॥ २ ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यन्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥ ३ ॥

सत्य, दया, इन्द्रिय-निग्रह सर्वभूतदया, कोमलता, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियवादिता, ज्ञान, धैर्य आदि सभी उत्तम तीर्थ हैं। परन्तु शुद्ध मन का होना इन सब तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ है।

भौतिक तीर्थ स्थल और जल रूपों से दो प्रकार के हैं जैसे प्रयाग मथुरा, अयोध्या आदि स्थल एवं गङ्गा, यमुना इत्यादि जल रूप तीर्थ हैं। भौतिक तीर्थ पवित्र क्यों हैं? इसका उत्तर स्मृतिकार देते हैं:—

प्रभावादद्भुताद्भूमेः, सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनाञ्च, तीर्थानांपुण्यता स्मृता॥

पृथ्वी के अद्भुत प्रभाव जलों के विलक्षण तेज और साधु महात्माओं के निवास-स्थान होने से तीर्थ स्थान पवित्र माने गये हैं।

जङ्गम तीर्थ साधु, महात्मा ऋषि, महर्षि कहे जाते हैं। जैसे वाल्मीकि, वेदव्यास, तुलसी, सूर, आदि जिनसे अनुपम शिक्षायें प्राप्त होती हैं।

भौतिक तीर्थ भी हमारा बड़ा उपकार करते हैं। उनके दर्शन मात्र से अनेक शिक्षायें हृदय में अपने आप आविर्भूत होने लगती हैं। दर्शन और निवास को छोड़िये प्रेमियों की अन्तरात्मा को तो तीर्थ-स्मरण ही भगवच्चरणारविन्दों में पूर्णतया तन्मय बना देता है। अक्रूरजी जिस समय कंस के आज्ञानुसार श्रीकृष्ण को बुलाने के लिये श्रीवृन्दावन जारहे थे; उस समय मार्ग में उनकी विचार धारा का एक दुर्लभ चित्र देखियेः—

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोल नासिकं,
स्मितावलोकारुण कंज लोचनम्।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं,
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति ये मृगाः॥

ऐसे सुन्दर ध्यान का सौभाग्य बहुत से तीर्थ-यात्रियों को अब भी प्राप्त होता है. अयोध्या का स्मरण राम, काशी का स्मरण शंकर और वृन्दावन का स्मरण हमें कृष्ण की याद दिलाता है। अयोध्या में पैर रखते ही चारों ओर से सीताराम सीताराम की आवाज़ आने लगती है। काशी में प्रवेश करते ही गङ्गा-तटपर शिव शिव की पवित्र ध्वनि कर्ण-कुहरों में परिपूर्ण हो जाती है। वृन्दावन में तो रात को पहरेदार भी राधे! राधे!! की आवाज़ लगाते हैं। तीर्थ-स्थली में भ्रमण करते समय यात्री घरबार की याद भूल जाता है और तत्स्थानीय दृश्यों में तन्मय होकर अद्भुत अध्यात्म-शिक्षा प्राप्त करता है। वहाँ के साधु महात्माओं के दर्शन और वार्त्तालाप करके अपने कर्तव्य पथ पर दृढ़ होता है। कैसा भी पापी या सांसारिक पुरुष क्यों न हो? तीर्थ-स्थानों की भावुकता का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है।

वर्त्तमान समय में जब कि भौतिक तीर्थों पर लोगों को अनेक शङ्कायें होने लगी हैं, तब भी वहाँ के प्रभाव और जातीय तेजों के सम्बन्ध में किसी को शङ्का नहीं हो सकती। बद्रीनारायण जैसा शान्त और पवित्र वातावरण कहाँ मिल सकता है? हरिद्वार का सा शुद्ध गङ्गा जल संसार में कहाँ मिलेगा?

सम्प्रति कुछ स्थानों में सदाचार हीन अर्थ—लोलुप स्वार्थियों ने वहाँ का वातावरण दूषित बना रक्खा है। परन्तु इससे तीर्थ-महिमा में किसी प्रकार की क्षति नहीं आती। क्योंकि यह दोष तीर्थों का नहीं बल्कि उन पतित पुरुषों का है, जिन्होंने तीर्थ-स्थानों में निवास करने की अनधिकार चेष्टा की है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनका सुधार करें, न कि कीट और कंटकों के भय से गुलाब के फूल को ही निरर्थक समझने लगें।

मुझे अपने निजी अनुभवों के आधार पर पूर्ण विश्वास होगया है कि यदि हमें अध्यात्म-पथ की ओर अग्रसर होना है तो अपने लक्ष्य के अनुकूल तीर्थ-स्थली में निवास करना परमावश्यक है। यद्यपि ईश्वर सर्व व्यापक है और साधन प्रत्येक स्थान पर किया जा सकता है। परन्तु कहना और करना बड़ा कठिन काम है। सत्सङ्ग और सहायक वातावरण के बिना बड़े-बड़े ज्ञानी और उच्चकोटि के साधकों को नीचे गिरते देखा गया है। तीर्थ-स्थानों का पवित्र वातावण साधक की सर्वदा फ़ौलादी क़िले के समान रक्षा करता है, आँधी के समान साधन-पथ में आगे खेलता है, प्रज्वलित कड़ाही के समान साधक स्वर्ण को शीघ्रार्जित करके देदीप्यमान बनाता है।

कोई ज्ञानवान् निराकार परमात्मा की उपासना करते हैं, कोई साकार ईश्वर की आराधना करते हैं। हम तो संसार की दावाग्नि से खूब जले भुने हुये हैं, इसलिये अपनी तृष्णा बुझाकर शीतल होने के लिये 'निराकार' और 'नराकार' दोनों स्वरूपों को छोड़कर 'नीराकार' बंशीवट तट पर कहलाती हुई यमुना मैया की उपासना करते हैं। क्योंकि यमुना मैया के श्यामरङ्ग में स्नान किये बिना सचा श्यामरङ्ग नहीं चढ़ता।

नाम-माहात्म्य

"परिशिष्टाङ्क"

वर्ष ४ : संख्या ९

सितम्बर १९४१.

❀ श्री ❀

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

उल्टा नाम जपत जग जाना ।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

वार्षिक मूल्य १।।) एक प्रति =)	सम्पादक-- श्रीदानविहारीलाल शर्मा श्रीरामदास शास्त्री, 'साहित्यरत्न'	वर्ष ४: संख्या २ सितम्बर १९४१.

प्रकाशक--श्रीगौरगोपाल अग्रवाल, भजनाश्रम, वृन्दावन।
मुद्रक—बाबू प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, वृन्दावन।

BLOCKS BY COURTESY OF SUKH SANCHA RAK CO. LTD., MUTTRA.

श्री वदरीनारायण जी

❀ श्रीहरिः ❀

श्रीभजनाश्रम, वृन्दावन द्वारा प्रकाशित—

धार्मिक — मासिक पत्र — पारमार्थिक

नाम-माहात्म्य

नाम्नामकारि बहुता निज सर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥
—भगवान् श्रीचैतन्यदेव

वर्ष ४ | भाद्रपद सं० १९९८—सितम्बर १९४१ ई० | संख्या २

श्रीबद्रीनाथ स्तुति

पवन मंद सुगन्ध शीतल हेम मंदिर शोभितं ।
निकट गङ्गा बहति निर्मल श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरं ॥
शेष सुमिरन करत निशिदिन ध्यान धरत महेश्वरं ।
वेद ब्रह्मा करत स्तुति श्रीबद्रीनाथ विशम्भरं ॥
इन्द्र चन्द्र कुबेर धुनि कर धूप दीप प्रकाशितं ।
सिदर मुनिजन करत जय जय श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरं ॥
भक्त गौरी गणेश सारद नारद मुनि उच्चारणं ।
योग ध्यान अपार लीला श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरं ॥
दत्त किन्नर करत कौतुक ज्ञान गंधर्व प्रकाशितं ।
श्रीलक्ष्मी कमला योग ध्याने अपार लीला श्रीबद्रीनाथ वि० ॥
कैलाश में एक देव निरञ्जन शैल शिखर महेश्वरं ।
राजा युधिष्ठिर करत स्तुति श्री बद्रीनाथ विश्वम्भरं ॥
श्रीबद्रीनाथजी के पञ्च रतन मठत पाप विनाशनं ।
कोटि तीर्थ भयो है पुण्य प्राप्ती फलदायकं ॥

भारतवर्ष की तीर्थ-यात्रा का क्रम ।

[लेखक—श्रीयुत पं० रामनारायणदत्तजी पाण्डेय, शास्त्री, 'राम']

अनादि काल से ही हमारा भारत धर्म-भूमि एवँ तीर्थ रहा है। इस देश में असंख्य तीर्थ हैं। श्रद्धालु दर्शनार्थी यात्रियों के लिये पूर्वकाल में तो सभी तीर्थों की यात्रा बहुत ही कष्ट-साध्य थी, किन्तु आजकल तो रेलों द्वारा तीर्थों का दुर्गम-पथ बहुत कुछ सरल होगया है। हाँ उत्तराखण्ड में, जो हिमाच्छादित पर्वतमय प्रान्त है, जहाँ पर रेल निकलना सम्भव नहीं है, वहाँ अब भी यात्रियों को पैदल ही अपनी तीर्थ-यात्रा करनी होती है।

आज कल अनेक बड़े-बड़े स्थानों से तीर्थ-यात्रा की स्पेशल रेल गाड़ियाँ चलती हैं, जो सभी प्रमुख तीर्थों में दर्शन कराती हुई प्रायः तीन मास में वापस लौटती हैं। दो वर्ष पहिले गीता प्रेस की तीर्थ-यात्रा स्पेशल ट्रेन खुली थी। उसी के द्वारा प्रायः समस्त तीर्थों के दर्शन करने का सौभाग्य हमें भी मिला था। उस समय यह विचार था कि भारत की तीर्थ-यात्रा के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक पुस्तक तैयार की जाय, जिससे यात्रियों को विशेष सुविधायें हों। इसी उद्देश्य से प्रत्येक तीर्थ की ज्ञातव्य बातें एवं दर्शनीय स्थानों का वर्णन और पूरी यात्रा के नोट्स तैयार कर लिये, किन्तु पुस्तक में कई आवश्यक बातें, जो देना चाहते थे, नहीं लिखी जा सकीं। इसके अतिरिक्त बहुत तीर्थों में हमारी ट्रेन नहीं गई, फलतः वहाँ के विषय में भी कुछ न लिखा जा सका। अतः सभी तीर्थों का पूरा हाल देकर एक प्रामाणिक ग्रन्थ तैयार करने का विचार है। भगवान् की जब कृपा होगी तभी यह कार्य पूरा होगा।

वैसे हमारी यात्रा का क्रम कुछ और था, किन्तु हम इस क्रम को मथुरा से प्रारम्भ कर रहे हैं। मथुरा से भी कई बार तीर्थ यात्रा स्पेशल खुल चुकी हैं। इस क्रम में विस्तार भय से तीर्थों का हाल नहीं लिखा है, केवल क्रम और यात्रा का मार्ग इंगित करते हुए सूक्ष्म रीति से तीर्थों के नामादि दिये गये हैं।

मथुरा—यह सप्त-पुरियों में से एक है, ब्रज-भूमि का केन्द्र, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-स्थली होने से बहुत ही प्रसिद्ध एवं पवित्र स्थान है। मथुरा से १४ मील पक्की सड़क पर श्रीगोवर्धन है। मोटर तांगे आदि से यात्री जाते हैं। मथुरा से ६ मील पर श्रीवृन्दावन धाम है। यहाँ रेल भी गई है। मोटर तांगा तो हर समय ही जाते हैं। श्रीवृन्दावन में अनेक धर्मशालायें हैं। सहस्रों देव मन्दिर और बहुत से दर्शनीय स्थान हैं। श्रावण, कार्तिक एवं चैत्र में यहाँ पर सहस्रों यात्रियों का यातायात रहता है। मथुरा से प्रायः ३ मील गोकुल और वहाँ से १२ मील श्रीबल्देवजी हैं। मथुरा से २५ मील पर बरसाना व वहाँ से ४ मील पर नन्दगाँव है। इन सभी स्थानों को भी मोटर ताँगे जाते हैं। मथुरा में अनेक धर्मशालायें हैं। यात्रियों को ठहरने की बड़ी सुविधायें हैं। मथुरा एवं ब्रजमण्डल के सभी स्थान भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि हैं। यहाँ पर असंख्य देव-मन्दिर एवं दर्शनीय भगवद्-लीला स्थान हैं।

देहली—मथुरा से यात्रा की गाड़ी (बड़ी लाइन) दिल्ली पहुँचती है। दिल्ली भारत की राजधानी है। यही पुराना इन्द्रप्रस्थ है। यहाँ अनेक दर्शनीय स्थान एवं मन्दिर हैं। धर्मशालायें

भी बहुत हैं। दिल्ली से गढ़मुक्तेश्वर में गङ्गा स्नान का माहात्म्य है। गढ़ तक रेल भी जाती है। दिल्ली से ही कुरुक्षेत्र तीर्थ देखा जा सकता है। यहाँ भी रेल, मोटर आदि जाते हैं।

हरिद्वार—दिल्ली से गाड़ी चलकर हरिद्वार पहुँचती है। यह नगर सप्तपुरियों में से एक प्रसिद्ध एवं अति पावन तीर्थ है। यहाँ पर हरि की पैड़ी पर भागीरथी स्नान का माहात्म्य है। यहाँ पर अनेक धर्मशालायें हैं और बहुत दर्शनीय स्थान हैं। यहीं से मोटर द्वारा ऋषिकेश को जाना होता है। वैसे ऋषिकेश तक रेल भी गई है। ऋषिकेश से ही लक्ष्मण झूला होकर बद्रीनारायणजी व केदारजी तथा गङ्गोत्री, यमुनोत्री आदि उत्तराखण्ड के तीर्थों को जाना होता है। मार्ग में अनेक ठहरने के स्थान बने हैं, जिन्हें चट्टी कहते हैं। यहाँ पर प्रकृति का सौंदर्य प्रत्यक्ष दिखलाई देता है। यह प्रदेश बड़ा ही रमणीक है। अनेक स्थानों पर मन्दिर एवं प्राचीन ऋषियों की भजनस्थली हैं। प्रायः प्रत्येक चट्टी पर ऋषिकेश के बाबा कालीकमली वाले के क्षेत्र लगे हैं। ऋषिकेश से ऊपर समस्त उत्तराखण्ड की यात्रा पैदल या डण्डियों पर होती है। मार्ग में सामान आदि ले जाने को पहाड़ी कुली मिलते हैं। यह यात्रा पूरी तो प्रायः दो मास में समाप्त होती है। अब तो हरिद्वार से बद्री-नारायणजी तक हवाई जहाज भी चलते हैं, जिससे वहाँ के दर्शन एक दिन में ही हो सकते हैं। किन्तु इस तरह व्यय भी अधिक होता है और बीच के अनेक देखने योग्य स्थानों का आनन्द भी छूट जाता है।

हरिद्वार से ही यात्री चाहें, तो पञ्जाब के दर्शनीय तीर्थों में जा सकते हैं। ज्वालामुखी, श्रीनगर, कैलाश, अमृतसर आदि अनेक प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन कर सकते हैं, किन्तु तीर्थयात्रा की गाड़ी हरिद्वार से फिर वापिस बालामऊ आती है।

नैम्यशारण्य—बालामऊ के पास ही प्रसिद्ध 'चक्रतीर्थ नैम्यशारण्य' है। यहीं पर अनेक ऋषि-महर्षियों ने श्रीशुकदेव मुनि से श्रीमद्भागवत की कथा सुनी थी। मिश्रख भी देखने योग्य है। वेद-व्यासजी की गादी, दधीचि ऋषि का आश्रम आदि अनेक दर्शनीय स्थान हैं।

लखनऊ—बालामऊ से गाड़ी लखनऊ पहुँचती है। लखनऊ तीर्थ न होने पर भी युक्तप्रान्त का एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँ पर अनेक देखने योग्य स्थान हैं।

अयोध्या—लखनऊ से अयोध्या को गाड़ी जाती है। यह सप्तपुरियों में से एक है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की जन्मस्थली होने से यह अति-पावन और प्रसिद्ध तीर्थ है। सरयू के किनारे बसा हुआ यह सुन्दर नगर देखने योग्य है। यहाँ पर अनेक घाट, देव-मन्दिर, धर्मक्षेत्र एवं धर्मशालायें हैं। फैज़ाबाद ज़िले का यह सब से प्रधान तीर्थ है।

यहीं से और बनारस से भी कुछ यात्री नैपाल की यात्रा को जाते हैं। नैपाल राज्य में पशुपति-नाथ महादेव और अनेक दर्शनीय तीर्थों को देखने के लिये सहस्रों यात्री वहाँ को जाते हैं।

करवी (चित्रकूट)—अयोध्या से यात्रा की गाड़ी करवी पहुँचती है। यहाँ से चित्रकूट जाना होता है। चित्रकूट एक दर्शनीय तीर्थ है। यहाँ पर अनेक देव-मन्दिर, घाट, सरोवर आदि हैं। यहाँ भरतजी का मन्दिर दर्शनीय स्थान है। यहाँ पर श्रीकामदनाथ तीर्थ भी है। अत्रि मुनि का स्थान देखने योग्य है। हनुमान धारा, भरतकूप, सीता-रसोई, स्फटिक शिला आदि अनेक दर्शनीय स्थान यहाँ पर हैं। यहाँ की प्राकृतिक शोभा मनमोहक है।

प्रयाग—करवी से यात्रा-ट्रेन इलाहाबाद पहुँचती है। यह अति पावन तीर्थराज है। यहाँ पर पतित-पावनी भागीरथी, यमुनाजी और सरस्वती का सङ्गम है, जो त्रिवेणी के नाम से प्रसिद्ध है! प्रयाग में बहुत-सी धर्मशालायें हैं। यूनीवर्सिटी,

हाईकोर्ट आदि भी हैं। अनेक देव-मन्दिर हैं। यहाँ के किले में अक्षयवट एवं अनेक प्राचीन देव-मूर्तियां हैं। प्रयाग का माहात्म्य अनेक पुराणों में वर्णित है। प्रयाग के निकट हंस तीर्थ एक देखने योग्य स्थान है।

बनारस—इलाहाबाद से बनारस (काशी) जाना होता है। यह भगवान् शिव की अति प्रिय और सप्तपुरियों में प्रसिद्ध एक पुरी है। श्रीविश्वनाथ के पावन दर्शन और भागीरथी-स्नान कर यात्री अपने जन्म जन्मान्तर के पापों का नाश करते हैं। यहाँ के विशालघाट बड़े शोभायमान लगते हैं। यहां अनेक देव-मन्दिर हैं। भारत का प्रसिद्ध हिन्दू विश्वविद्यालय देखने योग्य स्थान है।

गया—काशी से आगे तीर्थयात्रा गया पहुँचती है। यहाँ पर यात्री अपने पित्रों का श्राद्ध करते हैं, गया के आस-पास अनेक दर्शनीय सरोवर, देव मन्दिर एवं स्थान हैं। फल्गूनदी, विष्णुपद, गदाधर, आदि-गया, बोध-गया, जिह्वालोल, राम गया आदि अनेक स्थान एवं ब्रह्मकुण्ड, ब्रह्मसरोवर, गया कूप, सूर्यकुण्ड आदि अनेक पावन जलाशय गयाजी में देखने योग्य हैं। यहाँ भी अन्य तीर्थों की भाँति यात्रियों के ठहरने की सुविधायें पर्याप्त मात्रा में हैं। आश्विन के पितृ पक्ष, पौष एवं चैत्र के कृष्णपक्ष में यहाँ बहुत अधिक यात्री आते हैं। यहाँ धर्मशालायें भी हैं।

गया से ही विहार प्रान्त के जनकपुर, सीतामढ़ी, सीगेश्वरनाथ, बाराहक्षेत्र, अजगय वीनाथ, आदि अनेक तीर्थों के दर्शन यात्री कर सकते हैं। किन्तु यात्रा गाड़ी अपने क्रम के अनुसार इन स्थानों पर नहीं ठहरती है।

वैद्यनाथ धाम—गया से चलकर स्पेशल गाड़ी वैद्यनाथ धाम पहुँचती है। यह स्थान पटना से १३१ मील, मधुपुर जंकशन से १८ मील है। वैद्यनाथजी पर गङ्गाजल चढ़ाने का बड़ा माहात्म्य है। यहाँ पर गणेशजी, आनन्द-भैरव, कालभैरव, सूर्य, सरस्वती, दत्तात्रेय आदि अनेक देव मन्दिर और शिवगङ्गा सरोवर आदि कई पवित्र जलाशय हैं, जो देखने योग्य हैं।

कलकत्ता—वैद्यनाथ धाम से आगे चलकर गाड़ी कलकत्ता पहुँचती है। यहाँ पर बड़ी लाइन की गाड़ी खाली करके छोटी लाइन की स्पेशल में सवार होना होता है। कलकत्ता भारत का एक दर्शनीय विशाल नगर है। सहस्रों यात्रियों का प्रतिदिन यातायात रहता है। यहाँ पर श्रीगङ्गाजी समुद्र में मिलती है—यहाँ से थोड़ी दूर पर गङ्गासागर नामक प्रसिद्ध तीर्थ है।

भुवनेश्वर—कलकत्ता से गाड़ी चलकर भुवनेश्वर पहुँचती है। यह तीर्थ कटक से १६ मील दक्षिण है। यहाँ पर अनेक शिव मन्दिर हैं किन्तु भुवनेश्वर का मन्दिर सब से विशाल एवं दर्शनीय है। यहाँ पर विन्दु सरोवर नामका एक जलाशय भी है। ठहरने को यात्रियों को सुविधा है।

पुरी—भुवनेश्वर से यात्रा की गाड़ी श्रीजगन्नाथ पुरी पहुँचती है। यह पूर्व भारत का सबसे प्रसिद्ध तीर्थ है। समुद्र तट पर बसी हुई यह पुरी वास्तव में यात्रियों को सहज में आकर्षित करने वाली है। श्रीजगन्नाथजी का बहुत बड़ा विशाल मन्दिर है। यहाँ रथयात्रा पर सहस्रों यात्रियों की भीड़ होती है। भारत के प्रसिद्ध चार धामों में से एक यह है।

साक्षी गोपाल—पुरी से गाड़ी चलकर साक्षीगोपाल नामक तीर्थ में पहुँचती है। यह स्थान पुरी के निकट ही है। रेलवे स्टेशन के पास ही मन्दिर बना है। यहाँ पर अनेक मन्दिर हैं। प्राकृतिक दृश्य मनोहर और देखने योग्य है।

सिमहाचलम—साक्षी गोपाल के बाद सिमहाचलम पहुंचना होता है। यहाँ से नरसिंहजी का मन्दिर निकट है, जो देखने योग्य है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकर है।

राजमहेन्द्री—सिमहाचलम से गाड़ी राजमहेन्द्री पहुंचती है। यह स्थान स्वयं कोई विख्यात तीर्थ न होने पर भी यहाँ से गोदावरी का स्थान निकट होने से यात्री बहुत जाते हैं। गोदावरी दर्शन और स्नान का बड़ा माहात्म्य है। राजमहेन्द्री के निकट गोदावरी नदी पर ५६ स्तम्भ लगा हुआ एक बड़ा पुल बना हुआ है। गोदावरी जिले में पहाड़ी दृश्य देखने योग्य हैं।

वेजवाड़ा—यह रेलवे का स्टेशन है। यहाँ से प्रायः ७ मील दक्षिण-पश्चिम मङ्गलगिरि नाम का स्टेशन है। यह कृष्णा जिले का छोटा सा क़स्बा है। यहाँ पर लक्ष्मीनरसिंहजी का एक विशाल मन्दिर है। मङ्गलगिरि पहाड़ी पर पनानृसिंहजी की मूर्ति विराजमान है। सामने ही लक्ष्मीजी की मूर्ति है। श्रीनृसिंहजी के मुख में पना यानी गुड़ या खाँड़ का शर्बत पिलाया जाता है। इसी से उन्हें पनानृसिंहजी के नाम से बोला जाता है। यह दक्षिण का एक प्रसिद्ध तीर्थ है।

मदरास—पनानरसिंह से चलकर यात्रा की गाड़ी मदरास रुकती है। मदरास स्वयं कोई तीर्थ स्थान नहीं है, किन्तु दक्षिण भारत का एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध नगर है। इस प्रान्त में अनेक तीर्थ दर्शनीय हैं। विरूपाक्ष, पम्पासर, किष्किन्धा, चक्रतीर्थ, कालहस्ती आदि अनेक पवित्र एवं प्रसिद्ध देखने योग्य स्थान हैं। तीर्थ-यात्रा वाली गाड़ी इन सबों में नहीं जाती, यात्री अपनी सुविधानुसार मोटर या रेल द्वारा मदरास प्रान्तागत तीर्थों का भ्रमण कर पुनः यात्रा गाड़ी पकड़ सकते हैं।

चिदम्बरम्—मदरास से गाड़ी चिदम्बरम पहुँचती है। यह मद्रास प्रान्त के दक्षिणी अरकाट जिले में समुद्र के पूर्वी किनारे से सात मील पश्चिम में एक अति पवित्र स्थान है। यहाँ पर नटेश शिवजी का विशाल मन्दिर है। नगर के निकट कोलेरून नदी है। यहाँ का जलवायु बहुत अच्छा और प्राकृतिक दृश्य मनोहर हैं। ठहरने के लिये यात्रियों को यहाँ पर बहुत सुविधायें हैं।

तंजोर—चिदम्बरम् से चलकर गाड़ी तंजोर ठहरती है। यह नगर मदरास प्रान्त की प्रसिद्ध एवं पवित्र नदी कावेरी के तट पर कुम्भकोणम् स्टेशन से २५ मील पर बसा है। यहाँ पर संस्कृत का विशाल पुस्तकालय देखने योग्य है। एक किले में एक बड़ा मन्दिर और शिव गङ्गा नामक एक सरोवर प्रसिद्ध है। यह नगर जिले का सदर स्थान है। कई धर्मशाला हैं। अनेक देवालय है। स्थान रमणीक और मनोहर है।

त्रिचनापल्ली—तंजोर से गाड़ी त्रिचनापल्ली पहुँचती है। यह तंजोर से प्रायः ३१ मील पश्चिम एक रेलवे का प्रसिद्ध जङ्कशन स्टेशन है। नगर में टीले पर अनेक मन्दिर बने हुए हैं। शिवजी का मन्दिर बहुत ही दर्शनीय है। इस जिले की प्रसिद्ध नदी कावेरी है। जिले के उत्तर में वेलार नदी है। त्रिचनापल्ली और कोयम्बटूर जिलों के बीच अमरावती नदी बहती है। यह स्थान भी देखने योग्य है।

श्रीरङ्गम—त्रिचनापल्ली जिले में ही कावेरी नदी के भीतर एक बड़े टापू पर यह नगर बसा है। त्रिचनापल्ली से ही यात्री यहाँ जाते हैं। दक्षिण प्रान्त में यह सबसे बड़ा एवं विशाल मन्दिर है। सात बहुत बड़े-बड़े कोटों के भीतर श्रीरङ्गजी महाराज का दर्शनीय मन्दिर है। मन्दिर में एक पवित्र जलाशय भी है। कावेरी नदी का यह रमणीय स्थान तीर्थ यात्रियों के देखने योग्य है। टापू और मन्दिर की शोभा एवं बनावट निराली ही है। टापू पर कई धर्मशालायें भी हैं और यात्रियों के ठहरने के लिये पण्डाओं के मकानों में भी सुविधा रहती है। यह टापू प्रायः १७ मील लम्बा और सवा मील चौड़ा है। इस पर जाने के लिए पुल भी बना हुआ है। त्रिचनापल्ली से मोटर जाती हैं। श्रीरंगम टापू पर ही जम्बुकेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर

है। यह श्रीरंगजी के मन्दिर से प्रायः एक मील पर है।

मदुरा—त्रिचनापल्ली से चलकर यात्रा गाड़ी मदुरा ठहरती है। यह स्थान त्रिचनापल्ली से प्रायः ६६ मील पर है। रेल का स्टेशन है। यह जिले का प्रधान स्थान है। वेगा नदी के दक्षिण एक प्रसिद्ध धर्मशाला है, इसमें यात्रियों को ठहरने की सुविधा हैं। स्टेशन से एक मील पर श्रीमीनाक्षी देवी एवं श्रीसुन्दरेश्वर शिवजी के मन्दिर अति प्रसिद्ध और दर्शनीय हैं। यहाँ पर मीनाक्षीदेवी में एक सुन्दर तालाव भी है। यहाँ तिरूमलई नामक महल भी देखने योग्य ही है। इसी स्थान से यात्री श्रीरामेश्वरजी को जाते हैं।

रामेश्वर—मदुरा से यात्रा की गाड़ी चलकर रामेश्वर पहुँचती है। यह मदुरा से ६० मील पर है। समुद्र के पास 'हरबीला की खाड़ी' (इसे चेताल मण्डपम् भी कहते हैं) है। उससे पूर्व मद्रास प्रान्त के मदुरा जिले के रामनाद की जिमीदारी के अन्तर्गत मनार खाड़ी में रामेश्वर नामक टापू है। यह टापू १६ मील लम्बा और ७ मील चौड़ा है। टापू के पूर्व किनारे पर श्रीरामेश्वरजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। पाँवन से वहाँ तक ताँगे जाते हैं। बस्ती में सभी आवश्यक वस्तुयें मिलती हैं। यहाँ पर कई धर्मशाला और क्षेत्र हैं। यहाँ पर नारियल की पत्तल और ताड़ के जल भरने के डोल देखने योग्य है। रामेश्वर मन्दिर चार धामों में से है। बहुत विशाल एवं मनोहर और दर्शनीय है।

यहाँ के निकटवर्ती दर्शनीय स्थानों में से रामतीर्थ, रामझरोखा, सुग्रीवतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, सीताकोटि, धनुषकोटि, अग्नितीर्थ, अगस्त्य तीर्थ आदि अनेक पवित्र तीर्थ हैं। यात्री अपनी सुविधानुसार भी की दर्शन-यात्रा करते हैं।

रामनद—रामेश्वर से लौटकर तीर्थयात्रा की गाड़ी रामनद पहुँचती है। यह एक राजा के आधीन है। यहाँ कई धर्मशाला हैं। रामेश्वर के यात्री यहाँ विश्राम करते हैं।

चिंगलपट—रामनद से गाड़ी चिंगलपट स्टेशन पहुँचती है। नगर से ६ मील की दूरी पर एक रमणीक पहाड़ी के ऊपर दक्षिण प्रान्त का अति प्रसिद्ध 'पक्षीतीर्थ' है। पहाड़ी के नीचे यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालायें बनी हुई हैं। यहाँ कुण्ड भी है। यहाँ के पक्षीयों का खीर खाने के दर्शन मंगलमय माना जाता हैं। चिङ्गलपट से ताँगे जाते हैं। मोटर भी मिल जाती हैं।

काञ्जीवरम्--चिंगलपट से गाड़ी कांजीवरम् ठहरती है। चिंगलपट से २२ मील पश्चिमोत्तर कांजीवरम् का स्टेशन है। मद्रास प्रान्त के चिंगलपट जिले में यह एक अति पवित्रपुरी है। सप्तपुरियों में से एक है। यह दक्षिण का बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है। स्टेशन से प्रायः डेढ़ मील पर बड़ी कांची यानी शिव कांची है और वहाँ से ३ मील पर-स्टेशन से २ मील पर छोटी कांची यानी विष्णु काँची है। दोनों के बीच में सड़क बनी है। शिव कांची में शिव-भक्त एवं विष्णु कांची में विष्णु भक्त अधिक हैं। दोनों स्थानों पर ठहरने को धर्मशालायें हैं। शिव कांची में शिवजी का और विष्णु कांची में विष्णु का अलग-अलग विशाल एवं दर्शनीय मन्दिर हैं। दोनों ही तीर्थ देखने योग्य हैं। यहाँ अनेक जलाशय भी हैं। अनेक देव-मन्दिर हैं। इन स्थानों की शोभा अति मनोहर है।

रैनीगुण्टा--कांजीवरम से चलकर स्पेशल यात्रा की गाड़ी रैनीगुण्टा में ठहरती है। यहाँ से यात्री लक्ष्मण-बाला को जाते हैं। यह स्थान भी देखने योग्य है।

तुंगभद्रा--रैनीगुण्टा से तुंगभद्रा नामक प्रसिद्ध तीर्थ पर गाड़ी ठहरती है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों यात्री पहुँचते हैं। प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद एवं मनमोहक है।

कुर्दवाडी---तुंगभद्रा से यात्रा गाड़ी कुर्दवाडी जाती है। यह स्थान बम्बई प्रान्त के शोलापुर जिले में है। यहाँ से भीमानदी के किनारे पंढ़रपुर नामक तीर्थ जाकर वहाँ के श्रीविट्ठलनाथजी के पावन दर्शन यात्रीगण करते हैं। यहाँ चन्द्रभागा तीर्थ, सोमतीर्थ आदि अनेक दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ पर भीमा नदी के घाटों की शोभा मनमोहक है। कई धर्मशालायें भी हैं। आषाढ़, कार्तिक और चैत्र में यहाँ मेले होते हैं।

पूना--कुर्दवाडी से चलकर गाड़ी पूना ठहरती है। पूना एक विशाल नगर है। यहाँ से २१ मील पर तलेगाँव एक स्टेशन है स्टेशन से प्रायः २४ मील दूर दक्षिण के प्रसिद्ध भीमशंकर का मन्दिर है, जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से है।

नासिक--पूना से नासिक जाकर रुकना होता है। यह दक्षिण का अति प्रसिद्ध तीर्थ है। गोदावरी तट पर समुद्रजल से १६०० फ़ीट ऊँचाई पर यह नगर बसा हुआ है। नासिक में १२ वर्ष उपरान्त कुम्भ का बहुत बड़ा मेला लगता है। पास ही गोदावरी के किनारे पञ्चवटी स्थान है, जहाँ पर अनेक मन्दिर और दर्शनीय स्थान हैं। नासिक से १८ मील पर त्र्यम्बकेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ से ६ मील में चक्रतीर्थ है जहाँ से गोदावरी प्रकट हुई हैं। नासिक से २ मील दूर गौतम ऋषि का तपोवन है। गोदावरी तट पर ही वैदूर्यपत्तन के निकट श्रीअरुणमुनि का आश्रम है, जो श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आदि प्रवर्त्तक श्रीनिम्बार्काचार्यजी की जन्मभूमि है।

नासिक के आस-पास अनेक पहाड़ी प्रदेशों में बहुत से प्रसिद्ध एवं दर्शनीय तीर्थ हैं। नासिक के निकट ही पाण्डव गुफ़ा हैं। गोदावरी और कपिलानदी का सङ्गम भी पास में है, जहाँ पर पञ्चतीर्थ नाम के पाँच कुण्ड हैं। नासिक में अनेक धर्मशालायें और यात्रियों के ठहरने के स्थान हैं। यहाँ प्रायः सदैव ही सहस्रों यात्रियों का यातायात होता रहता है

बम्बई—नासिक से चलकर गाड़ी बम्बई ठहरती है। बम्बई भारत का सर्वश्रेष्ठ नगर है। यह नगर तीर्थ न होने पर भी बहुत प्रसिद्ध है। यहां पर समुद्र किनारे के दृश्य बड़े ही मनोहर हैं। बम्बई नगर में रेलवे के १३ स्टेशन हैं। बम्बई एक टापू है जिसके तीन ओर समुद्र है। यहाँ पर अनेक दर्शनीय इमारतें, स्थान, देव मन्दिर आदि हैं। महालक्ष्मी का मन्दिर, पिंजरापोल, मुम्बादेवी, द्वारिकाधीश का मन्दिर, वालकेश्वर आदि अनेक स्थान बड़े प्रसिद्ध, विशाल एवं देखने योग्य हैं। बम्बई के निकट ही मलाबार पहाड़ी है, जो एक अत्यन्त स्वास्थ्य-प्रद स्थान है। बम्बई में सैकड़ों धर्मशालायें, होटल तथा यात्रियों के ठहरने आदि के स्थान हैं।

बम्बई से थोड़ी दूर पर एलीफेन्टा के गुफ़ा मन्दिर, योगेश्वर के गुफ़ा मन्दिर, मण्डेश्वर के गुफ़ा मन्दिर, कनारी के गुफ़ा मन्दिर आदि अनेकों गुफ़ा मन्दिर हैं, जो देखने योग्य हैं और जो भारत की प्राचीन कला-कौशल के द्योतक हैं।

बम्बई प्रान्त में अमरनाथ, सूरत, रत्नागिरि, गोकर्ण-तीर्थ, आदि अनेक पुण्य तीर्थ एवं दर्शनीय स्थान हैं। इन सभी स्थानों पर तीर्थयात्रा की गाड़ी नहीं जाती। यात्री प्रथक से इनको अपनी सुविधानुसार देख सकते हैं।

भड़ौंच—बम्बई घूमकर यात्रा की गाड़ी भड़ौंच पहुँचती है। नर्मदा किनारे पर गुजरात में बड़ौदा स्टेशन से ४४ मील पर यह नगर है। यह पश्चिमी भारत के पुराने बन्दरगाहों में से है। यहाँ से नर्मदा और समुद्र द्वारा दूसरे देशों को व्यवसायिक वस्तुएँ का यातायात होता था। भड़ौंच में कई धर्मशालायें हैं। अनेक दर्शनीय स्थान एवं देव मन्दिर हैं। कहा जाता है कि भृगुऋषि ने इस

नगर को बसाया था। भड़ुच से प्राय: ८ मील पर नर्मदा किनारे भादेश्वर महादेव का मन्दिर है। भड़ौंच नगर के आस-पास पहाड़ी और टीले हैं। प्राकृतिक दृश्य मनोरम हैं।

भड़ौंच से प्राय: ३० मील पर नर्मदा का निकास है। यहाँ पर अनेक यात्री जाते हैं। नगर से कोई दस मील पर शुक्लतीर्थ नामक एक बहुत प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ पर सहस्रों यात्री स्नान करने को जाते हैं। नर्मदा के शुक्लतीर्थ से एक मील पर नर्मदा के एक टापू के ऊपर कबीरवट नामक एक प्रसिद्ध वटवृक्ष है। यहाँ कबीरजी ने भजन किया था। यह बड़ा पवित्र स्थान है।

भड़ौंच के आस-पास चन्द्रोदय तीर्थ, डभोई, आदि अनेक तीर्थ दर्शनीय हैं। नर्मदा की स्थिति से इस प्रदेश में बहुत ही पवित्रा एवं रम्यता आगई है। नर्मदा तट के दृश्य मनमोहक हैं।

बड़ौदा—भड़ौंच से गाड़ी बड़ौदा पहुँचती है। यहाँ एक बहुत बड़ा स्टेशन है। नगर भारत की प्रसिद्ध रियासत बड़ौदा (गायकबाड़) की राजधानी है। स्टेशन के निकट ही दो बहुत बड़ी धर्मशालायें हैं। शहर और छावनी के बीच विश्वामित्री नदी बहती है। यातायात के लिये ४ पक्के पुल बने हैं। नगर में श्रीविट्ठलजी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध और विशाल है। खण्डोवादेवी का मन्दिर, स्वामी-नारायण का मन्दिर, बल्देवजी, काशीविश्वेश्वर, गणपति, भीमनाथजी आदि अनेकों देव मन्दिर यहाँ पर हैं। नगर में यात्रियों की सुविधाओं का ध्यान रक्खा जाता है और भक्तों एवं विद्वानों का राज्य की ओर से सत्कार भी होता है। गायक-वाड़ राज्य में और भी अनेक दर्शनीय स्थान हैं।

वीरमगाँव—बड़ौदा से चलकर यात्रा गाड़ी वीरमगाँव पहुंचती है। अहमदाबाद स्टेशन से ४० मील पश्चिम वीरमगाँव का स्टेशन है। स्टेशन के पास सुन्दर सरकारी धर्मशाला है। वीरमगाँव स्वयं कोई तीर्थ नहीं है, किन्तु इसके पास साबर-मती है। वीरमगाँव में १० वीं सदी का बना हुआ एक मानसर नामक सुन्दर तालाव है। वीरमगाँव के पास खारागोड़ा गाँव है, जहाँ पर सूखी ऋतु में कच्छ के रन कीचड़ सूख कर कड़ा होजाता है, जिससे बहुत नमक तैयार होता है। स्टेशन पर बहुत नमक इकट्ठा किया जाता है। वीरमगाँव के आस--पास बाढ़वान, धांगध्रा, मोरवी आदि अनेक देखने योग्य स्थान हैं।

जूनागढ़—वीरमगाँव से यात्रा गाड़ी चलकर जूनागढ़ पहुँचती है। यह एक देशी राज्य की राजधानी है। यहीं पर प्रसिद्ध नरसी भक्त का जन्म स्थान है। जूनागढ़ में बहुत सी इमारतें देखने योग्य हैं। जूनागढ़ शहर से पूर्व गिरिनार नामक पहाड़ियाँ हैं। इनमें गिरिनार, योगिनियाँ, बेंसला, दत्तर आदि अनेक पहाड़ी बहुत प्रसिद्ध हैं। जूनागढ़ से प्राय: १० मील पूर्व में ये पहाड़ियाँ हैं। पहाड़ पर एक धर्मशाला भी है। ऊपर अनेक जैन मंदिर हैं। इन सब में तीर्थ नेमीनाथ का मंदिर बहुत विचित्र, प्राचीन और दर्शनीय है। इन पहा-ड़ियों पर भीमकुण्ड नाम का एक तालाब है, अम्बा, दत्तात्रेय आदि के अनेक हिन्दू मंदिर हैं।

इसी प्रान्त के पालीटाणा राज्य में शत्रुञ्जय पहाड़ी भी है, जिस पर एक चौमुखा मंदिर है। इस मंदिर में सौ से अधिक मूर्तियाँ हैं। यह स्थान बड़ा रमणीक एवं देखने योग्य है।

जामनगर—जूनागढ़ से गाड़ी चलकर जाम-नगर ठहरती है। जामनगर एक देशी राज्य की राजधानी है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य मनोरम एवं दर्शनीय हैं।

द्वारिका—जामनगर से गाड़ी द्वारिका ठहरती है। द्वारिका से १२ मील पर पोरबन्दर एक स्थान है, जिसे सुदामापुरी भी कहते हैं। सुदामापुरी से भी बहुत से यात्री द्वारिका आगबोट में बैठकर

जाते हैं। कच्छ की खाड़ी में एक छोटा सा टापू है, जिस पर द्वारिका बसी हुई है। यह चारों धाम में से एक तथा सप्त पुरियों में से एक है। यह पुरी अत्यन्त पवित्र और दर्शनीय है। दो द्वारिका हैं। एक गोमती द्वारिका दूसरी बेट द्वारिका। दोनों में श्रीरणछोरजी के विशाल एवं सुन्दर मंदिर बने हैं। यहाँ अनेक मंदिर और जलाशय हैं। समुद्र की शोभा भी दर्शनीय है। कई धर्मशाला भी हैं। द्वारिका के पास ही शंखोद्धार तीर्थ, गोपी-तालाब, नागेश्वर आदि अनेक देखने योग्य स्थान हैं। द्वारिका से थोड़ी दूर पर ही, उसी प्रान्त में सोमनाथ पट्टन नामक एक दर्शनीय स्थान है, जहाँ पर प्राचीन त्रिवेणी (कपिला, सरस्वती और हिरण्या नदी का संगम) है। सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है। सोमनाथ के पुराने मंदिर को महमूद गजनवी ने १७ बार लूटा था। वहीं नया मंदिर है जो दर्शनीय है।

राजकोट—द्वारिकाजी से चल कर गाड़ी राजकोट ठहरती है। काठियावाड़ में यह एक देशी राज्य की राजधानी है। यहाँ पर अनेक इमारतें देखने योग्य हैं।

अहमदाबाद—राजकोट से चलकर गाड़ी अहमदाबाद ठहरती है। यह गुजरात प्रान्त का प्रमुख नगर और बी० बी० एण्ड सी० आई रेलवे का बहुत बड़ा स्टेशन है। शहर में प्रायः १२५ जैन मंदिर तथा अनेक हिन्दू मंदिर और कई जलाशय एवं दर्शनीय स्थान हैं।

पास में साबरमती नदी के किनारे तीन प्रसिद्ध शिवालय हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर नारायण-सर नामक तीर्थ है, जो पवित्र और दर्शनीय है।

डाकोरजी—अहमदाबाद से गाड़ी डाकोरजी पहुँचती है। यह गुजरात प्रान्त का बहुत ही प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ पर एक तालाब है। रणछोरजी का मंदिर है और कई स्थान दर्शनीय हैं।

उज्जैन—डाकोरजी से गाड़ी उज्जैन ठहरती है। रतलाम से ४६ मील फतैहाबाद जङ्क्शन है, जहाँ से १४ मील पूर्वोत्तर उज्जैन एक ब्रान्च लाइन पर स्टेशन है। यह सप्त-पुरियों में से एक है। भारत का प्रसिद्ध तीर्थ एवं दर्शनीय स्थान है। यहाँ पर महाकालेश्वर शिव का मंदिर द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से है। मध्य-भारत के मालवा प्रदेश में चिप्रा नदी के तट पर यह पुरी बसी है। स्टेशन के पास ही सेंधिया राज्य की धर्मशाला है। नगर में और भी धर्मशालायें हैं।

उज्जैन के निकटवर्ती स्थानों में सिद्धवट, सांदीपन ऋषि का आश्रम, भर्तृहरि की गुफ़ा कालियादह महल, आदि अनेक दर्शनीय और प्रसिद्ध स्थान हैं।

चित्तौड़गढ़—उज्जैन से चल कर यात्रा स्पेशल चित्तौड़गढ़ ठहरती है। यह मेवाड़ राज्य की पुरानी राजधानी थी। यहाँ बहुत बड़ा विशाल क़िला है। यह स्थान अजमेर से ११६ मील पर है। क़िला पहाड़ी पर बना है। चित्तौड़ में ५ तालाब हैं। यहाँ पर कीर्त्तिना और जयस्तम्भ नामक दो विशाल बुर्ज देखने योग्य हैं। नगर में रणछोरजी, देवीजी, मुकुलजी का मंदिर आदि अनेक देखने योग्य मंदिर एवं एक स्थान पर गौमुखी झरना है। पहाड़ी स्थान का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम है।

श्रीनाथद्वारा—चित्तौड़गढ़ से मेवाड़ लाइन पर मावली जंकशन होती हुई गाड़ी श्रीनाथद्वारा स्टेशन पर पहुँचती है। श्रीवल्लभकुल सम्प्रदाय का यह एक प्रधान तीर्थ है। यह बनास नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। यहाँ पर श्रीनाथजी का बहुत विशाल एवं दर्शनीय मन्दिर है। श्रीनाथद्वारा के पास ही काँकरौली है। यहाँ भी वल्लभ सम्प्रदाय का प्रख्यात मन्दिर है। उदयपुर भी निकट में देखने योग्य स्थान है। श्री एकलिङ्गजी का मंदिर, उदयसागर नामक विशाल झील एवं उसके बीच में बने राजभवन बड़े ही सुहावने लगते हैं।

उदयपुर के आस-पास के पहाड़ी प्राकृतिक दृश्य बड़े ही सुहावने लगते हैं। महाराणा प्रताप की पहाड़ी उपत्यिकाओं को देखते ही बनता है।

अजमेर—श्रीनाथद्वारा से यात्रा गाड़ी अजमेर ठहरती है। अजमेर में कितने ही स्थान देखने योग्य हैं। बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे का कारखाना और बहुत बड़ा स्टेशन यहाँ पर है। नगर में कितने ही मन्दिर हैं। अजमेर से ६ मील पहाड़ी मार्ग द्वारा (पक्की सड़क) पुष्करजी नामक बहुत ही प्रसिद्ध तीर्थ है। पुष्कर राज में अनेक घाट, मन्दिर, जलाशय आदि देखने योग्य है। अजमेर से पुष्कर तांगा और मोटर द्वारा जाना होता है। पुष्कर में ब्रह्माजी का बहुत विशाल मन्दिर है। पुष्कर बड़ा ही पुण्यमय क्षेत्र है। पुष्कर से करीब २०-२५ मील पर सलेमाबाद नामक गाँव है, जहाँ पहाड़ी भी हैं। यहाँ श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की प्रधान गद्दी और श्री सर्वेश्वरजी का मन्दिर प्रसिद्ध एवं दर्शनीय है।

जयपुर—अजमेर से यात्रा गाड़ी किशनगढ़, फुलेरा जङ्कशन होती हुई जयपुर पहुँचती है। जयपुर देशी राज्य की राजधानी है। यह बड़ा ही रमणीक स्थान है। नगर की शोभा दर्शनीय है। शहर में अनेक देव-मन्दिर, हवामहल, रामनिवास बाग आदि अनेक देखने योग्य स्थान हैं। जयपुर से थोड़ी दूर पर गल्ता नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ गालव ऋषि का स्थान है। पहाड़ के ऊपर प्राकृतिक जल-धारा गौमुखी द्वारा एक कुण्ड में गिरती है। यह स्थान बड़ा ही मनोरम एवं दर्शनीय है।

जयपुर से यात्रा गाड़ी चल कर मथुरा पहुँचती है। इस प्रकार अनेक तीर्थों का भ्रमण करती हुई यह गाड़ी प्रायः ७५ दिन में अपनी यात्रा समाप्त करती है।

इस यात्रा के क्रम में भारत के बड़े-बड़े और प्रसिद्ध तीर्थ ही आये हैं। आसाम, पंजाब, मध्यभारत, आदि प्रान्तों तथा नैपाल, गवालियर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, करौली, आदि अनेक राजपूताने के देशी राज्यों के अन्तर्गत तीर्थ एवं दर्शनीय स्थान नहीं आते हैं। बहुत-सी स्पेशल गाड़ियों के क्रम में कुछ हेर-फेर रहता है। कुछ में चार-छः तीर्थ बढ़ जाते हैं, कुछ में कम हो जाते हैं। ऐसी यात्रा की गाड़ियों द्वारा यात्री बड़ी सुगमता से लगभग ढाई मास में सभी तीर्थ—तीन धाम और सातों पुरियों की यात्रा कर सकते हैं। तीसरे दर्जे का भाड़ा लगभग १३०) रुपये और दूसरे दर्जे का भाड़ा ३७५) रु० के लगभग लगता है। बहुत से तीर्थों एवं दर्शनीय स्थानों को यात्री अपने निजी अतिरिक्त व्यय करने पर देख पाते हैं—जैसे करवी से चित्रकूट, बालामऊ से नैम्यशारण्य, आदि। ऐसी यात्रा करने में तीसरे दर्जे के यात्री को लगभग २००) व्यय करने होते हैं। भोजनादि का व्यय पृथक है। फिर भी इन गाड़ियों द्वारा यात्रा सुविधा-जनक होती है।

अब हम एक तालिका द्वारा यह बतलायेंगे कि यात्रा की गाड़ी किस-किस तीर्थ में कितने समय ठहरती है—

१—मथुरा जंकशन	(प्रारम्भ)
२—दिल्ली	२ दिन
३—हरद्वार (ऋषिकेश)	३ दिन
४—बालामऊ (नीमसार, मिश्रख)	२ दिन
५—लखनऊ	२ दिन
६—अयोध्या	२ दिन
७—करवी (चित्रकूट)	१ दिन
८—इलाहाबाद	२ दिन
९—बनारस	२ दिन
१०—गया	३ दिन
११—बैद्यनाथ धाम	१ दिन
१२—कलकत्ता	३ दिन

(गाड़ी खाली करके बदलनी होगी)

१३—भुवनेश्वर १ दिन
१४—पुरी ३ दिन
१५—साचीगोपाल १ दिन
१६—सिमहाचलम (नरसिंहजी) १ दिन
१७—राजमहेन्द्री (गोदावरी) १ दिन
१८—बेजबाड़ा (पन्नानरसिंह) १ दिन
१९—मद्रास ३ दिन
२०—चिदम्बरम् १ दिन
२१—तञ्जौर १ दिन
२२—त्रिचनापली (कावेरी श्रीरङ्गम्) १ दिन
२३—मदुरा (मीनाचीदेवी) १ दिन
२४—रामेश्वर ३ दिन
२५—रामनद १ दिन
२६—चिंगलपट (पत्तीतीर्थ) १ दिन
२७—काँजीवरम् (शिव काँची व विष्णु काँची) २ दिन
२८ रैनीगुण्टा (लक्ष्मणवाला) २ दिन
२९—तुङ्गभद्रा १ दिन
३०—कुर्दवाडी (पंढ़रपुर) १ दिन
३१—पूना २ दिन
३२—नासिक ३ दिन
३३—बम्बई — ३ दिन
३४—भड़ौंच (नर्वदा) १ दिन
३५ बड़ौदा १ दिन
३६—बीरमगाँव १ दिन
३७—जूनागढ़ (गिरनार) २ दिन
३८—जामनगर १ दिन
३९—द्वारकाजी (वेट द्वारका और गोपी माधव) ३ दिन
४०—राजकोट १ दिन
४१—अहमदाबाद १ दिन
४२—डाकोरजी १ दिन
४३—उज्जैन १ दिन
४४—चित्तौड़गढ़ १ दिन
४५—नाथद्वारा (काँकारोली) ३ दिन
४६—अजमेर [पुष्करराज] २ दिन
४७—जैपुर १ दिन
४८—मथुरा (यात्रा समाप्त है)

नोट—कोष्टक में दिये हुए स्थानों पर यात्री को अपने खर्च से जाना होगा।

ऐसी यात्रा गाड़ियों में डाकृर, डाकघर, भोजनालय, बैंक, आदि की सभी सुविधायें यात्रियों को रहती हैं। व्यय भी बहुत अधिक नहीं होता, इससे बहुत में बहुत यात्री इन्हीं के द्वारा तीर्थ यात्रा करते हैं।

तीर्थों में भगवद्भक्त साधु-समाज के दर्शन, उपदेश आदि का भी सुयोग रहता है, जिससे यात्री अपना मानवी जीवन कल्याणमय बना सकते हैं। सच्चे साधु भी तीर्थ-रूप ही होते हैं। उत्तराखण्ड, व्रजभूमि, आदि अनेक प्राचीन भजन-स्थलियों से अब भी अनेक सच्ची साधना में लीन महात्मा हैं। इनके दर्शन में हम अपनी तीर्थ यात्रा सफल कर हम अपना इहलोक और परलोक सुधार सकते हैं।

तीर्थों का माहात्म्य वेद, पुराण एवं अनेक धर्मग्रन्थों में है। तीर्थ यात्रा द्वारा हम अपनी सर्वतोन्मुखी उन्नति कर सकते हैं। इनमें अनेक पुण्य धाराओं के स्नानादि का सुयोग रहने से हम अपनी अध्यात्मिक, आदि-भौतिक एवं आदि-दैविक कल्याण कर सकते हैं। तीर्थ हमारे गुरु, सच्चे पथप्रदर्शक और ज्ञान भक्तिमय मार्ग पर आरुढ़ करने वाले होते हैं, अतः हमें तीर्थ यात्रा अवश्य ही करनी चाहिये।

तीर्थ

लेखक—पं० श्रीदाऊदत्तजी उपाध्याय 'साहित्यतीर्थ', सम्पादक 'राष्ट्रलक्ष्मी']

युग-युग के ओ पुण्य पुञ्ज ! ओ पावनता के कोष।
तीर्थ ! तुम्हारे पान-स्नान से मिटते भव के दोष ॥१॥
क्षमा, दया, करुणा की कालिंदी के ओ, कल स्रोत !
धर्म और संस्कृति की अवनी के आदित्य उदोत ॥२॥
पाप पङ्क से ओत-प्रोत पुहमी के तारक पोत ।
जुग-जुग की अमराई की ओ, अनुपम जलती जोत ॥३॥
काम्य केशव पद कमल का सार ओ अभिराम !
सतत सेवन कर रहे साधक सु आठों याम ॥४॥
लोक-शिक्षा, लोक-संग्रह, लोक-सेवा धाम ।
भुक्ति मुक्ति अशेष दायक सहज पूर्ण प्रकाम ॥५॥
ओज, क्षिति, जल, अनिल तेरे अमित रूप अनूप।
पूर्ण नभ नित चल, अचल, द्रुम, सरि, सर, कूप ॥६॥
तव चरण की शरण आये रङ्क हो या राव।
जग जलधि से पार जाती भाव उनकी नाव ॥७॥
लोक-रञ्जन, शोक-भञ्जन भाव-विनिमय केन्द्र ।
लोक उत्सव के विधाता प्रेम-भक्ति रसेन्द्र ॥८॥
ज्ञान, ध्यान निधान जप-तप मूर्त ओ अवधूत !
चिर प्रव्रज्या-रत सतत ओ प्राच्य गौरव पूत ! ॥९॥
लोल लहरों पर तुम्हारी विश्व-मानव मीत ।
कौन जाने गा रहा कब से सुजीवन गीत ॥१०॥
पूर्ण होगी कब न जानें प्रीति और प्रतीत ।
और कब फिर पायगा परमार्थ का नवनीत ॥११॥
पवन पङ्ख पसार, तिरनभ बुन किरन के जाल।
ऐन्द्रजालिक आज बनना चाहता कङ्काल ॥१२॥
बाग़ में अनुराग के हिय का हिंडोला डाल।
झूलना कुछ चाहता लट-सा अमोल अराल ॥१३॥
जर्जरित जीवन तरी का खोल कर उफपाल ।
बह रहा किस ओर जाने ? गा रहा बेताल ॥१४॥
लोल लहरें भी क्षुभित हो, हो उठीं उत्ताल।
चूमने चिर उमँगती हैं वे क्षितिज का भाल ॥१५॥

तीर्थ-परिचय

[लेखक--पण्डित श्रीजौहरीलालजी शर्मा, सांख्ययोगाचार्य, प्रधान सम्पादक,-' गौड़ ब्राह्मण समाचार"]

श्रीभगवान् की सृष्टि में अनेक उपयोगी वस्तुएँ विद्यमान हैं उनमें से तीर्थ का भी एक विशेष स्थान है। इनके सेवन से मनुष्य इस लोक में सुख और यश एवं परलोक में निःश्रेयस तक प्राप्त कर सकता है।

तीर्थ शब्द की निरुक्ति और अर्थ--तीर्थ शब्द व्याकरण के अनुसार तृ (प्लवनतरणयोः) धातु से 'पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यः स्थक्' सूत्र इस के द्वारा सिद्ध होता है जिसका है अर्थ 'तीर्य्यते, तरति, तारयति वा अनेन तत्तीर्थम्' जिसके द्वारा तर कर मनुष्य अपना अभीष्ट सिद्ध करता है। अमरकोष के अनुसार इसके अर्थ हैं 'नियानागमयोस्तीर्थं मृषिजुष्ट जले गुरौ।' मेदिनीकार के मत में तीर्थ शब्द का अर्थ है--तीर्थ शास्त्र-अध्वर--क्षेत्र-उपाय-नारीरजः, (जल) अवतार-ऋषिजुष्टाम्बुपात्र-उपाध्याय-मन्त्री।

तीर्थ भेद-मानव कर में पाँच तीर्थ हैं १-अंगुलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ २--अनामिका और कनिष्ठिका की मूल में 'कायतीर्थ', ३-अंगुष्ठ और तर्जनी के मध्य में 'पितृतीर्थ', ४--अंगुष्ठ मूल में 'ब्राह्मतीर्थ' ५--कर मध्य में सोमतीर्थ। ये सब तीर्थ क्रमशः देव, ऋषि, पितृ और आत्मशुद्धि (आचमन और मधुपर्कमाशन द्वारा) के कार्यों में उपयुक्त होते हैं।

तीर्थ-विवेचन--१ जंगमतीर्थ।

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना जनाः॥

ब्राह्मण चलने फिरने वाले-जङ्गमतीर्थ हैं जिनके सेवन से मनुष्य की सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं एवं जिनके वचन रूपी जल से मलिन जन भी पवित्र होजाते हैं।

२--मानसतीर्थ--मानसतीर्थ के विषय में अगस्त्य ऋषि का वचन है।

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यङ् नरःस्नात्वा प्रयाति परमांगतिम्॥१॥
सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जव मेव च ॥३॥
दानं तीर्थं दम स्तीर्थं सन्तोष स्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥४॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥५॥

सत्य, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह, सर्वभूतदया, प्रियवचन, आर्जव, दान, दम, सन्तोष, ब्रह्मचर्य्य, ज्ञान, धृति, सत्कर्म और मन की शुद्धि। ये मानस तीर्थ हैं जिनमें भली-भाँति स्नान करने से मनुष्य परम-गति पाते हैं।

३—शरीर--तीर्थ —

यस्य पादौ च हस्तौच मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च सतीर्थ फलमश्नुते॥१॥
प्रतिग्रहादुपावृतः सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कारविमुक्तश्च सतीर्थ फलमश्नुते ॥२॥
अदाम्भिको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसंगै र्यः सतीर्थ फलमश्नुते ॥३॥
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु मश्नुते ॥४॥

जिस सज्जन के हाथ-पैर और मन बस में हैं। जो विद्यावान् तपस्वी और यशस्वी है-जो किसी का प्रतिग्रह (दान) नहीं लेता, जो थोड़े ही लाभ से सन्तुष्ट है—जिसको अहङ्कार नहीं--जो दिखाने के लिये धर्म के कार्य नहीं करता, जो बहुत अनावश्यक संग्रह नहीं करता जो परिमित भोजन करता है। सब इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं, जो दुस्संग से रहित है, क्रोध नहीं करता, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, जो सब प्राणियों को अपने समान समझता है, वह शारीरिक तीर्थों में स्नान करके पवित्र होता है।

भौमतीर्थ—

प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्य मेव च।
प्रयागं च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं तृतीयकम् ॥
एव मादीनि तीर्थानि स्नानकार्ये निबोधत।
पुष्कर, नैमिषारण्य, प्रयाग धर्मारण्य ॥
(अयोध्या)

मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवंती, जगन्नाथपुरी, द्वारका आदि भौम तीर्थ हैं जिनमें स्नान करने से मनुष्य पवित्र होते हैं।

विशिष्ट भूमि-भाग ही तीर्थ क्यों माने गये हैं?

इसका कारण यह है कि कोई स्थल तो ऋषि महर्षियों के निवास एवं तपस्या के प्रभाव से पवित्र समझे जाते हैं, कहीं उत्तराखण्ड के प्रदेशों में स्वयं प्राकृत भूमि की ही श्रेष्ठता है, कहीं गङ्गाजल आदि नीर की पवित्रता है, कहीं नदी-सागर सङ्गम ही पवित्र माना गया है।

कृतेतु पुष्करं तीर्थं त्रेतायां नैमिषं तथा।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा समाश्रयेत् ॥

सत्युग में पुष्कर तीर्थ का अधिक माहात्म्य है, त्रेतायुग में नैमिषारण्य तीर्थ की अपार महिमा है। द्वापर युगमें कुरुक्षेत्र महिमा चित होता है और कलियुग में श्रीगङ्गाजी ही परम-पावनी हैं। इन्हीं के आश्रय से अभीष्ट सिद्धि होती है।

स्नान-काल में तीर्थों के अधिष्ठातृ-देवताओं का आवाहन।

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरित स्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम ॥१॥
त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता।
याचितं देहिमे तीर्थं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
अपामधिपतिस्त्वं च तीर्थेषु वसति स्तव।
वरुणाय नमस्तुभ्यं स्नानाज्ञां प्रयच्छ मे ॥३॥
अधिष्ठात्र्यश्च तीर्थानां तीर्थेषु विचरन्ति याः।
देवता स्ताः प्रयच्छन्तु स्नानाज्ञां मम सर्वदा ॥४॥
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन्सन्निधिंकुरु ॥४॥

पुष्कर आदि सब पावन तीर्थ एवं गङ्गा आदिक सब नदियाँ मेरे स्नान काल में आने की कृपा करें। हे भगवन् (प्रयाग) विभो! आप सब तीर्थोंके राजा हैं आप ही जगत के पिता हैं मुझको मुँह माँगा तीर्थ प्रदान कीजिये, सब पापों से छुटकारा हो। हे वरुणदेव! आप जल के अधिपति हैं, सब ही तीर्थों में आप कानिवास है। आप को नमस्कार है—मुझको स्नान की आज्ञा दीजिये। एवं जो देवियां तीर्थों की अधिष्ठातृ देवियाँ हैं और तीर्थों में विचरती रहती हैं, वे मुझे स्नान की आज्ञा करें। हे गंगे! यमुने! गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! कृपया इस स्नान जल में प्रवेश कर मुझको पवित्र करो।

तीर्थ स्नान का सब कोई अधिकारी नहीं है। शास्त्रों के अनुसार—

अश्रद्धधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पंचैते न तीर्थ–फल-भागिनः ॥

श्रद्धारहित, पापी, जिसको शास्त्र में विश्वास नहीं, सर्वत्र संदेह करने वाला, जो सब बातों में तर्क कुतर्क किया करता है, उसको तीर्थ-जन्य फल की प्राप्ति नहीं होती।

तीर्थ सेवन का फल और उसका अधिकारी—

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत्फल यवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥१॥
तीर्थान्यनुस्मरन्धीरः श्रद्दधानः समाहितः।
कृतपापो विशुध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत् ॥२॥
तिर्यग्योनिं नैव गच्छेत् कुदेशे नैव जायते।
न दुःखी स्यात् स्वर्गभाक्च मोक्षोपायं च विंदन्ति॥३

जो फल तीर्थ में जाने मात्र से प्राप्त होजाता है वह फल विपुल दक्षिणा सहित अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने से भी नहीं मिल सकता। श्रद्धा और मन की एकाग्रता के साथ तीर्थ का स्मरण करके पापी पुरुष (यदि सज्जन से किसी प्रकार पाप बन जाय) भी शुद्ध हो जाता है, फिर सत्कर्म करने वाले का कहना ही क्या। तीर्थ सेवी पुरुष को पशु पक्षी आदि की तिर्यक् योनि प्राप्त नहीं होती, उसका जन्म कुत्सित देश में नहीं होता तीर्थ सेवी कभी दुख नहीं भोगता सदा सुखी रहता है। यहीं नहीं, अपितु निःश्रेयस का अधिकारी होता है

तीर्थ स्थानों से लाभ

[लेखक—श्रीयुत श्रीनृसिंहवल्लभजी गोस्वामी शास्त्री]

यस्य प्रसादादज्ञोऽपि सद्यः सर्वज्ञतां व्रजेत् ।
स श्रीचैतन्यदेवो मे भगवान् संप्रसदतु ॥

आजकल प्रायः यह सुना जाता है कि तीर्थ-स्थानों से हमारा क्या लाभ है ? क्यों हम तीर्था-टन करें ? किन्तु वे यह नहीं जानते कि मनुष्य जीवन के साथ तीर्थ का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि साधारणतः सांसारिक जीवों की आसक्ति देह–गेहादि में होती है। उनकी आयु निद्रा, भय, भोग एवं कुटुम्ब के पालन पोषणों में ही बीतती रहती है, उनसे उनको अवकाश मिलना कठिन हो जाता है। सर्वदा देह-पुत्रादिकों की अनित्यता को अनुभव करके भी, उनसे अपने को पृथक् समझ, माया-मुग्ध जीव कभी आत्मोद्धार के लिये प्रयासी नहीं होते। फल यह होता है कि इस प्रकार से मनुष्य माया-चक्र से अपने को मुक्त करने में समर्थ नहीं हो पाते, और दिनोंदिन आसक्ति को दास बन कर जन्मजन्मान्तर त्रिताप-ज्वाला से पीड़ित होते रहते हैं, एवं किस प्रकार से शान्ति मिले इसकी खोज में इधर–उधर भटकते फिरते हैं। इस प्रकार से उनको शान्ति मिलना तो दूर रहा, वे दिनोंदिन अशान्ति के जाल में फँसते जाते हैं। ऐसे जीवों को शान्ति मिलने का एक ही रास्ता है और वह है–श्रीभगवद् गुणानु-वाद का श्रवण, कीर्तन, एवं मनन, किन्तु यह श्रवण, कीर्तन और मनन बिना रुचि के सम्भव नहीं। रुचि मन की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। बिना सुकृति के भगवच्चरणारविन्द में रुचि नहीं हो सकती है। जो भाग्यवान् जीव विवेक–बुद्धि से अहङ्कार को छेदन करने में स्वयं समर्थ हैं, उनकी रुचि स्वभावतः ही भगवद्विषय में होती है। किन्तु ऐसे भाग्यवानों की संख्या अत्यन्त विरल हैं। सांसारिक जीवों के लिये विवेक-लाभ सरल नहीं। ऐसी दशा में माया–मुग्ध जीवों के लिये भगवद्विषय में रुचि-लाभ करने का एक मात्र उपाय है—'पुण्यतीर्थ सेवन' अर्थात् पुण्यतीर्थ का आश्रय ग्रहण करना। श्रीमद्भागवत में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि—

शुश्रूषो श्रद्दधानस्य वासुदेव कथारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्य तीर्थ निषेवनात् ॥

अर्थात् पुण्यतीर्थ के आश्रय से निष्पाप होने पर महत्सेवा में प्रवृत्ति होती है, जिसके फल स्वरूप उनके धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है एवं उससे उनके धर्म को सुनने की वासना होती है और तब श्रीवासुदेव की कथा में रुचि होती है। तात्पर्य यह है कि महापुरुषों का तीर्थ में प्रायः आगमन होता रहता है। अतः तीर्थ के निषेवन से स्वभावतः ही उनके दर्शन, स्पर्शन एवं उनके साथ सम्भाषणादि का सौभाग्य प्राप्त होता है। जिसके प्रभाव से पापविमुक्त होकर जीव की उनके आचरणों में श्रद्धा उत्पन्न होती है। इस श्रद्धा से आकर्षित होकर प्रायः ही उनसे मिलने उनके समीप कुछ समय रह कर उनके परस्पर के वार्तालाप सुनने की इच्छा होती है। इस इच्छा से प्रेरित होकर उनकी भगवच्चर्चाओंको श्रवण कर श्रीहरि-कथा में उनकी रुचि अनायास अत्यन्त शीघ्र हो उत्पन्न होती है। क्योंकि श्रीकपिलदेवजी ने भी कहा है कि—

सतां प्रसङ्गान्नमवीर्यसुविंदो–
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि –
श्रद्धारति र्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

अर्थात् सज्जनों के प्रसङ्ग श्रीभगवद् गुणानुवाद हृदय एवं श्रवण के आकर्षक होता है एवं उससे भगवच्चरणों में शीघ्र ही श्रद्धा, रति एवं भक्ति होती है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि जब तक चित्त किसी विषय में आकृष्ट नहीं होता है। तब तक उस विषय में रुचि की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। साधुजनों प्रसङ्ग में ही वह शक्ति है कि जो हृदय मन को आकर्षित कर श्रीभगवद्विषय में रुचि उत्पादन करती है ; साथ ही साधु-सङ्ग भी तीर्थों में ही विशेष रूप से प्राप्त होता है। अतः सांसारिक जीवों के लिये 'पुण्यतीर्थ निषेवन' ही भगवद्विषय में रुचि लाभ का एक सहज-सरल उपाय है। 'पुण्यतीर्थ' से यहाँ पर श्रीमथुरा अयोध्यादि पुण्य स्थानादि ग्राह्य हैं। कोष' ग्रन्थों में तीर्थ शब्द के और भी अर्थ पाये जाते हैं। 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु।' [विश्वकोष]—'निपानागमयोस्तीर्थ मृषिजुष्टजले गुरौ'— अमरकोष] इतने अर्थ में तीर्थशब्द का उल्लेख है। धर्मशास्त्रों में भी तीन प्रकार के तीर्थ बतलाये गये हैं। यथा--(१) जङ्गम (२) मानस (३) स्थावर।

श्रीमथुरा अयोध्यादि पुण्यस्थन, स्थावर तीर्थ हैं। 'स्थावरतीर्थ' के सम्बन्ध में भी शास्त्र का कथन है कि--

अग्नि ष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वाविपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥

अर्थात् विपुल दक्षिणा देकर अग्निष्टोमादि याग करने पर भी वैसा फल नहीं मिलता है जैसा कि तीर्थ गमन से। अन्यत्र तीर्थगमन का फल यह भी कहा गया है कि 'कृतपापो विशुध्येत' अर्थात् कृतपापपुरुष तीर्थगमन से पापविमुक्त हो जाता है। इसलिये तीर्थस्थानों में न जाने से शास्त्रों में दोषों का कीर्तन किया गया है। अस्तु, तीर्थशब्द के इन निर्वचनों से यह स्पष्ट है कि तीर्थ वह वस्तु है कि जिसके प्रभाव से मनुष्य-मात्र का मालिन्य सर्वथा दूर हो जाता है।

यद्यपि सभी तीर्थ मनुष्यों के मालिन्य दूर करने में समान रूप से समर्थ हैं, फिर भी स्थावर तीर्थ ही एक ऐसा तीर्थ है, जहाँ कि अन्य तीर्थों का भी समावेश हो जाता है। 'जङ्गमतीर्थ' अर्थात् भगवत्तत्वज्ञजन प्रायः स्थावर तीर्थों में भ्रमण एवं निवास करते हैं। 'मानसतीर्थ' अर्थात् सत्य क्षमादि उनके आचरणों से वहाँ सर्वदा ही से विद्यमान रहता है। इस प्रकार से स्थावरतीर्थों में जङ्गम एवं मानस दोनों ही तीर्थ वर्तमान हैं। साधारण स्थलों में महात्माओं का आगमन मनुष्य के कल्याण को कभी जभी होता है, किन्तु उनकी नियत-स्थिति अधिक रूप से स्थावर तीर्थों में ही होती है। इसलिये ही स्थावरतीर्थों के सम्पर्क से मनुष्य जीवन की मलिनता शीघ्र दूर हो जाती है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि यदि सभीतीर्थ मालिन्य दूर करने में समर्थ हैं तो स्वयं तीर्थ-स्वरूप भागवतजन क्यों स्थावरतीर्थ में भ्रमण एवं निवास करते हैं, क्योंकि स्वयं तीर्थ-स्वरूप होने से उनमें तो मालिन्य का अभाव ही है। इसका उत्तर यह है कि वे निज मालिन्य दूर करने के लिये मादृशजनों की तरह तीर्थ-सेवा नहीं करते हैं, क्योंकि भगवद् भक्तों के तीर्थ-पर्य्यटन की कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु–'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेनगदाभृता' अर्थात् वे तीर्थों को पवित्र करने के लिये ही तीर्थाटन करते हैं। मलिनजनों के सम्पर्क से तीर्थ में जो कुछ मालिन्य उत्पन्न होता है। भागवतजन अपने हृदय विहारी श्रीभगवान् के द्वारा तीर्थों के उस मालिन्य को दूर कर देते हैं।

इसलिये यदि सच्ची शान्ति की खोज में चित्त व्यग्र हो तो हमको उन परमपावन, त्रिताप-नाशन जगन्मङ्गल स्थावर तीर्थों का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा, जहाँ कि न केवल स्थावर अपितु जङ्गम एवं मानस तीर्थों का भी नित्य-निवास है।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थम्

[लेखक—प्रो० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य, वेदरत्न, काव्यतीर्थ]
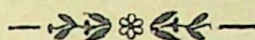
हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में प्रायः सभी तीर्थों का उल्लेख पाया जाता है, किन्तु उन तीर्थों की अपेक्षा जो महत्त्वपूर्ण स्थान 'गङ्गा-तीर्थ' को प्राप्त है वह अन्य तीर्थ को नहीं। गङ्गा-तीर्थ की सर्वश्रेष्ठता सूचक कुछ प्रमाण देखिए—

तीर्थानां सरितां श्रेष्ठा तथा गङ्गा इहोच्यते।
(दानधर्म)

तीर्थानां परमं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूतानाम् .... ॥
(मत्स्यपुराण)

गङ्गया न हि समं जगत्त्रये।
(ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण)

गङ्गा तारयते प्रंसाम्। (महाभारत)
गङ्गा सर्वत्र पूज्यते। (मत्स्यपुराण)
गङ्गा पुण्यवती ज्ञेया। (पद्मपुराण)
कलौ गङ्गा विशिष्यते। (ब्रह्मपुराण)
सर्वतीर्थमयी गङ्गा। (ब्रह्मपुराण)
न च गंगासमा नदी। (ब्रह्मपुराण)
न गंगासदृशी गतिः। (महाभारत)
नास्ति गंगासमा गतिः। (पद्मपुराण)
नास्ति गङ्गासमं तीर्थम्। (सौरपुराण)
नास्ति गंगासमं तीर्थम्। (काशीखंड)
नास्ति गंगासमं तीर्थम्। (महाभारत)

नदियों में गङ्गा का स्थान सबसे बड़ा है। यह अत्यन्त पवित्र और सकल-कष्ट निवारिणी नदी है। इस तीर्थ में सभी मत-मतान्तरवादियों की समान श्रद्धा है भारत के सभी लोग नित्य इसमें श्रद्धा-भक्ति से स्नान करते हैं, पश्चात अपने को कृत कृत्य हीं नहीं, बल्कि जीवन्मुक्त समझते हैं। हिन्दुओं का दृढ़ विश्वास है कि—"गङ्गा के सदृश भूमण्डल में ही नहीं, अपितु त्रिलोक में भी जितने तीर्थ हैं उन सब तीर्थों की अपेक्षा 'गङ्गा' सर्वप्रधान तीर्थ है।' श्रीभगवान् गीताचाचार्य ने भी 'स्रोततामस्मि जाह्नवी' यह कहते हुए गङ्गा का ही महत्त्व सुस्पष्ट बतलाया है।

गङ्गा-तीर्थ के किसी भी रूप में स्मरण करने से मनुष्य के समस्त प्रकार के पाप पुञ्ज का नाश होजाता है। महाभारत में कहा है—

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्त्तनात्।
स्मरणादेव गङ्गायाः सद्यः पापात्प्रमुच्यते॥

'गङ्गा के दर्शन-स्पर्शन, स्मरण, पान तथा कीर्त्तन (गङ्गा-तीर्थस्मरण) से मनुष्य तत्क्षण समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है।' और भी—

अन्धाः क्लीबा जड़ा व्यङ्गा पापनोऽप्यन्त्यजा नराः।
गङ्गास्नानेन सततं यान्ति देवशरीरताम्॥
तत्तोयपानतो यान्ति मन्दा अपि बहुज्ञताम्॥

'गङ्गा के स्नान करने से अन्धे, नपुंसक, शिथिलाङ्गी, कुष्ठी एवं चाण्डालादि पापयोनि भी देव-शरीर को प्राप्त करते हैं और अल्प बुद्धि वाले भी तीव्र बुद्धि प्राप्त कर लेते हैं।' इतना ही नहीं और भी देखिए—

गङ्गाम्भः कणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि।
पापशीला अपि नराः शुभां गतिमवाप्नुयुः॥
(बाराह-पुराण)

'गंगा के जलकणों से तथा वायु के स्पर्श से बड़े-बड़े पापी मनुष्य भी शुभगति को प्राप्त कर लेते हैं।'

पतितपावनी गंगे! तुम धन्य हो, तुम्हारी महिमामयी माया अपरम्पार है, तुम देव-दानवादि सभी से पूजित हो। इसीलिए तुम्हें सब लोग 'त्रिलोकजननी' कहकर पुकारते हैं। वास्तविक में तुम माँ की तरह प्राणिमात्र का उद्धार करती हो। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' इस बात की वास्तविक क्षमता तुम्हीं में दिखलायी देती

है। तुम्हारी अलौकिक शक्ति का किसी को थाह नहीं है। तुम्हारी यथार्थ महिमा का बखान साक्षात् शारदा भी नहीं कर सकती, मनुष्य की तो सामर्थ्य ही क्या ? अतः मनुष्य-मात्र का कर्त्तव्य है कि---- वह पतित पावनी जाह्नवी गङ्गा का आदर पूर्वक आश्रय ग्रहण करे। गंगा के आश्रय से मनुष्य सब तरह के सुख सुखेन प्राप्त कर सकता है। जो देव-दुर्लभ मानव देह को प्राप्त करने पर भी गंगा का आश्रय स्वीकार नहीं करता, वह मनुष्य नहीं बल्कि पशु है। ऐसे पुरुष के लिए शास्त्रकारों का कहना है कि—

मनुष्यदेहं संश्रित्य यदि गङ्गा न संश्रिता।
गर्भवासादिशमनं न तेषां जायते कचित्॥

(ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण)

'मनुष्य का शरीर पाकर यदि गंगा का आश्रय नहीं लिया तो ६ मास गर्भ में रहने से जो अपवित्रता शरीर में आजाती है वह उपायान्तर से कदापि दूर नहीं हो सकती।'

महाभारत में लिखा है—

भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम्।
गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः॥

'संसार के दुःखों से विकल प्राणियों के लिए गंगा के सदृश और कोई गति नहीं है।'

पद्म-पुराण में भी—

क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागाँस्तारयतेऽप्यधः।
दिवि तारयते देवाँस्तेन सा त्रिपथा स्मृता॥

'पृथिवी (भूलोक) में मनुष्यों को, पाताल लोक में नागों (सर्पों) को, स्वर्ग (आकाश) लोक में देवगणों को तारती है अर्थात् उद्धार करती है, इसीलिए इस गङ्गा को 'त्रिपथगा' कहते हैं।

गंगा-तीर्थ की ऐसी अद्भुत महिमा है कि—इस तीर्थ में पृथिवी के समस्त तीर्थों का स्नानार्थ आवागमन होता रहता है, इतना ही नहीं, वे तीर्थ गंगा-तीर्थ में निवास भी करते हैं। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है—

पृथिव्याँ यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सर्वदा।
स्नातुमायान्ति जाह्नव्यां निवसन्ति सदा जले॥

'पृथिवी में जितने तीर्थ हैं वे सर्वदा स्नानार्थ गंगा-तीर्थ में आते रहते हैं और उसमें सर्वदा निवास करते हैं।'

धन्य है वह भूमि, धन्य है वह देश, धन्य है वह तपोभूमि जहाँ गंगा स्वयं विराजमान हों। जिस स्थान में गंगा का निवास रहता है उस स्थान को सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिए। कहा भी है—

यत्र गङ्गा महाभाग स देशस्तत्तपोवनम्।
सिद्धिक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम्॥

(मत्स्य-पुराण)

'हे महाभाग ! जहाँ गंगा विराज रही हों वही तपोभूमि कहलाती है। गंगा तट पर बसे हुए स्थान को ही सिद्धियों की भी भूमि समझनी चाहिए।'

गंगा-तीर्थ की सर्वप्रधानता एवं श्रेष्ठता को हृदयङ्गम करते हुए प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि—वह गंगा-तीर्थ का भूल कर भी परित्याग करे। गंगा--तीर्थ के परित्याग के विषय में देखिए क्या लिखा है—

गङ्गातीर्थं परित्यज्य येऽन्यतीर्थाभिलाषुकाः।
ब्रह्महत्याफलं तेषां सततं संशयात्मनाम्॥

(स्कन्द-पुराण)

'जो लोग गंगा--तीर्थ का परित्त्याग कर अन्य तीर्थाभिलाषी रहते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या का फल मिलता है।'

अतः मनसा, वाचा, कर्मणा, गंगा-तीर्थ की साविधि भक्तिप्ररस्सर उपासना करनी चाहिए गंगा-तीर्थ की उपासना करना ही हिन्दू-जाति का सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

गङ्गालाभात्परो लाभः कश्चिदन्यो न विद्यते।
तस्माद्गामुपासीत गङ्गैव परमः पुमान्॥

(काशीखण्ड)

'गंगा-लाभ से बढ़कर इस संसार में और कोई लाभ नहीं है। अतः सदैव मनुष्य को गंगा की उपासना करनी चाहिए, क्योंकि गङ्गा ही परम पुरुष (भगवत्स्वरूप) हैं।' सूक्ष्मतया यही गङ्गा महिमा है।

तीर्थों की महिमा।

[लेखक-पं० श्रीदामोदराचार्यजी शास्त्री, भिषग्-भूषण]

"तीर्थ-शब्द आज कल स्थल विशेष में रूढ़ी सा होगया है, परन्तु कोष के विवेचन से भिन्नार्थ भी प्रतीत होता है। तीर्थ शब्द आचार्य का भी वाचक है पाणिनीयजी' ने अपने सूत्र--समान तीर्थ बासी से इसका स्मरण किया है। अभिप्राय यह है कि तीर्थ शब्द से आचार्य का ग्रहण हो सकता है। तीर्थ शब्द भगवदर्थ का भी प्रतिपादक है, प्रमाण भूत श्री गोदा देवी अपने गोदाम्वी कृत वृतानुष्ठान में "तीर्थावगाहनाय आगच्छन्त्या आगच्छत" यानी तीर्थ में स्नान करना हो तो आओ, इसका भाष्य करते, श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने लिखा है कि—"कृष्णविरहादुत्पन्न स्तापो यथा शान्तो भ वेत्तथा अवगाहनाय करणाय, अनेय एतासां स्मृति विषयः कृष्ण संश्लेषः द्राविडास्सं-श्लेषं तीर्थावगा हनमित्यवोचन्" कृष्ण विरह से उत्पन्न ताप जिस प्रकार शान्त हो, वैसा अवगाहन करना। तात्पर्य यह कि गोपियों का श्रीकृष्ण मिलन ही स्नान है गोपियों के स्मृति विषय एक--मात्र श्रीकृष्ण ही हैं। सन्त जन उसी ब्रह्म तीर्थ में अवगाहन करते हैं। श्रीनारदजी का वचन है कि—"शाम्यामि परिनिर्मामि सुख भाषेच सर्वदा, एवं ब्रह्म प्रविष्टोऽस्मि ग्रीष्मे शीतमिवह्रदः" इन सब प्रमाणों से भगवत संश्लेष ही तीर्थ शब्द का अर्थ होता है, अभिप्राय यह है कि—ये सब शब्द प्रमाण तीर्थ रूपी परमात्मा के बोधक हैं, एवं भगवत् शब्द आचार्य्य वाचक है। श्रीभगवान् की आज्ञा है कि—'आचार्य्यंमां विजानीयातं नावम--न्येत कर्ह्चिंः।' आचार्य मुझे ही जानो इन सम्पूर्ण वचनों से परमात्मा को ही तीर्थ समझना चाहिये और परमात्मा ही आचार्य स्वरूप है, इन बातों का विवेचन हो जाने से श्री पाणिनीयजी के मत से ऊपरि लिखित वाक्यों में कोई विरोध नहीं रहता है। अतः आचार्य तीर्थ स्वरूप हैं, यह युक्ति-युक्त है। अब हमको यहाँ पर तीर्थ शब्द वाच्य परमात्मा के दो रूपों का दर्शन होता है।

(१) स्थावर तीर्थ-यथा श्रीवृन्दावन, मथुरा, अयोध्या इत्यादि।

(२) जङ्गम तीर्थ-यथा आचार्य सन्त जन इत्यादि।

अब विचार करना चाहिये कि दोनों तीर्थों में क्या माधुर्य्य है, एवं कहाँ क्या आधिक्य है, तीर्थ और धाम में कोई अन्तर नहीं है, दोनों परस्पर पर्य्याय वाचक शब्द हैं, धाम और धामी में भी कोई अन्तर नहीं है, जो कार्य श्रीधाम कर सकते हैं वही धामी भी कर सकते हैं. दोनों में अभेद सम्बन्ध है। यदि दोनों में कुछ भेद आजाय तब दोनों में से कोई भी यथार्थ रूप में कार्य कर सकते हैं। श्री परमात्मा का स्थावर तीर्थ धाम जिस देश में और जिस काल में रहता है उसी देश के और उसी काल के जीवों को एवं जो वहाँ कष्ट कर श्रद्धा से पधारे हैं, उन्हीं के लिये फल कारक है। स्थावर तीर्थों में क्या वस्तु है जो हमारे कल्याण का हेतु है। श्रीधाम में भगवत मन्दिर होते हैं। तथा भगवल्लीला के स्मारक दिव्य क्षेत्र एवं श्री भगवान् की क्रीड़ास्थली होती है। श्रीभगवान् ने यहाँ पर गोचारण किया है, इस स्थल पर धनुष-भङ्ग किया है। यहाँ पर भगवान् ने श्रीसुग्रीव एवं विभीषण को अभयदान दिया है, इत्यादि। जब इनका हम भक्ति--भाव से स्मरण मनन करते हैं, तब हमारा सम्पूर्ण पाप स्वतः ही दूर होजाता है, या यों कहिये कि हमारा चित्त शान्त एवं निर्वि-कार होकर श्रीप्रभु से मिलने के लिये अत्यन्त

लालायित होता है। हम जब तीर्थ यात्रा का विचार करते हैं कि हमको श्रीअवध अथवा श्रीवृन्दावन चल कर दर्शन करना है, उस समय स्वतः श्रीमर्य्यादा पुरुषोत्तम राम एवं लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के उन दिव्य गुणों एवं कीर्तियों का हमारे हृदय में प्रकाश होता है कि श्रीभगवान् ने किस प्रकार धर्म मर्यादा का स्मरण एवं रक्षण किया था। हमारा मन उस क्षण श्रीप्रभु की भक्ति से प्लावित होजाता है। अब जङ्गम तीर्थ से हमारा क्या कल्याण होता है, इस पर भी ध्यान देना है—श्रीआचार्य सन्त जन जगत कल्याण की भावना से भ्रमण करते हुए भगवद् भक्ति तथा धर्म का प्रवाह अपने सदुपदेशों द्वारा प्रदान कर त्रिविध--ताप तापित जीवों के पाप को नाश करते हुए उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। जिस प्रकार स्थावर तीर्थों में भगवद्गुणों का स्मरण होता है, तो आचार्य सन्त समागम से भी भगवद्गुणों का स्मरण होता है। स्थावर मन्दिरों में हमको श्रीभगवान् के साकार रूप का दर्शन होता है, एवं सन्त समागम में शब्द ब्रह्म का। श्रीभगवान् ने कितने मधुर शब्दों में सन्त पदरज का वर्णन किया है यथा—"अनुव्रजाम्यहं नित्यं तीर्थी-कुर्वन्ति साधवः" इएडी सन्त जन अपने श्रीचरण रज से तीर्थ को भी पवित्र कर देते हैं। भगवती भक्ति भागीरथी सन्त उपदेश द्वारा ही चेतनों के त्रिविधतायों से दूर कर देती हैं।

यह तो सर्व जन संमत सिद्धान्त है कि तीर्थों की महिमा तीर्थ स्वरूप सन्तों से होती है, जहाँ भी कहीं सन्त जन भगवान् का स्मरण करते हैं, वही तीर्थ बन जाते हैं, सन्तों की पुकार से उनके अभीष्ट को प्रदान करने के लिये भगवान् को भी उसी रूप में प्रगट होकर लीला करनी पड़ती है। हिरण्यकशिपु राक्षस की सभा कोई पवित्र स्थल नहीं थी, परन्तु उसको पवित्र करने के लिये परम भागवत श्रीप्रह्लाद का आविर्भाव हुआ। और उन्हीं के साथ श्रीभक्तवत्सल नृसिंह भगवान् को आना पड़ा। फिर क्या था, जिस प्रकार मधु पर मक्खियाँ आ बैठ जाती हैं, उसी प्रकार सन्तों का भी समागम होकर वह स्थल तीर्थ बन गया तात्पर्य यह है कि—सन्त जनों से ही तीर्थों का निर्माण एवं भगवान् की क्रीड़ास्थली का आविर्भाव हुआ करता है। तब इन बातों से यह सिद्ध होगया कि स्थावर तीर्थों की बनिस्बति जङ्गम तीर्थ का विशेष महत्त्व है। वैसे दोनों ही तीर्थ पूज्य हैं।

"श्री ब्रज-बिरुद"

[रचयिता—स्व० श्रीनवनीतजी चतुर्वेदी]

याही ब्रज औतरे अनंत अविनासी अज,
गामें बेद--व्यास हू पुरान सुख तोसे सों।
कहै 'नवनीत' जहाँ त्रिगुन सरूप भए,
पाहन पवित्र पूँजि प्रीति--रीति पोसे सों॥
यहीं त्रिपुरारी नें बिहारी कौ दरस पायौ,
गायौ सूर सेवक अनेक गुन गोसे सों।
करिकें सन्तोष रोस तजिकें अनेक मन,
करि ब्रज-बास स्यामा-स्याम के भरोसे सों॥

भारत के तीर्थों में श्रीपरशुरामपुरी

[लेखक-पं० श्रीदेवकीनन्दनजी शर्म्मा, वाणी विशारद]

यह एक छोटी-सी पुरी जगत्प्रसिद्ध विशाल क्षेत्र श्रीपुष्कर के अन्तर्गत है, जो कि श्रीपुष्कर तीर्थ से २४ मील की दूरी पर उत्तर दिशा में है। यद्यपि जहाँ पर यह पुरी बसी हुई है, वहाँ की पुनीत और सुरम्य भूमि सदा सर्वदा से ही बन उपबनों और छोटे-मोटे जलाशयों से सुसज्जित और हिन्दुओं की एक यात्रास्थली एवं थकित और दुखित प्राणियों को बिश्राम दायिनी तथा तपस्वियों को तपश्चर्या के फल और धन धान्यादि वैभवों को चाहने वालों को यथेष्ट वैभव प्रदान करने वाली थी, तथापि मध्य काल में कुछ दिनों तक यवन शासकों के हाथ में भारत की बागडोर आजाने से यह पुनीत तीर्थ-स्थली भी अन्य तीर्थों की भाँति यवनों से आक्रान्त होचुकी थी, अतः हुमायूँ आदिक ने इसको इस्लामियों का एक क्षेत्र बना दिया था।

उस समय इस तीर्थ-स्थली से हिन्दुओं का प्रायः सत्व जा चुका था, इसलिये जो कोई भूले भटके, हिन्दू इस मार्ग से पुष्कर एवं आगे वाले द्वारिका आदि धामों की यात्रा करने को आ निकलते थे, उनकी प्रायः यहाँ ही मुक्ति होजाती थी--अर्थात् यवनों के द्वारा वे मार दिये जाते थे, इस महान् विपत्ति से दुःखित होकर हिन्दुओं ने श्रीमथुरापुरी में जाकर ध्रुव टीले पर हज़ारों शिष्यों के सहित बिराजते हुये जगद्गुरू श्री ११०८ श्री निम्बार्काचार्य, श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराज के चरणों में गिर कर हिन्दू जाति के इस महान् दुःख को दूर करने के लिये प्रार्थना की, तब श्री आचार्य--चरणों ने उन सब को आश्वासन देकर अपने सहस्रों शिष्यों में से प्रतापशाली द्वादश शिष्यों को आज्ञा की, कि—तुम में से कोई एक जाओ और उस तीर्थस्थली को यवनों के आक्रांत से बचा कर वहाँ पर वैष्णव मठ की स्थापना करो, श्री आचार्यपाद की आज्ञा को सुन कर कुछ शिष्यों ने कई एक अड़चनें प्रकट कीं और कुछ शिष्यों ने श्री गुरुचरणों से दूर न जाने के लिये प्रार्थना की, तब श्रीगुरुदेव ने भविष्य में जगद्गुरु-पद पर आरूढ़ होने वाले अपने परम प्रिय शिष्य श्रीपरशुरामदेवजी की ओर दृष्टि डाली। आचार्य चरणों की आंतरिक आज्ञा समझ कर श्रीपरशुराम देवजी ने यवनाक्रांत इस तीर्थस्थली को मुक्त करने की प्रतिज्ञा की और श्रीगुरुदेव के चरणों की रज को मस्तक पर चढ़ा कर इधर प्रस्थान कर दिया। जब यहाँ आकर पहुँचे तो कई एक सिद्धि-शाली यवन फकीरों और उनके परिचारक तथा संरक्षक बादशाही कर्मचारियों से इसको घिरा हुआ देख कर श्री स्वामी परशुरामदेवजी महाराज ने एकांत में अपना आसन लगा लिया। इस पर यवन बहुत बिगड़े और अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करने को उद्यत होगये। किन्तु ईश्वरीय शक्ति के आगे मानवी शक्ति कहाँ तक सबल हो सकती है, अतः सभी आघात करने वालों के शस्त्र जैसे के तैसे स्तम्भित होगये। यहाँ तक कि उन यवन फकीरों की करामात भी कूँच कर गई; जोकि अपनी करामात के बल से ख्याति प्राप्त कर शाहान्शाह के पूज्य और इस तीर्थस्थली के अधिपति बन रहे थे। आख़िर वे सभी नतमस्तक हो श्रीस्वामीजी के चरणों में गिर गये और क्षमा मांग कर इस तीर्थस्थली को छोड़ कर देहली चले गये। और शाहान्शाह हुमायूँ से अपनी बीती हुई बातें अर्ज कीं। हुमायूँ दिल में जलने लगा, उसी अवसर पर बङ्गाल के सूबेदार शेरशाह ने हुमायूँ

दिल्ली से निकाल दिया और स्वयं तख्त पर बैठ गया। यह शेरशाह के बल का परिणाम नहीं था, किन्तु महान् पुरुषों के अनादर करने वाली कामना का ही फल था; जो कि हुमायूँ के चित्त में श्रीपरशुरामदेवजी महाराज पर चढ़ाई करने की तरङ्ग उठी थी। क्योंकि—

आयुः श्रियं यशो धर्मं, लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि, पुंसो महदतिक्रमः॥

(श्रीमद्भा० द० पू० अ० ४ श्लो० ४६)

अर्थात्—महापुरुषों का जो कोई चित्त से भी अनादर करता है, उसकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्मादि शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं। अस्तु! विक्रम सं० १६०० के लगभग इस तीर्थस्थली पर फिर से हिन्दुओं का अधिकार पूर्व काल की अपेक्षा से कहीं बढ़ कर होगया। शेरशाह श्रीस्वामीजी के चरणों में हाजिर हुआ और प्रार्थना से सन्तुष्ट कर शाहजादा सलीम की प्राप्ति की। जिसके नाम से कि यहाँ यह ग्राम बसा हुआ है।

तब से फिर बादशाहों, राजा-महाराजाओं की भीड़ होने लगी और श्रीसर्वेश्वर की पूजा सेवा के निमित्त कितनी ही जागीरें भेट होने लगीं। जिससे गौ, ब्राह्मण, साधु, अतिथियों की सेवा एवं श्री निम्बार्काचार्य पीठ को संस्थापना हुई। और यह तीर्थ स्थान प्रायः राज-स्थान बन गया। अतः अब वर्तमान में भी यह प्राचीन तीर्थ स्थान राज स्थान के रूप में जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ के नाम से जगत् में प्रसिद्ध होरहा है। यद्यपि परिवर्तनशील संसार में किसी भी वस्तु का सर्वदा एक रूप नहीं रह सकता; तथापि इस आचार्य पीठ की कई एक असाधारण विशेषतायें श्रीसर्वेश्वर की ही कृपा से आज भी भारत में विख्यात हैं, जो कि अन्यत्र नहीं मिल सकती। इन्हीं विशेषताओं के कारण आज बदले हुये ज़माने में भी प्रति वर्ष देश-देशान्तरों के बहुत से यात्री आते-जाते रहते हैं। और अपनी-अपनी श्रद्धा भावनाओं के अनुसार अभिलाषित फलों की प्राप्ति करते रहते हैं।❀ इस तीर्थस्थली की कुछ असाधारण विशेषताएँ ये हैं—

(१) भारतवर्ष के तीर्थों में पूज्य गुरू स्वरूप पुष्कर क्षेत्र के अन्तर्गत यह पीठ है।

(२) अनादि वैदिक श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सर्व पूज्य यह एक ही आचार्य पीठ है।

(३) श्रीसनकादिकों के सेव्य "श्रीसर्वेश्वर भगवान्" यहाँ ही विराजते हैं, संसार में ऐसी प्राचीन प्रतिमा और कहीं नहीं है।

(४) संस्कृत के अद्वितीय कवीश्वर रसिक भक्त श्रीजयदेवजी के मस्तक के ठाकुर "श्रीराधामाधव भगवान्" यहाँ पर ही विराजते हैं, जिनको कि गुजरात के पुराने भक्त जूना श्रीनाथजी कहते हैं। वास्तव में ऐसी चमत्कारी मनोहर प्रतिमा दूसरी ठौर नहीं देखी जाती।

(५) श्रीपरशुराम देवाचार्यजी महाराज के हवन करने का अग्निकुण्ड और श्रीनालाजी यहाँ अभीष्ट प्रद हैं, जैपुर नरेश श्रीजयसिंहजी इन्हीं दोनों की आराधना से उत्पन्न हुए थे।

(६) संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह और श्रीसर्वेश्वर कुण्ड यहाँ दर्शनीय हैं।

(७) यहाँ का जलवायु ऐसा उत्तम हैं कि बिना ही औषधि सेवन किए भी कई एक असाध्य रोग मिट जाते हैं।

❀ यहाँ का इतिहास बहुत विस्तृत है, विस्तार भय से यहाँ अत्यन्त संक्षेप से दिग्दर्शन मात्र लिखा है।

तीर्थों का आध्यात्मिक माहात्म्य

[लेखक—पं० श्रीव्रजवल्लभशरणजी, विद्याभूषण, सांख्यतीर्थ]

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्॥

श्रीसर्वेश्वर भगवान् की ललित लीलामयी इस सृष्टि की यावन्मात्र वस्तुयें तीन-तीन रूपों से युक्त होकर स्थित हो रही हैं।

इस रहस्य को भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने निज निर्मित "वेदान्त कामधेनु" में "त्रिरूपता ऽपि श्रुति सूत्र साधिता" इस वचन के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यद्यपि कल्पना भेद से उस निरूपता के रूपों को कई प्रकार से निर्देश किया जा सकता है, तथापि अधिभूत, अध्यात्म, अधिदैव इन तीन रूपों में किसी भी विज्ञ विद्वान् का मत भेद नहीं देखा जाता। अतएव जितनी भी प्राकृतिक वस्तुएँ हैं, वे सब अधिभूत रूप और अध्यात्म रूप से एवं अधिदैव रूप से व्यवहृत की जाती हैं, किन्तु चर्म चक्षुओं के द्वारा उनमें से एक अधिभूत रूप ही प्रत्यक्ष हो सकता है, अध्यात्म और अधिदैव ये दोनों रूप नेत्र से नहीं देखे जा सकते। क्योंकि वे दोनों रूप भौतिक नहीं, अतः नेत्रेन्द्रिय से उनका ग्रहण नहीं हो सकता। इसलिये उन दोनों रूपों के जानने के लिये ज्ञान शक्ति का सम्पादन करना आवश्यक है।

यह अबाधित नियम है कि—"जो जिसको जिस प्रकार से समझता है, उसको उससे उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है"। जैसे अँधियारी रात्रि में किसी खोखले को किसी ने चोर या भूत समझ लिया, तो उसको उससे वैसे ही भय आदि फलों की प्राप्ति होती है, अगर उसी खोखले को सूखा पेड़ जान लिया तो भय निवृत्ति आदिक फलों की प्राप्ति होती है। अतएव यह निश्चित है, कि जब तक किसी पदार्थ का वास्तविक ज्ञान नहीं हो, तब तक उसको यथार्थ फल नहीं मिल सकता।

पौर्वकालिक ऋषियों ने शास्त्रोक्त प्रयत्नों के द्वारा ज्ञान शक्ति का सम्पादन कर उससे जागतिक एवं पारमार्थिक पदार्थों के वास्तविक रूप को जाना और प्रत्येक वस्तुओं से अपरिमित लाभ उठाया।

पुराने इतिहास के देखने से ज्ञात होता है, कि जागतिक पदार्थों में से सर्वश्रेष्ठ पदार्थ तीर्थों को ही माना। अतएव उन्होंने मरण पर्य्यन्त तीर्थों का त्याग नहीं किया और उन्हीं तीर्थों के सेवन से उच्चतम सिद्धि की प्राप्ति की।

यद्यपि वर्तमान में कई एक महोदय, सुरम्यता एवं आकर्षणता, परोपकारिता तथा नयनाभिरामता आदिक विशेषताओं को ही तीर्थों की वास्तविक महत्ता मानते हैं, परन्तु यह उनकी पूर्ण भूल है। क्योंकि ये सभी विशेषतायें तो तीर्थों के भौतिक कलेवर से सम्बन्ध रखने वाली हैं, अतः इनको आधिभौतिक महत्ता कहनी चाहिये।

तात्पर्य यह है कि सवन और तरण अर्थ वाली 'तॄ' धातु से "पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यः स्थक्" उणादि सूत्रोक्त थक् प्रत्यय का योग होने पर तीर्थ शब्द सिद्ध होता है। जिसका कि प्रकृति के अनुसार प्लवन और तरण ही अर्थ माना गया है। यद्यपि उक्त अर्थ तीर्थों के आधिभौतिक आदि तीनों ही रूपों से सम्बन्ध रखता है, तथापि मुख्यतया अध्यात्म रूप के साथ इस अर्थ का सम्बन्ध माना जाता है, कारण नयनाभिरामता आदिक भौतिक महत्ता प्रत्यक्ष सिद्ध है और तरण महत्ता प्रत्यक्ष अवगत नहीं होती। अतएव यह आध्यात्मिक महत्ता तीर्थों के अध्यात्म स्वरूप की भाँति शास्त्र के द्वारा ही जानी जा सकती है।

तीर्थों की इस आध्यात्मिक महत्ता को ही जानने के लिये भीष्म पितामह ने पुलस्त्य ऋषि से जिज्ञासा की थी कि—

अस्ति मे हृदये कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः।
तदहं श्रोतुमिच्छामि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥१॥
प्रदक्षिणां यः पृथ्वीं करोत्यमरसन्निभाँ!।
किं फलं तस्य विप्रर्षे! तन्मेब्रूहि सुनिश्चितम् ॥२॥

(महाभारत वन पर्व अ० ८२ श्लोक ६, ७)

हे सुरोपम ऋषिराज! जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा एवं तीर्थयात्रा करता है, उस प्राणी को वास्तविक फल क्या मिलता है? मुझ को तीर्थों के विषय में यह सन्देह है, कि तीर्थों में केवल रमणीयता आदिक महत्ताओं के द्वारा नयनानन्द ही फल सिद्ध होता है अथवा और भी कुछ अनुपम फल प्राप्त होता है? इस प्रश्न का निश्चित समाधान मैं आप से सुनना चाहता हूँ।

इस प्रश्न को सुन श्रीपुलस्त्यऋषि ने कहा है कि हे भीष्म! तीर्थों से केवल भौतिक सुख ही नहीं सिद्ध होता, अपितु जो फल सहस्रों अश्वमेधादिक यज्ञों से नहीं प्राप्त हो सकता, वह फल तीर्थों के संसेवन से सिद्ध हो सकता है। अतएव—

पुष्करेषु महाभागा देवाः सर्षिगणाः पुरा।
सिद्धिं परमिकां प्राप्ताः पुण्येन महताऽन्विताः ॥

अर्थ—पुण्यशील देवों ने ऋषिगणों सहित पहिले इन्हीं पुष्करादिक तीर्थों में परम सिद्धि प्राप्त की थी, अतएव आज वे देवत्व रूपी महत्व से समृद्ध हो रहे हैं—

तत्राऽभिषेकं यः कुर्यात्, पितृ देवार्चने रतः।
अश्वमेधाद्दशगुणं फलं प्राहुर्मनीषिणः ॥

× × ×

अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः।
तेनाऽसौ कर्मणा भीष्म? प्रेत्यचेह च मोदते ॥

अर्थात्—हे भीष्म! जो पुरुष पितृ और देवों की पूजा में निरत रहकर पुष्कर (तीर्थ) में अभिषेक करता है, उसको अश्वमेध यज्ञ से दशगुणा अधिक फल प्राप्त होता है। यदि पुष्कर में निवास कर कोई पुरुष एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है, वह इस लोक और परलोक दोनों ही जगह परम आनन्द की प्राप्ति करता है और—

जन्म प्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा।
पुष्करे स्नातमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्यति ॥

अर्थ—यदि जन्म भर पाप कर्मों में रत रहने वाले भी स्त्री या पुरुष, पुष्कर में स्नान कर लेवें, तो उसका समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है।

यहाँ पर एक यह सन्देह होना स्वाभाविक है, कि "जो आज सहस्रों प्राणी पुष्करादि तीर्थों में निवास कर स्नान, यज्ञ, जप, तप, आदिक सत्कर्म करते हैं, उनमें सबों को समान रूप से वह तीर्थ-फल क्यों नहीं मिलता? यदि इसका यह उत्तर दिया जाय, कि तीर्थों के अध्यात्म स्वरूप को जाने बिना वह फल नहीं मिल सकता तब भी यह, आशङ्का तो रह ही जाती है, कि मूर्खों को वह फल प्राप्त न हो तो भले ही मत हो, परन्तु तीर्थों के अध्यात्म रूप को जानकर उनको सेवन करने वाले विद्वानों में से भी बहुत से वञ्चित क्यों रह जाते हैं?

ऋषि पुलस्त्य ने भीष्म पितामह की इस आशङ्का का यही प्रत्युत्तर दिया, हे भीष्म! तीर्थों का आध्यात्मिक फल सर्व साधारण व्यक्तियों को नहीं प्राप्त हो सकता, अपितु—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥

(म० भारत वनपर्व अ० ८२)

अर्थ—जिसने अपने हाथ पैर, मन, विद्या एवं तप और कीर्ति इन सबका संयम किया है, उसी को तीर्थों का आध्यात्मिक फल प्राप्त हो सकता है; दूसरे को वह फल नहीं मिल सकता।

इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ भगवान् श्रीवेदव्यासजी ने तीन श्लोकों के द्वारा किया है कि—

प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कार निवृत्तिश्च स तीर्थफल मश्नुते ॥

अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफल मश्नुते ॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र ! सत्यशीलो दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफल मश्नुते ॥

अर्थात्—दुष्प्रतिग्रह न लेने वाला, किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाने वाला, अच्छी प्रकार से देखकर भूमि पर पैर रखने वाला, किसी के भी अनिष्ट की आकांक्षा न रखने वाला, दूसरे के हानि होने योग्य कार्यों को न करने वाला एवं ढोंग और अपकीर्ति से बचने वाला सज्जन ही तीर्थों के आध्यात्मिक फल को प्राप्त कर सकता है।

उपरोक्त प्रश्नोत्तरों से यह निर्धारण होता है, शास्त्रों में जो तीर्थों का आश्चर्यजनक माहात्म्य मिलता है, उस पर कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये। क्योंकि ये तीर्थस्थल भगवान् की विभूतियों में से उत्तम विभूतियाँ हैं। अर्थात् भगवान के चरण स्थानीय हैं, अतएव जो प्राणी सद्भावन पूर्वक तीर्थों में पहुँच जाता है। वह भगवान् के श्रीचरणों में ही पहुँचा हुआ समझना चाहिये। इसलिये यह भी कहना उचित ही है, कि जैसे सर्वाभीष्ट-प्रद देव-वन्दित प्रभु चरणों से आशायें पूर्ण होती हैं, ऐसे ही तीर्थों से भी सभी आशायें पूर्ण हो सकती हैं। क्योंकि जैसे तीर्थास्पद भगवच्चरण, कल्पतरु के सदृश मनोरथों की पूर्ति करते हैं, वैसे ही तीर्थ भी मनोरथों की पूर्ति करने में पूर्ण समर्थ हैं। प्रभु के चरणों और तीर्थों में नाम मात्र का भेद है। बस यही तीर्थों का आध्यात्मिक रूप और माहात्म्य है, अतएव जिस पुरुष ने तीर्थों को भगवच्चरण मानकर उनका सेवन किया है। उसको उसी प्रकार का परम फल प्राप्त हुआ है और जिसने पानी और दीवार एवं वन और उपवन ही समझ कर सेवन किया, उसको उसी प्रकार का फल प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार भविष्य में भी "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" यह नियम बना ही रहेगा।

श्रीनाथद्वारातीर्थ में श्रीनाथ विग्रह

[लेखक—धर्म-व्याकरण शास्त्री, काव्यतीर्थ, पं० श्रीकृष्णचन्द्रजी भट्ट, विशारद]

हमारे धर्मशास्त्रों में तीर्थ बड़ा ही व्यापक है। जिधर दृष्टि को प्रसार कर देखा जाय उधर तीर्थ ही तीर्थ ज्ञात होते हैं। मनुष्यों के सात्विक गुणों से लेकर पृथ्वी के प्रत्येक देश या ग्रामों में तीर्थ समाये हुये हैं। इनसे समग्र मानव व समाज पवित्र होता है। इनमें कितने ही मानसिक, एवं कितने ही भौतिक तीर्थ हैं। जिन्हीं के लिये मुनि अगस्त ने कुछ श्लोक लिखे हैं, वे उद्धृत करता हूँ।

सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनि ग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं सर्वत्रार्जव मेवच ॥ तथा—
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थं मुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परंतीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृति तीर्थं पुण्यंतीर्थं मुदाहृतम्।
तीर्थानामपितत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा: ॥

इत्यादि मानसिक तीर्थों को बताकर फिर भौतिक तीर्थों के विषय में लिखते हैं।

यथा शरीरस्योद्देशा केचिन्मेध्यतमाःस्मृता
तथा पृथिव्या मुद्देशा केचित्पुण्यतमाःस्मृता।
प्रभावाद्भुताद्भूमौ सलिलस्य च तेजसा
परिग्रहान्मुनीनाञ्च तीर्थानां पुण्यताःस्मृता ॥

इत्यादि ही नहीं अपितु माता पिता गुरु तथा श्रीविग्रह जहाँ जहाँ विराजते हैं वे सब तीर्थ हैं। यदि संसार में तीर्थ न हो तो जीव का कल्याण एक प्रकार से अशक्य है। इसीलिये तो व्याकरण में भी इसकी व्युत्पत्ति (तीर्यतेऽनेनवा तरन्यनेनवा) ऐसी की है। इससे यह सिद्ध हुआ कि तीर्थ-पाप पंक में फँसे हुए निरीह प्राणियों के उद्धार के लिये महान् सहारा है। अतएव ऋषि महर्षि महात्मा

एवं आचार्यों ने वर्षों रहकर तथा तपस्यायें एवं श्रीविग्रह स्थापित कर तीर्थों के माहात्म्यों को बढ़ाया है।

अस्तु जब तीर्थ अनेक हैं एवं एक एक तीर्थ की महिमा एवं वहाँ के भक्तों के चरित्र तथा श्री...... विग्रह का अलौकिक चमत्कार लिखा जाय, तो एक बड़ा ग्रन्थ तय्यार हो जाय तथा समय भी बहुत चाहिये। इसीलिये मैं अपनी रुचि के अनुसार एक तीर्थ के ही विषय में कुछ लिखूँगा। यों तो इस पृथ्वी तल में पांच नाथ विराजते हैं। जैसे पूर्व में जगन्नाथ, दक्षिण में रङ्गनाथ पश्चिम में द्वारकानाथ और उत्तर में बद्रीनाथ एवं पुण्यवती ब्रजभूमि में "श्रीनाथ"। इन पाँचों ही नाथों से यह लोक पावन हो रहा है, और भक्तगण इनकी भक्ति कर अपने जीवन को सार्थक कर रहे हैं।

किन्तु इनमें से "श्रीनाथ" ही का कुछ गुण गान करूँगा। "श्रीनाथ" ब्रजभूमि के श्रीगिरिराज पर्वत से इस कलियुग में लोक उद्धारार्थ प्रगट हुए, जिसमें प्रथम १४६६ में श्रावण बदी ३ के आने पर आपकी ऊर्ध्व भुजा प्रगट हुई और १६ दिन तक वह किसी के भी दृष्टिगत नहीं हुई फिर श्रावण सुदी ५ को उसका दर्शन हुआ। ब्रजवासीगण श्री की भुजा के दर्शन कर बड़े आश्चर्यान्वित हुए और श्रीकृष्ण ब्रजमण्डल में फिर पधारे हैं, यह समझ महान् आनन्दित हुए और उसी की अर्चना करते रहे यों वर्षों बीत गये फिर १५३५ वैशाख बदी ११ को यहाँ तो श्रीमुख का दर्शन हुआ और उधर चम्पारण्य में महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी का प्रागट्य हुआ।

श्रीनाथजी के प्रागट्य से भक्तगण नाना प्रकार के आनन्दोत्सव मनाने लगे और उनकी अर्चना करने लगे। श्रीनाथजी भी ब्रजवासियों में घुल मिल से गये और सदू पाण्डे की गाय का दूध पान करने लगे। यह गौनन्द वंश की धेनुओं के वंश की थी, वह नितही श्री..... पर्वत पर आती और दूध चुआ जाती। इस बात का पूर्व में किसी को पता नहीं था, फिर धीरे २ भक्तों को ज्ञात हुआ। इस गाय का दूध सूखने पर धर्मदास बाबाजी के यहाँ की गौ का दूध पीने लगे। यह भी उसी वंश की थी। इस प्रकार आप सं० १५४६ तक दूध दही ही आरोगते रहे। फिर भारतखण्ड में महाप्रभु को आपने आज्ञा करी मैं यहाँ प्रगट भयों हों तुम यहाँ आउ। जब आचार्य ने यह सुनी तो शीघ्र ही मथुरापुरी होते हुए और घमण्डी यवनों को अपने तेज से पूरा जीत कर गिरिराज पर्वत पर पधारे एवं आपके दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और आपकी सेवा विधि सुचारु रूप से बांधी, तथा नाना प्रकार की सामग्री तय्यार करा भोग में अर्पण की और रामदास ब्रजवासी पर सेवा का भार रख कर आप श्री की आज्ञा से पृथ्वी प्रदक्षिणा के लिये चल दिये। यहाँ श्रीनाथजी नानाभांति की क्रीड़ा करते रहे और ब्रजवासियों का प्रमोद बढ़ाते रहे, फिर आपने एक दिन अम्बालय के खत्री पूर्णमल को आज्ञा की कि "तूं यहाँ आयके मेरो मन्दिर बनवाय दे" उसने आकर मन्दिर की नीम सं० १५५६ चैत्र सुदी २ को शुभ मुहूर्त्त में लगवाई और मन्दिर तय्यार होने लगा फिर सं० १५७६ वैशाख सुदी ३ को श्रीनाथजी नवीन मन्दिर में विराजे और वहाँ और भी ठीक प्रकार से सेवा क्रम प्रारम्भ हुआ। बीच में माधवेन्द्र पुरी बङ्गाली भी सेवा करते थे और ये इनके गुरु भी थे एवं पूर्णभक्त, किन्तु इनको श्री नाथजी की आज्ञा हुई कि तुम चन्दन लेने जाओ, तब से आपकी सेवा ब्रजवासी ही करते रहे। श्रीमाधवेन्द्रपुरी मार्ग में ही यह लीला संवरण कर गये तथा श्रीवल्लभाचार्य भी सं० १५८७ आषाढ़ सुदी ३ को यह लीला संवरण कर गये। फिर इनके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी ही सेवा की प्रणाली चलाते रहे और श्रीनाथजी की सेवा करते रहे। जिस प्रकार कृष्ण जन्म के समय श्री......जी के अष्टसखा थे, उसी प्रकार अभी भी अष्टसखा ही रूप धर कर प्रभु के साथ खेलते सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास

कुम्भनदास, आदि आचार्य के शिष्य एवं आपके अन्तरङ्ग सखा थे, आपके साथ खेलने को ग्वालियर की राजकुँवरि रूपकुंवरि भी आया करती। जब रूपकुंवरि का विवाह उदयपुर के महाराज कुमार से हो गया, तब रूपकुंवरि ने श्रीनाथजी से मेवाड़ पधारने की प्रार्थना की। प्रभू ने भी यह विचारा कि अब यहाँ पर मुसलमानों का आक्रमण शुरू होने वाला है अतः, व्रजधाम में रहना ठीक नहीं, मेवाड़ ही चलना ठीक है और रूपकुंवरि की प्रार्थना भी है।

इससे आप परम भगवदीय गंगाबाई के साथ रथ में विराज कर आगरा, डण्डोती, कोटा-बूंदी, पुष्करजी, जोधपुर, बांसवाड़ा होते हुए महाराजा जयसिंहजी के समय मेवाड़ में पधारे, आपने प्रस्थान सं० १७२६ आश्विन सुदी पूर्णिमा को किया और नाना देशों को पावन करते हुये मेवाड़ राज्य में १७२६ फाल्गुन बदी ७मी को सिंहाड़ में नवीन मन्दिर में विराजे, उस समय गोविन्दजी महाराज एवं दाऊजी महाराज थे। तब से आप विराज रहे हैं और प्राणियों के सभी कष्टों को दूर कर रहे हैं तथा मेवाड़ राज्य को पावन कर रहे हैं। यह स्थान पहिले महा भयानक था। चौतरफा झाड़ियाँ लगी हुई थी, कोई व्यक्ति यहाँ आता तो लूट लिया जाता या मार दिया जाता और वे हिंसक प्राणी बड़े पर्वतों की गुहाओं में लीन हो जाते किन्तु जब से आप यहाँ पधारे हैं. तबसे यह स्थान अत्यन्त रमणीय हो गया है और इसे नाथ द्वारा कहते हैं उत्तर वाहिनी यमुना नदी की भाँति यहाँ भी कल २ ध्वनि करती हुई नदी बहती है। एक विशाल पर्वत है, वह श्रीगिरिराज ही मालूम होता हैं तथा कितने ही सुरम्य बाग हैं। वे एक प्रकार से कुञ्जों की भावनाओं को दृढ़ किये बिना नहीं रहते आपके विराजने का मन्दिर विशाल हैं जिसमें चार चौक हैं और कोल्हू छये हुये के नीचे आप विराजते हैं। यद्यपि सब मन्दिर पक्का है पर छत्त पर कोल्हू ही है यदि कोल्हू हटादिये जाँय तो पानी चूने लगे। विशेष क्या लिखा जाय मन्दिर का ही वर्णन यदि किया जाय तो एक बड़ा लेख तय्यार हो जाय। छत्त पर सुदर्शन चक्र है तथा सात ध्वजा हैं और सुदर्शनजी पर बहुत सा अतर चढ़ाया जाता है। सब तरह की सेवा के लिये पृथक् २ घर बने हुए हैं। पान घर में पान आदि का कार्य्य होता है फूल घर में माला आदि का। और यहाँ पर भोग का भी अच्छा प्रबन्ध है, दर्शन खुलते हैं। केशर कस्तूरी तक घट्टियों में पीसी जाती है तथा आठ बार ही भोग धरा जाता है श्रीनाथजी की श्याम मूर्त्ति है और बड़ी ही मनोहर है। जो एक बार भी दर्शन करता है वह उन्हींका ही रहता है तथा बार २ उसकी दर्शनों के लिये इच्छा बनी ही रहती है। एक ऊर्ध्व भुजा है तथा एक मुष्टि बांधे हुए सीधे चरण है। ऊपर शुक पक्षी तथा एक तरफ दो मुनि एवं एक तरफ एक, नृसिंह, मयूर, मेढ़क, आदि भी आपकी कन्दरा में विद्यमान हैं। एवं गौओं का यूथ भी। इसके लिये पूरा ज्ञान दर्शन से ही प्राप्त हो सकता है।

यहाँ पर अन्नकूट, एवं जन्माष्टमी, डोल, हिंडोला, आदि केउत्सव बड़े ही अच्छे होते हैं, जिसमें व्रज का पूरा भाव आ जाता है। जिस प्रकार भगवान् ने कृष्णावतार में लीला की थी, वे ही लीलायें दीखने लगती हैं, उसी प्रकार से गोवर्धन की पूजा, धेनुओं का खिलाना, अन्न का भोग एवं जन्माष्टमी के दूसरे दिन वही नन्दमहोत्सव होता है जिसमें दूध दही पेड़े आदि सब उड़ाये जाते हैं, और गोप गोपियाँ उड़ाते हैं। डोल में गुलाल उड़ती है यहाँ के बराबर सेवा की विधि अन्यत्र बहुत कम ही देखने को मिलती है। उष्ण काल का दृश्य तो बड़ा ही रमणीक रहता है। फुहारे चलते हैं और समग्र मन्दिर में शीतकाल-सा प्रतीत होता है और आप एक दम महीन वस्त्र धारण करते हैं श्रीअङ्ग सब खुला हुआ रहता है। विशेष क्या कहा जाय इन उत्सवों के अलावा वर्ष भर कितने ही अन्य उत्सव रहते हैं जिनका ठाठ भी बड़ा बड़ा सुन्दर रहता है।

सन्त-समाज स्वयं तीर्थ रूप है

(लेखक—श्रीयुत पं० श्री 'वियोगी' विश्वेश्वरजी महाराज)

मुद मङ्गलमय सन्त समाजू ।
जो जग जङ्गम तीरथराजू ॥

अर्थात्—'सन्त-समाज' मुद मङ्गलमय है, जो जगत् में चलने वाला प्रयागराज है। अतएव 'सन्त-समाज' स्वयं तीर्थ स्वरूप है। यथा:—

"भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो ।
(भा० १ । १२ । ९)

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि—'सन्त-समाज' स्वयं तीर्थ है, तब उन्हें तीर्थों में जाने की क्या आवश्यकता ? इसका उत्तर यही माना जायगा कि—पापियों के संयोग से तीर्थों में जो-जो मलिनता आ जाती है वह 'सन्त-समाज' के पद स्पर्श से दूर हो जाती है। यथा:—

'तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता।'
(भा० १ । १३ । ६)

'जङ्गम' का भाव यह है कि—प्रयाग एक ही स्थान पर अचल है, जब वहाँ पर कोई जाय तब शुद्ध हो और 'सन्त-समाज' चल तीर्थ है। अतएव 'सन्त-समाज' जाकर दूसरों का कल्याण करता है। 'जङ्गम' देकर यहाँ 'सन्त-समाज' रूपी प्रयाग में विशेषता दिखाई गई है।

प्रयागराज और सन्त-समाज की समता—

प्रयागराज में—	सन्त-समाज में—
श्रीगङ्गाजी	श्रीराम भक्ति

भक्ति और गङ्गाजी में यह समता है कि—सर्वतीर्थमयी गङ्गाजी हैं और "जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगत बखानी।" गङ्गाजी भगवान के चरणों से निकली हैं और भक्ति श्रीभगवद्चरण के ध्यान से उपजती है, अर्थात् दोनों की उत्पत्ति एक ही स्थल से है, दोनों ऊँच और नीच सभी को पावन करते हैं और अपना स्वरूप कर लेते हैं। यथा:—'कर्मनास-जल सुरसरि परहीं। तेहि को कहहु शीस नहिं धरहीं॥' "स्वपच सवर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात। राम कहत पावन परम, होय भुवन विख्यात॥" "पाई गति न केहि" दोनों एक स्थल में प्राप्त हैं। यथा—'देवापगा मस्तके' 'शङ्कर हृदय भगति भूतल" उपर्युक्त कथन से निर्णय हुआ कि गङ्गा उज्वल और भक्ति भी शुद्ध स्वरूप है।

रविनन्दिनी = यमुनाजी और कर्मकथा, इन दोनों में यह समता है कि-यमुनाजी का श्यामवर्ण है और कर्मों में कुछ न कुछ अहंकार होता ही है, वही श्यामता है। इधर यमुनाजी सूर्य्यपुत्री हैं और उधर कर्मकाण्ड भी सूर्योदय पर ही होते हैं दोनों कलिमल हरते हैं। यथा—

'यमुना कलिमल हरनि सुहाई ।'

सरसइ = सरस्वती और ब्रह्म विचार का प्रचार, इन दोनों में यह समता है; कि सरस्वती ब्रह्माजी से उपजती हैं और ब्रह्म विद्या भी आदि में ब्रह्माजी ने अपने बड़े पुत्र अथर्वा से कही थी। यथा:—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव ब्रह्मविद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठा अथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राहु. इति माण्डूकोपनिषदि ।

गङ्गा, यमुना के बीच में सरस्वती गुप्त, ब्रह्म विचार में कर्मकाण्ड और भक्ति में गुप्त रीति से यहाँ ह, अतः सरस्वती और ज्ञान दोनों का श्वेतरूप है।

त्रिवेणी और हरिहर कथा (भगवत् और भागवत कथा) इन दोनों में यह समानता है, कि गंगा, यमुना और सरस्वती जहाँ मिली हैं, उस सङ्गम को त्रिवेणी कहते हैं और 'सन्त-समाज' न हरि हर कथा होती है, उसमें भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों मिलते हैं।

अक्षयवट और अपने धर्म में अक्षय, अटल

...स, इस ...ार कि--'आपन जान न त्याग- ...र रघुवीर भरोस।' इसमें समता यह है ...ट का प्रलय में भी नाश नहीं होता और स... होने पर भी विश्वास को नहीं छोड़ते। यथा --...टि विघ्न से सन्त कर, मन जिमि नीति न त्याग।' इधर वट और विश्वास दोनों शङ्कर रूप हैं। 'प्रा...बट बूट बसत पुरारी हैं' (क० उ०) और "श्रद्धा... ...स रूपिणौ।" इधर प्रलयकाल में अक्षयवट के ... इधर वैसे ही विश्वास में श्रीरामजी की प्रतान् रहते हैं, यथा:--"बिन विश्वास भगत नहि होती है। द्रवहिं न राम।" बिन

तीर्थराज समाज और सुकर्म अर्थात शुभ... का यथा योग्य आचरण-

"त्रिवेणी माधवं सोमं भरद्वाजञ्च वासुकीम्।
बन्दे अक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्॥" यह देव समाज प्रयाग में है।

उक्त लेख में यह प्रश्न (शंका) अवश्य उठता है, कि त्रिवेणी तीन नदियों के संगम से बनी है और 'सन्त समाज' में हरि-हर कथा दो ही कही गई? इसका उत्तर (समाधान) यह है कि--'हरि-हर कथा विराजति बैनी' का भाव यह है कि— 'हरि-हर कथा रूपी भूमि में गंगा, यमुना और सरस्वती रूपी त्रिवेणी का संगम हुआ है। अर्थात्--'सन्त-समाज' रूपी जंगम-प्रयाग से श्रीराम भक्ति, कर्मकथा और ज्ञान तीनों विराज- मान हैं, जो इन तीनों में एक साथ स्नान करना चाहता हो वह 'सन्त समाज' में हरिहर कथा को श्रवण करे। क्योंकि हरि हर कथा के बहाने भक्ति, कर्म और ज्ञान का वर्णन होता है।

और 'रामभक्ति' कर्मज्ञान रूपी त्रिवेणी हरि- हर कथा से शोभित होती है। हरि-हर कहने का भाव यह है कि, इनमें लोग कुतर्क करते हैं। 'हरि- पद रत-मन न कुतरकी। तिन्ह कहँ कथा मधुर रघु- वर की।' इन दोनों अर्थों में यह शंका ही नहीं उठती।

'हरिहर कथा विराजत बैनी' ऐसा परिच्छेद करना चाहिये। 'हरि' से सगुण निर्गुण दोनों ब्रह्म का ग्रहण करना चाहिए। सगुण से भक्ति रूप कथा गंगा, निर्गुण से गुप्त रूपी ब्रह्मज्ञान विचार सरस्वती है। 'हर' से महादेव और उनके यम सदृश गण, तिनके कर्मों की कथा यमुना हैं। इनके संगम से त्रिवेणी सोहती हैं, ऐसी व्याख्या करनी चाहिये। ऐसी व्याख्या न कर पहिली चौपाई (राम-भक्ति जहँ सुरसरि धारा) इत्यादि असंगत होती है। पुनः कोई-कोई 'विराज' से पक्षिराज भुशुण्डजी वा 'विराजित' से 'हंस पर शोभित ब्रह्माजी' का अर्थ लेकर शंका निवृत्ति करते हैं।

...स प्रकार है कि जैसे गंगा, यमुना और कर्म के संगम का नाम 'त्रिवेणी' पड़ा, जहाँ 'हरि-हर' ... प्राप्त है। वैसे ही श्रीरामभक्ति, कर्म, ज्ञान आ...न, तीनों के संगम का नाम है, इसके श्रवण ... क्यों कि इस कथा में हैं। हरि (भगवत) ... वर्णन आगया अभेद जनाया है। ... हो सकते

'राम भगति जहँ सुरसरि...'

'जहँ' का भाव यह है कि अन्यत्र रामभक्ति नहीं है 'सन्त-समाज' ही में है। 'धारा' अर्थात जहाँ राम-भक्ति का प्रभाव है। भक्ति विशेष रूप से कथन होती है, पुनः 'धारा' से यह सूचित किया कि-जैसे धारा गंगाजी की कहलाती है, चाहे जितनी नदियाँ उसमें मिलें, वैसे ही कर्म, ज्ञान और उपासना में मिलने से उपासना ही कहलाती है। यथा:-'जुग बिच भगति देव धुनि धारा'। 'सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि'। नदी प्रवाह रूप है, कथा प्रवाह रूप है। इसलिये कथा को नदी रूप कहा है।

'ब्रह्म विचार' प्रचार, ब्रह्मविद्या, सरस्वती की तरह गुप्त हैं। ब्रह्म विद्या का प्रचार है, परन्तु

'सन्त-समाज' के बाहर नहीं है, भीतर ही गुप्त रूप से ब्रह्म विद्या का प्रचार है। कारण, कि 'सन्त-समाज' अधिकारी है, उससे बाहर इसका अधिकारी नहीं है। भक्ति का अधिकारी सारा विश्व है। जैसे गङ्गाजल के सहारे यमुना और सरस्वती का भी पान सबको सुलभ है, वैसे ही भक्ति के सहारे ब्रह्मविद्या भी सबको सुलभ है।

'कर्म-कथा' को यमुना और 'सुकर्म' को तीर्थ-राज का साज-समाज कहा। इसमें पुनरुक्ति नहीं है। यमुनाजी कर्म-शास्त्र में हैं जिसमें कर्मों का वर्णन है कि कौन कर्म-धर्म करने योग्य है और कौन नहीं और शुभ कर्मों का यथा योग्य आचरण ही राज समाज है (क) 'सुकर्मा' कहा है है कि दैवी सम्पदा रूप जो ... जन करें, एकत्र होना यही समाज है ... जाता है। कि जहाँ बड़े लोग बैठें विश्वास पद रक्खा वह स्थान ... कि बिना विश्वास के अचल ... कारण विश्वास है।

(ख) गो... ता ... प्रयाग से अधिक गुण ... यहाँ अधिक अभेद रूपक है; क्योंकि ... से उपमेय में कुछ अधिक गुण दिखलाकर रूपता स्थापित की है।

सन्त समाज में प्रयाग-राज से अधिक गुण हैं—

सन्त-समाज—

(१) जङ्गम है, अर्थात् ये सब देशों में विचरते रहते हैं।

(२) 'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा' अर्थात् ऊँच, नीच, धनी, निर्धन इत्यादि कोई भी क्यों न हो सबको सुलभ है, तथा इसका माहात्म्य सब दिन एकसा रहता है और सत्सङ्ग हर जगह प्राप्त हो जाता है, यथाः—'भरतदस्स देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भाग। जनु सिंघल बासिन्ह भयेउ, विधिवश सुलभ प्रयाग'!

(३) सन्त-समाज की महिमा और गुण अकथनीय है यथाः—'विधि ... बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।' '... साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं ...'

(४) जैसा सन्त-समाज का कथन है ... कर्म है, विश्वास है इत्यादि हैं वैसा कोई ... नहीं सकता और न आँख से देखा जा ...

(५) सन्त-समाज की समता ... कोई तीर्थ देवता, आदि लोक में नहीं है। सन्त-समाज के सेवन करने वाले ... होजाते हैं। यह फल ...कीजी, प्रह्लादजी, अजामिल सब पर प्रगट ... हैं।

इत्यादि सन्त-समाज, के सादर सेवन से चारों ... इसी तन में शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं और जीतेजी मोक्ष मिलता है। सत्संग से जीवन्मुक्त हो जाते हैं, यही अक्षत तन मोक्ष मिलना है। तुरत फल इस प्रकार कि सत्संग में महात्माओं का उपदेश सुनते ही मोह अज्ञान मिट जाता है।

प्रयाग-राज—

(१) स्थावर है अर्थात् एक ही जगह पर स्थित है।

(२) सबको सुलभ नहीं, जिसका शरीर निरोग हो, रुपया पास हो जिससे वहाँ पर पहुँच सके, इत्यादि ही लोगों को सुलभ है। प्रयागराज का विशेष माहात्म्य केवल माघ मास में है जब मकर राशि पर सूर्य्य रहते हैं।

(३) प्रयागराज का माहात्म्य वेद पुराणों में कहा गया है. यथाः—'बंदी वेद पुरानगन, कहहिं विमल गुन ग्राम।'

(४) प्रयाग-राज- के सब अंग देख पड़ते हैं।

(५) लोक में प्रयाग-राज समान ही नहीं, किन्तु इससे बढ़कर पञ्चप्रयाग हैं, अर्थात् देव-प्रयाग, रुद्रप्रयाग नन्द प्रयाग और विष्णु प्रयाग। हृषीकेश में भी त्रिवेणी है, गालव मुनि को सूर्य्य भगवान के वरदान से यहीं त्रिवेणी स्नान हो गया था, इसका माहात्म्य विशेष है।

(६) प्रयाग-राज से भी चारों फल प्राप्त होते हैं